

पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति

[अखिल भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्र परिषद् द्वारा ११०१ व० के
१९७३ चाँदमल पाण्ड्या पुरस्कार से पुरस्कृत]

लेखक

डॉ० रमेशचन्द्र जैन

एम० ए०, पी-एच-डी०, डी० लिट्, जैनदर्शनाचार्य

प्रवक्ता संस्कृत विभाग

वद्वंमान कालेज, बिजनौर

प्रकाशक

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

परम पूज्य पितामह
श्री सिधई भागचन्द जैन सौरया
के करकमलों में
सादर समर्पित
जितको
हार्दिक प्रेरणा एवं मृदुल स्नेह
पाकर मैं अपने जीवन पथ में
आगे बढ़ सका

आभार

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी (जन्म ४ जुलाई, १९३८) तिनसुकिया के सुप्रसिद्ध व्यवसायी एवं उद्योगपति स्व० श्री हरकचन्द जी सेठी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। उन्होंने अल्पकाल में ही औद्योगिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में विशेष प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है।

सिलचर, गोरखपुर, सीतापुर व लखनऊ में आपकी आटा-चावल मिलें हैं तथा तिनसुकिया, गोहाटी व दिल्ली में व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं।

आप उ० प्र० रोलर फ्लोर मिलर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष रहे हैं, कई सरकारी समितियों के सदस्य हैं व सरकारी डेलीगेशनों में विदेशों की यात्रा भी कर चुके हैं। आपका आचार-विचार अत्यन्त शुद्ध एवं निर्मल है तथा धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में आप सदा ही अग्रणी रहते हैं। वर्ष १९८१ में महासभा का अध्यक्ष पद ग्रहण करते ही प्रत्येक प्रान्त में महासभा के अधिवेशन आयोजित कराकर तथा प्रान्तीय समितियाँ गठित कराकर आपने जैन जगत् में एक नवीन चेतना का संचार किया है।

दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार विकास के लिए आपकी उत्कट लगन है तथा देश भर के अनेक तीर्थ क्षेत्रों पर आपने मुक्त हस्त से दान देकर अपने द्रव्य का सदुपयोग किया है। आप उत्तरांचल दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमिटी के महामंत्री, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमिटी की कार्यकारिणी के सदस्य, अयोध्या तीर्थ क्षेत्र के अध्यक्ष तथा अन्य कई तीर्थ क्षेत्रों के संरक्षक अध्यक्ष हैं।

धर्म साहित्य एवं धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार में आपकी विशेष रुचि है। डॉ० रमेशचन्द्र जैन की पी० एच० डी० उपाधि के शोध प्रबन्ध “पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति” के प्रकाशन में आपने आर्थिक सहयोग दिया है। जिसके लिए श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का साहित्य प्रकाशन विभाग आपका विशेष आभारी है। डॉक्टर साहब संस्कृत साहित्य के लघु प्रतिष्ठित विद्वान् हैं तथा वर्तमान में बिजनौर स्नातकोत्तर कालेज के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं।

राजकुमार सेठी

मंत्री-साहित्य प्रकाशन-विभाग,
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

प्राक्कथन

महादेश भारतवर्ष की प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि विभिन्न प्राचीन एवं मध्ययुगीन भाषाओं में प्राप्त जैन परम्परा का पुराण साहित्य पर्याप्त विपुल, विविध एवं श्रेष्ठ कोटि का है। सुदूर अतीत से ही शिष्ट साहित्यिक भाषा के रूप में संस्कृत का सर्वोपरि महत्त्व रहता आया है और संस्कृत भाषा का भी जैन पुराण साहित्य भाषा-सौष्ठव, काव्योचित गुणों, आकार-प्रकार आदि किसी भी दृष्टि से अन्य परम्पराओं के पुराण साहित्य की अपेक्षा तनिक भी हीनस्तरीय नहीं है।

अद्यावधि उपलब्ध संस्कृत भाषा के जैन पुराणों में दशरथ रविषेणकृत पद्मपुराण या पद्मचरित सर्वप्राचीन है। सात महाविकारों, १२३ पर्वों और १८००० श्लोकों में निबद्ध इस महान् पुराण ग्रन्थ की रचना आचार्य ने महावीर निर्वाण के छः मास अधिक १२०३ वर्ष व्यतीत होने पर, अर्थात् सन् ६७६ ई० के वैशाख मास के शुक्ल पक्षारम्भ में, सम्भवतया अक्षय तृतीया के दिन, पूर्ण की थी। ग्रन्थ के इस सुनिश्चित रचमाकाल के विषय में किसी भी आधुनिक विद्वान् ने कोई शंका नहीं उठाई है। रविषेण दिगम्बर आश्रमाय के अनुयायी थे, यह तथ्य निर्विवाद है, किन्तु उस परम्परा के किस संघ-गण-गच्छ से वह सम्बद्ध थे, इसकी कोई सूचना नहीं है। केवल यही ज्ञात है कि वह सन्मुनि लक्ष्मणसेन के शिष्य थे, जो स्वयं अर्हम्मुनि के शिष्य और दिवाकर यति के प्रशिष्य थे और यह दिवाकर यति इन्द्रगुरु के शिष्य थे।

जैन परम्परा में इक्ष्वाकुवंशी अयोध्यापति दशरथ रामचन्द्र का अपरनाम 'पद्म' विशेष प्रसिद्ध रहा है, अतएव पद्मपुराण या पद्मचरित से आशय रामचरित, रामकथा या रामायण का होता है। भारतीय पुराण पुरुषों में श्री राम का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र या कथानक प्रायः सर्वाधिक लोकप्रिय रहता आया है और उसका प्रभाव देश एवं काल की सीमाओं का अतिक्रमण करके अतीव व्यापक रहा है। ब्राह्मण परम्परा में वाल्मीकीय रामायण रामचरित्र का मूलाधार माना जाता है। बौद्ध परम्परा में उसका आधार दशरथ-जातक है। और जैन परम्परा में केवलजिन प्रणीत द्वादशमश्रुत के बारहवें अंग दृष्टिप्रवाद के तृतीय विभाग, 'प्रथमानुयोग' में वर्णित त्रैलोक्य-कालाका पुरुषों का चरित उसका मूल स्रोत माना जाता है। आचार्य रविषेण के अनुसार पद्मचरित (रामचरित्र) का वह मूल कथानक इन्द्रभूति, सुधर्मा

आदि केवलियों और प्रभव आदि श्रुतकेवलियों के माध्यम से प्रवाहित होता हुआ अन्ततः अनुत्तरवासी कीर्तिधर नामक आचार्य को प्राप्त हुआ और उक्त कीर्तिधर के ग्रंथ को देखकर रविवेण ने अपना पद्मपुराण रचा है। रविवेण के परवर्ती अपभ्रंश भाषा के महाकवि स्वयंभू ने भी अपनी रामायण या पद्मचरित (लगभग ७९० ई०) में यही बात कही है, साथ ही कीर्तिधर के उपरान्त रविवेण का भी नामोल्लेख किया है। अतः इन दोनों विद्वानों के सम्मुख आचार्य कीर्तिधर का रामचरित्र विद्यमान था, जो अब कहीं उपलब्ध नहीं है। दूसरी ओर, विमलार्थ कृत प्राकृत पद्मचरित का जिसका रचनाकाल विभिन्न विद्वान् प्रथम शती ई० से पांचवीं शती ई० पर्यन्त किसी समय रहा अनुमानित करते हैं, कोई भी नामोल्लेख रविवेण और स्वयंभू ने नहीं किया, यद्यपि उसके साथ इन दोनों के ग्रन्थों की तुलना करने पर अनेक साम्य लक्षित होते हैं। अब या तो जिसे आज विमल सूरिकृत पद्मचरित्र के रूप में जाना जा रहा है, उसे ही रविवेण और स्वयंभू कीर्तिधर की कृति के रूप में जानते थे, अथवा उन तीनों का ही मूल स्रोत वह कोई अन्य ग्रन्थ रहा है जिसके विषय में आज कुछ ज्ञात नहीं है। उन तीनों में भी परस्पर भाषा, शैली, संकोच, विस्तार आदि के अनेक अन्तर हैं, तथापि वे जैन रामकथा की उस एक धारा का ही प्रतिनिधित्व करते हैं जो गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराण (त० ८५० ई०) में प्राप्त धारा से भिन्न है। परवर्ती लेखकों में से कुछ ने एक धारा का अनुसरण किया, कुछ ने दूसरी का, तथापि गुणभद्रीय धारा की अपेक्षा रविवेणीय धारा ही अधिक लोकप्रिय रही। रामकथा या तत्संबंधी प्रसंगों अथवा प्रकरणविशेषों को लेकर जैन लेखकों द्वारा विभिन्न भाषाओं में रचित साविक दो सौ रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनमें से लगभग डेढ़ सौ का आधार रविवेणीय पद्मपुराण ही है।

हमने लगभग तीस वर्ष पूर्व रविवेणकृत पद्मचरित के सन्दर्भ में लिखा था कि वह 'प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी तथा रामकथा की विभिन्न जैनार्थ धाराओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है। वस्तुतः प्रत्येक साहित्यकार की कृति में उसके समसामयिक समाज की सभ्यता एवं संस्कृति अल्पाधिक प्रतिबिंबित होती ही है, भले ही उसका वर्ण्य कथानक उससे सैकड़ों या सहस्रों वर्षों पूर्व घटित घटनाओं एवं व्यक्तियों से सम्बन्धित रहा हो। अतएव इधर विश्वविद्यालयों के शोधछात्रों द्वारा ग्रन्थपरक सांस्कृतिक अध्ययन अनेक किये जा रहे हैं। डॉ० रमेशचन्द्र जैन का पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति' भी उसी कड़ी की शोध-आजपूर्ण कृति है। ई० सन् की छठी-सातवीं शताब्दियों के आसपास की भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं

जनजीवक से सम्बन्धित जो विपुल सामग्री रविशेणाचार्य की इस पुराण में संक्षिप्त है, उसका सम्यक् आलोचन करके, बड़े अमपूर्वक एवं सूक्ष्मज्ञ के साथ डॉ० जैन ने अपनी इस पुस्तक में उजागर किया है, जिसके लिए वह साधुवादार्ह है। चयनित सामग्री का व्यवस्थित आकलन, तुलनात्मक विवेचन, उपर्युक्त सन्दर्भ, यथावश्यक पादटिप्पणियों, समीक्षक दृष्टि, उपयोगी परिशिष्टों आदि से समन्वित यह शोधप्रबन्ध ज्ञानवर्द्धक, प्रामाणिक एवं पठनीय है, और तद्विषयक बोध-खोज में सहायक होने की क्षमता से युक्त है। रामकथा के विभिन्न पक्षों तथा तद्विषयक विभिन्न साहित्यिक कृतियों पर गत पचास-साठ वर्षों में जो अनेकों शोध-खोजपूर्ण विवेचन प्रकाश में आये हैं, और नित्य आ रहे हैं, उनमें डॉ० जैन के इस रविशेणाय पद्मचरित विषयक सांस्कृतिक अध्ययन की भी गणना होगी।

ज्योति प्रसाद जैन

ज्योति निकुञ्ज,

चारबाग, लखनऊ-१९

दिनांक २१-१०-१९८३ ई०

दो शब्द

“पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित भारतीय संस्कृति” ग्रन्थ विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन द्वारा वर्ष १९७२ ई० में पी-एच. डी. उपाधि हेतु स्वीकृत किया गया था । इस ग्रन्थ की रचना में अनेक विद्वानों की कृतियों का यत्न-तत्परा उपयोग हुआ है । श्रेष्ठ डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा अनूदित तथा भारतीय ज्ञान गीठ द्वारा प्रकाशित पञ्चचरित के प्रामाणिक संस्करण का उपयोग लेखक ने ग्रन्थ निर्माण में किया है । पूज्य गुरुवर्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, डॉ० हीरालाल जी, सिद्धान्ताचार्य, डॉ० फूलचन्द्र शास्त्री, डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री, डॉ० दरबारीलाल कोठिया, प्रो० उदयचन्द्र जैन, प्रो० अमृतलाल शास्त्री एवं डॉ० कीमलचन्द्र जैन की रचनाओं अथवा सुझावों से मैं विशेष लाभान्वित हुआ । श्रेष्ठ पं० जम्बूप्रसाद जी शास्त्री समय-समय पर सत्यरामर्ष देते रहे । शोध प्रबन्ध के निर्देशक होने के कारण डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन (महामन्त्री भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत् परिषद्) एवं भूतपूर्व रीडर संस्कृत अध्ययन-शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन) से पर्याप्त दिशा निर्देश प्राप्त होता रहा । अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रिपरिषद् के कर्णधार डॉ० लालबहादुर शास्त्री तथा वाणीभूषण पं० बाबूलाल जैन जमादार ने उक्त ग्रन्थ पर श्रीमान् राय साहब चाँदमल पाण्ड्या पुरस्कार के अन्तर्गत १९७२ का एक सहस्र एक सौ एक रुपये का पुरस्कार दिलाकर लेखक का उत्साहवर्द्धन किया है । महावीर प्रेस, वाराणसी के मालिक बाबूलाल जैन फागुल्ल ने सुन्दर मुद्रण कर समाज को अनेक ग्रन्थरत्न भेंट किए हैं, इसी परम्परा में यह ग्रन्थ भी उन्हीं के प्रेस में मुद्रित होकर जन साधारण के समक्ष आ रहा है । इन सब महानुभावों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । श्रीमान् सेठ निर्मलकुमार जी सेठी, सीतापुर इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महासभा की ओर से अपना आर्थिक योगदान न दिलाते तो यथाशीघ्र इस ग्रन्थ का सबके समक्ष आना कठिन था, अतः मैं अ. दि. जैन महासभा तथा उसके अध्यक्ष सेठी सा. के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ । वर्तमान कॉलेज बिजनौर तथा जैन मन्दिर, बिजनौर के ग्रन्थागारों में उपलब्ध ग्रन्थों से मैं लाभान्वित हुआ, अतः इनके तत्कालीन पदाधिकारियों डॉ० श्रीराम त्यागी, डॉ० राजकुमार अग्रवाल एवं आदरणीय बाबू रतनलाल जैन के प्रति मैं अपना धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ । आशा है, जन समुदाय एवं विद्वन्मण्डली में इस ग्रन्थ का समादर होगा ।

जैन मन्दिर के पास
बिजनौर, उ० प्र०

विद्वद्गुणानुरागी
रमेशचन्द्र जैन

विषयानुक्रमणिका

अध्याय १

पद्यचरित का परिचय

१-३४

पद्यचरित के कर्ता—(आचार्य रविषेण) १, पद्यचरित का समय १, पद्यचरित की कथावस्तु का आधार १, पद्यचरित की कथावस्तु ५, कथानक रूढ़ियाँ १०, पद्यचरित की भाषा और शैली १४, पद्यचरित : एक महाकाव्य २४, जैन-कथा साहित्य और पद्यचरित २८, पद्यचरित में संकेतित ब्राह्मण धर्म ३० ।

अध्याय २

सामाजिक व्यवस्था

३५-११३

ऐतिहासिक विकास ३५, परिवार ३५, नारी की स्थिति ३७, विवाह प्रथा ३८, स्नान ३९, स्नान में प्रयुक्त पात्र ३९, भोजन पात्र ४०, अन्न भोजन ४०, फलभोजन ४१, पक्वान्न भोजन ४२, शाक भोजन ४३, पेयपदार्थ—मदिरा ४३, मधु ४४, दूध एवं दूध के बने पदार्थ ४४, इक्षुरस ४४, पुण्ड्र ४५, भोजन सम्बन्धी पदार्थों के प्रकार—भक्ष्य ४५, भोज्य ४५, पेय ४५, लेह्य ४५, जूथ्य ४५, भोजनशाला में प्रयुक्त पात्र ४५, विद्या ४६, विद्या प्राप्ति के लिए आवश्यक बातें ४६, गुरु का महत्त्व ४६, विद्या प्राप्ति का स्थान ४७, लिपि—अनुवृत्त ४७, विकृत ४७, सामयिक ४७, नैमित्तिक ४७, विद्या प्रदाता ४८, विद्याओं के प्रकार—व्याकरण विद्या ४८, गणित शास्त्र ४९, वसुर्वेद ४९, आरण्यक शास्त्र ४९, ज्योतिष विद्या ५०, वेद ५०, वेदान्त ५१, बौद्ध दर्शन ५१, निमित्त विद्या ५१, शकुन विद्या ५१, प्राणियों के शुभाशुभ सूचक दर्शन एवं क्रियाओं से प्राप्त शकुन ५२, प्राकृतिक तत्त्वों से प्राप्त शकुन ५४, शारीरिक लक्षणों से प्राप्त शकुन ५४, स्वप्नों से प्राप्त शकुन ५५, ग्रहोपग्रहों से प्राप्त शकुन ५६, विविध शकुन ५६, शकुन का कारण ५६, अपशकुनों की निवृत्ति के उपाय ५७, आरोग्य-शास्त्र ५७, कामशास्त्र ५८, संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी आदि भाषायें ५८, संगीत विद्या ५८, नृत्यविद्या ५८, काव्यशास्त्र ५८, अर्थशास्त्र ५९, नीति-शास्त्र ५९, नाट्य-शास्त्र ५९, गान विद्या ५९, गान के चार प्रकार ५९, मान की उत्पत्ति ५९, अस्वविद्या ५९, लोकज्ञता ६०, लोक के प्रकार ६०, मंत्र शक्ति से प्राप्त विद्यायें ६०, अन्य विद्यायें ६२, वर्ण व्यवस्था ६२, क्षत्रियादि त्रिवर्ण

की प्रसिद्धि ६३, ब्राह्मण वर्ण और उसका इतिहास ६३, वर्ण व्यवस्था जन्मना नहीं ६४, जातिवाद का खण्डन ६४, ब्राह्मण कौन ६५, भृत्यवृत्ति और उसकी निन्दा ६६, विभिन्न जातियाँ या वर्ग ६७, वस्त्र और आभूषण ७४, वस्त्र—अंशुक ७४, पट्टांशुक ७५, कंचुक ७५, दुकुल ७५, वासस् ७६, वस्त्र रखने के पात्र—पटल ७७, आभूषण—शिरोभूषण ७७, शोखर ७७, मीमन्त मणि ७८, चूड़ामणि ७८, कर्णाभूषण—कुण्डल ७८, अवतंस ७८, बालिका ७८, तलपत्रिका ७९, कण्ठाभूषण—हार ७९, लङ्क ८०, हाटक ८०, रत्नजटित स्वर्ण सूत्र ८०, कराभूषण—केयूर ८०, कटक ८०, ऊर्मिका ८१, कटि आभूषण—काञ्ची ८१, पैरों के आभूषण—तूपुर ८१, आर्थिक जीवन—वाणिज्य ८२, कृषि ८३, पशु-पालन ८४, अन्य उद्योग ८५, आर्थिक समृद्धि की पराकाष्ठा ८५, जन जीवन ८७, धन की महत्ता ८८, विवर्ग ८८, प्राकृतिक सम्पदा—वृक्षादि वनस्पति ८९, लतायें ९०, पुष्प ९०, उद्यान ९१, वन ९१, सरोवर ९१; नदियाँ ९१, पर्वत ९२, समुद्र ९४, पाँच पक्षी आदि जीव जन्तु ९४, नगर-ग्राम ९८, भौतिक मान्यतायें व प्रथायें १०५, भूत प्रेतों में विश्वास १०५, बट वृक्ष की पूजा १०६, शकुन में विश्वास १०६, ज्योतिष पर विश्वास १०६, वस्त्र पूजा १०६, आचार-व्यवहार १०७ ।

अध्याय ३

मनोरंजन

११४-१३७

क्रीड़ा—क्रीड़ा के भेद ११४, क्रीड़ा ग्राम ११४, जलक्रीड़ा ११५, वन क्रीड़ा ११७, द्यूत क्रीड़ा १२०, दोला चिलास १२०, पर्वतारोहण १२१, गोष्ठी १२१, कथा १२२, कथा के भेद १२३, इन्द्रजाल १२४, मुद्गक्रीड़ा १२५, पारिवारिक उत्सव १२६, पंच कल्याणक महोत्सव १२७, वसन्तोत्सव १३०, आषाढ-हस्तिक महोत्सव १३२, मदनोत्सव १३३, विद्या निर्मित क्रीड़ायें १३४, विविध मनोरंजन १३५ ।

अध्याय ४

कला

१३८-२००

कलाओं का वर्गीकरण १३८, नाट्यकला १३९, संगीतकला १३९, स्वर १४०, वृत्ति १४०, मूर्च्छना १४०, लय १४४, ताल १४५, जाति १४६, जातियों के भेद १४७, वीथी १४७, आर्यभी १४७, षड्ज १४७, षड्जोदीच्या १४८, निषादी १४८, गांधारी १४८, षड्जकैशिकी १४८, षड्जमध्यमा १४८, गांधारो-दीच्या १४९, मध्यम पंचमी १४९, गांधार पंचमी १४९, रक्त गांधारी १४९, मध्यमा १४९, आन्ध्री १४९, मध्यमोदीच्या १४९, कर्माँखी १४९, नन्वनी

१५०, कोशिकी १५०, संगीत की अभिव्यक्ति १५०, संगीत के चार पद १५०, स्थायी पद के अलंकार १५०, संचारी पद के अलंकार १५०, आरोही पद के अलंकार १५०, अवरोही पद के अलंकार १५०, ग्राम १५०, नृत्यकला—सुन्दर नृत्य के लिए आवश्यक बातें १५१, नृत्य की मुद्रायें १५२, नृत्य के भेद १५२, वाद्यों के चार भेद—तल १५३, अवनद्ध १५३, सुधिर १५३, घन १५३, तन्वी १५४, अवनद्धवाद्य—मृदङ्ग १५४, पटह १५५, ठक्का १५५, पणघ १५६, घनवाद्यताल १५६, चित्रकला—१५६, चित्र के भेद १५७, शुष्कचित्र, आर्द्र-चित्र, शुष्कचित्र के भेद १५७, आर्द्र चित्र के भेद १५७, चित्र के चार भेद १५७, मूर्तिकला—१५८, जिनप्रतिमा १५९, वासनयन १६०, रविमूर्ति १६०, मुनिमूर्ति १६०, प्रतीहार मूर्ति १६१, पशुमूर्तियाँ १६१, वास्तुकला—नगर वास्तु-नगर प्रभेद १६२, दुर्ग १६३, देशव्ययन १६३, मार्ग विनियोग १६४, राजमार्ग १६५, रथ्या १६५, त्रिकचत्वर १६६, जिनालय १६६, उद्यान १६७, रक्षा-संविधान १६७, वस्त्र एवं परिखा १६७, प्राकार १६८ अट्टाल १६९, गोपुर १६९, भवन निवेश—जन्म एवं विकास १७०, शालाभवन या शालभवन १७२, यज्ञशाला १७२, चतुःशाला १७२, द्वार १७३, स्तम्भ १७४, आस्थान मण्डप १७४, अन्य मण्डप १७४, भवन रचना १७५, सभा १७७, गेह १७७, गृह १७७, शैश्व १७८, आगार १७८, आलय १७९, शालाभक्तिका १८२, प्रासाद १८३, हर्म्य १८४, मन्विर १८४, सभा १८४, दीर्घिका १८६, गवाक्ष १८६, क्रीडनक स्थान १८७, प्रपा १८८, कूटगृह १८८, समवसरण १८८, जिनेन्द्रालय १८९, चैत्य १९१, विमान १९२, नरयान १९३, सिंहासन १९३, शय्या १९४, विविध कलायें—उदित कौशलकला १९४, उक्ति कौशल के भेद—स्थान, स्वर, संस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थता, भाषा, लेख तथा मातृकायें १९४-१९६, पुस्तकर्म—क्षय अन्य पुस्तकर्म १९६, उपचयजम्ब पुस्तकर्म १९६, संक्रमजम्ब पुस्तकर्म १९६; यन्त्र १९६, निर्यन्त्र १९६, सच्छिद्र १९६, निश्छिद्र १९६, पत्रच्छेद क्रिया १९६, पत्रच्छेद के भेद—बुष्किम, छिन्न तथा अच्छिन्न १९७, माला निर्माण की कला—माला निर्माण के प्रकार, आर्द्र, शुष्क, तदुन्मुक्त तथा मिश्र १९७, गन्धयोजना—गन्धयोजना के अङ्ग—धोनि-द्रव्य, अघिष्ठान, रस, धीर्य, कल्पना, परिकर्म तथा कौशल १९७-१९८, गन्ध-योजना कला के भेद १९८, संवाहन कला १९८, संवाहन कला के प्रकार—कर्म संश्रया १९८, शय्योपचारिका १९९, कर्म संश्रया के भेद—मृदु अथवा सुकुमार, मध्यम, उत्कृष्ट तथा मनःसुखसंवाहन १९९, कर्मसंश्रया संवाहन कला के भेद १९९, शय्योपचारिका १९९, शोभास्पद संवाहन १९९, वेष्ट कौशल कला २००, लेखकला २०० ।

अध्याय ५

राजनेतिक जीवन

२०१-२३२

राज्य की उत्पत्ति २०१, राजा का महत्त्व २०२, राजा के गुण २०३, दुराचारी राजा और उसके दुर्गुण २०४, राज्य के मंत्र २०५, अग्नाग्नि २०६, जनपद २०६, नगर २०७, नगर निवासी २०८, पत्तन २०८, ग्राम २०९, संवाह २०९, मटम्ब २०९, पुटभेदन, २१०, धोष २१०, व्रणमुख २१०, शेट २१०, कर्षट २११, दुर्ग २११, कोश २११, सेना २१२, सेना के भेद—पत्ति, सेना, सेनामुख, गुल्म, बाहिनी, पुतना, चमू, अनीकिनी तथा अक्षौहिणी २१२-२१३, हस्तिसेना २१३, अश्वसेना २१३, रथसेना २१४, पदातिसेना २१४, विद्याधर सेना २१४, शिविकासेना २१५, अस्त्र-शस्त्र २१५, मित्र २१८, राजा का निर्वचन २१९, राष्ट्राभिषेक २१९, प्रजापालन २२०, युत्तचर तथा दूत व्यवस्था २२१, सामन्त २२२, लेखवाह २२३, लेखक २२३, युद्ध और उसके कारण २२३, गुण सिद्धान्त २२४, सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय तथा द्वेषीभाव २२५, युद्ध की प्रारम्भिक स्थिति २२५, वाद्यों का प्रयोग २२६, युद्ध की विधि २२७, सैनिक उत्साह २२८, युद्ध वर्णन २३०, सैनिकों का विश्राम २३१, युद्ध का फल २३२ ।

अध्याय ६

धर्म-दर्शन

२३३-३०२

धर्म का लक्षण २३२, धर्म का साहाय्य २३२, उत्कृष्ट धर्म २३४, धर्म के भेद—सागार धर्म, अनगारधर्म २३४, गृहस्थ धर्म—पाँच अणुव्रत—स्थूल हिंसा का त्याग, स्थूल असत्य का त्याग, स्थूल परब्रह्मपहरण का त्याग, परस्त्री का त्याग तथा अनन्त तृष्णा का त्याग २३४-२३६, चार शिक्षाव्रत—सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग तथा सल्लेखना २३६, तीन गुणव्रत २३७, व्रत और उसकी भावनार्ये—अहिंसाव्रत की भावनार्ये, सत्यव्रत की भावनार्ये, अचौर्य-व्रत की भावनार्ये, ब्रह्मचर्यव्रत की भावनार्ये तथा परिग्रह त्यागव्रत की भावनार्ये २३७-२३९, नियम २३९, अनगारधर्म (मुनिधर्म) २४०, पाँच महाव्रत २४२, पाँच समिति २४२, गुप्ति २४३, परिग्रह जय २४३, अट्ठाईस मूल गुण २४३, सात मध २४३, आठ मर्दों का त्याग २४३, चारित्र्य—सामायिक छंदोपस्थापना, परिहार विदुष्टि, सूक्ष्म सोपराय तथा यथारूपात्—२४४, धर्म २४४, अनुप्रेक्षा २४५, मोक्ष प्राप्ति का उपाय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र्य २४५, सम्यग्दर्शन की महिमा २४६, जिनपूजा २४७, जिनपूजा की विधियाँ २४८, दान २४९, चार प्रकार के दान २४९, पात्र और उसके गुण २४९, प्रशंसनीय दान २४९, निन्दनीय दान २५०, दान का फल २५१, तीर्थकरत्त्व

की प्राप्ति २५१, सोलह भावनायें २५१-२५३, आठ प्रातिहार्य २५३, चौतीस अतिशय २५३, द्रव्य निरूपण—धर्म २५४, अधर्म २५४, आकाश २५५, लोक-रचना—अधोलोक २५५, मध्यलोक २५५, ऊर्ध्वलोक २५७, सिद्धक्षेत्र २५८, काल २५९, जीव २५९, ज्ञानोपयोग २६०, दर्शनोपयोग २६०, जीव के भेद २६०, गति २६०, इन्द्रिय २६०, काय २६०, योग २६१, वेद २६१, लेख्या २६१, कषाय २६१, ज्ञान २६१, दर्शन २६१, चारित्र्य २६२, गुणस्थान २६२, निसर्गज एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन २६२, नामादि न्यास २६२, नाम निक्षेप २६२, स्थापना निक्षेप २६२, द्रव्य निक्षेप २६२, भाव निक्षेप २६३, अनुयोग २६३, सत्त्व, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व २६३, भव्य जीव और अभव्य जीव २६३, सिद्धजीव २६४, संसारी जीवों का जन्म २६५, गर्भ, जन्म, जरायुज, अण्डज, पोत, उपपाद जन्म, शरीर, औदारिक, वैक्रियक, आहारक तथा कार्मण २६५-२६६, अनुपपत्ति और उत्पत्ति कार्यकता २६६, चारों गतियों में परिभ्रमण २६७, कर्म सिद्धान्त २६९, आठ कर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, पुद्गल २६९, आयु, नाम, गोत्र तथा अन्तराय २६९-२७०, घाति तथा अधाति कर्म २७०, प्रमाण और नय—प्रमाण २७०, नय २७०, अनेकान्त २७१, सप्तभंगी २७१, सर्वज्ञसिद्धि २७२, सृष्टि कर्तृत्व निषेध २७५, यज्ञ का प्रचलन २७६, यज्ञ की उत्पत्ति २७७, यज्ञ की पुष्टि में शास्त्र प्रमाण २७९, वेद के अपौरुषेयत्व का निषेध २७९, वेद शास्त्र नहीं हैं २८०, अपूर्व धर्म का निषेध २८१, यज्ञ सम्बन्धी विविध युक्तियों का खण्डन २८१, मनुष्य देवों की मान्यता का निषेध २८२, विविध धार्मिक मान्यतायें—तापस २८३, पृथ्वी पर सोने वाले २८४, भोजन त्यागी २८४, पानी में डूबे रहने वाले २८४, भृगुपात्री २८४, शरीर क्षोषिणी क्रियायें करने वाले २८४ तीर्थ क्षेत्र में स्नान करने वाले, दान देने वाले तथा उपवास करने वाले २८४, शिर मुँडाना, स्नान तथा अनेक प्रकार का वेध धारण करना २८४, अग्नि प्रवेश करने वाले २८४, कुलिङ्गी २८५, मस्करी २८५, कृतान्त, विधि, दैव तथा ईश्वर को मानने वाले २८५, अधार्मिक क्रियायें २८५, कुकृत-मुकृत २८५, मुक्ति का साधन २८६।

अध्याय ७

उपसंहार

पद्मचरित का सांस्कृतिक महत्त्व २८७, भारतीय कथा साहित्य में पद्मचरित का स्थान २८७-२९४, पद्मचरित का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव—पद्मचरित और हरिवंशपुराण २९४, पद्मचरित और पञ्चमचरित २९९-३०२।

सहायक ग्रन्थ सूची

शाब्दानुक्रमिका

३०३-३०८

३०९-३२७

अध्याय १

पद्मचरित का परिचय

पद्मचरित के कर्ता

पद्मचरित के कर्ता आचार्य रविषेण हैं। इन्होंने अपने किसी संघ, गण-गण्य का उल्लेख नहीं किया है और न स्तानाति की चर्चा भी की है। अपनी गुरु परम्परा के विषय में इन्होंने स्वयं लिखा है कि इन्द्र गुप्त के शिष्य दिवाकर यति थे, उनके शिष्य अर्हद यति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और उनका शिष्य मैं रविषेण हूँ।^१ पं० नाथूराम प्रेमी ने रविषेण के सेनान्त नाम से अनुमान लगाया है कि ये शायद सेन संघ के हों और इनकी गुरुपरम्परा के पूरे नाम इन्द्रसेन, दिवाकर सेन, अर्हत्सेन और लक्ष्मण सेन हों।^२ इनके निवास स्थान, माता-पिता आदि के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

पद्मचरित का समय

पद्मचरित की रचना के विषय में रविषेण ने लिखा है—जिनसूर्य श्री वर्धमान जिनेन्द्र के मोक्ष जाने के बाद एक हजार दो सौ तीन वर्ष छः मास कीत जाने पर श्री पद्ममुनि (राम) का यह चरित लिखा गया है।^३ इस प्रकार इसकी रचना ७३४ विक्रम (६६७ ई०) में पूर्ण हुई।

पद्मचरित की कथा वस्तु का आधार

पद्मचरित की कथावस्तु के आधार के विषय में रविषेण ने लिखा है कि श्री वर्धमान जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ यह अर्थ इन्द्रभूति नामक गणधर को प्राप्त हुआ, अनन्तर धारणीपुत्र सुधर्मा को प्राप्त हुआ, अनन्तर प्रभव को प्राप्त हुआ, प्रभव के अनन्तर कीर्तिधर आचार्य को प्राप्त हुआ। कीर्तिधर आचार्य के अनन्तर अनुत्तरवाग्मी आचार्य को प्राप्त हुआ तथा अनुत्तरवाग्मी आचार्य का

१. आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनिः।

स्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥ पद्म० १२३।१६८

२. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८८।

३. द्विशताभ्यधिके समासहस्त्रे समतीतेऽर्द्धशतवर्षयुक्ते।

जिनभास्करवर्धमानसिद्धेशचरितं पद्ममुनेरिव निबद्धम् ॥ पद्म० १२३।१२८

२ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

लिखा हुआ प्राप्त कर यह रविशेण का प्रयत्न प्रकट हुआ है।^४ ग्रन्थ के अन्तिम पर्व में इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है।^५ तदनुसार समस्त संसार के द्वारा नमस्कृत श्री बद्धभान (जिनेन्द्र) ने पद्मभूमि का जो भारत कहा था वही इन्द्रभूति (गौतमगणधर) ने सुधर्मा और जम्बू स्वामी के लिए कहा। वही जम्बू-स्वामी के प्रशिष्य उत्तरवाग्मी आचार्य के द्वारा प्रकट हुआ। ये उत्तरवाग्मी कौन थे ? इसके विषय में अभी तक कोई जानकारी नहीं प्राप्त हुई। इनके द्वारा लिखित राम कथा भी आज उपलब्ध नहीं है।

रामकथा सम्बन्धी प्राकृत की सबसे प्राचीन रचना विमलसूरि कृत पद्मचरिय है। पद्मचरिय तथा पद्मचरित को मिलाकर देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोनों का कथानक सर्वथा एक है। दोनों को परस्पर देखने से इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि ये एक दूसरे के भाषात्मक रूपान्तर मात्र हैं।^६ किसने किसका अनुवाद किया, यह यहाँ विचारणीय है। रविशेण ने अपनी रचना विक्रम सं० ७३४ में पूर्ण की, इसका उन्होंने ग्रन्थ में ही उल्लेख किया है। इस पर किसी को विवाद नहीं है। विमल सूरि ने बीर नि० सं० ५३० या वि० सं० ६० के लगभग पद्मचरिय की रचना की,^७ इसके विषय में विवाद है। डॉ० हर्मन जैकोबी उसकी भाषा और रचना शैली पर से अनुमान करते हैं कि वह ईसा की तीसरी चौथी शताब्दी की रचना है।^८ डॉ० कीथ,^९

४. बद्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम् ।

इन्द्रभूति परिप्राप्तः सुधर्मं धारणीभवम् ॥ पद्म० १।४१ ।

प्रभवं क्रमतः कीर्तिं ततोऽनुत्तरवाग्मिनम् ।

लिखितं तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गतः ॥ पद्म० १।४२ ।

५. निर्दिष्टं सकलैर्मतेन भुवनैः श्री बद्धमानेन यत् ।

तत्त्वं वासवभूतिना निर्गदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च ।

शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुनेः ।

श्रेयः साधुसमाधिबुद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम् ॥ पद्म० १-३।१६७ ।

६. जैन साहित्य और इतिहास (ताम्रराम प्रेमी), पृ० १०२-१०८ ।

७. पंचेव वासया दुसमाए तीसवरस संजुत्ता ।

बीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं ॥

पद्मचरियं (जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८७)

८. एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड ईथिक्स, भाग ७, पृ० ४३७ और मार्टिन रिब्यू दिस० सन् १९१४ ।

९. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास ।

डॉ० बुलनर^{१०} आदि इसे ईसा की तीसरी शताब्दी के लगभग की या उसके बाद की रचना मानते हैं, क्योंकि उसमें दीनार शब्द का और ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी कुछ ग्रीक शब्दों का उपयोग किया गया है। दी० ब० केशवराव धुव उसे और भी अर्वाचीन मानते हैं। इस ग्रन्थ के प्रत्येक उद्देश के अन्त में जो माहिणी, शरम आदि छन्दों का उपयोग किया गया है वह उनकी समझ में अर्वाचीन है। भीति में यमक और सर्गान्त विमल शब्द का आना भी उनकी दृष्टि में अर्वाचीनता का द्योतक है।^{११} डॉ० विंटरनिरज, डॉ० लॉथमन आदि विद्वान् बीर नि० ५३० को ही पञ्चमचरिय का रचनाकाल मानते हैं।^{१२} उद्योतनसुरि ने अपनी कुचलयमाला में जो वि० सं० ८३५ में समाप्त हुई थी, विमल^{१३} के विमलंक (पञ्चमचरिय) की जो रचिषेण के अन्तर्गत^{१४} की सराहना की है - इससे निश्चित रूप से इतना तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि पञ्चमचरिय वि० सं० ८३५ से पूर्व की रचना है। पं० नाथूराम प्रेमी पद्मचरित को प्राकृत पञ्चमचरिय का फल्लवित छायानुवाद मानते हैं। इसकी पुष्टि के लिए उनके प्रमुख तर्क निम्नलिखित^{१५} हैं।

१. दोनों ग्रन्थकर्तियों ने अपने-अपने ग्रन्थ में रचनाकाल दिया है। उससे स्पष्ट है कि पञ्चमचरिय पद्मचरित से पुराना है।
२. पद्मचरित में विस्तार और पञ्चमचरिय में संक्षेप पाया जाता है।
३. दोनों का कथानक बिल्कुल एक है और नाम भी एक है।
४. पर्वों या उद्देशों के नाम प्रायः एक से हैं।
५. पञ्चमचरिय के अन्तिम पद्य में विमल और पद्मचरित के पर्व के अन्तिम पद्य में रवि शब्द आता है।
६. पद्मचरित में जगह-जगह प्राकृत आर्याओं का शब्दशः संस्कृत अनुवाद दिखालाई देता है।

१०. इन्द्रोद्भवान टू प्राकृत ।

११. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९१ ।

१२. वही, पृ० ९१ ।

१३. जारसियं विमलंको विमलंकी तारिसं लहइ अत्यं ।

अमयमइयं च सरसं सरसं चि य पाइअं जस्स ॥

१४. जेहि कए रमणिज्जे वरंग पउमाणचरियवित्थारे ।

कहव ण सलाहणिज्जे ते कहणो जडिय रविसेणो ॥

—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८८ ।

१५. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८९-९० ।

४ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

७. माहृण शब्द की उत्पत्ति की जो कथा (मा हननं कार्षीः = हनन मत करो— पद्म० ४।१२२) पद्मचरित में मिलती है उससे उसके प्राकृत स्रोत का ही अनुमान होता है। संस्कृत में माहृण शब्द ही प्रचलित है। माहृण शब्द से इस प्रकार की व्युत्पत्ति नहीं निकाली जा सकती।

८. प्राकृत से संस्कृत किये जाने के अनेक उदाहरण जैन साहित्य में मिलते हैं। संस्कृत से प्राकृत में अनुवाद किये जाने का एक भी उदाहरण नहीं मिलता।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि रविषेणाचार्य ने इसे पद्मचरित के आधार से जैसा का तैसा रख दिया है, किन्तु पद्मचरित में पद्मचरित या उसके कर्ता का कहीं भी नामोल्लेख न किया जाना उपर्युक्त मत के स्वीकार करने के बीच एक बहुत बड़ी बाधा है। हो सकता है ये दोनों ग्रन्थ एक दूसरे के छाया अनुवाद न होकर किसी अन्य पूर्ववर्ती आचार्य के छाया अनुवाद या पल्लवित अनुवाद हों और उनकी यह रचना आज अनुपलब्ध हो। इस दृष्टि से पद्मचरित में जिन अनुत्तरवाग्मी^{१६} मुनिराज का उल्लेख आता है तथा जिनका लिखा रविषेण को प्राप्त हुआ, उन्हीं अनुत्तरवाग्मी मुनि प्रणीत ग्रन्थ के आधार पर दोनों ने अपनी रचना की हो, यह भी हो सकता है। पद्मचरित के आधार पर कवि स्वयम्भू ने अपभ्रंश में पद्मचरित की रचना लगभग आठवीं सदी^{१७} के प्रथम चरण में की। इस रचना का मूल स्रोत स्वयम्भू ने भी वही माना, जो कि रविषेण ने माना था।^{१८} इतना विशेष है कि चूँकि इन्होंने अपनी रचना रविषेण के पद्मचरित के आधार पर की थी, अतः अन्त में रविषेण का नाम भी दे दिया। इससे भी उपर्युक्त मन्तव्य की पुष्टि होती है।

दोनों ग्रन्थों के अध्ययन से इतना अन्तर अवश्य ज्ञात होता है कि जब रविषेण की कृति पूरी तरह दिगम्बर परम्परा की है सब विमलमूरि की कृति में कुछ बातें दिगम्बर परम्परा के अनुकूल हैं, कुछ श्वेताम्बर परम्परा के अनुकूल

१६. पद्म० १।४२।

१७. डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन : पद्मचरित (हिन्दी अनुवाद—प्रस्तावना सहित)।

१८. ब्रह्ममाणमुहकुहर विणिग्गय । रामकहा णइएह कमाणम ॥ १ ॥

.... ॥

एस रामकहसरि सोहन्ती । गणहर देवेहि दिट्ठ वहन्ती ॥ ६ ॥

पच्छइ इन्दभूइ आयरिएं । पुणु घम्मेणगुणालङ्कुरिएं ॥ ७ ॥

पुणु पहुवें संसाराराएं कित्तिहरेण अनुत्तरवाएं ॥ ८ ॥

पुणु रविसेणायरिय पसाएं । बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ॥ ९ ॥

—पद्मचरित, पृ० ६।

हैं और कुछ दोनों के प्रतिकूल होकर तीसरी परम्परा की ओर संकेत करती हैं। इसके कुछ उदाहरण भारतीय ज्ञानपीठ के सम्पादकवृत्त डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये तथा डॉ० हीरालाल ने दिये हैं।^{१९} पं० पन्नालाल साहित्यचार्य ने भी इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।^{२०} इसे दुहराना यहाँ विष्टेषण ही होगा।

पद्मचरित की कथावस्तु

पद्मचरित की कथावस्तु १२३ पर्वों में विभक्त है। इनमें कुछ पर्व तो बहुत बड़े-बड़े हैं और कुछ छोटे हैं, कुछ न बहुत बड़े हैं न बहुत छोटे। प्रथम पर्व में मङ्गलाचरण, सज्जन दुर्जन प्रशंसा तथा ग्रन्थ की संक्षिप्त कथावस्तु वर्णित है। द्वितीय पर्व में राजा श्रेणिक का विपुलाचल पर भगवान् महावीर के समवसरण में जाने का वर्णन है। तृतीय पर्व में राजा श्रेणिक का गौतम गणधर से राम-कथा के विषय में जिज्ञासा प्रकट करना, गौतम द्वारा कथा सुनाने का आश्वासन, कुलकरोँ की उत्पत्ति, ऋषभदेव का जन्म तथा उनके दीक्षाकल्याणक आदि का वर्णन है। चतुर्थ पर्व में ऋषभदेव का राजा श्रेणिक और गौतम के यहाँ आहार लेना, भगवान् को कैवल्य की प्राप्ति होना, भरत-बाहुबली युद्ध तथा ब्राह्मणवर्ण की सृष्टि विषयक चर्चा है। पंचम पर्व में चार महावंशों की वंशावलिष्टी, अजितनाथ भगवान् का वर्णन तथा सगर चक्रवर्ती का वर्णन है। षष्ठ पर्व में वातरवंश का विस्तृत वर्णन है। सप्तम पर्व में रथनूपुर के राजा इन्द्र का वर्णन तथा राक्षस वंश में दशानन की उत्पत्ति और प्रभाव वर्णित है। नवम पर्व में बालि, सुग्रीव, नल, नील आदि की उत्पत्ति, रावण द्वारा कैलाश पर्वत का उठाया जाना तथा बालि के प्रभाव की चर्चा है। दशम पर्व में सुग्रीव का सुतारा से विवाह, रावण का दिश्विजय के लिए निकलना तथा राजा सहस्ररश्मि की जलक्रीड़ा, दीक्षा आदि का वर्णन है। ११वें पर्व में हिंसायज का इतिहास दिया गया है। १२वें पर्व में रावण द्वारा इन्द्र की पराजय तथा १३वें पर्व में इन्द्र का दीक्षा लेने, निर्वाण प्राप्त करने का वर्णन है। १४वें पर्व में अनन्तबल मुनिराज का कैवल्यज्ञान तथा रावण द्वारा जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी, मैं उसे बलात् नहीं चहुँगा, इस प्रकार की प्रतिज्ञा ग्रहण का उल्लेख है। १५वें पर्व में पवनरज्य की उत्पत्ति और उसका अंजना के साथ विवाह वर्णित किया गया है। १६वें पर्व में रावण का वरुण के साथ युद्ध, पवनरज्य का उसमें जाना, अंजना के प्रतिविद्वेष स्वाम तथा संभोग शृंगार का वर्णन है। १७वें पर्व में अंजना का गर्भ धारण करना, अपमानित कर घर से निकाला जाना तथा हनु-

१९. पद्मपुराण, पृ० ७ (प्रस्तावना)।

२०. वही, पृ० २८-३० (प्रस्तावना)।

६ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

मान् की उत्पत्ति की कथा कही गयी है। १८वें पर्व में पवनंजय तथा अंजना के मिलाप का वर्णन है। १९वें पर्व में वरुण के विरुद्ध होने पर रावण का सब राजाओं को आमन्त्रण देना, हनुमान् का उसमें जाकर पराक्रम दिखाना वर्णित है। २०वें पर्व में चौबीस तीर्थङ्करों तथा अन्य शलाका पुरुषों का वर्णन है। २१वें पर्व में मुनिसुश्रतनाथ तथा उनके वंश का वर्णन, इक्ष्वाकु वंश के प्रारम्भ का वर्णन तथा कीर्तिधर और सुकोशल मुनि की दीक्षा आदि का उल्लेख है। २२वें पर्व में कीर्तिधर तथा सुकोशल मुनि का तप, उनकी सद्गति तथा सौदास की कथा कही गई है। २३वें पर्व में नारद द्वारा राजा दशरथ और जनक को रावण के द्रुविचार का संकेत तथा विभीषण द्वारा दशरथ और जनक के पुतलों के सिर काटे जाने का वर्णन है। २४वें पर्व में कैकया और उसकी कलाओं का विस्तृत परिचय, दशरथ का कैकया के साथ विवाह वर्णित है। २५वें पर्व में राजा दशरथ के चार पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन है। २६वें पर्व में राजा जनक के विदेहा से सीता और भामण्डल की उत्पत्ति, भामण्डल का अपहरण तथा चन्द्रगति विद्याधर ने यहाँ उसके वृद्धि को प्राप्त होने का वर्णन है। २७वें पर्व में म्लेच्छ राजाओं द्वारा जनक के देश में उपद्रव करने तथा दशरथ द्वारा राजा जनक की सहायता किये जाने के कारण म्लेच्छों की पराजय तथा जनक का दशरथ के पुत्र राम के लिए अपनी पुत्री सीता देने का निश्चय अंकित है। २८वें पर्व में नारद के कारण भामण्डल की सीता के प्रति आसक्ति, जनक का माया-मयी छोड़े द्वारा हरा जाना तथा जनक द्वारा यदि राम कृष्णवर्त घनुष चढ़ा देंगे तो सीता ले सकेंगे अन्यथा भामण्डल लेगा इस प्रतिज्ञा का वर्णन है। २९वें पर्व में दशरथ द्वारा आष्टान्हिक महापर्व का मनाया जाना तथा सर्वभूतहित मुनि के आगमन का वर्णन है। ३०वें पर्व में भामण्डल का सीता तथा जनक से मिलन बतलाया गया है। ३१वें पर्व में दशरथ के पूर्वभक्ष, राम के राज्याभिषेक की घोषणा, कैकया को वर प्रदान, भरत का राज्याभिषेक तथा राम लक्ष्मण तथा सीता का वन गमन वर्णित प्रमुख विषय है। ३२वें पर्व में कैकया और भरत का राम को लौटाने का प्रयास तथा निराश होकर भरत का राज्यशासन सौभालना वर्णित है। ३३वें पर्व में वज्रकर्ण की रक्षा तथा सिंहोदर-वज्रकर्ण की मैत्री कराकर राम-लक्ष्मण के आगे बढ़ने का कथन किया गया है। ३४वें पर्व का प्रतिपाद्य विषय राम-लक्ष्मण द्वारा म्लेच्छ राजा को आज्ञाकारी बनाकर बालनित्य को बन्धनमुक्त कराना है। ३५वें पर्व में यक्षपति द्वारा राम-लक्ष्मण के निवास के लिए रामपुरी की रचना तथा राम का उसमें निवास करना वर्णित है। ३६वें पर्व में लक्ष्मण का वनमाला से विवाह होता है। ३७वें पर्व में राम-लक्ष्मण नर्तकी के वेष में जाकर अतिदीर्घ को बन्धन में बाँधकर मुक्त करते हैं

तथा अतिवीर्य दीक्षाग्रहण करता है। ३८वें पर्व में लक्ष्मण का जितपद्मा के साथ विवाह होता है। ३९वें पर्व में राम-लक्ष्मण देशभूषण-कुलभूषण भूते का उपसर्ग निवारण करते हैं। ४०वें पर्व में वंशस्थलपुर के राजा सुरप्रभ राम का अभिवादन करने हैं। राम दण्डक वन को प्रस्थान करते हैं। ४१वें पर्व में राम लक्ष्मण तथा सीता का जटायु से मिलन होता है। ४२वें पर्व में पात्र दान के प्रभाव से राम-लक्ष्मण रत्न तथा स्वर्णादि से युक्त होकर इच्छानुमार दण्डक वन में घूमते हैं। ४३वें पर्व में लक्ष्मण द्वारा शम्बूक वध तथा उन्हें सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति होती है। ४४वें पर्व में राम-लक्ष्मण का खरदूषण के साथ युद्ध होता है। खरदूषण की सहायता के लिए रावण आता है। छल से वह सीता को हर ले जाता है। ४५वें पर्व में राम सीता के वियोग में दुःखी होते हैं उनको विराधित से मैत्री होती है। ४६वें पर्व में रावण सीता के साथ लंका पहुँचता है। मंदोदरी बहुत रामझाती है लेकिन वह नहीं मानता। ४७वें पर्व में राम कुशिम सुग्रीव (साहसगति) को मारते हैं तथा यथार्थ सुग्रीव की तरह कन्याओं से विवाह करते हैं। ४८वें पर्व में रत्नजटी बतलाता है कि सीता को रावण हर ले गया है। ४९वें पर्व में लक्ष्मण कोटिखिला उठाते हैं। वानर लक्ष्मण की शक्ति का विश्वास कर गूढ़ करने के लिए तैयार होते हैं। ४९वें पर्व में हनुमान् सीता के पास राम का संदेश भेजने के लिए लंका जाते हैं। ५०वें पर्व में हनुमान् बलपूर्वक राजा महेन्द्र को परास्त करते हैं। ५१वें पर्व में राम को गन्धर्व कन्याओं की प्राप्ति होती है। ५२वें पर्व में हनुमान् लंका के मायामयी कोट को ध्वस्त कर लंका सुन्दरी के साथ विवाह करते हैं। ५३वें पर्व में हनुमान् लंका में जाकर विभीषण से मिलते हैं। बाद में सीता को राम का सन्देश सुनाते हैं। अनन्तर बन्धनबद्ध होने पर वे रावण के समक्ष जाकर बन्धन तोड़ लंका को तण्ड-भ्रष्ट कर वापिस आ जाते हैं। ५४वें पर्व में हनुमान् राम को सीता की दयनीय स्थिति का निरूपण करते हैं। विद्याधर राम को माय ले लंका की ओर प्रस्थान करते हैं। ५५वें पर्व में विभीषण रावण से तिरस्कृत होकर राम से आ मिलता है। ५६वें पर्व में राम की सेना का वर्णन है। ५७वें पर्व में लंका निवासिनी सेना की तैयारी तथा उसका लंका से बाहर निकलने का वर्णन है। ५८वें पर्व में नल और नील के द्वारा हस्त और प्रहस्त मारे जाते हैं। ५९वें पर्व में हस्त-प्रहस्त और नल नील के पूर्व भर्षों का वर्णन है। ६०वें पर्व में अनेक राक्षस मारे जाते हैं। राम-लक्ष्मण को दिव्यास्त्र तथा सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्यायें प्राप्त होती हैं। ६१वें पर्व में सुग्रीव तथा भामण्डल नामपाश से बाँधे जाकर राम-लक्ष्मण के प्रभाव से बन्धनमुक्त होते हैं। ६२वें पर्व में वानर और राक्षसवंशी योद्धाओं का युद्ध होता है तथा लक्ष्मण को शक्ति

८ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

लग जाती है। ६३वें पर्व में शक्तिनिहत लक्ष्मण को देख राम विलाप करते हैं। ६४वें पर्व में एक अपरिचित मनुष्य विशल्या द्वारा लक्ष्मण की शक्ति दूर होने का उपाय बतलाता है। ६५वें पर्व में विशल्या लक्ष्मण की शक्ति दूर करती है तथा लक्ष्मण का विशल्या के साथ विवाह होता है। ६६वें पर्व में रावण का दूत राम के दरबार में आकर रावण के पक्ष का समर्थन करता है। यहाँ दूत को किसी फल की प्राप्ति नहीं होती है। ६७वें पर्व में रावण बहुरुपिणी विद्या सिद्ध करता है। ६८वें पर्व में दोनों सेनायें आण्टाह्निक पर्व मनाती हैं। ६९वें पर्व में रावण शान्तिजिनालय में विद्या सिद्ध करने के लिए आसनालुब्ध होता है। ७०वें पर्व में अंगद आदि योद्धा विघ्न उपस्थित कर रावण को विचलित करने का यत्न करते हैं। ७१वें पर्व में रावण को विद्या सिद्ध हो जाती है। ७२वें पर्व में सीता का मन विचलित करने का रावण अनेक उपाय करता है। अन्त में सीता को दीनदशा देखकर रावण दुःखी होता है किन्तु वह युद्ध से विमुख नहीं होता है। ७३वें पर्व में रावण के मंत्री तथा पत्नी मन्दोदरी उसे समझाते हैं। ७४वें पर्व में रावण और लक्ष्मण का भीषण युद्ध होता है। ७५वें पर्व में रावण लक्ष्मण पर चक्ररत्न चलाता है। पर वह तीन प्रदक्षिणायें देकर लक्ष्मण के हाथ में आ जाता है। ७६वें पर्व में लक्ष्मण चक्ररत्न चलाकर रावण का अन्त कर देते हैं। ७७वें पर्व में रावण की स्त्रियों, बन्धु दान्धव आदि करण विमान चारते हैं। ७८वें पर्व में इन्द्रजित्, मेघवाहन, कुम्भकरण तथा मय आदि राजामण निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण करते हैं। मन्दोदरी तथा चन्द्रनला आदि रानियाँ आयिका के व्रत ग्रहण करती हैं। ७९वें पर्व में राम और सीता का मिलन होता है। ८०वें पर्व में राम लंका में छः वर्ष तक रहते हैं। ८१वें पर्व में नारद लंका में पहुँचकर राम के सापने कौशल्या, सुमित्रा आदि के दुःख का वर्णन करते हैं। ८२वें पर्व में राम, लक्ष्मण तथा सीता इष्ट मित्रों के साथ अयोध्या आते हैं। ८३वें पर्व में भरत के निर्वेद का तथा त्रिलोक मण्डन हाथी का वर्णन है। ८४वें पर्व में त्रिलोकमण्डन हाथी व्रत धारण करता है। ८५वें पर्व में देशभूषण तथा कुलभूषण केशली हाथी और भरत के भवान्तरों का वर्णन करते हैं। ८६वें पर्व में भरत दीक्षा धारण कर लेते हैं। कैकया ३०० स्त्रियों के साथ आयिका बन जाती है। ८७वें पर्व में त्रिलोकमण्डन हाथी समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव होता है। भरत का निर्वर्ण होता है। ८८वें पर्व में राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक होता है। राम-लक्ष्मण अन्य राजाओं को देशों का विभाग करते हैं। ८९वें पर्व में शत्रुघ्न मथुरा का राज्य माँगकर मधु से युद्ध करते हैं। चायल मधु मुनि दीक्षा धारण कर लेते हैं। ९०वें पर्व में जमरेन्द्र कुपित होकर मथुरा में रोग फैलाता है। शत्रुघ्न अयोध्या वापिस आ जाते हैं। ९१वें पर्व में

शत्रुघ्न के पूर्वजों का वर्णन है। ९२वें पर्व में सप्तर्षियों (सात मुनियों) को सीता आहार देती है। ९३वें पर्व में राम को श्रीदामा और लक्ष्मण को मनोरमा कन्या की प्राप्ति होती है। ९४वें पर्व में राम-लक्ष्मण का अनेक विद्याधर राजाओं का वध में करना तथा लक्ष्मण की अनेक स्त्रियों और पुत्र का वर्णन है। ९५वें पर्व में सीता स्वप्न देखती है। द्वितीय स्वप्न कुछ अनिष्टकारक जान उसकी शान्ति के लिए जिनेन्द्रार्चन करती है। ९६वें पर्व में प्रजा राम से सीता के लोकापवाद की चर्चा कहती है। ९७वें पर्व में कृतान्तवक्र सेनापति जिन भविष्यों के दर्शन कराने के बहाने सीता को जंगल में ले जाकर छोड़ आता है। ९८वें पर्व में वज्रजंघ सीता को धर्म बहिन समझकर मान्दवना देता है। ९९वें पर्व में सीता को वज्रजंघ बड़ी विनय के साथ अपने यहाँ रखता है। कृतान्तवक्रसेनापति लौटकर राम को सीता का संदेश सुनाता है। १००वें पर्व में सीता के गर्भ से अनङ्गलवण और मदनाङ्कुश की उत्पत्ति होती है। १०१वें पर्व में वज्रजंघ अपनी बत्तीस पुत्रियाँ लवण को देने का निश्चय करता है। पृथु की पुत्री कनकमाला का अङ्कुश से विवाह होता है। दोनों पुत्र विम्बिजय को निकलते हैं। १०२वें पर्व में राम-लक्ष्मण के विषय में जानकारी प्राप्त कर दोनों पुत्र सेना सहित जाकर अयोध्या को घेर कर घोर मूढ़ करते हैं। १०३वें पर्व में पिता-पुत्रों का मिलन होता है। १०४वें पर्व में सीता की अग्नि परीक्षा के लिए अग्निकुण्ड बनाया जाता है। १०५वें पर्व में सीता की अग्नि परीक्षा तथा उसका विराग वर्णित है। १०६वें पर्व में राम, लक्ष्मण और सीता के भवान्तरों का विवेचन है। १०७वें पर्व में कृतान्तवक्र सेनापति दीक्षा ले लेता है। १०८वें पर्व में सीता के दोनों पुत्र लवण और अङ्कुश के चरित्र का निरूपण है। १०९वें पर्व में सीता का तैत्तिथि दिन सस्तेखना धारण कर स्वर्ग में प्रतीन्द्र होने का वर्णन है। ११०वें पर्व में राजा का चन्द्ररथ की दो पुत्रियाँ क्रमशः लवण और अङ्कुश का वरण कर लेती हैं। १११वें पर्व में सामण्डल की वज्रपात से मृत्यु हो जाती है। ११२वें पर्व में हनुमान् का विराग, ११३वें पर्व में हनुमान् का दीक्षा धारण करता। ११४वें पर्व में सोधमेन्द्र द्वारा यह कहा जाना कि सब बन्धनों में स्नेह बन्धन का टूटना सरल नहीं, वर्णित है। ११४वें पर्व में देवों के मुख से राम की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर लक्ष्मण का निघ्न हो जाता है। ११६वें पर्व में लक्ष्मण के निष्प्राण शरीर को राम गोदी में लिये फिरते हैं। ११७वें पर्व में सुग्रीव, विभीषण आदि राम को समझाते हैं। ११८वें पर्व में कृतान्तवक्र सेनापति के जीव देव के समझाने पर राम लक्ष्मण का दाह संस्कार कर देते हैं। ११९वें पर्व में राम अनङ्ग लवण को राज्य दे दीक्षा ले लेते हैं। १२०वें पर्व में राम का चर्या के लिए नगरी में आने तथा नगरी में क्षोभ हो

१० : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

जाने के कारण लौट जाने तथा १२१वें पर्व में वन में राम को आहार लाभ होने का वर्णन है। १२२वें पर्व में सीता का जीव राम को तपस्या से डिगाने का प्रयत्न करता है। १२३वें पर्व में सीता का जीव नरक में जाकर लक्ष्मण तथा रावण को संबोधित है। राम का निर्वाण होता है। अन्त में रविवेण ने अपनी प्रशस्ति लिखी है।

कथानक रूढ़ियाँ

पद्मचरित में कथानक रूढ़ियों को ग्रहण किया गया है। ये कथानक रूढ़ियाँ रविवेण को पूर्ववर्ती रचनाओं (लोकप्रचलित रामायण, पद्मचरिय या अन्य आचार्यकृत ग्रन्थों, जिनका उन्होंने नाम निर्देश किया है) तथा लोकमानस से प्राप्त हुई होंगी। इनमें रूप परिवर्तन या यथेच्छानुसार रूप बनाना (जैसे—चपलवेण नाम का विद्याधर सीता का हरण कर रथनूपुर ले गया था),^{२१} दैवी शक्तियों का सहयोग (विभिन्न दैवीय शस्त्रास्त्रों आदि का सहयोग), अद्भुत-कृत्य (रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाया जाना,^{२२} भाया निर्मित अनेक शीश,^{२३} अद्भुत पदार्थ (पुष्पक विमान^{२४} आदि), प्रेमी के विरह में प्राण त्याग करने के दृढ़ संकल्प के समय प्रेमिका को प्रेमी की प्राप्ति^{२५} आदि कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है।

राम कथा का एक दूसरा रूप

जैन राम कथा का एक दूसरा रूप हमें गुणभद्र (८९७ ई०) कृत उत्तर-पुराण में मिलता है। गुणभद्र की राम कथा का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुमाला और लक्ष्मण की माता का नाम केकयी था। भरत, शत्रुघ्न अन्य किसी रानी से उत्पन्न हुए, जिसका नाम नहीं दिया है। दशानन विनमि विद्याधर वंश के पुलस्त्य का पुत्र है। किसी दिन वह अमितवेग की पुत्री मणिमती को तपस्या करते देखता है और उसपर आसक्त होकर उसकी रावना में विघ्न डालने का प्रयत्न करता है, मणिमती निदान करती है कि मैं दशानन की पुत्री होकर उसे मारूँगी। मृत्यु के पश्चात् वह रावण की रानी मन्दोदरी के गर्भ में आती है। भविष्यवक्ताओं ने यह कहा कि यह कन्या आपका नाश करेगी। अतः रावण उसे मंजूषा में रखवाकर मरीचि के द्वारा जमीन में गड़वा देता है। हल की नोक से उलझ जाने के कारण वह मंजूषा दिखलाई देती है और लोगों द्वारा जनक के पास ले जाई जाती है। जनक मंजूषा को खोलकर एक कन्या को देखते

२१. पद्म० २८।६०-९९।

२२. पद्म० ९।१३६, १३७।

२३. वही, ७५।२३, २४, २५।

२४. वही, ४४।८४।

२५. वही, ३६।३५-४९।

हैं और उसका नाम सीता रखकर उसे पुत्री की तरह पालने हैं। जब वह विवाह योग्य होती है तब जनक चिन्तित होकर एक यज्ञ करते हैं। यज्ञ की रक्षा के लिए जनक राम-लक्ष्मण को बुलाते हैं। यज्ञ समाप्त होने पर राम और सीता का विवाह होता है। यज्ञ के समय रावण को निमंत्रण नहीं भेजा गया था अतः वह क्रुद्ध हो जाता है। तारद के मुख से सीता की अत्यधिक प्रशंसा सुनकर वह उसको हर लेने का विचार करता है।

जब राम और सीता वाराणसी के निकट चित्रकूट की वाटिका में विहार करते हैं तब मारीचि स्वर्णभूष का रूप धारण कर राम को दूर ले जाता है। इतने में रावण राम का रूप धारण कर सीता से कहता है कि मैंने भूष को महल में भेजा है और वह सीता को पालकी पर चढ़ने की आज्ञा देता है। यह पालकी पुष्पक है, जिसके द्वारा वह सीता को लंका ले जाता है। रावण सीता का स्पर्श नहीं करता, क्योंकि पतिव्रता के स्पर्श से उसकी आकाशगामिनी विद्या नष्ट हो जाती है। दशरथ को स्वप्न द्वारा ज्ञात होता है कि रावण ने सीता का हरण किया है, वह राम के पास यह समाचार भेजते हैं। सुग्रीव और हनुमान् बालि के विरुद्ध सहायता माँगने पहुँचते हैं। हनुमान् लंका जाकर सीता को सान्त्वना देने के बाद लौटते हैं। इसके बाद लक्ष्मण बालि बध करते हैं और सुग्रीव को राज्य का उत्तराधिकारी बनाते हैं। वानरों और राम की सेना विमान से लंका पहुँचाई जाती है। युद्ध में लक्ष्मण चक्र से रावण का सिर काट देते हैं। राम परीक्षा किये बिना सीता को स्वीकार करते हैं। इसके बाद दोनों दिग्विजय करते हैं। कुछ वर्ष बाद राम-लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को राज्य देकर वाराणसी लौट आते हैं। सीता के अपवाद का और उसके कारण उसे निर्वासित करने का इसमें उल्लेख नहीं है। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से मरकर नरक जाते हैं। राम, लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीसुन्दर को राज्य देकर और सीता के पुत्र अजित-तंजय को युवराज बनाकर अनेक राजाओं और सीता के साथ जिनदीक्षा धारण कर लेते हैं। राम तथा हनुमान् अन्त में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार उत्तरपुराण की कथा में निम्नलिखित^{२६} वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता है—

१. इसमें सीता को रावण तथा मन्दोदरी की पुत्री माना है।
२. दशरथ अयोध्या के राजा न होकर वाराणसी के राजा हैं।
३. सीता के लोकापवाद तथा उसके निर्वासित करने का इसमें उल्लेख नहीं है।

२६. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९३-९४।

बुल्के : राम कथा, पृ० ७७, ७८, ७९।

१२ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

४. लक्ष्मण की मृत्यु राम की मृत्यु के समाचार के कारण न होकर किसी असाध्य रोग से बतलाई गई है।
५. कैकयी के हठ करने तथा राम को वनवास देने का इसमें कोई कथन नहीं है।
६. स्वर्णमृग के पीछे राम के दौड़ने के बाद रावण राम का वेष धारण कर सीता को पालकी में बैठाकर ले जाता है।
७. लक्ष्मण के द्वारा यहाँ बालि बध होता है।
८. सीता के आठ पुत्र थे। इनमें लव-कुश का उल्लेख नहीं है।

पद्मचरित और उत्तरपुराण की कथाओं में इस प्रकार भेद क्यों पड़ा। इसके विषय में विचार करते हुए पं० नाथूराम प्रेमी ने अपने जैन साहित्य और इतिहास में लिखा है कि पद्मचरित और पद्मचरित की कथा का अधिकांश वात्सीकी के ढंग का है और उत्तरपुराण की कथा का जानकी जन्म विष्णुपुराण के ढंग का है। दशरथ बनारस के राजा थे, यह बात बौद्ध जातक से मिलती-जुलती है। उत्तरपुराण के समान उसमें भी सीता निर्वासन, लव-कुश जन्म आदि नहीं है अर्थात् भारतवर्ष में रामकथा की जो तीन परम्पराएँ हैं वे जैन सम्प्रदाय में भी प्राचीनकाल से चली आ रही हैं। पद्मचरित के कर्ता ने कहा है कि उस पद्मचरित को मैं कहता हूँ जो आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा है और नामावली निबद्ध है।^{२७} इसका अर्थ यह है कि रामचरित उस समय नामावली रूप में था अर्थात् उसमें कथा के प्रधान पात्रों के, उनके माता, पिताओं और स्थानों भवान्तरों आदि के ही नाम होंगे। वह पल्लवित कथा के रूप में न होगा और उसी को विमलसूरि ने विस्तृत चरित के रूप में रचना की होगी।^{२८} इस प्रकार गुणभद्र की रामकथा के आधार के विषय में पं० नाथूराम प्रेमी इस प्रकार लिखते हैं—'हमारा अनुमान है कि गुणभद्र से बहुत पहले विमलसूरि के समान किसी अन्य आचार्य ने भी जैनधर्म के अनुकूल सौपत्तिक और विश्वसनीय स्वतन्त्र रूप से राम कथा लिखी होगी और वह गुणभद्राचार्य की गुरु परम्परा द्वारा मिली होगी।^{२९} गुणभद्र के गुरु जितसेन ने अपना आदि-पुराण कवि परमेश्वर की गद्यकथा के आधार से लिखा था। गुणभद्र की गुरु-परम्परा के दो और नाम कन्तङ भाषा के कवि चामुण्डराय की रचना में मिलते

२७. नामावलिनिबद्धं आचार्यपरंपरागतं सत्त्वं ।

वाञ्छामि पद्मचरितं अहङ्गुपुत्रि समासेन ॥ ८ ॥

—नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९५।

२८. वही, पृ० ९५।

२९. वही, पृ० ९६।

है । चामुण्डराय त्रिषष्ठिलक्षण महापुरुष के लेखकों की सूची निम्नलिखित देते हैं—कूचिभट्टारक, नन्दिमुनीश्वर, कवि परमेश्वर, जितमेन, गुणभद्र ।^{३०}

पद्मचरित के दूसरे पर्व में राजा श्रेणिक अपने मन में विचार करता है कि ओ जिनधर्म के प्रभाव से उत्तम मनुष्य थे, उच्चकुल में उत्पन्न हुए थे, विद्वान् थे और विद्याओं के द्वारा जिनके मन प्रकाशमान थे, ऐसे रावण आदि लौकिक ग्रन्थों में चर्ची, हविर तथा भास का भक्षण करने वाले राजस सुने जाते हैं ।^{३१} रावण का भाई कुम्भकरण महाबलवान् था और घोर निद्रा से युक्त होकर छः माह तक निरन्तर सोता रहता था ।^{३२} यदि मदोन्मत्त हाथियों के द्वारा भी उसका मर्दन किया जाय, तबे हुए तैल के कड़ाहों से उसके कान भरे जावें और मेरी और शत्रुओं का बहुत भारी शब्द किया जाय तो भी समय पूर्ण न होने पर वह जागृत नहीं होता था ।^{३३} बहुत बड़े पेट को धारण करने वाला वह कुम्भ-करण जब जागता था तब भूख और प्यास में हतता व्याकुल हो उठता था कि प्राप्ति जो अभी दिलाई गिरे से उन्हें का भक्षण था इस प्रकार वह बहुत ही दुर्द्धर था ।^{३४} तिर्यच मनुष्य और देवों के द्वारा तृप्ति कर पुनः सो जाता था । उस समय उसके पास कोई अन्य पुरुष नहीं ठहर सकता था ।^{३५} कितने आश्चर्य की बात है कि पापवर्द्धक छोटे ग्रन्थों की रचना करने वाले मूर्ख कृकवियों ने उस विद्याधर कुमार का कैसा बीभत्स चित्रण किया है ?^{३६} जिसमें यह सब चरित्र चित्रण किया गया है, वह ग्रन्थ रामायण के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके विषय में यह प्रसिद्धि है वह सुनने वाले मनुष्यों के तत्क्षण समस्त पाप नष्ट कर देता है ।^{३७} पद्मचरित के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उसके समय वाल्मीकीय रामायण या उस जैसी कोई दूसरी रामायण अवश्य प्रसिद्ध रही होगी, जिसमें उपयुक्त मान्यताओं का वर्णन रचिषेण को मिला होगा ।^{३८} पद्मचरित में आये वर्णनों से यह तो अवश्य सिद्ध होता है कि रचिषेण द्वारा जो गई कथा के बहुत से अंश वाल्मीकीय रामायण से मिलते-जुलते हैं । आधुनिक अन्वेषकों ने महा-भारत के द्रोणपर्व, शान्तिपर्व तथा अन्य निर्देशों से अनुमान लगाया है कि वाल्मीकि रामायण से पूर्व भी रामकथा सम्बन्धी आख्यान प्रचलित थे जिनके

३०. रामकथा—पृ० ७७-७८ (ले० बुल्के) । ३१. पद्म० २।२३०-२३१ ।

३२. पद्मचरित २।२३२ ।

३३. पद्म० २।२३३-२३४ ।

३४. पद्म० २।२३५ ।

३५. पद्म० २।२३६ ।

३६. वही, २।२३७ ।

३७. वही, २।२३८ ।

३८. चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शान्तिकुमार तानूराम व्यास : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० १२ ।

१४ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

आधार पर वाल्मीकि ने अपनी रामायण की रचना की। हो सकता है इन्हीं आख्यानों से रविषेण ने भी अपनी कथावस्तु का बहुत कुछ अंश ग्रहण किया हो। इसके अतिरिक्त उसके सामने जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित परम्परा भी रही होगी जिसमें रावण आदि को उत्तम उच्चकुल में उत्पन्न विद्वान् और विद्या से युक्त कहा गया होगा।^{३९} विद्वानों का विचार है कि वाल्मीकि मुनि से भी पहले सूतों और कुशोलवों द्वारा प्रवर्तित-प्रचारित राम सम्बन्धी कथाओं का संकलन कर किसी दूसरे ही मुनि महर्षि ने रामायण काव्य की रचना की। उसका नाम सम्भवतः भार्गवच्यवन था। इसका विशेष विवरण हमें महाभारत देता है और साथ ही महाभारत से हमें यह भी विदित होता है कि भार्गवच्यवन भृगु महर्षि का पुत्र था। बौद्ध महाकवि अश्वघोष के बुद्धचरित से हमें महाभारतकार के उक्त कथन की सत्यता इस रूप में मिलती है कि च्यवन महर्षि जिस रामकथा की रचना में सफलकाम हो सका था, उसको वाल्मीकि ने पूरा किया। यही कारण है कि बाद में च्यवन और वाल्मीकि को भ्रमवशात् एक मान लिया गया।^{४०} हिन्दुओं के अष्टादश महापुराणों में रामकथा की सबल चर्चाएँ हैं और उन चर्चाओं के अति प्राचीन होने का इतिहास मिलता है। इन चर्चाओं में वाल्मीकि रामायण के पूर्वपर अनेक रामायण ग्रन्थों की रचना का निर्देश पाया जाता है।^{४१}

पद्मचरित की भाषा और शैली

पद्मचरित संस्कृत महाकाव्य का एक अच्छा प्रतीक है। इसकी शैली सरल, प्रभावशाली और शान्त है। यह सज्जलाचरण तथा वस्तुनिर्देश पूर्वक प्रारम्भ होता है। इसमें अनेक पर्व हैं। वन, पर्वत, नदियों तथा ऋतुओं आदि के प्राकृतिक दृश्यों, जन्म विवाहादि सामाजिक उत्सवों एवं रसों, शृंगारात्मक ह्राव-भाव, विलासों तथा सम्पत्ति विपत्ति में सुख दुःखों के उतार चढ़ावों का कलात्मक हृदयसाही चित्र इसमें उपस्थित किया गया है। यथास्थान इसमें धार्मिक उपदेशों का भी समावेश किया गया है। बीच-बीच में प्रसंगानुसार अनेक कथाएँ जोड़कर इसे अधिक रोचक बनाया गया है। ये कथाएँ नियत ढंग से प्रारम्भ होती हैं और उनके वर्णन भी नियत ढंग से चलते हैं। उपदेश की दृष्टि से कथाओं में सुन्दर-सुन्दर विचार पाये जाते हैं। ऐसी कथाएँ जिनका साक्षात् उद्देश्य मनोरंजन को स्थान पर उपदेश है, पद्मचरित में पाई जाती हैं। नैतिकता और

३९. पद्म० २।२३०, २३१।

४०. वाचस्पति नेरोला : संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १५७।

४१. वही, पृ० १५८।

शक्तिता के प्रति इनमें झुकाव है। स्वार्थपरक इच्छाओं का त्याग, सार्वभौम क्रियाशील परोपकार की भावना, कल्याण से युक्त आकर्षक दर्शन का वर्णन, व्याख्यान और उपदेश इनका प्रधान उद्योग है। इनके अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि प्राणियों के कर्म फलों की दिखलाने में रविषेण अधिक रुचि रखते थे। उनके सामने केवल भक्तिभक्त का धुंधला आदर्श नहीं था। अपने वर्णनों में भाषा की जटिलता को दूर करने के साथ-साथ वे अपनी प्रतिभा तथा भाषा पर अधिकार प्रदर्शित करने के लिए उद्यत रहते हैं। उनका उद्देश्य अभिव्यक्ति की यथार्थता तथा अर्थ की स्पष्टता है। प्रायः बड़े-बड़े समासों का उन्होंने प्रयोग नहीं किया है। इनकी शैली को साधारण काव्य की उत्कृष्ट शैली कहा जा सकता है। वे कर्णफट्ट ध्वनियों तथा अव्युक्ति अथवा शब्दाडम्बर से भी बचना चाहते हैं। अलङ्कारों की ओर अर्थ पर अधिक ध्यान देना उनकी विशेषता है, लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि पद्मचरित में अलङ्कार हैं ही नहीं। पद्मचरित में अलङ्कारों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। यह ग्रन्थ उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष आदि अलंकारों का भाण्डार है। मछदेवी का वर्णन करते हुए उत्प्रेक्षा का सहारा लेकर रविषेण कहते हैं—

‘वह (मछदेवी) दूसरे के मनोगत भाव की समझने वाली थी, इसलिए ऐसी जान पड़ती थी, मानों आत्मा से ही उसके स्वरूप की रचना हुई हो। उसके कार्य तीनों लोकों में व्याप्त थे इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानों मुक्त जीव के समान ही उसका स्वभाव था।^{४२} उसकी प्रवृत्ति पुण्यरूप थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानों जिनवाणी से ही उसकी रचना हुई हो। वह तूष्णी से भरे भूत्यों के लिए घनवृष्टि के समान थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी, मानों अमृतस्वरूप ही हो।’^{४३}

राजा श्रेणिक का श्लेषमय वर्णन करते हुए कवि कहता है—

वृषघातीनि नो यस्य चरितानि हरेरिव ।
नैश्वर्यचेष्टितं दक्षवर्मतापि पिनाकिवत् ॥ २।६१
गोत्रनाशकरीचेष्टानामराधिपतेरिव ।
नातिदण्डग्रहप्रीतिर्दक्षिणाशविभोरिव ॥ २।६२

४२. निर्मितात्मस्वरूपेव परचित्तप्रतीतिषु ।

मिद्धजीवस्वभावेव त्रिलोकव्याप्तकर्मणि ॥ पद्म० ३।९७ ।

४३. पुण्यवृत्तितया जैन्या श्रुत्येव परिकल्पिता ।

अमृतात्मेव तूष्यत्सु भूत्येषु वसुवृष्टिवत् ॥ पद्म० ३।९८ ।

हरि अर्थात् विष्णु की चेष्टायें तो वृषघाती अर्थात् वृषासुर को नष्ट करने वाली थीं पर उसकी चेष्टायें वृषघाती अर्थात् धर्म का घात करने वाली नहीं थीं । इसी प्रकार भृगुदेव जी का वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् राजा दक्ष के परिवार को सन्ताप पहुँचाने वाला था परन्तु उसका वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् चतुर मनुष्यों के समूह को सन्ताप पहुँचाने वाला नहीं था । जिस प्रकार इन्द्र की चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् पर्वतों का नाश करने वाली थी उसी प्रकार उसकी चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् वंश का नाश करने वाली नहीं थी और जिस प्रकार दक्षिणदिशा के अधिपति यमराज के अतिदण्डप्रीति अर्थात् दण्डधारण करने में अधिक प्रीति रहती है उसी प्रकार उसके अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् बहुत भारी सजा देने में प्रीति नहीं रहती थी ।

स्त्री के रूप सौन्दर्य का चित्रण करने में कवि की कल्पना ने कमाल दिखाया है । उदाहरणार्थ अंजना के शारीरिक सौन्दर्य के विषय में कवि की कल्पना देखिए—

‘अंजना सुन्दरी अपने मुख रूपी पूर्ण चन्द्रमा को किरणों से भवन के भीतर जलने वाले दीपकों को निष्फल कर रही थी तथा उसके सफेद काले और लाल-लाल नंगों की कामिनी से दिशाने तथा-विरंगी हो रही थी ।^{४४} वह स्थूल, उन्नत एवं सुन्दर स्तनों को धारण कर रही थी, उससे ऐसी जान पड़ती थी मानों पति के स्वागत के लिए शृङ्गार रस से भरे हुए दो कलश ही धारण कर रही थी ।^{४५} नवीन फलवों के समान लाल-लाल कान्ति को धारण करने वाले तथा अनेक शुभलक्षणों से परिपूर्ण उसके हाथ और पैर ऐसे जान पड़ते थे मानों नख रूपी किरणों से सौन्दर्य को ही उमल रहे हों ।^{४६} उसकी कमर पतली तो थी ही ऊपर से स्तनों का भारी बोझ पड़ रहा है इसलिए वह कहीं टूट न जाय इस भय से ही मानो उसे त्रिबलि रूप रस्सियों से उसने कसकर बांध रखा था ।^{४७} वह अंजना जिन गोल-गोल जाँघों का धारण कर रही थी वे कामदेव के

४४. सम्पूर्णवक्त्रचन्द्रांशुविफलीकृतदीपिकाम् ।

सितामितालणचक्षामचक्षुःसरितदिङ्मुखाम् ॥ पद्म० १५।१४० ।

४५. आभोगिनी समुत्तुङ्गी प्रियार्थं हरिणी कुक्षी ।

कलशाविव बिभ्राणां शृङ्गाररसपूरितौ ॥ पद्म० १५।१४१ ।

४६. नवफलवसृष्णायं पाणिपादं सुलक्षणम् ।

समुद्गिरदिवामाति लावण्यं नखरश्मिभिः ॥ पद्म० १५।१४२ ।

४७. स्तनभारादिवोदारान्मध्यं भङ्गाभिः शङ्कया ।

त्रिबलोदामभिवद्धं दधतीं तनुतामृतम् ॥ पद्म० १५।१४३ ।

तरकस के समान अथवा मद और काम के बाँधने के स्तम्भ के समान अथवा सौन्दर्य रूपी जल को बहाने वाली नदियों के समान जान पड़ती थी।^{४८}

अंजना की मूर्तिमती रात्रि के रूप में कवि की यह कल्पना कितनी सुन्दर और साकार है—

‘उसकी (अंजना) की कान्ति नील कमलों के समूह के समान थी, बहु मुक्ता-फल रूपी नक्षत्रों से सहित थी तथा पतिरूपी चन्द्रमा उसके पास विद्यमान था इसलिए वह मूर्तिधारिणी रात्रि के समान जान पड़ती थी।’^{४९}

सौन्दर्य के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए किसी लेखक ने कहा है—
देखा जाता है कि बाह्य जगत् के साथ सम्पर्क होने पर हमारे जातीय संस्कार तथा वैयक्तिक रुचियाँ अनजाने ही अपनी मधुकरी वृत्ति से तिल-तिल चुन-चुन-कर अनेक वस्तुओं की तिलोत्तमा अथवा आदर्श प्रतिमायें हमारे मानस में बना लेती हैं और जो बाह्य वस्तु हमारी बनाई उभ (वस्तु) की मानस प्रतिभा से जितना अधिक सादृश्य रखती है वह हमें उतनी ही सुन्दर तथा प्रिय लगती है क्योंकि उसके रूप रंग आदि हमारे अन्तःकरण के घटक सत्त्व के आनन्दांश को उसके ज्ञानांश की अपेक्षा अधिक उत्तेजित कर देते हैं। वस्तुतः हमारे हृदय का वह आनन्दांश ही सौन्दर्य है जो किसी वस्तु के साक्षात् दर्शन या उसके ध्यान से उद्बुद्ध होकर हमें तन्मय कर देता है और उस वस्तु पर पड़कर उसे सुन्दर तथा प्रिय बना देता है।^{५०} सौन्दर्य का यह रूप रविषेण की अंजना में हमें साकार दिखाई देता है—

‘वह (अंजना) ऐसी जान पड़ती थी मानों तीन लोक की सुन्दर स्त्रियों का रूप एकट्ठा कर उसके समूह से ही उसकी रचना हुई थी। उसकी प्रभा नील कमल के समान सुन्दर थी, हस्त रूप गल्लव अत्यन्त प्रगस्त थे, चरण कमल के भीतरी भाग के समान थे, स्तन हाथी के गण्डस्थल के तुल्य थे। उसकी कमर पतली थी, नितम्ब स्थूल थे, जंघायें उत्तम घुटनों से युक्त थीं, उसके शरीर में शुभ लक्षण थे, उसकी दोनों भुजलतायें प्रफुल्ल मालती की माला के समान

४८. तूणीं मनोभुवः स्तम्भी बन्धनं मदकामयोः।

सुवृत्तो विधत्तोभूः नदी लावण्यवाहिनी ॥ पद्म० १५।१४४।

४९. इन्दीवरावलीलायां युक्तां मुक्ताफलीकुम्भिः।

आसक्ता प्रियचन्द्रेण मूर्तामिव विभावरीम् ॥ पद्म० १५।१४५।

५०. वागीश्वर विद्यालंकार : कालिदास और उसकी काव्य कला, पृ० १७३।

१८ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

कोमल थीं । कानों तक लम्बे एवं कान्तिरूपी मूठ से युक्त उसके दोनों नेत्र ऐसे जान पड़ते थे मानों कामदेव के सुदूरगामी बाण ही हों ।^{५१}

प्रकृति को मानवीय रूप देने में रविशेष ने अपनी प्रतिभा तथा काल्पनिक शक्ति का अच्छा परिचय दिया है । नर्मदा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

‘वह नर्मदा तरंग रूपी मृकुटी के बिलास से युक्त थी, आवर्त रूपी नाभि से सहित थी, तैरती हुई मछलियाँ ही उसके नेत्र थे, दोनों विशाल तट ही स्थूल नितम्ब थे, नाना फूलों से वह व्याप्त थी और निर्मल जल ही उसका वस्त्र था । इस प्रकार उत्तम नायिका के समान थी । (ऐसी नर्मदा को देख रावण महाप्रीति को प्राप्त हुआ) ।^{५२}

नर्मदा की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

वह नर्मदा कहीं तो उग्र मगरमच्छों के समूह से व्याप्त होने के कारण गम्भीर थी, कहीं वेग से बहती थी, कहीं मन्द गति से बहती थी, कहीं कुण्डल की तरह टेढ़ी-मेढ़ी चाल से बहती थी । नाना चेष्टाओं से भरी हुई थी, तथा भयंकर होने पर भी रमणीय थी ।^{५३}

छन्द योजना की दृष्टि से पद्मचरित की रचना अधिकांश अनुष्टुप्^{५४} श्लोकों में हुई है । अनुष्टुप् के अतिरिक्त इसमें शार्दूलविक्रीडित,^{५५} मालिनी,^{५६}

५१. वैलोक्य सुन्दरीरूपसन्दोहेनैव निमिता । पद्म० १५।१६ ।

नीलनीरजनिर्भासा प्रशस्तकरपल्लवा ।

पद्मगर्भाभिचरणा कुम्भिकुम्पनिभस्तनी ॥ पद्म० १५।१७ ।

तनुमध्या पृष्ठश्रोणी सुजानूरुः सुलक्षणा ।

प्रफुल्लमालतीमालामृदुबाहुलतायुगा ॥ पद्म० १५।१८ ।

कर्णान्तसंगते कान्तिकृतपुङ्खे सुदूरी ।

इषू ते कामदेवस्य ननु तस्या विलोचने ॥ पद्म० १६।१९ ।

५२. तरङ्गभ्रुविलासाख्यामावर्तोत्तमनाभिकाम् ।

विस्फुरच्छफरीनेषां पुलिनोरुकलत्रिकाम् ॥

नानापुष्पसमाकीर्णा विमलोदकवाससम् ।

वराङ्गनामिवालोचय महाप्रीतिमुपागतः ॥ पद्म० १०।६१, ६२ ।

५३. उग्रनक्रकुलाक्रान्ता गंभीरा वेगिनी क्वचित् ।

क्वचिच्च प्रस्थिता मन्दं क्वचित्कुण्डलगामिनीम् ॥

नानाचेष्टितसम्पूर्णा कौतुकव्याप्तमानसः ।

अवतीर्णः सतां भीमां रमणीयां च सादरः ॥ पद्म० १०।६३, ६४ ।

५४. पद्म० १०।६८ । ५५. पद्म० १।१०२ । ५६. पद्म० २।२५४ ।

शालिनी,^{५३} आर्या,^{५८} वसन्ततिलका,^{५९} मन्दाक्रान्ता,^{६०} द्रुतविलम्बितवृत्त,^{६१} रथोद्धतावृत्त,^{६२} शिखरिणी,^{६३} दोषकवृत्त,^{६४} वंशस्थवृत्त,^{६५} पृथ्वीच्छन्द,^{६६} उपजातिवृत्त,^{६७} उपेन्द्रवज्रा,^{६८} सन्धरा,^{६९} इन्द्रवज्रा,^{७०} भुजङ्गप्रयातम्,^{७१} मन्दाक्रान्ता,^{७२} वियोगिनीवृत्त,^{७३} पुष्पिताम्बावृत्त,^{७४} इन्दुवदनावृत्त,^{७५} चण्डी-
च्छन्द,^{७६} तोटकच्छन्द,^{७७} प्रमाणिकावृत्त,^{७८} विद्युन्मालावृत्त,^{७९} रुचिरावृत्त,^{८०} कोकिलकच्छन्द,^{८१} अश्वललितच्छन्द,^{८२} भद्रकच्छन्द,^{८३} वंशपत्रपतितम्,^{८४} हरि-
णीवृत्त,^{८५} चतुष्पदिकावृत्त,^{८६} मत्तसयूर,^{८७} रुचिरावृत्त,^{८८} अपरवज्र,^{८९} प्रह्विणी,^{९०} पुष्पिताया,^{९१} अतिरुचिरा,^{९२} अज्ञातच्छन्द,^{९३} तथा आर्यामीति^{९४}
छन्दों का व्यवहार किया गया है।

नवरसों में से शान्त, वीर, करुण, रोध तथा शृंगार रस का चित्रण प्रमुख रूप से हुआ है। १२वें पर्व में रावण और इन्द्र के बीच हुए युद्ध में योद्धाओं की वीरता देखते ही बनती है—

“किसी (योद्धा) की भुजा आलस्य से भरी थी (उठती ही नहीं थी) पर जब शत्रु ने उसमें गदा की चौढ़ मारी तब वह क्षणभर में नाच उठा और उसकी भुजा ठीक हो गई।^{९४} कोई एक भयंकर योद्धा अपनी निकलती हुई आँतों को बायें हाथ से पकड़कर तथा दाहिने हाथ से तलवार उठा बड़े वेग से शत्रु के

५७. पद्म० ३।३३८।	५८. पद्म० ४।१३२।	५९. पद्म० ५।४०५।
६०. वही, ६।५७१।	६१. वही, ८।५३०।	६२. वही, ९।२२४।
६३. वही, १२।३७५।	६४. वही, १३।११०।	६५. वही, १४।३८०।
६६. वही, १६।२४२।	६७. वही, १९।९२।	६८. वही, १९।१०३।
६९. वही, २०।२४८।	७०. वही, २१।१५३।	७१. वही, २४।१३१।
७२. वही, २९।११५।	७३. वही, ३३।१९४।	७४. वही, ३६।१०३।
७५. वही, ३९।२३५।	७६. वही, ४२।४८।	७७. वही, ४२।५०।
७८. वही, ४२।४९।	७९. वही, ४२।५६।	८०. वही, ४२।५८।
८१. वही, ४२।५९।	८२. वही, ४२।६२।	८३. वही, ४२।६३।
८४. वही, ४२।६६।	८५. वही, ४२।६७।	८६. वही, ४२।६९।
८७. वही, ४२।७१।	८८. वही, ४२।७२।	८९. वही, ४२।७३।
९०. वही, ४२।७४।	९१. वही, ४२।८२।	९२. वही, ४४।१०५।
९३. वही, ११२।९५।	९४. वही, १२।२७४।	

९४.† अस्यः कस्यचिद्बाहुराहतो गदया द्विषा।

बभूव त्रिषदोऽप्यन्तं क्षणतर्तनकारिणः॥ पद्म० १२।२७४।

२० : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

सामने जा रहा था ।^{११९} जो ओठ चाब रहा था तथा जिसके नेत्रों की पूर्ण पुतलियाँ दिख रही थी ऐसा कोई योद्धा अपनी ही आँतों से कमर को मजबूत कसकर शत्रु की ओर जा रहा था ।^{१२०}

शृङ्गार की वियोग और संयोग दोनों अवस्थाओं का चित्रण करने में रविवेण को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । रसगन्धर्वोत्तम उदात्तः पद्मचरित का १६वाँ पर्व है । पति द्वारा परिस्थित अंजना की अवस्था का वर्णन करते हुए रविवेण कहते हैं—

“उसने एक ही बार तो पति का रूप देखा था, इसलिए बड़ी कठिनाई से वह उनका चित्र सींच पाती थी। उतने पर भी हाथ नीच-नीच में काँपने लगता था, जिससे तूलिका छूटकर नीचे गिर जाती थी ।^{१२१} वह इतनी निर्बल हो चुकी थी कि मुँह को एक हाथ से दूसरे हाथ पर बड़ी कठिनाई से ले जा पाती थी । उसके अंग इतने कुश हो गये थे कि उनसे आभूषण ढीले हो-हो कर शब्द करते हुए नीचे गिरने लगे थे ।^{१२२} उसकी लम्बी और गरम साँस से हाथ तथा कपोल दोनों ही जल गए थे । उसके शरीर पर जो महीन वस्त्र था उसी के भार से वह खेद का अनुभव करने लगी थी ।^{१२३}

इसी पर्व (१६वें) के अंत में अंजना-पवनंजय के समागम का कवि ने सांगो-पांग वर्णन प्रस्तुत किया है । इसमें आलिंगन-पीडन,^{१२४} चुम्बन,^{१२५} नीची-बिमोचन,^{१२६} नितम्ब आस्फालन,^{१२७} सीत्कार,^{१२८} नखस्रत,^{१२९} दन्ताघात^{१३०}

१५. कश्चित् करेण संख्ययामेताऽन्त्राणि सद्भटः ।

तरसा खड्गमुख्यम्य ययौ प्रत्वरि भीषणः ॥ पद्म० १२।२८५ ।

१६. कश्चिन्निजैः पुरीतदिभर्बद्ध्वा परिकरं दृढम् ।

वष्टोष्ठोऽमिययौ शत्रु दृष्टाशेषकनीतिकः ॥ पद्म० १२।२८६ ।

१७. सकुदरुषट्दृष्टरवाचिचित्रकर्माणि कृच्छतः ।

लिखन्ती वेपथुस्तहस्तप्रच्युतवतिका ॥ पद्म० १६।६ ।

१८. संचारयन्ती कृच्छ्रेण वदनं करतः करम् ।

कृशीभूतसमस्ताङ्गुलयरचनभूषणा ॥ पद्म० १६।७ ।

१९. दीर्घोष्णतरनिश्वासदग्धपाणिकपोलिका ।

अंशुकस्यापि भारेण खेदमज्जेषु विभ्रती ॥ पद्म० १६।८ ।

१००. पद्म० १६।१८३ ।

१०१. पद्म० १६।१८७ ।

१०२. वही, १६।१८९ ।

१०३. वही, १६।१९४ ।

१०४. वही, १६।१९६ ।

१०५. वही, १६।१९७ ।

१०६. वही, १६।२०२ ।

आदि कामकलायें चित्रित की गई हैं। रविषेण के इस चित्रण पर वात्स्यायन का प्रभाव स्पष्ट रूप से है। शृङ्गार प्रधान कविता के लेखकों के लिए प्राचीन-काल में कामशास्त्र का ज्ञाता होना अत्यावश्यक समझा जाता था। अतः जो कवि बनना चाहते थे वे व्याकरण, अलंकार और कोष के समान ही इस कामसूत्र का भी अध्ययन करते थे।^{१०७} कुछ लोगों^{१०८} ने पद्मचरित के उपर्युक्त वर्णन को अश्लील कहा है। पर यह भी न भूलना चाहिए कि सुर्वाच तथा कुर्वाच और औचित्य के मानदण्ड प्रत्येक देश तथा जाति में एक से नहीं होते। एक ही देश और जाति में भी वे समय-समय पर बदलते रहते हैं। ऐसे साहित्य का अध्ययन मनोवैज्ञानिक या किसी समस्या के समाधान की दृष्टि से करना चाहिए। शरीर के जिन अंगों का खुला प्रदर्शन समाज में शोभन नहीं माना जाता, एक कलाकार के कला भवन और शवच्छेदन की टेबल पर उन्हें कमशः सुन्दर और आवश्यक समझा जाता है। यह भी जान पड़ता है कि बीसवीं सदी के बहुत से साहित्यकारों पर फ्रॉयड की छाप की तरह किसी युग में संस्कृत साहित्य के प्राचीन कवियों पर वात्स्यायन के कामसूत्र का गहरा प्रभाव पड़ गया था। साथ ही सदा से काव्य का एक प्रयोजन व्यक्तहार ज्ञान भी माना जाता रहा है, इसीलिए कालिदास तथा उसके परवर्ती भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवि अपनी रचनाओं में इस विषय को अधिकाधिक सहृदय देते चले गये।^{१०९} रविषेण भी इसका अपवाद कैसे हो सकते थे। अतः उनकी रचना में भी ये तत्त्व समाहित हैं।

कण रस का चित्रण करने में भी कवि ने यथेष्ट सफलता पाई है। सप्तदश पर्व में सास-ससुर द्वारा परित्यक्ता अंजना की कण स्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहता है—

“अंजना सहारा पाने की इच्छा से सखी के कन्धे पर हाथ रखकर चल रही थी पर उसका हाथ सखी के कन्धे से खिसककर बार-बार नीचे आ जाता था। चलते-चलते जब कभी डाभ की अनी पैर में चुभ जाती थी तब बेचारी आँख मीचकर खड़ी रह जाती थी।”^{११०} वह जहाँ से पैर उठाती थी दुःख के भार से

१०७. कालिदास और उसकी काव्यकला, पृ० १११।

१०८. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९१। (नाथूराम प्रेमी)

१०९. कालिदास और उसकी काव्यकला, पृ० १५३।

११०. ततः सख्यं सविन्यस्तविस्त्रंसिकरपल्लवा।

दर्शसूचीमुखस्पष्टकूणितेक्षणकोणिका ॥ पद्म० १७।९९।

चीखती हुई वहीं फिर पैर रख देती थी ।^{१११} वह अपना शरीर तड़ी कसितता से घाएण कर रही थी ।^{१११} वह कभी अपनी निन्दा करती थी तो कभी भाग्य को बार-बार दोष देती थी । लतामें उसके शरीर में घिपट आती थीं । अतः ऐसा भालूम पड़ता था कि दया से वशीभूत होकर मानो उसका आसिंगन ही करने लगती थीं ।^{११२} उसके नेत्र भयभीत हरिणी के समान चंचल थे । थकावट के कारण उसके शरीर में पसीना निकल आता था, कोंटेशर वृक्षों में दस्त उलझ जाता था तो देर तक उसे ही सुलझाती खड़ी रहती थी । उसके पैर रुधिर से लाल-लाल हो गये थे, अतः ऐसे जान पड़ते थे मानो लाख का महावर ही उसमें लगाया गया हो । शोकरूपी अग्नि की दाह से उसका शरीर अत्यन्त साँवला हो गया था । पत्ता भी हिलता तो वह भयभीत हो जाती थी । उसका शरीर काँपने लगता था, भय के कारण उसकी दोनों जाँघें अकड़ जाती थीं और खेद के कारण उनका उठाना कठिन हो जाता था । अत्यन्त प्रिय वचन बोलने वाली सखी उसे बार-बार बैठाकर विश्राम कराती थी । इस प्रकार दुःख से भरी अंजना धीरे-धीरे पहाड़ के समीप पहुँची । वहाँ तक पहुँचने में इतनी अधिक थक गई थी कि शरीर सम्भालना भी दूबर हो गया । उसके नेत्र से आँसू बहने लगे और वह भारी खेद के कारण राखी को बात सुनकर बैठ गई । कहने लगी अब तो मैं एक ङग भी चलने के लिए समर्थ नहीं हूँ, अतः यहीं ठहरी जाती हूँ । यदि यहाँ मरण भी हो जाय तो अच्छा है ।^{११३}

१११. तत्र तत्रैव भूदेशे न्यस्यन्ती चरणौ पुनः ।

स्तनन्ती दुःखसंभारादेहं कृच्छ्रेण बिभ्रती ॥ पद्म० १७।१०० ।

११२. निन्दन्ती स्वमुपालम्भं प्रयच्छन्ती मुहुर्विधेः ।

कारुण्यादिव वल्लीभिः श्लिष्यमाणाखिलाङ्गिका ॥ पद्म० १७।१०२ ।

+११३. प्रस्तसारङ्गजायाक्षी श्रमजस्वेदवाहिनी ।

कारुण्यादिव वल्लीभिः श्लिष्यमाणाखिलाङ्गिका ॥

स्तजेनाचिता पादौ लाश्रिताविव बिभ्रती ।

शोकाग्निदाहसंभूता प्यामर्ता दधती पराम् ॥

मुहुर्विश्रम्यमानाया नितान्तप्रियकाव्यया ।

गिरिः प्रापजना मूलं शनकैरिति दुःखिता ॥

तत्र धारयितुं देहमसक्ता साधुलोचना ।

अपकर्ष्य सखीवाक्यं महास्वेदादुपाविशत् ॥

जगाद च न शक्नोमि प्रयातुं परमप्यतः ।

तिष्ठाम्यत्रैव देशेऽहं प्राप्नोमि मरणं वरम् ॥

—पद्म० १७।१०२-१०८ ।

शान्तरस के वर्णनों से पूरा पद्मचरित भरा पड़ा है। भोग से त्याग की और मनुष्य की वृत्तियों को उन्मुख कराने के लिए ही यह पूरा ग्रन्थ लिखा गया है। आत्मशुद्धि ही जीवन का मूलमन्त्र और मूललक्ष्य होना चाहिए। जिस प्रकार ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती और जल से समुद्र तृप्त नहीं होता उसी प्रकार जब तक संसार है तब तक सेवन किये हुए विषयों से यह प्राणी तृप्त नहीं होता।^{११३} इसी भावना के वशीभूत हुआ भरत सुन्दर स्थानों में भी धर्म को प्राप्त नहीं होता हुआ इस प्रकार चिन्तन करता है—

मनुष्य पर्याप्त बड़े दुःख से प्राप्त होती है, फिर भी पानों की बूँद के समान चंचल है, यौवन फेंत के समान भंगुर तथा अनेक दोषों से संकटपूर्ण है।^{११४} भोग अन्तिम काल में रस से रहित है, जीवन स्वप्न के समान है और भारी बन्धुओं का सम्बन्ध पक्षियों के समान के समान है।^{११५} जो मूर्ख मनुष्यों को प्रिय है, अपवाद अर्थात् निन्दा का कुलभवन है एवं सन्ध्या के प्रकाश के समान विनश्वर है ऐसे तवयौवन में क्या राम करना है ?^{११६} जो अवश्य ही छोड़ने योग्य है, अनेक व्याधियों का कुलभवन है और रजवीर्य जिसका मूलकारण है ऐसे इस शरीर रूपी यन्त्र में क्या प्रीति करना है ?^{११७} जिनका आकार गलगण्ड के समान है तथा जिनसे निरन्तर पसीना सरता रहता है ऐसे स्तन नामक मांस के घूणित पिण्डों में क्या प्रेम करना है ?^{११८} जिनका शरीर अपवित्र वस्तुओं से सम्मय है तथा जो केवल चमड़े से आच्छादित है ऐसे स्त्रियों से उनकी सेवा करने वाले पुरुष को क्या सुख होता है ?^{११९} मूर्खमत्ता प्राणी मलभूत घट के समान

११३. पद्म० ८३।५२ ।

११४. लभ्यं दुःखेन मानुष्यं चपलं जलबिन्दुवत् ।

यौवनं फेनपुञ्जेन सदृशं दोषसङ्कटम् ॥ पद्म० ८३।४७ ।

११५. समाप्तिविरसा भोगा जीवितं स्वप्नसन्निभम् ।

सम्बन्धो बन्धुभिः सार्द्धं पक्षिसङ्गमनोपमः ॥ पद्म० ८३।४८ ।

११६. यौवनेऽभिनवे रागः कोऽस्मिन् मूढकवल्लभे ।

अपवादकुलावासे सन्ध्यालोतविनश्वरे ॥ पद्म० ८३।५० ।

११७. अवश्यं त्यजनीये च नानाव्याधिकुलालये ।

शुक्रशोणितसम्भूते देहयन्त्रेऽपि का रतिः ॥ पद्म० ८३।५१ ।

११८. गलगण्डसमानेषु क्लेदक्षरणकारिषु ।

स्तनाद्यमांसपिण्डेषु शोभत्सेषु कथं रतिः ॥ पद्म० ८३।५४ ।

११९. पद्म० ८३।५८ ।

अत्यन्त लज्जाकारी संयोग को प्राप्त हो, मुझे सुख हुआ है, ऐसा मानता हूँ । १२०

पद्मचरित : एक महाकाव्य

महाकाव्य की सबसे अधिक स्पष्ट और सुव्यवस्थित परिभाषा १५वीं शताब्दी में विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण^{१२१} में दी है । तदनुसार पद्य-बन्ध के प्रकारों में जो मर्मबन्धात्मक काव्य प्रकार है वह महाकाव्य कहलाता है ।

१२०. विट्कृष्णवित्तयं नीत्वा संयोगगतिरुज्जनम् ।

विभूढमानसः लोकः सुखमित्यभिमन्यते ॥ पद्म० ८२।५९ ।

१२१. सर्गबद्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः मुरः ।

सङ्गंशः क्षत्रियो वापि वीरोदात्तगुणान्वितः ॥

एकवृत्तमवा भूषाः कुलजा बहुवोऽपि वा ।

शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥

अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा मञ्जनाश्रयम् ।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।

एवचिन्तिन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ॥

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।

सर्गान्ते नाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥

सन्ध्यासूर्येन्दुरजनोप्रदोषश्चान्तवासराः ।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलतुर्वनमाशराः ॥

संभोगविश्रलम्भां च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।

रणप्रयाणोपयमसन्त्र पुत्रोदयादयः ॥

वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अभी इह ।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।

तासां स्य सर्गोपादेव कथया सर्गनाम तु ।

सन्ध्यङ्गानि यथालाभमत्र विधेयानि ॥

अवसानोऽन्यवृत्तकैः इति बहुवचनमविवक्षितम् ।

सांगोपांगा इति जलकेलिसधूपानादयः ॥

—विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, ३१५।३१६-३२४ ।

(चरित्रवर्णन की दृष्टि से) इस सर्गबन्ध रूप महाकाव्य में एक ही नायक का चरित्र चित्रित किया जाता है। यह नायक कोई देवविरोध या परलगत रक्षक राजा होता है। यह धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त होता है। किसी-किसी महाकाव्य में एक राजवंश में उत्पन्न अनेक कुलीन राजाओं की भी चरित्र चर्चा दिखाई देती है। (रसाभिव्यञ्जन की दृष्टि से) शृङ्गार, वीर और शांत रसों में से कोई एक रस प्रधान होता है। इन तीनों रसों में से जो रस भी प्रधान रखा जाय उसकी अपेक्षा अन्य सभी रस अप्रधान रूप से अभिव्यक्त किये जा सकते हैं। (संस्थान रचना की दृष्टि से) नाटक की सभी सन्धियाँ महाकाव्य में आवश्यक मानी गई हैं। (क्षतिवृत्त योजना की दृष्टि से) कोई भी ऐतिहासिक बयबा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध कोई लोकप्रिय वृत्त यहाँ वर्णित होता है। (उपयोगिता की दृष्टि से) महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ-चतुष्टय का काव्यात्मक निरूपण होता है, किन्तु उत्कृष्ट फल के रूप में किसी एक का ही सर्वतोभद्रनिबन्ध युक्तियुक्त माना जाता है। महाकाव्य का आरम्भ मंगलात्मक होता है। यह मंगल नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तु निर्देशात्मक होता है। किसी-किसी महाकाव्य में खलनिन्दा और सज्जन प्रशंसा भी उपमिश्रित होती है। इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द होता है किन्तु (सर्ग का) अन्तिम पद्य भिन्न छन्द का होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमें सन्ध्या, सूर्य, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, भूगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, विवाह, यात्रा, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होता चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से या चरित्र के नाम से, अथवा चरित्र नायक के नाम से होना चाहिए। सर्ग का वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम लिखा जाता है। संधियों के अंग यहाँ यथासम्भव रखने चाहिए। जलक्रीड़ा, मधुपानादि सांगोपांग होने चाहिए।

महाकाव्य के ये उपर्युक्त लक्षण न्यूनाधिक रूप में पद्मचरित में घटित होते हैं। इसे पर्वों में विभाजित किया गया है जोकि सर्ग का ही दूसरा नाम है। काव्य के प्रारम्भ में ऋषभजिनेन्द्र से लेकर मुनिसुव्रत जिनेन्द्र को नमस्कार करने के साथ-साथ गणधरों सहित अन्याय्य मुनिराजों को मन, वचन, काम से नमस्कार किया गया है।^{१२२} इसके बाद कवि ने 'पद्मस्य चरितं वक्ष्ये' अर्थात् राम का

चरित्र कहेंगा, ऐसा कहकर वस्तुनिर्देश किया है।^{१२३} इसकी रचना राम जैसे उत्कृष्ट महापुरुष की कथा के आधार पर हुई है, जिनके विषय में कवि ने स्वयं कहा है कि अनन्त गुणों के गूढस्वरूप, जवार चेष्टाओं के धारक उनका चरित्र कहने में श्रुतकेवली ही समर्थ है।^{१२४} यह काव्य शान्त रस प्रधान है। आक-
स्यकतानुसार इसमें शृंगार,^{१२५} और,^{१२६} लज्जा^{१२७} आदि रसों का परिष्कार हुआ है।

इस कथा से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि होती है, जिसकी ओर रविषेण ने १२३वें पर्व में स्वयं संकेत किया है।^{१२८} इस कथा का प्रमुख उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति की ओर उन्मुख होना ही है। जैसा कि कहा गया है—हे विद्वज्जनो ! यत्नपूर्वक एक प्रमुख आत्मपद को तथा नाना प्रकार के विपाक से परिपूर्ण कर्मों के स्वरस को भली प्रकार जानकर सदा उसी की प्राप्ति में रमण करो। हमने (रविषेणाचार्य ने) इस ग्रन्थ में परमार्थ की प्राप्ति के उपाय कहे हैं, उन्हें काम में शक्तिपूर्वक लाओ जिससे संसार रूपी सागर से पार हो सको।^{१२९} ग्रन्थ के आरम्भ में सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा की गई है—‘जिस प्रकार दूध और पानी के समूह में से हंस समस्त दूध को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार सत्पुरुष गुण और दोषों के समूह में से गुणों को ही ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार काक हाथियों के गण्डस्थल से मुक्ताफलों को छोड़कर केवल मांस ही ग्रहण करते हैं उसी प्रकार दुर्जन गुण और दोषों के समूह में से केवल दोषों को ही ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार उलूक पक्षी सूर्य की भूर्ति को तमाल पत्र के समान काली-काली देखते हैं उसी प्रकार दुष्ट पुरुष

१२३. पद्म० १।१६।

१२४. अनन्तगुणगेहस्य तस्योदारविचेष्टितः।

गदितुं चरितं शक्तः केवलं श्रुतकेवली ॥ पद्म० १।७।

१२५. पद्म० ३।१०६-११०, १५।१४१-१४५।

१२६. वही, १२।२६५, २९२, २९३, २८५, २८६।

१२७. वही, १७।९९-१०८।

१२८. वही, १२३।१५७-१६५।

१२९. बहुधा गदितेन किन्ध्वनेन पदमेकं सुबुधा निबुध्य यत्नात्।

बहुभेदविपाककर्मसूक्तं तदुपायाप्तविश्वो सदा रमण्यम् ॥

—पद्म० १२३।१७९।

उपायाः परमार्थस्य कथितास्तस्वतो बुधाः।

सेव्यन्तां शक्तितो येन निष्क्रामत भवार्णवात् ॥ पद्म० १२३।१८०।

निर्वोष रचना को भी दोषयुक्त देखते हैं। जिस प्रकार किसी सरोवर में जल आने के द्वार पर लगी हुई जाली जल को तो नहीं रोकती किन्तु कूड़ा कर्कट को रोक लेती है उसी प्रकार दुष्ट मनुष्य गुणों को तो रोक नहीं पाते किन्तु कूड़ा कर्कट के समान दोनों को ही रोककर धारण करते हैं।^{१३०}

पद्मचरित में १२३ पर्व (सर्ग) हैं। प्रत्येक पर्व में अनुष्टुप् छंद का प्रयोग किया गया है, किन्तु पर्व के अन्त में अनुष्टुप् से भिन्न अन्य छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रकरणानुसार इस काव्य में रात्रि,^{१३१} विवाह,^{१३२} नदी,^{१३३} युद्ध,^{१३४} नगर,^{१३५} ऋतु,^{१३६} वन,^{१३७} पर्वत,^{१३८} अम्बुदय,^{१३९} पुत्र,^{१४०} यात्रा,^{१४१} संयोग,^{१४२} वियोग,^{१४३} मुनि,^{१४४} स्वर्ग,^{१४५} प्रातःकाल,^{१४६} तथा यज्ञ^{१४७} आदि का सांगोपांग वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त जल क्रीड़ा^{१४८} तथा मधुपानादिक^{१४९} का भी इस काव्य में सांगोपांग निरूपण किया गया है।

१३०. गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः।

क्षीरवारिसमाहारे हंसः क्षीरमिवाखिलम् ॥ पद्म० १।३५।

गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णन्त्यसाधवः।

मुक्ताफलानि सन्त्यज्य काका मत्स्यमिव द्विपात् ॥ पद्म० १।३६।

अदोषामपि दोषाकतां पश्यन्ति रचनां खलाः।

रत्नमुक्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ॥ पद्म० १।३७।

सरो जलागमद्वारजालकानीव दुर्जनाः।

धारयन्ति सदा दोषान् गुणबन्धनवज्रिताः ॥ पद्म० १।३८।

१३१. पद्म० २।२००-२१८।

१३२. पद्म० अष्टम पर्व।

१३३. वही, १०।५९-६४, ४२।६१-७४।

१३४. वही, १२।१८१-२१९, ५०।१४-३३।

१३५. वही, ३५।४५-६५।

१३६. वही, ३५।३५-३८, ४३।१-१५।

१३७. वही, ४१।३-४, ४२।९-५१।

१३८. पद्म० ४२।६०।

१३९. वही, ७।१९-३२।

१४०. वही, २०९।३८५।

१४१. वही, पर्व २३, २४, दशरथ और जनक की यात्रा।

१४२. वही, १६।१०७-२१३।

१४३. वही, १२३वां पर्व, ८७।९-१४।

१४४. पद्म० १०९।२०-२५।

१४५. वही, ३।१४२-१४८।

१४६. वही, ११।१०६-११०।

१४७. वही, ४०।१९-२३, ८।९०-१००।

१४८. वही, ७३।१३९, १३६-१४५।

इन सब विशेषताओं के कारण पद्मचरित की गणना संस्कृत के उत्कृष्ट महाकाव्यों में की जा सकती है। सातवीं शती ई० के आचार्य दण्डो ने अपने काव्यादर्श में महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किये हैं, पद्मचरित उन लक्षणों के आधार पर भी महाकाव्य सिद्ध होता है।

जैन कथा साहित्य और पद्मचरित

जैनकथा साहित्य बहुत विशाल है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं में इस प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में रचा गया।^{१४९} इनमें पद्मचरित का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। संस्कृत जैन कथा साहित्य का यह आद्यग्रंथ है।^{१५०} सं० १८१८ में दौलतराम ने इसका भाषा (पुरानी हिन्दी) में अनुवाद किया था।^{१५१} हिन्दी अनुवाद उपरुब्ध होने से यह जैनों के घर-घर में पढ़ा जाता है। उपरुब्ध ग्रंथों के आधार पर पद्मचरित विमलसूरि की प्राकृत रचना पद्मचरिय के आधार पर लिखा गया सिद्ध होता है, लेकिन रविवेण ने अपनी भौतिक काव्यात्मक प्रतिभा के द्वारा इसको खूब प्रसूचित किया है, इस कारण इसका आकार प्राकृत पद्मचरिय से छोड़ा हो गया। बाद में इसके आधार पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई। डॉ० रेवरेंड फादर कामिल बुल्के ने अपने शोध प्रबन्ध 'रामकथा' (उत्पत्ति और विकास) में 'पद्मचरिय' के आधार पर रचे गये ग्रंथों की सूची^{१५२} प्रस्तुत की है। चूँकि पद्मचरित भी इसी परम्परा का है अतः इसका भी इन सब पर अमिट प्रभाव है।

बारहवीं सदी ईस्वी में हेमचन्द्र ने त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित ग्रंथ लिखा। इसके अन्तर्गत दी गई रामकथा का रूप रविवेण के पद्मचरित से मिलता-जुलता है। हेमचन्द्र द्वारा की गई योगशास्त्र की टीका के अन्तर्गत दिया गया 'सीता रावण कथानकम्' भी पद्मचरित के आधार पर लिखा गया। १५वीं सदी ई० में इसके आधार पर जिनदास ने रामायण अथवा रामदेव पुराण की रचना की। सोलहवीं सदी ई० में पद्मदेव विजयगणि ने रामचरित लिखा। इसी समय सोमसेन ने रामचरित नामक ग्रन्थ की रचना की। आचार्य सोमप्रभ के लघुत्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित में तथा विजयगणिवर (१७वीं सदी ई०) कृत

१४९. इस प्रकार के ग्रंथों की बहुत कुछ जानकारी डॉ० हीरालाल जैन ने अपने भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान नामक ग्रंथ में दी है। विशेष जिज्ञासु को वहीं से देख लेना चाहिए।

१५०. वाचस्पति मेहरोला : संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २७१।

१५१. रामकथा (बुल्के), पृ० ६८।

१५२. वही, पृ० ६८, ६९।

लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित की रामकथा भी रविषेण से मिलती है। इन रचनाओं के अतिरिक्त जिनरत्नकोष में धर्मकीर्ति चन्द्रकीर्ति, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, पद्मनाथ आदि द्वारा रचित विभिन्न पद्मपुराण अथवा रामचरित नामक ग्रन्थों का उल्लेख है। सीता चरित के तीन रचयिताओं के नाम मिलते हैं—ब्रह्म नेमिदत्त, शांतिसूरि तथा अमरदास। अधिकांश सामग्री अप्रकाशित है। दसवीं शताब्दी के हरिवेणकृत कथाकोष में रामायणकथानकम् तथा सीता कथानकम् पाया जाता है। इस अन्तिम रचना में विमलसूरि तथा रविषेण के अनुसार सीता की अग्नि परीक्षा वर्णित है, लेकिन रामायणकथानकम् अधिकांश में बाल्मीकीय कथा पर निर्भर है। पुण्याश्रव कथाकोष में लव कुश की जो कथा मिलती है वह भी विमलसूरि की परम्परा पर निर्भर है। हरिभद्रकृत धूर्ताख्याम (८वीं सदी ई०) तथा अमृतगति कृत धर्मपरीक्षा (११वीं सदी ई०) में बाल्मीकि रामायण से वर्णित हनुमान् के समुद्रलंघन जैसी घटनाओं को हास्यास्पद बताया गया है। शत्रुञ्जय माहात्म्य (१२वीं सदी ई०) के नवें सर्ग में रामकथा विमलसूरि तथा रविषेण के अनुसार है, किन्तु कैकयी, राम और लक्ष्मण दोनों के वनवास का वर माँग लेती है।

अपभ्रंश साहित्य में सर्वप्रथम स्वयम्भूदेव ने पद्मचरित की रचना की। इसकी रचना पूरी तरह से रविषेण के पद्मचरित के आधार पर की गई। अपने ग्रन्थ की पहली संधि (प्रथम संधि) में स्वयम्भूदेव ने रविषेणाचार्य द्वारा दी गई आचार्य परम्परा के अन्त में रविषेण का नाम जोड़कर उनका नाम स्मरण करने के साथ-साथ उनके ग्रन्थ के आधार पर अपनी ग्रन्थ रचना करने की बात कही^{१५३} है। स्वयम्भू की महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने विश्व का महाकवि माना है। उनके मतानुसार तुलसी रामायण स्वयम्भू रामायण से बहुत प्रभावित रही है। स्वयम्भू और उनकी रामायण के विषय में एक जगह वे लिखते हैं—स्वयम्भू कविराज कहे गये हैं किन्तु इतने से स्वयम्भू की महत्ता को नहीं समझा जा सकता। मैं समझता हूँ ८वीं शताब्दी से लेकर २०वीं शताब्दी तक की १३ शताब्दियों में जितने कवियों की अपनी अमर कृतियों से हिन्दी कविता साहित्य को पूरा किया है, उनमें स्वयम्भू सबसे बड़े कवि हैं।^{१५४} राहुल जी ने यह भी अनुमान लगाया कि तुलसी बाबा ने स्वयम्भू रामायण को जरूर देखा होगा। तुलसीदास जी के 'ते प्राकृत कवि परम सयाने। जिन भाषा हरिचरित बखाने' उक्ति से यह प्रमाणित होता है। राहुल जी की समझ में तुलसी बाबा ने

१५३. पद्मचरित—पहली संधि ६-११।

१५४. महावीर जयन्ती स्मारिका, पृ० २१ (अप्रैल, १९६४)।

'स्वचिदमृतोऽपि' से स्वयम्भू रामायण की ओर संकेत किया है।^{१५५} राहुल जी के कथन का इतना प्रभाव अवश्य हुआ कि तुलसीदास के मानस का अध्ययन करने वाले विद्वान् सीधे वाल्मीकि की ओर न देखकर स्वयम्भू के 'पद्मचरित' की ओर देखने लगे। मानस के अध्ययन के लिए पण्डितों की संस्कृत रामायण की अपेक्षा अपभ्रंश की इस रचना में भाषा, भाव, काव्य, रूप कथानक, रुढ़ि और अभिप्राय (मोटिफस) आदि की दृष्टि से अधिक निकटता का अनुभव हुआ।^{१५६} रामचरित मानस पर स्वयम्भू के इस प्रभाव को देखते हुए अग्रत्यक्ष रूप से 'पद्मचरित' का भी प्रभाव पड़ा कहा जा सकता है, क्योंकि स्वयम्भू ने पद्मचरित के आधार पर ही पद्मचरित की रचना की थी। १५वीं सदी में महाकवि रघू ने पद्मपुराण अथवा बलभद्र पुराण की रचना की। रघू की इस रचना पर स्वयम्भू का प्रभाव पड़ा।

पद्मचरित में संकेतित ब्राह्मण धर्म

पद्मचरित के अध्ययन से पता चलता है कि रविवेण को ब्राह्मण धर्म का गम्भीर ज्ञान था। पद्मचरित में समय-समय पर संकेतित पौराणिक आख्यानों, वृत्तों, घटनाओं तथा पूर्व पक्ष के रूप में उपस्थापित दार्शनिक सिद्धान्तों से रविवेण का ब्राह्मण धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी गम्भीरतम ज्ञान प्रकट होता है। पद्मचरित की रचना ही इसलिए हुई कि ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थों (रामायण आदि) में राजस आदि का जो स्वरूप तथा कर्मकलाप आदि निर्धारित किया गया था वह रविवेण को अपनी धार्मिक और पौराणिक मान्यता के अनुसार अभीष्ट नहीं था।^{१५७} अभीष्ट न होने का कारण रविवेण के अनुसार इस कथानक का युक्ति-पूर्ण न होना ही था।^{१५८} रामायण की इस मान्यता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लोगों ने कान तक खींचकर छोड़े हुए बाणों से देव के अधिपति इन्द्र को पराजित किया था, रविवेण आलोचना करते हुए कहते हैं कि कहाँ तो देव का स्वामी इन्द्र और कहाँ यह तुच्छ मनुष्य जो कि इन्द्र की चिन्तामात्र से भस्म की राशि हो सकता था।^{१५९} जिसके ऐरावत हाथी था और वज्र जैसा महान् वास्य था एवं जो सुमेरु पर्वत और समुद्रों से सुशोभित पृथ्वी को अनायास ही उठा सकता था ऐसा इन्द्र अल्पशक्ति के धारक विद्याधर के द्वारा, जोकि एक साधारण मनुष्य ही था कैसे पराजित हो सकता था।^{१६०} रामायण में यह भी

१५५. काव्यधारा अवतरणिका, पृ० ५२।

१५६. महावीर जयन्ती स्मारिका, पृ० ४७ (अप्रैल, सन् १९६२)।

१५७. पद्म० २।२३०-२४९।

१५८. पद्म० २।२४९।

१५९. वही, २।२४१-२४३।

१६०. वही, २।२४४-२४५।

लिखा है कि राक्षसों के राजा रावण ने इन्द्र को अपने बन्दीगृह में पकड़कर रखा था और उसने बन्धन से बद्ध होकर चिरकाल तक लंका के बन्दीगृह में निवास किया था । ऐसा कहना मुगों के द्वारा सिंह का वध होना, तिलों के द्वारा शिलाओं का पोसा जाना, पनिर्या साँप के द्वारा नाग का मारा जाना और कुत्ता के द्वारा गजराज का दमन होने के समान है ।^{१६१} अतः के धारक राम ने स्वर्ण-मृग को मारा था और स्त्री के पीछे सुग्रीव के बड़े भाई वालि को ओकि उसके पिता के समान था, मारा था । वह सब कथानक युक्तियों से रहित होने के कारण श्रद्धान के योग्य नहीं हैं ।^{१६२}

ब्राह्मणों की मान्यता के विषय में अश्रद्धा का भाव होते हुए भी काव्य में अलंकार आदि के द्वारा रसात्मकता उत्पन्न करने के लिए रविशेण ने पौराणिक ब्राह्मण आख्यानों और मान्यताओं का निर्देश पर्याप्त रूप से किया है, यह उनकी सहिष्णुता का परिचायक है । द्वितीय पर्व में राजगृह नगर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

राजगृह नगर धर्म अर्थात् यमराज के अन्तःपुर के समान सदा राम की अपनी ओर खींचता रहता है क्योंकि जिस प्रकार यमराज का अन्तःपुर के शर से मुक्त शरीर को धारण करने वाली हजारों महिषियों अर्थात् भैसों से मुक्त होता है उसी प्रकार राजगृह नगर भी केशर से लिप्त शरीर को धारण करने वाली हजारों महिषियों अर्थात् रानियों से सुशोभित है ।^{१६३}

राजगृह नगर की स्त्रियों का वर्णन करता हुआ कवि "गौर्यश्च विभवाश्रयाः"^{१६४} पद का प्रयोग करता है जिसका तात्पर्य यह है कि उस नगर की स्त्रियाँ "गौरी" अर्थात् पार्वती होकर भी "विभवाश्रया" अर्थात् महादेव के आश्रय से रहित थीं (पक्ष में—गौर्यः अर्थात् गौर वर्ण होकर विभवाश्रयाः अर्थात् सम्पदाओं से सम्पन्न थी) ।

एक स्थान पर राजगृह नगर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

"वह नगर (राजगृह) मानों त्रिपुर नगर को ही जीतना चाहता है क्योंकि जिस प्रकार त्रिपुर नगर के निवासी मनुष्य 'ईश्वरमार्गणः' अर्थात् महादेव के आणों के द्वारा किये हुए सन्ताप को प्राप्त हैं उस प्रकार उस नगर के मनुष्य

१६१. पद्म० २।२४६-२४७ ।

१६२. पद्म० २।२४८-२४९ ।

१६३. महिषीणां सहस्रैर्यत्कुङ्कुमाञ्चितविग्रहैः ।

धर्मान्तःपुरनिर्भासं धत्ते मानसकर्षणम् ॥ पद्म २।३४ ।

१६४. पद्म० २।४५ ।

१२ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

‘ईश्वरमार्गजैः’ अर्थात् धनिकवर्ग की याचना से प्राप्त सन्ताप को प्राप्त नहीं थे—^{११५} सभी सुखी थे ।”

राजा श्रेणिक का वर्णन करते हुए रविषेण विष्णु, महादेव, इन्द्र और यम-राज की चेष्टाओं का उल्लेख करते हैं—

‘हरि अर्थात् विष्णु की चेष्टायें तो वृषघाती अर्थात् वृषासुर को नष्ट करने वाली थीं, पर (राजा श्रेणिक की) चेष्टायें वृषघाती अर्थात् घर्म का घात करने वाली नहीं थीं । महादेव जो का वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् राजा दक्ष के परिवार को उत्तम पहुँचाने वाला था परन्तु उसका वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् चतुर मनुष्यों के समूह को सन्ताप पहुँचाने वाला नहीं था ।’^{११६}

‘जिस प्रकार इन्द्र की चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् पर्वतों का नाश करने वाली थी उसी प्रकार उसकी चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् वंश का नाश करने वाली नहीं थी और जिस प्रकार दक्षिण दिशा के अधिपति यमराज के अतिदण्ड-ग्रहप्रीति अर्थात् दण्ड धारण करने में अधिक प्रीति रहती है उसी प्रकार उसके अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् बहुत भारी सजा देने में प्रीति नहीं रहती थी ।’^{११७}

यज्ञ का जैन परम्परा में निषेध किया गया है । इसी की पुष्टि करते हुए रविषेण कहते हैं—यज्ञ की कल्पना से कोई प्रयोजन नहीं है (यज्ञ की कल्पना करना ही व्यर्थ है) यदि कल्पना करना ही है तो हिंसायज्ञ की कल्पना नहीं करना चाहिए ।^{११८} बल्कि धर्मयज्ञ की कल्पना करनी चाहिए । इस धर्मयज्ञ का जो स्वरूप रविषेण ने निर्धारित किया उसे वास्तव में वैदिक यज्ञ का जैनीकरण ही किया जाना कहना चाहिए । तदनुसार आत्मा यजमान है, शरीर वेदी है, सन्तोष साकल्य है, त्याग होम है, मस्तक के बाल कुशा हैं, प्राणियों की रक्षा दक्षिणा है, शुक्लध्यान (उत्कृष्टध्यान) प्राणायाम है, सिद्धपद की प्राप्ति होना फल है, सत्य बोलना स्तमन है, तप अग्नि है, चंचल मन पशु है और इन्द्रियों समिधायें हैं । इन सबसे यज्ञ करना चाहिए, यही धर्मयज्ञ कहलाता

१६५. सन्तापमपरिप्राप्तिः कुतमीश्वरमार्गजैः ।

मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीषुताम् ॥ पद्म० २।३६ ।

१६६. वृषघातीनि तो यस्य चरितानि हरेरिव ।

नैश्वर्यचेष्टितं दक्षवर्गतापि पिनाकिवत् ॥ पद्म० २।६१ ।

१६७. गोत्रनाशकरी चेष्टा नामराधिपतेरिव ।

नातिदण्डग्रहप्रीतिर्दक्षिणाया त्रिभोरिव ॥ पद्म० २।६२ ।

१६८. वही, ११।२४१ ।

है ।^{१९९} ज्ञानाग्नि दर्शनाग्नि और जठराग्नि शरीर में सदा विद्यमान रहती है, विद्वानों को उन्हीं में दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि इन तीन अग्नियों की स्थापना करनी चाहिए ।^{१९०}

७६वें पर्व में लक्ष्मण के द्वारा छोड़े गये चक्र को रोकने में उद्यत रावण की उपमा हिरण्यकशिपु से की गई है—

“जिस तरह पूर्व में नारायण के द्वारा चलाए हुए चक्र को रोकने के लिए हिरण्यकशिपु उद्यत हुआ था, उसी प्रकार क्रोध से भरा रावण बाणों के द्वारा चक्र को रोकने के लिए उद्यत हुआ ।”^{१९१}

८२वें पर्व में साहसगति विद्याधर को दुष्ट का नाती कहा गया है ।^{१९२}

९७वें पर्व में सीता के रथ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस पर राम रूपी इन्द्र की प्रिया—इन्द्राणी आरुढ़ थी, जिसका वेग मनोरथ के समान तीव्र था और जिसके बोड़े कुतान्तवक्त्र रूपी मातलि के द्वारा प्रेरित थे ऐसा वह रथ अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ।^{१९३}

(सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है इस प्रकार) ब्रह्मतावाद में मूढ़ तथा पशुओं की हिंसा में आसक्त रहने वाले दो ब्राह्मणों की (१०९वां पर्व में) हँसी उड़ाते हुए कहा गया है कि इन दोनों ब्राह्मणों ने सुख की इच्छुक समस्त प्रजा को लूट डाला है ।^{१९४} ब्राह्मणों का जैन दृष्टि से लक्षण देते हुए कहा गया है कि मधार्थ में वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं जो अहिंसाव्रत को धारण करते हैं ।^{१९५} जो महाव्रत रूपी लम्बी चोटी धारण करते हैं, जो श्रमा रूपी यज्ञोपवीत से सहित हैं, जो ध्यान रूपी अग्नि में होम करने वाले हैं, शांति हैं तथा मुक्ति के सिद्ध करने में तत्पर

१६९. यजमानो भवेदात्मा शरीरं तु वित्तदिका ।

पुरोडाशस्तु संतोषः परित्यागस्तथा हविः ॥

मूर्धजा एव दर्शनाग्नि दक्षिणा प्राणिरक्षणम् ।

प्राणायामः सितं ध्यानं यस्य सिद्धयदं फलम् ॥

सत्यं द्रुपस्तपो बह्निर्मनिसंखपलं पशुः ।

समिधश्च हृषीकाणि धर्मयज्ञोऽयमुच्यते ॥ पद्म० ११।२४२-२४४ ।

१७०. पद्म० ११।२४८ ।

१७१. हिरण्यकशिपुक्षिप्तं हरिणेव तदायुषम् ।

निवारयितुमुद्युक्तः संरब्धो रावणः शरैः ॥ पद्म० ७६।३० ।

१७२. पद्म० ८२।४५ ।

१७३. पद्म० ९७।८० ।

१७४. वही, १०९।७९ ।

१७५. वही, १०९।८० ।

हैं वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं।^{१७१} इसके विपरीत जो सब प्रकार के आरम्भ में प्रवृत्त हैं तथा निरन्तर कुशील में लीन रहते हैं वे केवल यह कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं, परन्तु क्रिया से ब्राह्मण नहीं हैं।^{१७२} जिस प्रकार कितने ही लोग सिंह, देव अथवा अग्नि नाम के धारक हैं उसी प्रकार व्रत से भ्रष्ट रहने वाले ये लोग भी ब्राह्मण नाम के धारक हैं, इनमें वास्तविक ब्राह्मणत्व कुछ भी नहीं है।^{१७३} जो ऋषि, संयत, धीर, शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय हैं ऐसे ये मुनि ही सन्त्य हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण हैं।^{१७४}

सामान्यतः परिव्राजक शब्द से ब्राह्मण धर्म के अनुयायी विशेष प्रकार के साधुओं का ही बोध होता है लेकिन पद्मचरित के अनुसार जो परिग्रह को संसार का कारण समझ उसे छोड़ मुक्ति को प्राप्त करते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं। यथार्थ में निर्ग्रन्थ मुनि ही परिव्राजक हैं, ऐसा जानना चाहिए।^{१७५}

८५वें पर्व में वैदिक धर्म द्वारा उपदिष्ट पशुहिंसा के संकल्प का दुष्परिणाम बतलाया गया है।^{१७६}

चतुर्थ पर्व में ब्राह्मणों की उत्पत्ति का वर्णन कर दीक्षा से च्युत भृगु, अंगि-शिरस, चन्धि, कपिल, अग्नि, विद आदि अनेक साधुओं का निर्देश किया गया है, जो अज्ञानवश बल्कलों को धारण करने वाले तापसी हुए थे।^{१७७} इन सबके नाम वैदिक ऋषियों की परम्परा में मिलते हैं। सप्तम पर्व में इस प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं के विषय में कहा गया है कि भले ही पृथ्वी पर सोवे, चिर-काल तक भोजन का त्याग रखे, रात-दिन पानी में डूबा रहे, पहाड़ की चोटी से गिरे और जिससे मरण भी हो जाये ऐसी शरीर सुखाने वाली क्रियाएँ करे तो भी पुण्यरहित जीव अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकता।^{१७८}

एकादश पर्व दार्शनिक विवेचन की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है इसमें हिसामय यज्ञ की उत्पत्ति, अनेक यज्ञों तथा उनमें की जाने वाली क्रियाओं का उल्लेख, यज्ञों का खण्डन, सर्वज्ञ नहीं है, इसका उपस्थापन पूर्वक सर्वज्ञ सिद्धि, ब्राह्मणादि चार वर्णों के विषय में जन्मना मान्यता का विरोध, सृष्टि कर्तृत्व के विषय में पूर्वपक्ष की स्थापना तथा उसका खण्डन आदि महत्त्वपूर्ण विषय वर्णित हैं। इसके माध्यम से जैनधर्म और ब्राह्मण धर्म की मान्यताएँ तथा उनके विभेद को अच्छी तरह समझा जा सकता है।



१७६. पद्म० १०९।८१।

१७८. वही, १०९।८३।

१८०. वही, १०९।८६।

१८२. वही, ४।१२६।

१७७. पद्म० १०९।८२।

१७९. वही, १०९।८४।

१८१. वही, ८५।५७-६२।

१८३. वही, ७।३१९-३२०।

सामाजिक व्यवस्था

सर्वप्रथम भरत क्षेत्र में भोगभूमि थी। स्त्री पुरुष का जोड़ा साथ ही साथ उत्पन्न होता था और साथ ही भोग उनकी मृत्यु होती थी।^१ जब समय चढ़े-बढ़े बाग-बगीचे और विस्तृत भूभाग से सहित महल, शयन, आसन, मद्य, इष्ट और मधुर पेय, भोजन, वस्त्र, अनुलेपन, तुरही के मनोहर शब्द, दूर-दूर तक फैलने वाली सुन्दर गन्ध तथा अन्य अनेक प्रकार की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती थी। इस प्रकार वहाँ के दम्पती दस प्रकार के सुन्दर कल्पवृक्षों के नीचे देव दम्पती के समान दिन-रात झीड़ा किया करते थे।^२ स्त्री पुरुषों के परस्पर निकट रहने के साथ ही सामाजिक जीवन का प्रारम्भ माना जा सकता है। तृतीय काल का अन्त होने के कारण जब कल्पवृक्षों का समूह नष्ट होने लगा तब चौदह कुलकर उत्पन्न हुए।^३ कुलकरों के कार्य के सम्बन्ध में इन्हें 'व्यवस्थानां प्रदेशकः'^४ अर्थात् व्यवस्थाओं का निर्देश करने वाले कहा गया है। अतः सामाजिक व्यवस्था का विशेष आरम्भ यहाँ मानना चाहिए। प्रजाओं के कुलों की वृद्धि करने के कारण (या वृद्धि का निर्देश देने के कारण) ये पिता के समान कहे गये हैं।^५ इस समय इक्षुरस जो कि लोगों का प्रमुख आहार था अपने आप निकलना बन्द हो गया। लोग यन्त्रों के द्वारा ईख पेलने^६ तथा उसके संस्कार^७ करने की विधि नहीं जानते थे इसलिए भूख से पीड़ित होकर व्याकुल होने लगे तब ऋषभदेव ने प्रजा को सैकड़ों प्रकार की शिल्पकलाओं का उपदेश दिया। उन्होंने नगरों का विभाग, ग्राम आदि का बसाना और मकान आदि बनाने की कला प्रजा को सिखाई। इन सबके सहयोग से सामाजिक जीवन का विकास होता गया।

परिवार

परिवार सामाजिक जीवन की रीढ़ है। परिवार में पति और पत्नी के अतिरिक्त माता-पिता, भ्राता-भगिनी, पुत्र-पुत्री आदि रहते हैं। साधारणतया

१. पद्मचरित ३।५१।

२. वही, ३।७४।

५. वही, ३।८८।

७. वही, ३।२३५।

२. पद्म० ३।६१-६३।

४. वही, ३।७६।

६. वही, ३।२३४।

परिवार के सदस्यों के पारिवारिक सम्बन्ध अच्छे होते थे । परिवार का स्वामी वयोवृद्ध सदस्य या पिता होता था । पिता की कीर्ति का बहुत ध्यान रखा जाता था । कैकेयी जब वन में जाकर राम को लौटाने का यत्न करती है तब राम कहते हैं कि पिता जी ने जो वचन कहे थे उनकी पूर्ति मुझे, तुम्हें तथा भरत सभी को करना चाहिए । पिता की अपकीर्ति जगत्त्रय में न फैले इस बात का ध्यान रचना आवश्यक है ।^८ पिता के समान ही माता को भी सम्मान दिया जाता था । पिता दशरथ कैकेयी को वर देते समय जब द्विविधा में फँस जाते हैं तब रामचन्द्र जी उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि पुत्र को वही कार्य करना चाहिए जिससे माता-पिता किञ्चित् भी शोक को प्राप्त न हो । माता-पिता को पवित्र करना अथवा शोक से उनकी रक्षा करना ही पुत्र का पृथक्त्व है ।^९ भाई का भाई के प्रति अनूठे प्रेम का उदाहरण लक्ष्मण के चरित्र में मिलता है जो बिना ऊहापोह किये भाई के साथ चलने की तैयारी करते हुए कहते हैं—मुझे इस अनुचित विचार करने से क्या प्रयोजन ? क्योंकि बड़े भाई राम तथा पिता ही यह कार्य उचित है अथवा अनुचित, यह अच्छी तरह जानते हैं । अतः मैं उत्तम कार्य करने वाले भाई के साथ जाता हूँ ।^{१०} कहीं-कहीं पर अहंकारवश अथवा स्वार्थवश इसके अपवाद भी मिल जाते हैं जैसे—भरत तथा बाहुबलि का युद्ध । ऐसे समय हम दोनों एक ही पिता के पुत्र हैं ऐसा मानकर दो भाई विरुद्ध भी हो जाते थे ।^{११}

पत्नी पति को ही सब कुछ समझती थी । अनुचित व्यवहार किये जाने पर भी पति को दोष न देकर वह इसे अपने कर्मों का ही फल मानकर पति की कल्याणकामना के साथ उसे उचित सलाह देने का यत्न करती थी । पति द्वारा परित्यक्ता सीता राम के प्रति कहती है—हे राम ! आप उत्कृष्ट चेष्टा के धारक हैं, सद्गुणों से सहित हैं और पुरुषता से युक्त हैं । मेरे त्यागने में आपको क्लेशमान भी दोष नहीं है ।^{१२} जब मेरा अपना कर्म उदय में आ रहा है तब पति, पुत्र, पिता, नारायण अथवा अन्य परिवार के लोग क्या कर सकते हैं ।^{१३} लेकिन इस तरह आप सम्यग्दर्शन को न छोड़ें, क्योंकि मेरे साथ वियोग को प्राप्त

८. पद्म० ३२।१३१ ।

९. जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्तव्यं गृह्णीषिणः ।

येन नो पितरो शोकं कनिष्ठमपि गच्छतः ॥

पुनाति त्रायते चायं पितरं येन शोकतः ।

एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ पद्म० ३१।१२६-१२७ ।

१०. वही, ३१।१९८-१९९ ।

११. वही, ४।६७ ।

१२. वही, ९७।१५५ ।

१३. वही, ९७।१५७ ।

हुए आपको इसी भय में दुःख होगा। परन्तु सम्मगर्शन के छूट जाने पर तो भय-भय में दुःख होगा।^{१४} कृतान्तवध्न सेनापति सीता को छोड़कर राम के पास आकर कहता है—“सीता देवी ने कहा है कि यदि अपना हित चाहते हो तो आपने जिस प्रकार मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार जिनेन्द्रदेव में भक्ति को नहीं छोड़ना।”^{१५}

नारी की स्थिति

पद्मचरित में प्रतिपादित पारिवारिक संगठन पितृसत्तात्मक होने पर भी समाज में नारियों की प्रतिष्ठा थी। पति के प्रत्येक कार्य में वे सहयोग दिया करती थीं। किसी प्रकार की शंका या कार्य उपस्थित होने पर पत्नी निःसंकोच पति के पास जाकर शिष्टाचारपूर्वक निवेदन करती थी। सोलह स्वप्न दिखाई देने पर मरुदेवी पति के पास आकर नीचे आसन पर बैठी और उत्तम सिंहासन पर आरुढ़ हृदयवत्सल को हाथ जोड़कर क्रम से स्वप्नों का निवेदन किया।^{१६}

माता के रूप में नारी अपरिमित श्रद्धा का भाजन थी। विजयाभिगमन के अवसर पर लव और कुश माता को प्रणाम कर मंगलाचार पूर्वक घर से निकले।^{१७} पत्नी के रूप में नारी पति को कुमार्ग में भटकने से बचाने का सबैव प्रयत्न करती थी। सीता की प्राप्ति हेतु युद्ध में प्रवृत्त रावण को समझाती हुई मम्बोदरी कहती है—“आपका यह मनोरथ अत्यन्त संकट में प्रवृत्त हुआ है, इसलिए इन-इन इन्द्रिय रूपी घोड़ों को शीघ्र रोक लीजिए। आप तो विवेक रूपी सुदृढ़ लगाम को धारण करने वाले हैं। आपकी उत्कृष्ट धीरता, गम्भीरता और विचारकता उस सीता के लिए जिस कुमार्ग से गई है हे नाथ! जान पड़ता है आप भी किसी के द्वारा उसी कुमार्ग से ले जाये जा रहे हैं।”^{१८} पिता के घर पुत्री का लालन-पालन बड़े स्नेह से होता था।^{१९} परन्तु पुत्री के यौवन अवस्था प्राप्त कर लेने पर पिता को यह चिन्ता लग जाती थी कि कन्या उसम पति को प्राप्त होगी या नहीं।^{२०} कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाता था। वे गन्धर्व आदि विद्याओं में निपुण होती थीं।^{२१} आभूषण धारण करने की प्रथा स्त्रियों में प्रचलित थी।^{२२} चंदर डोने, शय्या बिछाने, बुहारने, पुष्प

१४. पद्म० ९९।४०, ४१।

१६. वही, ३।१५२।

१८. वही, ७३।५१, ५२।

२०. वही, १५।२४।

२२. वही, ७१।६, ३।१०२।

१५. पद्म० ९९।३६।

१७. वही, १०१।३७।

१९. वही, ६४।६१।

२१. वही, १५।२०, २४।५।

विकीर्ण करने, सुगन्धित द्रव्य का लेप लगाने, भोजन पान बनाने आदि कार्यों में उनकी निपुणता का उल्लेख मिलता है।^{२३}

विवाह प्रथा

गृहस्थ जीवन में प्रवेश के निमित्त युवा और युवती को एक सूत्र में बाँधने के लिए विवाह होता था। भोगभूमि के समय स्त्री-पुरुष का जोड़ा साथ ही उत्पन्न होता था और प्रेमबन्धन बद्ध हुए साथ ही उनकी मृत्यु हो जाती थी।^{२४} बाद में विवाह सम्बन्धी कई प्रथाएँ प्रचलित हुईं। किसी शुभ दिन जबकि सौम्यग्रह सामने स्थित होते थे, क्रूर ग्रह विमुख होते थे और लग्न मंगलकारी होती थी, तब स्त्रियों के मंगलगीत, तुरही की ध्वनि आदि क्रियाओं के साथ कन्या को लेकर पिता वर के घर पर ही विवाह कार्य सम्पन्न करा देते थे।^{२५} कभी-कभी वर के किसी सुन्दर रूप और गुणों वाली कन्या पर आसक्त हो जाने पर वह स्वयं अथवा उसका पिता कन्या के पिता से कन्या की प्राप्ति हेतु याचना करता था। पिता उसके कुल, रूप, गुण तथा आयु आदि का विचार कर स्वीकृति या अस्वीकृति देते थे।^{२६} अस्वीकृति देने पर कभी-कभी युद्ध होता था और युद्ध में यदि वर पक्ष जीत जाता था तो उसके बल और पौरुष से प्रभावित होकर या दिव्यता के कारण उसे कन्या देनी पड़ती थी।^{२७} यहाँ प्रेम विवाह के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। प्रेम का प्रारम्भ कभी कन्या^{२८} की ओर से होता था कभी वर^{२९} की ओर से। कभी-कभी दोनों एक दूसरे को देखकर प्रेमपाश में बँध जाते थे।^{३०} गाम्भर्व विवाह^{३१} के साथ स्वयंवर प्रथा के भी उल्लेख मिलते हैं। स्वयंवर पद्धति में पुरी का पिता अनेक लोगों को आमन्त्रित करता था। सुसज्जित मंथ के ऊपर राजाओं को बैठाकर प्रतिहारी क्रम-क्रम से कन्या को राजाओं का परिचय देती जाती थी।^{३२} अन्त में जिस वर को कन्या चाहती थी उसके गले में वरमाला डाल देती थी।^{३३} तदनन्तर लोगों के द्वारा विभिन्न प्रकार के कौतुक और मंगलआचार के साथ कन्या का पाणिग्रहण होता था।^{३४} कभी-कभी

२३. पद्म० ३।११८-१२०।

२४. पद्म० ३।५१।

२५. पद्म० अष्टम पर्व में मन्दोदरी का दशानन के साथ विवाह।

२६. वही, १०।४-१०।

२७. वही, ९३ पर्व का श्रीराम का श्रीदामा और मनोरमा कन्या की प्राप्ति का वर्णन।

२८. वही, ८।१०७, ८।१०१।

२९. वही, ९३।१८।

३०. वही, ६।१९।

३१. वही, ८।१०८।

३२. वही, २४।८९।

३३. वही, २४।९०।

३४. वही, २४।१२१।

मिता द्वारा कन्या के लिए विशेष वर का निर्धारण हो जाने पर भी किसी विशेष कारणवश कोई आवश्यक शर्त रख दी जाती थी कि जो उस शर्त को पूरा करेगा उसे ही कन्या दी जायगी। उदाहरणस्वरूप विद्याधरों ने राजा जनक के सामने यह शर्त रखी कि बजावर्त धनुष को चढ़ाकर ही राम सीता को ग्रहण कर सकते हैं।^{३५} राजा उस शर्त को पूरा कर गये हैं और उनका सीता के साथ विवाह होता है। कभी-कभी वर की धीरता, धीरता तथा कुल और शील का परिचय प्राप्त करने के लिए युद्ध की आवश्यकता पड़ती थी।^{३६} वर में जितने गुण होने चाहिए उनमें शुद्धवंश में जन्म लेना प्रमुख माना जाता था।^{३७} कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्यागम ये नौ वर के गुण कहे गये हैं। उनमें भी कुल को श्रेष्ठ माना गया है।^{३८} कुल नामका प्रथम गुण जिस वर में न हो उसे कन्या नहीं दी जाती थी।^{३९}

स्नान—पद्मचरित से उस समय के राजवर्ग की ही स्नानविधि का विशेष रूप से पता चलता है। सामान्य लोगों की स्नानविधि क्या थी इसके विषय में यहाँ कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। स्नान करने से पूर्व सुगन्धित हितकारी तथा मनोहरवर्ण वाले तेल का मर्दन किया जाता था, पश्चात् प्राण और शरीर के अनुकूल पदार्थों का उर्वर्तन (उपटन) किया जाता था।^{४०} उर्वर्तन के बाद फौलती हुई कान्ति से युक्त उत्तम आसन पर स्नान करने वाले व्यक्ति पूर्व दिशा की ओर मुख कर विराजमान होता था।^{४१} पश्चात् स्नान की विधि प्रारम्भ होती थी। उस समय मन को हरण करने वाले तथा सब प्रकार की साज सामग्री से युक्त बाजे बजाये जाते थे।^{४२} स्नान कराने का कार्य प्रायः नव यौवनवती स्त्रियाँ करती थीं।^{४३} राज्याभिषेक के समय उपस्थित लोग राजा की अयज्यकार करते थे।^{४४} राजा के अभिषेक के बाद पटरानी का भी अभिषेक होता था।^{४५}

स्नान में प्रयुक्त पात्र—स्नान कराने के लिए चाँदी,^{४६} स्वर्ण,^{४७} मरकत

३५. पद्म० २८।१७१।

३७. वही, ६।४९।

३९. वही, १०१।१६।

४१. वही, ७२।१६, ८०।७३।

४३. वही, ७२।१३, १४।

४५. वही, ८८।३३।

४७. वही, ७२।१३।

३६. पद्म० १०१।६०।

३८. वही, १०१।१४, १५।

४०. वही, ८०।७२।

४२. वही, ८०।७४।

४४. वही, ८८।३२।

४६. वही, ७२।१२।

मणि,^{४८} हीरा,^{४९} स्फटिक मणि,^{५०} इन्द्रनील मणि^{५१} तथा रत्न^{५२} के कलशों के उपयोग करने का उल्लेख मिलता है। रंग की दृष्टि से प्रातःकालीन रूप के समान लालवर्ण^{५३} के कलश तथा कदली वृक्ष के भीतरी भाग के समान सफेद रंग के कलशों के प्रयोग की बात कही गई है। कई कलश ऐसे भी होते थे जो सुगन्धि के द्वारा अमर समूह को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे।^{५४}

भोजन-पान—पद्मचरित की संस्कृति कृषि प्रधान संस्कृति है। इस कारण भोजन-पान का निर्धारण मुख्यतः ग्रहणा भी कसीटी पर किया गया। यद्यपि मांसाहार के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु उसे सामाजिक और धार्मिक^{५५} दृष्टि से निन्दित और गृहित स्वीकार किया गया है। सूर्य की किरणों से प्रकाशित, अतिशय पवित्र, मनोहर, पुण्य को बढ़ाने वाला, आरोग्यदायक और दिन में ही ग्रहण किये जाने योग्य भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है।^{५६} रात्रि भोजन की यहाँ अत्यधिक निन्दा की गई है।^{५७} भोजन के लिए एक विशेष प्रकार के वातावरण पर अधिक ध्यान दिया जाता था। मन, प्राण और मेशों के लिए अभीष्ट जो भी वस्तुएँ वनों से उत्पन्न होती थीं उन्हें लाकर भोजन भूमि में एकत्रित करने का प्रयत्न किया जाता था।^{५८} षट्स^{५९} भोजन का यही उल्लेख हुआ है। षट्स के अन्तर्गत कटु, अम्ल, तिक्त, मधुर, कषाय और लवण आते हैं। पद्मचरित में प्रमुख रूप से चार प्रकार की भोजन सामग्री का उल्लेख है—

१. अन्न भोजन।
२. फल भोजन।
३. पक्वान्न भोजन।
४. शाक भोजन।

अन्न भोजन—इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार के अन्न थे—

शालि^{६०}—हेमन्त ऋतु में होने वाला एक विशेष प्रकार का चावल, जिसका पोषा रोपा जाता है।

४८. पद्म० ८०।७५।

५०. वही, ८०।७५।

५२. वही, ८८।३०।

५४. वही, ७२।१५।

५६. वही, ५३।१४१।

५८. वही, ८०।७८।

६०. वही, ५३।१३५।

४९. पद्म० ८०।७५।

५१. वही, ८०।७५।

५३. वही, ७२।१५।

५५. वही, १४।२६६।

५७. वही, १४।२७२-२७४, १०६।३२, ३३।

५९. वही, ५३।१३६।

गोधूम^{११}—गेहूँ, जिसकी उपज उत्तर पश्चिमी भारत में विशेष रूप से होती है।

राजमाष^{१२}—एक विशेष प्रकार का उड़द जिसे हिन्दी में बर्बटी या रौंसा कहते हैं।

मुद्ग^{१३}—मूँग। इसकी दाल बनाई जाती है। अन्य प्रकार से भी इसका उपयोग होता है।

कांशीपुट^{१४}—मांठ। यह मूँग की तरह प्रयोग में लाया जाने वाला खाद्यान्न है।

जीरक^{१५}—जीरा। यह भोजन को रुचिकर बनाने में प्रयुक्त गर्म मसाला है।

सूप^{१६}—दाल।

माष^{१७}—अर्थात् उड़द। इसकी दाल बनाई जाती है।

पायस^{१८}—खीर का व्यवहार प्राचीन काल से होता आया है। वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख हुआ है। पद्मचरित में कौशल्या पताका के शिखर पर बैठे हुए काक से कहती है—रे यायस। उड़-उड़। यदि मेरा पुत्र राम आयगा तो मैं तुझे खीर देऊँगी। १२१वें पर्व में उत्तम गन्ध रस और रूप से युक्त खीर का आहार मुनिराज को समर्पित करने का उल्लेख आया है।^{१९}

कोद्रव^{२०}—कोदों।

व्यंजन—‘व्यंजनं येनान्नं रुचिमापद्यते तद्दधिघृतशाकसूपादिः’ अर्थात् जिन पदार्थों के मिलाने से या खाने से खाद्य पदार्थ में रुचि अथवा स्वाद उत्पन्न होता है वे दधि, घृत, शाक और दाल आदि पदार्थ व्यंजन कहलाते हैं।^{२१} पद्मचरित में पिण्ड बोधने योग्य तथा रस से भरे हुए नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों का उल्लेख आया है।^{२२}

फल भोजन—फल भोजन के अन्तर्गत पिण्डखजूर,^{२३} दाडिम^{२४} (अनार),

६१. पद्म० १०२।१०९, २।९।

६२. पद्म० २।८।

६३. वही, २।७।

६४. वही, २।७।

६५. वही, २।६।

६६. वही, ५३।१३५।

६७. वही, ३३।४७।

६८. वही, ८८।५।

६९. वही, १२१।१६, १७।

७०. वही, १३।६८।

७१. तेमिचन्द्र शास्त्री : आदि पुराण में प्रतिपादित भारत।

७२. पद्म० ५३।१३६।

७३. पद्म० २।१९।

७४. वही, २।१६।

मातुलिगी^{७५} (दिमोरा), दासा^{७६} (दास), नालिकेर^{७७} (नारियल), आमलक^{७८} (आंवला), नीप^{७९} कपिल^{८०} (कैथा), कदली^{८१} (केला), पूग^{८२} (मुपाडी), कंकौल^{८३} लवंग^{८४} खजूर^{८५} इंगुद^{८६} माअ^{८७} (आम) रसदार बेर^{८८} जम्बू^{८९} (जामुन), विभीतक^{९०} (बहेड़ा), अक्षोट^{९१} (अखरोट), नारिंग^{९२} (नारंगी), एला^{९३} (इलायची), स्पन्दनबिस्व^{९४} (तेंदू), चिरबिस्व^{९५} (बेल) तथा कर्कन्धु^{९६} (बेर) के नाम आये हैं ।

पक्वान्न भोजन

अपूप^{९७}—पुआ भारत का पुराना पक्वान्न है । गेहूं के आटे को चीनी और पानी में मिलाकर धी में मन्दमन्द आंच में उतारे हुए माल पूए अपूप कहलाते थे । अपूप कई प्रकार के बनाये जाते थे । गुड़ापूप गुड़ डालकर बनाये जाते थे और तिलापूप तिल डालकर तैयार किये जाते थे । ये आजकल के अंदरसे के तुल्य होते थे । अष्टा अपूप आजकल की नानखटाई या खोरी हैं । भाड़ में रखकर इनको सेका जाता था । चीनी में मिलाकर बनाये हुए अष्टा अपूप वर्तमान बिस्कुट के पूर्वज हैं । जूणिन अपूप गुप्ते या गुप्तिया हैं । ये कसार या आटा भीतर रखकर बनाये जाते थे ।^{९८}

घनबन्ध^{९९}—घेवर ।

शर्करा मोदक^{१००}—शक्कर से बने हुए लड्डू ।

७५. पद्म० २।१७ ।	७६. पद्म० २।१८ ।
७७. वही, २।१५ ।	७८. वही, ६।९१ ।
७९. वही, ६।९१ ।	८०. वही, ६।९१ ।
८१. वही, ६।९१ ।	८२. वही, ६।९२ ।
८३. वही, ६।९२ ।	८४. वही, ६।९२ ।
८५. वही, ४१।२६ ।	८६. वही, ४१।२६ ।
८७. वही, ४१।२६ ।	८८. वही, ४१।२६ ।
८९. वही, ३।४८ ।	९०. वही, ४२।११ ।
९१. वही, ४२।११ ।	९२. वही, ४२।१६ ।
९३. वही, ४२।१९ ।	९४. वही, ४२।२० ।
९५. वही, ४२।२० ।	९६. वही, ९९।४८ ।
९७. वही, ३४।१३ ।	
९८. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत ।	
९९. पद्म० ३४।१३ ।	१००. पद्म० ३४।१४ ।

ककड़ा^{१०१}—मिथी ।

खंडमोदक^{१०२}—खांड के लहसुन ।

शाष्कुली^{१०३}—ककड़ी ।

पूरिका^{१०४}—पूड़ियाँ ।

गुडपूर्णिकापूरिका^{१०५}—गुड़मिश्रित पूड़ी ।

शाक भोजन—शाक भोजन के अन्तर्गत मैथिल^{१०६} (मैथी), शास्मली^{१०७} (सिम), पनस^{१०८} (कटहल), चित्रमूत^{१०९} (ककड़ी) तथा कूष्माण्ड^{११०} (काशी-फल) के नाम आते हैं ।

पेय पदार्थ

मदिरा^{१११}—पद्मचरित में प्रसंगानुसार स्थान-स्थान पर मदिरापान के उल्लेख मिलते हैं । स्त्री और पुरुष दोनों मदिरापान करते थे । कामक्रीड़ा के सहायक द्रव्यों में इसकी प्रमुखता बतलाई है । ७३वें पर्व में इसका सांगोपांग वर्णन है । रात्रि में होने वाली क्रीड़ाओं का उल्लेख करते हुए कवि कहता है—
“उस समय कितने ही लोग ताम्बूल, गन्धमाला आदि देवोपम उपभोग से मदिरा पीते हुए अपनी बल्लभाओं के साथ क्रीड़ा करते थे । नशा में निमग्न कोई एक स्त्री मदिरा के प्याले में प्रतिबिम्बित अपना ही मुख देख ईर्ष्याविश नीलकमल से पति को पीट रही थी । स्त्रियों ने मदिरा में अपने मुख की सुगन्धि छोड़ी थी और मदिरा ने उसके बदले स्त्रियों के नेत्रों में अपनी लालिमा छोड़ी थी । कोई एक स्त्री मदिरा में पड़ी हुई अपने नेत्रों की कान्ति को नीलकमल समझ ग्रहण कर रही थी अतएव पति ने उसकी चिरकाल तक हँसी की । कोई एक स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि धीरे-धीरे उसे इतनी अधिक मदिरा पिला दी गई कि वह काम के योग्य कार्य में प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई अर्थात् प्रौढ़ा स्त्री के समान कामभोग के योग्य हो गई । उस मदिरा रूपी सखी ने लज्जा रूपी सखी को दूर कर उन स्त्रियों को पति के विषय में ऐसी क्रीड़ा कराई जो उन्हें अत्यन्त हृष्ट थी अर्थात् स्त्रियाँ मदिरा के कारण लज्जा छोड़ पतियों के साथ हृष्टानुकूल क्रीड़ा करने लगीं । जिसमें नेत्र धूम रहे थे तथा बार-बार मधुर अघकटे शब्दों

१०१. पद्म० १२०।२३ ।

१०३. वही, ३४।१४ ।

१०५. वही ।

१०७. वही, ४२।२१ ।

१०९. वही, ८०।१५४ ।

१११. वही, ११८।१५ ।

१०२. पद्म० ३४।१४ ।

१०४. वही, ३४।१४, १२०।२३ ।

१०६. वही, ४२।२० ।

१०८. वही, ५३।१९७ ।

११०. वही, ८०।१५४ ।

का उच्चारण हो रहा था ऐसी स्त्रियाँ और पुरुषों की मन को हरण करने वाली चेष्टा होने लगी । पीते-पीते जो मदिरा बोध बच रही थी उसे भी दम्पति पी लेना चाहते थे । इसलिए तुम पियो, तुम पियो, इस प्रकार जोर से शब्द करते हुए प्याले को एक दूसरे की ओर बढ़ा रहे थे ।^{११२} किसी सुन्दर पुरुष की प्रीति प्याले में समाप्त हो गई थी इसलिए वह बल्लभा का आलिंगन कर नेत्र बन्द करता हुआ उसके मुख के भीतर स्थित कुरले की मदिरा का पान कर रहा था ।^{११३} मृत लक्ष्मण को मोहवशा रामचन्द्र जी जीवित समझकर कहते हैं कि हे लक्ष्मोदर (लक्ष्मण) तुम्हें यह उत्तम मदिरा निरन्तर प्रिय रहती थी सो खिले हुए नीलकमल से सुशोभित पानपात्र में रखी हुई इस मदिरा को पियो ।^{११४}

मधु^{११५}—पेय पदार्थों में मधु का भी नाम आता है । सैनिकों में मधुपान प्रचलित था । स्त्री-पुरुष की कामक्रीड़ा के बीच मधु सहायक द्रव्य का काम देता था ।^{११६}

दूध^{११७} और दूध के बने पदार्थ—पेय पदार्थों में दूध और दूध से बने पदार्थ दही,^{११८} रबड़ी,^{११९} घी^{१२०} आदि का उल्लेख आता है । उपमा के प्रसंग में भी दूध, दही का नामोल्लेख हुआ है । ५१वें पर्व में दधिमुख द्वीप का वर्णन करते हुए रविषेण कहते हैं—'उस दधिमुख द्वीप में एक दधिमुख नाम का नगर था जो वही के समान सफेद महलों से सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्ण के सुन्दर तोरणों से युक्त था ।^{१२१} मगध देश के पौड़ों और ईखों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इनकी शोभा ऐसी है कि दूध के सिक्कन से ही मानों उत्पन्न हुए हैं ।'^{१२२}

इक्षुरस—इक्षुरस का प्रयोग भारत में प्राचीन काल से ही चला आ रहा है । भोगभूमि के समय इक्षुरस ही प्रजा का उत्तम आहार था । उस समय यह छहों रसों से सहित, बल-वीर्य करने में समर्थ तथा स्वयं लड़ने वाला था ।^{१२३} राजा शेर्यास ने ऋषभदेव को सर्वप्रथम इक्षुरस का आहार दिया था ।^{१२४} इक्षुरस से गूड़, छाड़, चीनी, मिथी तथा तरह-तरह की मिठाइयाँ आदि बनाई

११२. पद्म० ७३।१३६-१४४ ।

११३. वही, ७३।१४५ ।

११५. वही, १०२।१०५ ।

११७. वही, ५३।१३७ ।

११९. वही, ५३।१३७ ।

१२१. वही, ५१।२ ।

१२३. वही, ३।२३३ ।

११४. वही, ११८।१५ ।

११६. वही, ७३।१३९ ।

११८. वही, ५३।१३७ ।

१२०. वही, ८०।७७ ।

१२२. वही, २।४ ।

१२४. वही, ४।१६ ।

जाती थीं।^{१२५} ईख की ही एक जाति विशेष पुण्ड्र^{१२६} (पीड़ा) है। पद्मचरित में पीड़ों के बनों का उल्लेख आया है। इस खेती के गन्ने में अधिक रस निकलता है और यह अधिक मधुर भी होता है।

भोजन सम्बन्धी पदार्थों का वर्गीकरण पद्मचरित में एक अन्य प्रकार से भी किया गया है। अन्न, भोज्य, पेय, लेह्य और चूष्य के भेद हैं। यही भोजन सम्बन्धी पदार्थ पाँच प्रकार के कहे गये हैं।^{१२७} रविषेण ने हम सबके ज्ञान होने को 'आस्वाद्य विज्ञान' कहा है। यह आस्वाद्यविज्ञान पाचन (पकाना), छेदन (तोड़ना), उष्णत्वकरण (गर्म करना) आदि भेदों से युक्त है।^{१२८}

भक्ष्य—जो स्वाद के लिए खाया जाता है उसे भक्ष्य कहते हैं। यह कृत्रिम तथा अकृत्रिम के भेद से दो प्रकार का है।^{१२९}

भोज्य—जो श्रुवा निवृत्ति के लिए खाया जाता है उसे भोज्य कहते हैं। इसके भी मुख्य और साधक की अपेक्षा दो भेद हैं। ओदन, रोटी आदि मुख्य भोज्य हैं और लप्सी, दाल, शाक आदि साधक भोज्य हैं।^{१३०}

पेय—शीतयोग (शर्बत), जल और मद्य के भेद से पेय तीन प्रकार का कहा गया है।^{१३१}

लेह्य—वे पदार्थ जिनको चाटकर आनन्द लिया जाता है।

चूष्य—वे पदार्थ जिन्हें चूसकर रस लिया जाता है।

भोजन करने के बाद लवंग (लौंग) तथा उससे युक्त पान का भी व्यवहार होता था।^{१३२}

भोजन शाला में प्रयुक्त पात्र—पद्मचरित में भोजन बनाने के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले निम्नलिखित पात्रों के नाम आये हैं—

स्थाली^{१३३}—थाली।

कलश^{१३४}—जल भरने का घड़ा।

जाम्बूनदमयी पात्री—स्वर्ण की थाली।

चषक^{१३५}—ध्याला।

घट^{१३६}—बड़ा।

१२५. पद्म० १२०।२३।

१२७. वही, २४।५३।

१२९. वही, २४।५३।

१३१. वही, २४।५५।

१३३. वही, ५३।१३४, १२०।२१।

१३५. वही, ७३।१३७।

१२६. पद्म० २।४।

१२८. वही, २४।५६।

१३०. वही, २४।५४।

१३२. वही, ४०।१७।

१३४. वही, ६०।२१, १२०।२४।

१३६. वही, ३३।१८०।

पिठर^{१३७}—मटका या बटलोई ।

सूर्य^{१३८}—अनाज से कूड़ा करकट अलग करने का पात्र ।

इसके अतिरिक्त मिट्टी, बाँस तथा पलाश के पत्तों से सब प्रकार के बर्तन तथा उपयोगी सामान बनाने का उल्लेख हुआ है।^{१३९} अनाज रखने के लिए फलीष (खलियों) बनाई जाती थीं ।

विद्या

पद्मचरित के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय विद्या मौखिक और लिखित दोनों प्रकार से दी जाती थी । प्रारम्भ में वर्णमाला सीखना आवश्यक था । एक स्थान पर चक्रपुर के राजा चक्रध्वज और उसकी मनस्विनी नामक स्त्री से उत्पन्न चित्तोत्पत्ता नामक कन्या का गुरु के घर जाकर खड़िया मिट्टी के टुकड़ों से वर्णमाला लिखने का कथन किया गया है।^{१४०}

विद्या प्राप्ति के लिए आवश्यक बातें—विद्या प्राप्ति के लिए स्थिर चित्त होना आवश्यक माना जाता था।^{१४१} यदि शिष्य शक्ति से युक्त होता था तो वह गुरु के लिए प्रसन्नता का विषय होता था । जिस प्रकार सूर्य के द्वारा नेत्रवान् (अर्थात् नेत्र शक्ति से युक्त) पुरुष को समस्त पदार्थ सुख से दिखाई देते हैं । नेत्रहीन पुरुष को सूर्य का प्रकाश होने पर भी कुछ भी नहीं दिखाई देता उसी प्रकार शक्ति रहित अथवा अल्पशक्ति वाले शिष्य को भी विद्या प्राप्ति होने में कठिनाई होती है।^{१४२} पात्र अपात्र का अधिक ध्यान रखा जाता था । पात्र के लिए उपदेश देने वाला गुरु कुतकृत्यता को प्राप्त हो जाता है । जिस प्रकार उल्लू के लिए किया हुआ सूर्य का प्रकाश व्यर्थ होता है, वही प्रकार अपात्र के लिए दिया हुआ उपदेश व्यर्थ होता है।^{१४३} कर्म के प्रभाव से ही शीघ्र से या देर से विद्या की सिद्धि होती है । किसी को दस वर्ष में, किसी को एक माह में और किसी को एक ही क्षण में विद्यामें सिद्ध हो जाती है, यह सब कर्मों का प्रभाव है।^{१४४}

गुरु का महत्त्व—गुरु का उस समय अधिक महत्त्व था । शिष्य कितना ही निपुण क्यों न हो वह गुरु या आचार्य की मर्यादा का सदा ध्यान रखता था । विद्युत्केश विद्याधर ने एक मुनिराज से पूछा कि हे देव ! मैं क्या करूँ ? मेरा क्या कर्त्तव्य है ? इसके उत्तर में मुनिराज ने कहा कि चार ज्ञान के धारी हमारे

१३७. पद्म० ३३।१८० ।

१३९. वही, ४१।११ ।

१४१. वही, २६।७ ।

१४३. वही, १००।५२ ।

१३८. पद्म० ३३।१८० ।

१४०. वही, २६।७ ।

१४२. वही, १००।५० ।

१४४. वही, ६।२६२-२६४ ।

गुरु पास ही विद्यमान है अतः हम लोग उन्हीं के पास चलें, यही सनातन धर्म है। आचार्य के समीप रहने पर भी जो उनके पास नहीं जाता है और स्वयं उपदेशादि देकर आचार्य का काम करता है वह मूर्ख शिष्यपना को ही छोड़ देता है।^{१४५} शिष्य और गुरु का बड़ा आत्मिक सम्बन्ध होता है। अपनी विशेष बातों को गुरु से निवेदन कर शिष्य बड़े भारी दुःख से छूट जाता है।^{१४६} सामान्य शिष्य से लेकर राजपुत्र तक गुरु की सेवा में तत्पर रहते थे।^{१४७} गुरु के समक्ष लिया हुआ व्रत भंग करना बहुत दुःखकर माना जाता था। राम द्वारा परित्यक्ता सीता कहती है कि निर्विघ्न ही मैंने अन्य जन्म में गुरु के समक्ष व्रत लेकर भंग किया होगा, जिसका यह फल प्राप्त हुआ है।^{१४८} शिष्य के अभिभावक भी गुरु का वषायोन्मत्त सम्मान करते थे।^{१४९}

विद्या प्राप्ति का स्थान—विद्या प्राप्ति कुछ लोग गुरु के घर पर करते थे।^{१५०} कहीं-कहीं विशिष्ट विद्वानों को राजा जीव अपने घर पर ही रख लिया करते थे।^{१५१} उस समय के विद्यालय भी विद्या प्राप्ति के उत्तम स्थान थे।^{१५२} तापसी लोगों के बड़े-बड़े आश्रमों का भी उल्लेख मिलता है, जिनके घर बहुत से शिष्य विद्याध्ययन करते थे।^{१५३}

लिपि—लेखन कला का उस समय विकास हो गया था। पद्मचरित में चार प्रकार की लिपि कही गई है।

अनुवृत्त^{१५४}—जो लिपि अपने देश में आमतौर से चलती है उसे अनुवृत्त कहते हैं।

विकृत^{१५५}—लोग अपने-अपने संकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते हैं, उसे विकृत कहते हैं।

सामयिक^{१५६}—प्रत्यंग आदि वर्णों में जिसका प्रयोग होता है उसे सामयिक कहते हैं।

नैमित्तिक^{१५७}—वर्णों के बदले पुष्पादि पदार्थ रखकर जो लिपि का ज्ञान

१४५. पद्म० ६।२६२-२६४।

१४७. वही, १००।८१।

१४९. वही, ३९।१६३।

१५१. वही, ३९।१६०।

१५३. वही, ८।३३३, ३३४।

१५५. वही, २४।२४।

१५७. वही, २४।२५, २६।

१४६. पद्म० १५।१२२-१२३।

१४८. वही, ९७।१६०।

१५०. वही, २६।५, ६।

१५२. वही, ३९।१६२।

१५४. वही, २४।२४।

१५६. वही, २४।२५।

कराया जाता है, उसे नैमित्तिक कहते हैं। इस लिपि के प्राच्य, मध्यम, ग्रीष्म, समाद्र आदि वेशों की अपेक्षा अनेक अवान्तर भेद होते हैं।

विद्या प्रदाता—विद्या प्रदाताओं की श्रेणी में गुरु,^{१५८} उपाध्याय,^{१५९} विद्वान्,^{१६०} यति,^{१६१} आचार्य^{१६२} तथा मुनि नाम आये हैं।

विद्या प्रदाता के गुण—विद्या प्रदाता को महाविद्याओं से युक्त, पराक्रमी, प्रशान्तमुख, धीरवीर, सुन्दर आकृति का धारक, शुद्ध भावनाओं से युक्त, अल्प परिग्रह का धारी, उत्तम व्रतों से युक्त, धर्म के रहस्य को जानने वाला, कला रूपी समुद्र का पारगामी, शिष्य की शक्ति को जानने वाला तथा पात्र अपात्र का विचार करने वाला होना चाहिए।^{१६३}

विद्याओं के प्रकार—पद्मचरित से व्याकरण, गणितशास्त्र, धनुर्वेद, अस्त्रशास्त्र विद्या, वारण्यक शास्त्र, ज्योतिष विद्या, जैनदर्शन, वेद, वेदान्त, बौद्धदर्शन, निमित्तविद्या, शकुन विद्या, आरोग्यशास्त्र, कामशास्त्र, संस्कृत, प्राकृत शौरसेनी आदि भाषाएँ, लोकज्ञता, संगीतविद्या, नृत्यविद्या, कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र आदि विद्याओं के संकेत मिलते हैं।

व्याकरण विद्या—व्याकरण विद्या का उस समय तक अधिक विकास हो गया था, ऐसा पद्मचरित के अध्ययन से विदित होता है। नवम सर्ग में कैलाश पर्वत की उपमा व्याकरण से देते हुए रविवेण कहते हैं—जिस प्रकार व्याकरण अनेक धातुओं से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत अनेक धातुओं (चाँदी सोने आदि) से युक्त था, जिस प्रकार व्याकरण हजारों गणों (शब्द समूहों) से युक्त था उसी प्रकार वह पर्वत भी हजारों गणों अर्थात् साधु समूहों से युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण सुवर्ण अर्थात् उत्तमोत्तम वर्णों की घटना से मनोहर है उसी प्रकार वह पर्वत भी सुवर्ण अर्थात् स्वर्ण की घटना से मनोहर था। जिस प्रकार व्याकरण पदों अर्थात् सुबन्त तिङन्त रूप शब्द समुदाय से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक पदों अर्थात् स्थानों या प्रत्ययन्त पर्वतों अथवा चरण चिह्नों से युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण प्रकृति अर्थात् मूल शब्दों के अनुरूप विकारों अर्थात् प्रत्ययादिजन्य विकारों से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी प्रकृति अर्थात् स्वामाश्रित रचना के अनुरूप विचारों से युक्त था जिस प्रकार व्याकरण बिल अर्थात् मूलसूत्रों से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी बिल अर्थात् ऊपर पृथ्वी

१५८. पद्म० २६।६।

१५९. पद्म० ३९।१६३।

१६०. वही, ३९।१६०।

१६१. वही, ३९।३०३।

१६२. वही, २५।५३।

१६३. वही, १००।३२, ३३, ३४, १००।५०, ५२।

अथवा गर्त आदि से युक्त था । जिस प्रकार व्याकरण (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि) अनेक प्रकार के स्वरों से पूर्ण है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक प्रकार के स्वरों अर्थात् प्राणियों के शब्दों से पूर्ण था ।^{१५४} इस उपमा में आए धातु, गण, सुवर्ण पद, प्रकृति, बिल तथा स्वर शब्द व्याकरण के विकास का द्योतन करते हैं । व्याकरण शास्त्र के नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात जैसे पारिभाषिक शब्दों का भी यहाँ प्रयोग हुआ है ।^{१५५}

गणितशास्त्र—पद्मचरित में इसे सांख्यिकी कहा है । जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के पद्मक नगर के रम्भ नामक पुरुष को गणित शास्त्र का पाठी कहा गया है ।^{१५६}

धनुर्वेद—राजा सहस्ररश्मि के लपट जब रावण ने बाण छोड़े तब सहस्ररश्मि ने कहा कि हे रावण ! तुम तो बड़े धनुर्धारी मालूम होते हो । यह उपदेश तुम्हें किस गुरु से प्राप्त हुआ है ? अरे छोकड़े ! पहले धनुर्वेद पढ़ और अभ्यास कर, पश्चात् मेरे साथ युद्ध करना ।^{१५७} पञ्चोसर्वे पर्व में राजगृह नगर के वैशम्पत्य नामक एक विद्वान् का उल्लेख किया गया है जो धनुर्विद्या में निपुण था और विद्याभ्यास में श्रम करने वाले एक हजार शिष्यों सहित था । काम्पित्यनगर के शिखी नामक ब्राह्मण का लड़का ऐर उसी के पास विधिपूर्वक विद्या सीखने लगा और कुछ ही समय में उसके हजार शिष्यों में भी अधिक निपुण हो गया ।^{१५८} इससे धनुर्वेद के सीखने-सिखाने का प्रचलन सूचित होता है ।

आरण्यक शास्त्र—पद्मचरित के ११वें पर्व में क्षीरकदम्बक द्वारा नारद आदि शिष्यों को आरण्यक शास्त्र^{१५९} पढ़ाने का उल्लेख है ।

१६४. नानाधातु सभाकीर्णं गणयुक्तं सहस्रशः ।

सुवर्णघटनारम्यं पदपङ्क्तिभिराजितम् ॥ पद्म० १।११२ ।

प्रकृत्यनुगतैर्युक्तं विकारैर्विलसंयुतम् ।

स्वरैर्बहुविधैः पूर्णं लब्धव्याकरणोपमम् ॥ पद्म० १।११३ ।

१६५. तामाख्यातोपसर्गेषु निपातेषु च संस्कृता ।

प्राकृती शीरसेनी च भाषा यत्र त्रयी स्मृता ॥ पद्म० २।४।११ ।

१६६. पद्म० ५।११४ ।

१६७. अहो रावण धानुष्को महानसि कुसस्तव ।

उपदेशो यमायातो गुरोः परमकीशलात् ॥ पद्म० १०।१२७ ।

वत्स तावद्धनुर्धेदमधीण्व कुरु च श्रमम् ।

ततो मया समं युद्धं करिष्यसि नयोज्झितः ॥ पद्म० १०।१२८ ।

१६८. पद्म० २।५।४६, ४७ ।

१६९. पद्म० ११।१५ ।

ज्योतिष विद्या—ज्योतिष विद्या बहुत प्राचीन है। मंगल कार्य से पूर्व ज्योतिषी द्वारा ग्रहों आदि की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर शुभाशुभ मुहूर्त का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता था। विवाह की तिथि ज्योतिषी निश्चित करते थे।^{१७०} किसी शुभ दिन जब सौम्यग्रह सामने स्थित होते थे, क्रूरग्रह विमुख होते थे और लग्न मंगलकारी होती थी तब प्रस्थान किया जाता था।^{१७१} अंजना ने मामा से अपने पुत्र के ग्रहों के विषय में जानना चाहा। तब उसके मामा के पार्वरंग नामक ज्योतिषी ने पुत्र के जन्म का समय पूछकर संक्षेप से उसके जीवन के विषय में बतलाया—‘यह चैत्र के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि है, भ्रवण नक्षत्र है, सूर्य दिन का स्वामी है। सूर्य मेष का है अतः उच्च स्थान में बैठा है। चन्द्रमा मकर का है अतः मध्यगृह में स्थित है। मंगल वृष का है अतः मध्यस्थान में बैठा है। बुध मीन का है वह भी मध्यस्थान में स्थित है। शुक और शनि दोनों ही मीन के हैं तथा उच्च स्थान में आरुढ़ हैं। उस समय मीन का ही उदय था। सूर्य पूर्ण दृष्टि से शनि को देखता है और मंगल सूर्य को अर्धदृष्टि से देखता है। बृहस्पति चन्द्रमा को पूर्ण दृष्टि से देखता है और चन्द्रमा भी अर्ध दृष्टि से बृहस्पति को देखता है। बृहस्पति शनि को पौन दृष्टि से देखता है और शनि बृहस्पति को अर्ध दृष्टि से देखता है। बृहस्पति शुक को पौन दृष्टि से देखता है और शुक भी बृहस्पति पर पौन दृष्टि डालता है। अवशिष्ट ग्रहों की पारस्परिक अपेक्षा नहीं है। उस समय इसके ग्रहों के उदय क्षेत्र काल का अत्यधिक बल है। सूर्य, मंगल और बृहस्पति इसके राज्ययोग को सूचित कर रहे हैं और शनि मुक्तिदायी योग को प्रकट कर रहा है। यदि एक बृहस्पति ही उच्च स्थान में स्थित हो तो समस्त कल्याण की प्राप्ति का कारण होता है। इसके तो समस्त ग्रह उच्च स्थान में स्थित हैं। उस समय ब्राह्म नाम का योग और शुभ नाम का मुहूर्त था अतः ये दोनों ही ब्राह्म स्थान अर्थात् मोक्ष सम्बन्धी सुख के समागम को सूचित करते हैं। इस प्रकार इस पुत्र का यह ज्योतिषिक सर्व वस्तु की दोषों से रहित सूचित करता है।^{१७२}

वेद—पञ्चचरित के ११वें पर्व में सर्वज्ञसिद्धि के प्रसंग में वेद के दोष दिखाये गये हैं।^{१७३} वेद का कोई कर्ता नहीं है इस बात को अयुक्तिसंगत सिद्ध कर वेद का कोई कर्ता है, इस पक्ष में अनेक प्रमाण दिये गये हैं। इसमें प्रमुख युक्ति यह है कि चूँकि वेद पद और वाक्यादि रूप हैं तथा विषेय और प्रतिषेध्य अर्थ से युक्त हैं अतः किसी कर्ता द्वारा बनाया गया है। जिस प्रकार मैत्र का

१७०. पद्य० १५।९३।

१७१. पद्य० ८।१८, १९।

१७२. वही, १७।३६४-३७७।

१७३. वही, ११।१८४।

काव्य पद वाक्यादि रूप होने से किसी के द्वारा बनाया गया है।^{१७४} यहाँ वेद शास्त्र हैं इसी बात को असिद्ध ठहराया गया है क्योंकि शास्त्र वह कहलाता है जो माता के समान समस्त संसार के लिए हितकर उपदेश दे। जो कार्य निर्दोष होता है उसमें प्रायश्चित्त का निरूपण करना उचित नहीं। परन्तु याज्ञिक हिंसा में प्रायश्चित्त कहा गया है इसलिए वह सदोष है।^{१७५} प्रायश्चित्त के भी यहाँ कुछ उदाहरण दिये गये हैं।^{१७६}

वेदान्त—पञ्चचरित में अग्निभूत तथा वायुभूत नामक दो ब्राह्मणों की हँसी उड़ाते हुए लोगों के मुख से यह कहलाया गया है कि ब्रह्मतावाद में मूढ एवं पशुओं की हिंसा में आसक्त रहने वाले इन दोनों ब्राह्मणों ने सुख की इच्छुक प्रजा को छूट डाला है।^{१७७}

बौद्धदर्शन—पञ्चचरित के दूसरे पर्व में राजा श्रेणिक का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार बुद्ध का दर्शन अर्थवाद (वास्तविकतावाद) से रहित होता है उसी प्रकार उसका दर्शन (साक्षात्कार) अर्थवाद (वनप्राप्ति) से रहित नहीं होता था।^{१७८}

निमित्त विद्या—निमित्त विद्या के अन्तर्गत पञ्चचरित में अष्टांगनिमित्त के जाता मुनिराज^{१७९} और क्षुत्लक^{१८०} का उल्लेख हुआ है। लोगों ने उनसे अपने मनोकूल प्रश्न पूछे।

शकुन विद्या—ऐसी आकस्मिक घटना को, जिसे भावी शुभाशुभ का

१७४. पद्य० ११।१९०।

१७५. वेदागमस्य शास्त्रत्वमसिद्धं शास्त्रमुच्यते।

तद्वि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम् ॥ पद्य० ११।२०९।

प्रायश्चित्तं च निर्दोषे वक्तुं कर्मणि नोचितम्।

अत्र तूक्तं ततो दुष्टं तच्चेदमभिधीयते ॥ पद्य० ११।२१०।

१७६. पद्य० ११।२११-२१५।

१७७. एताभ्यां ब्रह्मतावादे विमूढाभ्यां सुखाचिनी।

प्रजेयं मुषिता सर्वा सक्ताभ्यां पशुहिंसने ॥ पद्य० १०९।७९।

१७८. बुद्धस्येव न निर्मुक्तमर्थवादेन दर्शनम्।

न श्रीबहुलदोषोपधातिनी शीतगोरिव ॥ पद्य० २।६४।

१७९. पद्य० ५१।२९।

१८०. बहो० १००।४४।

घोसक समझा जाता है, शकुन कहते हैं ।^{१८१} अथवा भावी शुभ या अशुभ फल की घोसक किसी घटना, अद्भुत दृश्य या संयोग को शकुन कहते हैं ।^{१८२} सूचक संकेत एवं भावी घटना में कार्यकारण नहीं होता । शकुन वस्तुतः ऐसा संकेत है जो कारणान्तर से उत्पन्न होने वाले कार्य की सूचना मात्र देता है, स्वयं उस भावी घटना का कारण नहीं होता ।^{१८३} बराहमिहिर के अनुसार शकुन जन्मान्तर में कृत कर्म के भावी फल की सूचना देता है ।^{१८४} पञ्चचरित में प्राप्त शकुनों को हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं—

प्राणियों के शृंगारसूचक दर्शन एवं क्रियाओं से प्राप्त शकुन ।

प्राकृतिक तत्वों से प्राप्त शकुन ।

शारीरिक लक्षणों से प्राप्त शकुन ।

स्वप्नों से प्राप्त शकुन ।

ग्रहोपग्रहों से प्राप्त शकुन ।

प्राणियों के शुभाशुभसूचक दर्शन एवं क्रियाओं से प्राप्त शकुन—
समीप ही मयूर का मनोहर शब्द करना, उत्तमोत्तम अलंकारों से युक्त स्त्री का सामने खड़ा होना,^{१८५} निर्ग्रन्थ मुनिराज का सामने से आना, घोड़ों की गम्भीर हिनहिनाहट होना,^{१८६} बायीं ओर मवीन गोबर को बिलेरते हुए तथा पंखों को फैलाते हुए काक का मधुर शब्द करना,^{१८७} सिद्धि हो, अय हो, समृद्धिमान हो तथा बिना विघ्न बाधा के शीघ्र प्रस्थान करो इत्यादि मंगल शब्द होना,^{१८८} ये लक्षण शुभ माने गये हैं ।

१८१. 'A casual event of occurrence supposed to pretend good or evil'

The century dictionary vol. V, P. 4105

१८२. An occurrence phenomenon or incident regarded as an indication of a favourable or unfavourable issue.

Funk & wagnall's new stand and dictionary of the English language vol. III P, 1722.

१८३. संस्कृत काव्य में शकुन, पृ० ३ ।

१८४. अस्य जन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम् ।

यत् तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥

—बराहमिहिर : बृहत्संहिता, पृ० ५००, अध्याय ८६।५ ।

१८५. पद्य० ५४।५० ।

१८६. पद्य० ५४।५१ ।

१८७. वही, ५४।५३ ।

१८८. वही, ५४।५३ ।

घोड़े का घोड़ा को कँपाना तथा प्रखर शब्द करते हुए हींसना,^{१८९} हाथी का कठोर शब्द करते हुए पृथ्वी को ताड़ित करना।^{१९०} सूर्य के सम्मुख हुए कोए का अत्यन्त तीक्ष्ण शब्द करना तथा अपने झुण्ड को छोड़कर अलग बैठ जाना,^{१९१} कोए के पंख ढीले पड़ना तथा अत्यन्त व्याकुल दिखाई पड़ना,^{१९२} दाहिनी ओर कोए का काँव-काँव करना,^{१९३} शृगाल का नीरस शब्द करना,^{१९४} कोए का सूखा काठ चोंच में दबाकर सूर्य की ओर देखते हुए क्रूर शब्द करना,^{१९५} रीक्ष का महाभयंकर शब्द करना,^{१९६} प्रयाण के रोकने में तत्पर होना, मण्डलाकार बाधकर खड़े होना, दक्षिण की ओर दिखाई पड़ना, गोर्वा ५३ पंखों द्वारा गाढ़ अन्धकार उत्पन्न करना,^{१९७} विकृत शब्द करना, शृगाली^{१९८} का दक्षिण दिशा में रोमांच वारण करते हुए भयंकर शब्द करना, गधे^{१९९} का दाहिनी ओर मुख उठाकर आकाश को बड़ी तीक्ष्णता से मुखरित करना, खुर के अग्रभाग से पृथ्वी को खोदते हुए भयंकर शब्द करना, महानाग का मार्ग काट जाना, ऐसा लगने लगना जैसे लोग उससे कह रहे हों कि हा, ही, तुझे धिक्कार है, कहीं जा रहा है ?^{२००} पीछे की ओर छोंक होना^{२०१} आदि लक्षण अशुभ सूचक माने गये हैं, दक्षिण दिशा में भालू का अत्यन्त भयंकर शब्द करना,^{२०२} आकाश में सूर्य को आच्छादित करते हुए गोघ का मेंढराना^{२०३} ये अपशकुन मरण के सूचक हैं।

सामान्यतः काक की चेष्टायें अशुभ मानी जाती हैं किन्तु काक का किसी विशेष स्थिति में होना तथा मधुर शब्द करना कहीं-कहीं शुभ माना गया है। चन्द्रप्रभ चरित महाकाव्य (तेरहवीं शती) में युवराज सहित राजा पृथ्वीपाल के साथ युद्ध के लिए जाते समय मार्ग में क्षीरी (खिरनी) के वृक्ष पर स्थित काक द्वारा मधुर शब्द करना शुभ^{२०४} किन्तु पृथ्वीपाल के रणभूमि को जाते समय

१८९. पद्य० ७२।८१।

१९१. वही, ७२।८१।

१९३. वही, ७३।१९।

१९५. वही, ७।४४।

१९७. वही, ५७।७०।

१९९. वही, ७।८।

२०१. वही, ७३।१९।

२०३. वही, ७३।१५।

२०४. वीरनन्दो : चन्द्रप्रभचरित १७।२८।

१९०. पद्य० ७२।८१।

१९२. वही, ७२।८३।

१९४. वही, ७२।८०।

१९६. वही, ५७।६९।

१९८. वही, ७।४५।

२००. वही, ७३।१८।

२०२. वही, ७४।१५।

५४ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

मार्ग में काटिदार वृक्ष पर स्थित काक द्वारा कठोर शब्द करना उसकी मृत्यु का द्योतक होने के कारण अशुभ माना गया है।^{२०५} यहाँ पञ्चचरित में बायीं ओर नवीन गोबर को बिखेरते हुए तथा पंखों को फैलाते हुए काक को मधुर शब्द करते हुए चित्रित किया गया है, अतः शुभ माना गया है।

प्राकृतिक तत्वों से प्राप्त शकुन—गमन के योग्य मन्द वायु का चलना,^{२०६} वृक्षों का सब ऋतु के फल-फूल धारण करना, पृथ्वी का निर्मल होना,^{२०७} भूमि का सुगन्धित पवन द्वारा धूलि, पाषाण और कण्टक से रहित होना,^{२०८} दुर्भिक्ष का न होना,^{२०९} निर्धूम अग्नि की ज्वाला दक्षिणावर्त से प्रज्वलित होना^{२१०} तथा सुगन्धि को फैलाती हुई वायु का बहना^{२११} शुभ माना गया है।

बड़े-बड़े तालाबों का सूख जाना, पहाड़ों की चोटियाँ नीचे गिरना तथा आकाश से रश्मि की वर्षा होना^{२१२} थोड़े ही दिन में स्वामी के मरण की सूचना देने वाले हैं। परिवेष से युक्त सूर्य के बिम्ब में भयंकर कबन्ध दिखाई देना और उससे खून की बूँदों का बरसना,^{२१३} समस्त पर्वतों को कम्पित करने वाले भयंकर वज्र गिरना,^{२१४} सूर्य के चारों ओर शस्त्र के समान अत्यन्त रक्षा परिवेष (परिमण्डल) रहना,^{२१५} पूरी रात्रि चन्द्रमा का छिपा रहना,^{२१६} भयंकर वज्रपात होना,^{२१७} अत्यधिक सूकम्प होना,^{२१८-२२०} पूर्व दिशा में काँपती हुई रश्मि के समान उत्का गिरना^{२२१} तथा देवताओं की प्रतिमाओं का क्षुब्धजल की वर्षा के लिए दुर्दिन स्वरूप बनना^{२२२} अशुभ माना गया है।

शारीरिक लक्षणों से प्राप्त शकुन—निर्मल कान्ति वाला शरीर होना, शरीर का छाया रहित होना अर्थात् परछाई पड़ने से रहित होना,^{२२३} नेत्रों का

२०५. पद्य० १५।३२।

२०७. वही, २।९५।

२०९. वही, २।९१।

२११. वही, ५४।५१।

२१३. वही, ७।४६।

२१५. वही, ७२।७८।

२१७. वही, ७२।७९।

२१९. वही, ७२।८०।

२२१. वही, ७२।८२।

२२३. वही, २।९२।

२०६. पद्य० २।९४।

२०८. वही, २।९६।

२१०. वही, ५४।५०।

२१२. वही, ७२।८४-८५।

२१४. वही, ७।४७।

२१६. वही, ७२।७२।

२१८. वही, ७२।७९।

२२०. वही, ७३।१९।

२२२. वही, ७२।८२।

टिमकार रहित होना,^{२२४} नाखून और दालों का नहीं बढ़ना,^{२२५} मल और पसीना से रहित शरीर होना, शरीर में दूध के समान रुधिर होना, शरीर का उत्तम संस्थान, उत्तम गंध और उत्तम संहनन तथा अनन्त बल से युक्त होना,^{२२६} हित मित प्रिय वचन बोलना,^{२२७} परोपकार युक्त होना,^{२२८} असाधारण कार्य करना,^{२२९} बालक होने पर भी अवालकोचित कार्य करना,^{२३०} बालकों जैसी चेष्टा करना तथा मनोहर विनय का धारक होना ये शुभ शकुन माने गये हैं।

स्त्रियों की दाहिनी आँख फड़कना^{२३१} तथा पीछे की ओर झींक आना^{२३२} अशुभ माना गया है।

स्वप्नों से प्राप्त शकुन—पद्मचरित के तीसरे पर्व में मरुदेवी सोलह स्वप्न देखती हैं जो इस प्रकार हैं—हाथी, बंल, सिंह, हाथी द्वारा सोने तथा चाँदी के कलशों से अभिषेक की जाती हुई लक्ष्मी, (पुन्नाग, मालती कुन्द तथा चम्पा आदि के) पुष्पों से निर्मित मालायें, सूर्य, चन्द्र, मीन युगल, फूलों की मालाओं से सुसज्जित पञ्चवर्ण के मणियों से भरा हुआ कलश, सरोवर, विशाल सागर, ऊँचा सिंहासन, विमान, सुसज्जित अनेक खण्डों वाला भवन, रत्नों की राशि तथा दक्षिणावर्त निर्धूम अग्नि देखो। मरुदेवी ने इन स्वप्नों का फल जब अपने पति नाभिराय से पूछा तो उन्होंने कहा कि हे देवी ! तुम्हारे गर्भ में त्रिलोकीनाथ ने अवतार लिया है।^{२३३}

२२४ पद्य० २।९३।

२२५. पद्य० २।९३।

२२६. वही, २।८९।

२२७. वही, २।९०।

२२८. वही, २।८८।

२२९. वही, २।७६, ७।२१५, २१६।

२३०. वही, २।७७।

२३१. वही, ९६।२।

२३२. वही, ७३।१८।

२३३. पद्य० ३।१२४-१५३ अन्द्रप्रभचरित महाकाव्य (यह ग्रन्थ तेरहवीं शताब्दी का है) में इन सोलह स्वप्नों में से गजेन्द्र का दर्शन तीनों लोकों के एक मात्र अधिपति होने, नरेन्द्र का दर्शन गम्भीरता, सिंह का दर्शन अद्वितीय वीरता, लक्ष्मी का दर्शन इन्द्र पदवी, माला युगल का दर्शन अनन्तकीर्ति, चन्द्रमा का दर्शन प्रसन्नता, सूर्य का दर्शन अज्ञानान्धकार से मुक्ति, मीन युगल का दर्शन सर्व शोको से मुक्ति, कुम्भ का दर्शन शरीर की शुभ चित्तों से सम्पन्नता, तालाव का दर्शन तृष्णाहीनता, समुद्र का दर्शन केवलज्ञान प्राप्ति, हेमसिंहासन का दर्शन सिद्धि प्राप्ति, दिव्यविमान का दर्शन स्वर्ग प्राप्ति, रत्नराशि का दर्शन गुणों की प्राप्ति और बलि का दर्शन उग्र कर्मों के बहन का सूचक माना गया है।

९५वें पर्व में सीता ने ऐसे दो अष्टापद देखे जिनकी कान्ति शरदऋतु के चन्द्रमा के समान थी, शोभ को प्राप्त हुए सागर के समान जिनका शब्द था, कैलासपर्वत के शिखर के समान जिनका आकार था, जो सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत थे। जिनकी उत्तम शायें कान्तिगुण्य एवं समेत थीं^{२३३} जिनकी गर्दन की उत्तम जटायें सुशोभित हो रही थीं।^{२३४} यह स्वप्न देखने के बाद दूसरे स्वप्न में उन्होंने देखा कि वे पुष्पक विमान के शिखर से गिरकर पृथ्वी पर आ पड़ी है।^{२३५} इन स्वप्नों का फल पूछने पर राम ने कहा कि अष्टापद युगल देखने से तू शीघ्र ही दो पुत्र प्राप्त करेगी।^{२३६} पुष्पक-विमान से गिरने की यही अनिष्टकारक बतलाया गया है।^{२३७}

ग्रहोपग्रहों से प्राप्त शकुन—ग्रहोपग्रहों से प्राप्त शुभाशुभ स्वप्नों पर अधिक ध्यान दिया जाता था। विवाह की तिथि ज्योतिषी निश्चित करते थे। किसी दिन जबकि सौम्यग्रह सामने स्थित होते, क्रूरग्रह विमुख होते थे और लग्न मंगलकारी होती थी तब प्रस्थान किया जाता था।^{२३८} ज्योतिष्यक के अनुसार ही जन्म और जीवन के सुख दुःखों का अनुमान होता था।^{२३९} एक स्थान में सूर्य के बिम्ब में कवन्ध (धड़) दिखाई पड़ना और उससे खून की वर्षा होना अत्यन्त अशुभ माना गया है।^{२४०}

विविध स्वप्न—आकाश में छत्र का फिरना,^{२४१} घण्टा का मधुर शब्द होना,^{२४२} भेरी और शंख का शब्द होना^{२४३} तथा जीवों में मैथी भाव होना^{२४४} शुभ माना गया है।

शकुन का कारण—शुभ या अशुभ शकुनों का कारण प्राणियों का पूर्वो-पाजित कर्म है, ऐसी पञ्चचरित की मान्यता है। दाहिनी आँख फड़कने के कारण दुःख आगमन की कल्पना कर सीता कहती है कि प्राणियों ने निरन्तर जो कर्म स्वयं उपाजित किये हैं उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है, उसका निवारण करना शक्य नहीं है।^{२४५} यहाँ अनुमती नाम की देवी सीता को समझाती हुई कहती है कि पूर्व पर्याय में जो अच्छा बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, देव अथवा ईश्वर कहलाता है। मैं पृथक् रहने वाले कृतान्त के द्वारा इस अवस्था

२३३.* पद्य० ९५।६, ७।

२३५. वही, ९५।९।

२३७. वही, ८।१८, १९।

२३९. वही, ७।४६।

२४१. वही, ५४।५१।

२४३. वही, २।९४।

२३४. पद्य० ९५।८।

२३६. वही, ९५।१०।

२३८. वही, १७।३६४-३७७।

२४०. वही, ५४।५१।

२४२. वही, ५४।५३।

२४४. वही, ९६।५।

को प्राप्त कराई गई है (या कराया गया है), ऐसा जो मनुष्य निरूपण करता है वह अज्ञानमूलक है।^{२४५}

अपशकुनों की निवृत्ति के उपाय—जिस प्रकार मानव प्रकृति में शकुनों में विश्वास को जन्म दिया है उसी प्रकार उसने अपशकुनों की निवृत्ति के लिए उपायों की खोज की। पञ्चचरित में भी इस प्रकृति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। सीता द्वारा अपशकुन का फल जानने की चेष्टा करने पर कुछ देवियाँ कहती हैं कि अधिक तर्कवितर्क करने से क्या लाभ है? शान्ति कर्म करना चाहिए।^{२४६} जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक, अत्युदार पूजन और किमिच्छक दान के द्वारा अशुभ कर्म को दूर हटाना चाहिए।^{२४७} देवियों की मलाह पर सीता ऐसा ही करती है।^{२४८} कहीं-कहीं पर ऐसे भी उदाहरण आए हैं जहाँ इन अपशकुनों की उपेक्षा दिखलाई गई है। पञ्चवर्ष में शूरवीरता के अतिगर्व से मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओं से उद्धत राक्षसों के समूह अशुभस्वप्नों के दृष्टिगत होते हुए भी युद्ध के लिए बराबर नगरी से बाहर निकलते दिखाये गये हैं।^{२४९} सप्तम पर्व में सुमाली अशुभ शकुनों को देखकर माली से युद्ध से वापिस चलने को कहता है तब माली उत्तर देता है कि शत्रु के बध का संकल्प कर तथा विजयी हाथी पर सवार हो जो पुरुषार्थ का धारी युद्ध के लिए चल पड़ा है वह वापिस कैसे लौट सकता है।^{२५०}

आरोग्यशास्त्र—पञ्चचरित में विकसित आरोग्य कला के दर्शन होते हैं। एक स्थान पर कहा गया है कि जब रोग उत्पन्न होता है तब उसका सुख से विनाश किया जाता है पर जब वह रोग जड़ बाधकर व्याप्त हो जाता है तब मरने के बाद ही उसका प्रतीकार हो सकता है।^{२५१} एक अन्य स्थान पर औषधि कड़वी होने पर भी उसे ग्रहण करने योग्य बतलाया गया है।^{२५२} उस समय के होने वाले रोगों में से कुछ रोगों^{२५३} के नाम प्रसंगवश पञ्चचरित में आये हैं। जैसे उरोघात (जिसमें वक्षःस्थल, पसली आदि में दर्द होने लगता है) महादाहज्वर (जिसमें महादाह उत्पन्न होता है) लाल परिस्राव (जिसमें मूँह से लाल बहने लगती है) सर्वणूल (जिसमें सर्वाङ्ग में पीड़ा होती है), अरुचि (जिसमें भोजनादि को रुचि नष्ट हो जाती है), छदि (जिसमें वमन होने लगता

२४५. पद्य० ९६।१०।

२४७. वही, ९६।१५।

२४९. वही, ५७।७१।

२५१. वही, १२।१६१।

२५३. वही, ६४।१५।

२४६. पद्य० ९६।१४।

२४८. वही, ९६।१६।

२५०. वही, ७।५०।

२५२. वही, ७३।४८।

५८ : पद्यचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

है), श्वयम्बु (जिसमें शरीर पर सृजन आ जाती है), स्फोटक (जिसमें शरीर पर फोड़े निकल आते हैं) तथा वायु रोग ।^{२५४}

कामशास्त्र—पद्यचरित के १५वें पर्व में दस काम लोगों को आधार मानकर अंजना की प्राप्ति के लिए पवनंजय की दशा का वर्णन है। चिन्ता, आकृति देखने की इच्छा, मन्द लम्बी और गरम साँसें निकलना, ज्वर, बेचैनी, अरति (विषयद्वेष), विप्रलाप (बकवाद), उन्मत्तता, भूखी तथा दुःखसंभार (दुःख का भार) इस प्रकार काम की दस अवस्थायें^{२५५} यहाँ गिनाई गई हैं। बाण ने दस कामदशाओं को आधार मानकर कामशास्त्र की विविध स्थितियों का वर्णन किया है।^{२५६} एक अन्य स्थान पर चक्षुःप्रीति, मनःसंग, संकल्प, रात्रिजागरण, कृशता, अरति (विषयद्वेष), लज्जा, त्याग, उन्माद, भूखी तथा मरण ये दस कामदशाएँ निरूपित की गई हैं।^{२५७} जहाँ तक स्त्री पुरुष के प्रेम का सम्बन्ध है रविषेण ने प्रेम की उत्पत्ति पाँच कारणों से कही है। पहले स्त्री पुरुष का ससर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति से रति उत्पन्न होती है, रति से विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वास से प्रणय उत्पन्न होता है।^{२५८}

संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी आदि भाषाएँ—२४वें पर्व में राजकुमारी केकया के संगीत ज्ञान के प्रसंग में प्रातिपदिक, उपसर्ग और निपातों में संस्कार को प्राप्त प्राकृत, संस्कृत और शौरसेनी भाषाओं की स्थिति का संकेत किया गया है।^{२५९}

संगीत विद्या—पद्यचरित में संगीत विद्या सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्द आये हैं। इसका विशेष विवरण कला वाले अध्याय में दिया गया है।

नृत्य विद्या—पद्यचरित से नृत्यविद्या की स्थिति पर जो प्रकाश पड़ता है उसका विशेष निरूपण कला वाले अध्याय में किया गया है।

काव्यशास्त्र—पद्यचरित में शृंगार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, बीभत्स और शान्त ये ९ रस कहे गये हैं।^{२६०} लक्षण, अलंकार,

२५४. पद्य० ३७।४१ ।

२५५. पद्य० १५।९६-१०० ।

२५६. वासुदेव शरण अग्रवाल : कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २३५ ।

२५७. मल्लिनाथ : मेघदूतटीका, २।३१ (कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २३५) ।

२५८. पद्य० २६।८ ।

२५९. पद्य० २४।१२ ।

२६०. वही, २४।२२, २३ ।

वाच्य, प्रमाण, छन्द तथा आगम इत्यादि भी अवसर के अनुसार यहाँ वर्णन हुआ है ।^{२६१}

अर्थशास्त्र^{२६२}—पञ्चचरित के ७३वें पर्व में अर्थशास्त्र का नाम निर्देश हुआ है ।

नीतिशास्त्र—सीताहरण के बाद शुक आदि श्रेष्ठ मन्त्रियों को बुलाकर मन्दोदरी कहती है कि आप लोग राजा (रावण) से समस्त हितकारी बात क्यों नहीं कहते हैं । रावण समस्त अर्थशास्त्र और सम्पूर्ण नीतिशास्त्र को जानते हैं तो भी मोह के द्वारा क्यों पीड़ित हो रहे हैं ।^{२६३}

नाट्यशास्त्र—गीत, नृत्य और वादित्र इन तीनों का एक साथ होना नाट्य कहलाता है ।^{२६४}

मान विद्या—मेय, देश, तुला और काल के भेद से मान चार^{२६५} प्रकार का होता है ।

मेय—प्रस्थ आदि के भेद से जिसके अनेक भेद हैं, उसे मेय कहते हैं ।^{२६६}

देश—वितस्ति (हाथ से नापना) आदि देशमान कहलाता है ।^{२६७}

तुलामान—पल आदि (छटाक सेर आदि से नापना) तुलामान कहलाता है ।^{२६८}

काल मान—समय (बड़ी घण्टा आदि से नापना) कालमान कहलाता है ।^{२६९}

मान की उत्पत्ति—उपर्युक्त मान आरोह, परीणाह, तिर्यग्गौरव और क्रिया से उत्पन्न होता है ।^{२७०}

अश्वविद्या—२८वें पर्व में एक मायामयी अश्व के वर्णन के प्रसंग में कहा गया है कि वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मन को अपनी ओर खींचने वाला था, उसके शरीर में अच्छे-अच्छे लक्षण देदीप्यमान हो रहे थे, दक्षिण अंग में महान् आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कुशा था, वह अत्यन्त बलवान था, टापों के

२६१. पद्य० १२३।१८६ ।

२६२. पद्य० ७३।२८ ।

२६३. वही, ७३।२८ ।

२६४. वही, २४।२२ ।

२६५. 'मेयदेशतुलाकालमेदान्मानं चतुर्विधं' ॥ पद्य० ४२।६० ।

२६६. 'तत्र प्रस्थादिभिर्भिन्नं मेयमानं प्रकीर्तितम् ॥' पद्य० २४।६० ।

२६७. 'देशमानं वितस्त्यादि ॥' पद्य० २४।६१ ।

२६८. 'तुलामानं पलादिकम् ॥' पद्य० २४।६१ ।

२६९. 'समयादि तु यन्मानं तत्कालस्य प्रकीर्तितम् ॥' पद्य० २४।६१ ।

२७०. पद्य० २४।६२ ।

अग्रभाग से वह पृथ्वी को ताड़ित कर रहा था, उससे ऐसा जान पड़ता था, मानों मृदंग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उस पर चढ़ने में असमर्थ थे तथा उसका नथना कमिष्ट हो रहा था ।

उपर्युक्त वर्णन से श्रेष्ठ बड़े के लक्षणों पर बहुत प्रकाश पड़ता है । इससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि उस समय के अव्यवस्थित कतिपय लक्षणों को देखकर अश्व की श्रेष्ठता या अश्रेष्ठता का ज्ञान करते थे । इसका अर्थ यह है कि उस समय अश्वविद्या विकसित अवस्था में थी ।

लोकजता—इसी लोक में जीव की नाना पर्यायों (अवस्थाओं) की उत्पत्ति हुई है, उसी में यह (जीव) स्थित है और उसी में इसका नाश होता है यह सब जानना लोकजता है । यह लोकजता प्राप्त होना कठिन है ।^{२७५} लोक की अवस्थिति के विषय में कहा गया है कि पूर्वापर, पर्वत, पृथ्वी, द्वीप, देश आदि भेदों में यह लोक स्वभाव से ही अवस्थित है ।^{२७६}

लोक के प्रकार—आश्रित और आश्रय के भेद से लोक दो प्रकार का है । इनमें से जीव और अजीव तो आश्रित हैं तथा पृथ्वी आदि उनके आश्रय हैं ।^{२७७}

मन्त्र शक्ति से प्राप्त विद्यायें—लक्ष्मी और बल की वृद्धि के लिए मन्त्र शक्ति से भी अनेक विद्याओं को सिद्ध किया जाता था । इनमें से अनेक युद्ध कार्य में सहायक होती थीं । मन्त्र जपने के बाद या दृढ़ निश्चय के कारण उससे पहले ही ये विद्यायें शरीरधारिणी के रूप में हाथ जोड़ कर उपस्थित हो जाया करती थीं ।^{२७८} पश्चात् समय पड़ने पर स्वामी के स्मरण मात्र से अपनी शक्ति के अनुसार यथेष्ट कार्य करती थीं । पञ्चचरित में इस प्रकार की निम्नलिखित विद्याओं के नाम आये हैं—

सर्वकामान्नदा ७।२६४

कामदायिनी (कामदामिनी) ७।३२५

जगत्कम्पा ७।३२५

मानुमालिनी ७।३२५

लविमा ७।३२६

तमःसंचारिणी ७।३२५

दुर्निवारा ७।३२५

प्रजप्ति ७।३२५

अणिमा ७।३२६

कीम्या ७।३२६

२७१. तत्र नानाभवोत्पत्तिः स्थितिर्नश्वरता तथा ।

आयते यदिदं प्रोक्तं लोकजत्वं सुदुर्गमम् ॥ पद्य० २४।७१ ।

२७२. पद्य० २४।७२ ।

२७३. पद्य० २४।७० ।

२७४. वही, ७।३१५ ।

मनःस्तम्भनकारिणी ७।३२६
 मुरध्वंसी ७।३२६
 वधकारिणी ७।३२६
 तपोरूपा ७।३२७
 विपुलोदरी ७।३२७
 रजोरूपा ७।३२७
 वज्रोदरी ७।३२८
 अदर्शनी ७।३२८
 अमरा ७।३२८
 तीक्ष्णस्तम्भिनी ७।३२८
 अवलोकिनी ७।३२९
 घोरा ७।३२९
 भुजंगिनी ७।३२९
 मुवना ७।३२९
 दाहणा ७।३२९
 भास्करी ७।३३०
 ऐशानी ७।३३०
 जया ७।३३०
 मोक्षनी ७।३३०
 कुटिलाकृति ७।३३०
 क्षान्ति ७।३३१
 वधकारिणी ७।३३१
 बलोत्सादी ७।३३१
 भीति ७।३३१
 सर्वाङ्गा ७।३३३
 जूष्मिणी ७।३३३
 निद्राणी ७।३३३
 शत्रुघ्मिनी ७।३३४
 स्वगामिनी ७।३३४
 प्रतिबोधिनी ६०।६२
 उल्का विद्या ५०।३४
 सिंहवाहिनी ६८।१३५
 बहुरूपिणी ६०।१३५

संवाहिनी ७।३२६
 कौमारी ७।३२६
 सुविधाना ७।३२७
 दहनी ७।३२७
 क्षुभप्रदा ७।३२७
 दितरात्रिविधाविनी ७।३२७
 समाकृष्टि ७।३२८
 अजरा ७।३२८
 अनलस्तम्भिनी ७।३२८
 गिरिदारिणी ७।३२८
 अरिध्वंसी ७।३२९
 घोरा ७।३२९
 दाहणी ७।३२९
 अवधया ७।३२९
 मदनान्शिनी ७।३२९
 भयसंभूति ७।३३०
 विजया ७।३३०
 बन्धनी ७।३३०
 वाराही ७।३३०
 क्लिप्तोद्भवकरी ७।३३१
 कौबेरी ७।३३१
 योगेश्वरी ७।३३१
 चण्डा ७।३३१
 प्रवर्धिणी ७।३३१
 रत्तिसंवृद्धि ७।३३३
 व्योमगामिनी ७।३३३
 सिद्धार्था ७।३३४
 निर्व्याघाता ७।३३४
 स्तम्भिनी ५२।६९
 अमोघविजया ९।२१०
 स्तम्भिनी विद्या ५२।६९
 गरुडवाहिनी ६०।१३५

इस प्रकार की विद्याओं को धारण करने वाले विद्याधर कहे गये हैं । इनकी उत्पत्ति नमि विनमि के वंश में कही गई है ।^{२७५}

अन्य विद्याएँ—उपर्युक्त विद्याओं के अतिरिक्त वज्र (हीरा), मोती (मौक्तिक), वैद्युर्य (नीलम), सुवर्ण, रजतायुध तथा वस्त्र शंखादि रत्नों को उनके लक्षण आदि से अच्छी तरह जानना,^{२७६} वस्त्र पर घागे से कढ़ाई का काम करना तथा वस्त्र को अनेक रंगों में रंगना,^{२७७} लोहा, दन्त, लाख, आर, पत्थर तथा सूत आदि से बनने वाले नाना उपकरणों को बनाना,^{२७८} मूर्तिकर्म (बेलबूटा सौचना), निधिज्ञान (गढ़े हुए धन का ज्ञान), वणिग्विधि (व्यापार कला), जीवविज्ञान,^{२७९} मनुष्य घोड़ा आदि की निदान सहित चिकित्सा करना,^{२८०} विमोहन^{२८१} अर्थात् मूर्च्छा तथा नाना प्रकार के कल्पित मत^{२८२} (सांख्य आदि) विद्याओं का उल्लेख पञ्चचरित में किया गया है ।

वर्ण व्यवस्था

पञ्चचरित के अनुसार कृतयुग के प्रारम्भ में कल्पवृक्षों का अभाव होने पर प्रजा क्षुधा से पीड़ित हो भगवान् ऋषभदेव के पिता नाभिराय के पास गई ।^{२८३} प्रजा के दुःख को सुनकर नाभिराय ने कहा कि महान् अतिशयों से सम्पन्न ऋषभदेव के पास चलकर हमलोग उनसे आजीविका का उपाय पूछें,^{२८४} क्योंकि इस संसार में उनके समान मनुष्य नहीं है । ऐसा सुनकर प्रजा नाभिराय को साथ लेकर ऋषभदेव के पास गई । प्रजा की प्रार्थना पर ऋषभदेव ने सैकड़ों प्रकार

२७५. पद्य० ६।२१० ।

२७६. पद्य० २४।५७ ।

२७७. वही, २४।५८ ।

ललितविस्तर में 'वस्त्र रागः' अर्थात् कपड़े रंगने की ८६ कलाओं के अन्तर्गत स्थान दिया गया है—हजारी प्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १५६

२७८. पद्य० २४।५९ ।

२७९. वही, २४।६३ ।

२८०. वही, २४।६४ ।

२८१. पञ्चचरित में मूर्च्छा के तीन भेद—मायाकृत, पीडा अथवा इन्द्रजालकृत और मन्त्र तथा औषधि आदि द्वारा कृत गिनाये हैं । पद्य० २५।६५ ।

२८२. पद्य० २४।६६ ।

२८३. पद्य० ३।२३६ ।

२८४. वही, ५।२४५-२४६ ।

की शिल्प कलाओं का उपदेश दिया। उन्होंने नगरों का विभाग, ग्राम आदि का बसाना और मकान आदि के निर्माण की कला प्रजा को सिखाई।^{२८५}

क्षत्रियादि त्रिवर्ण की प्रसिद्धि—भगवान् ऋषभदेव ने जिन पुरुषों को विपत्तिग्रस्त मनुष्य की रक्षा करने में नियुक्त किया था वे अपने गुणों के कारण लोक में क्षत्रिय इस नाम से प्रसिद्ध हुए।^{२८६} वाणिज्य, खेती, गोरक्षा आदि के व्यापार में जो लगाये गये थे वे लोक में वैश्य कहलाये।^{२८७} जो नीच कार्य करते थे तथा शास्त्र से दूर भागते थे, उन्हें शूद्र संज्ञा प्राप्त हुई। शूद्रों के प्रेय्य आदि अनेक भेद थे।^{२८८}

ब्राह्मण वर्ण और उसका इतिहास—एक बार अयोध्या नगरी के समीप भगवान् ऋषभदेव पधारे। उन्हें आया जानकर भरत, मुनियों के उद्देश्य से बन-बाया हुआ नाना प्रकार का उत्तमोत्तम भोजन नौकरों से लिवाकर भगवान् के पास पहुँचे। आहार के लिए प्रार्थना करने पर ऋषभदेव ने कहा कि जो भिक्षा मुनियों के उद्देश्य से तैयार की जाती है वह उनके (ऋषभदेव के) योग्य नहीं है, मुनिजन उद्दिष्ट (विशेष उद्देश्य पूर्वक तैयार किया हुआ) भोजन ग्रहण नहीं करते। ऋषभदेव के ऐसा कहने पर भरत ने इस भोजन सामग्री से गृहस्थ का व्रत धारण करने वाले पुरुषों को भोजन कराना चाहा। सम्राट् ने आंगन में बोए हुए जौ, धान, मूँग, उड़द आदि के अंकुरों से सम्यग्दृष्टि पुरुषों की छांट कर ली तथा उन (सम्यग्दृष्टि) पुरुषों को, जिनमें रत्न पिरोया गया था ऐसे सुवर्णमय सुन्दर सूत्र के चिन्ह से चिन्हित कर भवन के भीतर प्रविष्ट करा लिया और उन्हें इच्छानुसार दान दिया। भरत के द्वारा सत्कार पाकर वे ब्राह्मण भव्ययुक्त हो समस्त पृथ्वी पर फैल गए। एक बार भगवान् ऋषभदेव ने अपने समवसरण में कहा कि भरत ने जिन ब्राह्मणों की रचना की है वे वर्द्धमान तीर्थंकर के बाद पाखण्डी एवं उद्धत हो जावेंगे। ऐसा सुनकर भरत क्रुपित होकर उनको मारने के लिए उद्यत हुए। वे सब ब्राह्मण भयभीत होकर ऋषभ-

२८५. शिल्पानां शतभुद्धिर्दं नगराणां च कल्पनम्।

ग्रामादिसन्निवेशाश्च तथा वेश्मादिकारणम् ॥ पद्म०, ३।२५५

२८६. क्षत्रयाणे नियुक्ता ये तेन त्रायेन मानवाः।

क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धिं गुणतो यताः ॥ पद्म० ३।२५६

२८७. वाणिज्यकुषि गोरक्षाप्रभृतौ ये निवेशिताः।

व्यापारे वैश्यशब्देन ते लोके परिकीर्तिताः ॥ ३।२५७

२८८. ये तु श्रुताद् दृतिं प्राप्ता नीचकर्मविधायिनः।

शूद्रसंज्ञामवाप्सते भवैः प्रेय्यादिमिस्तथा ॥ पद्म० ३।२५८

देव की शरण में गये ।^{२८९} भगवान् ऋषभदेव ने हे पुत्र ! इनका हनन मत करो (मैं हनन कार्थीः) यह शब्द कहकर इनकी रक्षा की थी इसलिए आगे चलकर ये माहण (ब्राह्मण) इस प्रसिद्धि को प्राप्त हो गये ।^{२९०}

वर्ण व्यवस्था जन्मना नहीं—ब्राह्मणादि की उपर्युक्त व्युत्पत्ति के अनुसार वर्ण व्यवस्था का आधार जन्मना नहीं, प्रत्युत् कर्मणा है, ऐसा सिद्ध होता है । रविवर्ण के अनुसार कोई भी जाति निम्ननीय नहीं है, गुण ही कल्याण करने वाले हैं । यही कारण है कि व्रत धारण करने वाले चाण्डाल को भी गणधरादि देव ब्राह्मण कहते हैं ।^{२९१} विद्या और विनय ने सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल के विषय में पण्डित जन समदर्शी होते हैं ।^{२९२} ब्राह्मणादि चार वर्ण और चाण्डाल आदि विशेषणों का जितना वर्णन है वह सब आचार भेद से ही संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है ।^{२९३}

जातिवाद का खण्डन—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में जाति के जो चार भेद कहे हैं वे अयुक्तिपूर्ण और अहेतुक हैं । यदि कहा जाय कि वेव वाक्य और अग्नि के संस्कार से हमारा जन्म होता है, यह भी ठीक नहीं है ।^{२९४}

२८९. पद्य० ४।११-१२१

२९०. वही, ४।१२२ । माहण (ब्राह्मण) की उत्पत्तिके सम्बन्ध में जो कथा यहाँ दी गई है उससे पञ्चचरित के प्राकृत स्रोत का अनुमान होता है, क्योंकि माहण शब्द प्राकृत का है और उसी की एक व्युत्पत्ति प्राकृत उक्ति माहण (मत मारो) से सार्थक बैठ सकती है जैसा कि प्राकृत पञ्चमचरिय में पाया जाता है । संस्कृत में माहण शब्द को कहीं स्वीकार नहीं किया गया है और न रविवर्ण के सम्प्रदाय व परम्परा में इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है । इसके विपरीत प्राकृत जैन आगम ग्रन्थों में इस शब्द का बहुत अधिक प्रयोग पाया जाता है । पञ्चपुराण (सम्पादकीय पृ० ६) भारतीय ज्ञानपीठ ।

२९१. पद्य० ११।२०३ ।

२९२. वही, ११।२०४ ।

२९३. वही, ११।२०५ ।

२९४. पद्य० ११।१९४ ।

भातुरग्रेष्ठिजननं द्वितीयं मौजिबन्धने ।

तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥ मनु० २।१६९

तथ यद् ब्राह्मण जन्मास्य माजीबन्धनचिह्नितम् ।

तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाम्भार्य उच्यते ॥ मनु० २।१७०

इसके लिए युक्ति यह है कि जहाँ-जहाँ जाति भेद देखा जाता है वहाँ-वहाँ शरीर की विशेषता अवश्य पायी जाती है जिस प्रकार कि मनुष्य, हाथी, गधा, गाय, घोड़ा आदि में पाई जाती है।^{२९५} इसके अतिरिक्त अन्य जातीय पुरुष के द्वारा अन्य जातीय स्त्री में गर्भोत्पत्ति देखी जाती है इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणादि में जाति वैचित्र्य नहीं है।^{२९६} इसके उत्तर में यदि कहा जाय कि गधे के द्वारा घोड़ी में गर्भोत्पत्ति देखी जाती है, इसलिए उक्त युक्ति ठीक नहीं है ? तो ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि एक खुर आदि की अपेक्षा उनमें समानता पाई जाती है अथवा दोनों में भिन्न जातीयता ही है यदि ऐसा पक्ष है तो दोनों की जो सम्मान होगी वह विसदृश ही होगी जैसे कि गधा और घोड़ी के समानता से जो सम्मान होगी वह न घोड़ा ही कहलावेगी और न गधा ही किन्तु खच्चर नाम की धारक होगी। किन्तु इस प्रकार की सम्मान की विसदृशता ब्राह्मणादि में नहीं देखी जाती। इससे सिद्ध होता है कि वर्ण व्यवस्था गुणों के आधारे है, जाति के आधारे नहीं है।^{२९७}

जो यह कहा गया है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति, भुजा से क्षत्रिय की उत्पत्ति, जंघा से वैश्य की उत्पत्ति और पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई,^{२९८} वह कथन ठीक नहीं है। यथार्थ में समस्त गुणों के वृद्धिगत होने के कारण ऋषभदेव ब्रह्मा कहलाते हैं, और जो सत्पुरुष उनके भक्त हैं, वे ब्राह्मण कहलाते हैं। शत अर्थात् विनाश से शान अर्थात् रक्षा करने के कारण क्षत्रिय कहलाते हैं, शिल्प में प्रवेश करने से वैश्य कहे जाते हैं और भुज अर्थात् प्रशस्त आगम से जो दूर रहते हैं वे शूद्र कहलाते हैं।^{२९९}

ब्राह्मण कौन ?—पञ्चचरित के अध्ययन से विदित होता है कि उस काल तक ब्राह्मण लोग अपने वास्तविक ब्राह्मणत्व को भूल चुके थे। यही कारण है कि ब्राह्मणत्व के प्रति आदर भाव दिखाते हुए भी, जो कर्म से ब्राह्मण नहीं हैं उनकी रविषेण ने पर्याप्त मूर्खता की है। उनके अनुसार ब्राह्मण वे हैं जो

श्रुति की आज्ञा से द्विज के प्रथम माता से जन्म, दूसरे माँजाबन्धन, तीसरे यज्ञ की दीक्षा में ये तीन जन्म होते हैं। इन पूर्वोक्त तीन जन्मों में वेद-ग्रहणार्थ उपनयन संस्काररूप जो जन्म होता है उस जन्म में उस बालक को माता सावित्री और पिता आचार्य कहलाते हैं।

‘ब्रूयेण हि समस्तावध्यावद्वेदेन जायते ॥’ मनुस्मृति २।१७२

२९५. पन्ना ११।१९५।

२९६. पन्ना ११।१९६।

२९७. वही, ११।१९७-१९८।

२९८. वही, ११।१९९। पुरुषसूक्त १२

२९९. वही, ११।२०१, २०२।

अहिंसा व्रत धारण करते हैं,^{३००} महाव्रत रूपी लम्बी चोटी धारण करते हैं, ध्यान रूपी अग्नि में होम करते हैं तथा शास्त्र हैं और मुक्ति के सिद्ध करने में तत्पर रहते हैं।^{३०१} इसके विपरीत जो सब प्रकार के आरम्भ में प्रवृत्त हैं, निरन्तर कुशील में लीन रहते हैं तथा क्रियाहीन हैं^{३०२} वे केवल ब्राह्मण नाम-धारी ही हैं, वास्तविक ब्राह्मणत्व उनमें कुछ भी नहीं है।^{३०२*} ऋषि, संयत, घोर, शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय भुनि ही वास्तविक ब्राह्मण हैं।^{३०३}

भृत्यवृत्ति और उसकी निन्दा—पञ्चचरित के अध्ययन से ऐसा विदित होता है कि उस समय तक भृत्यवृत्ति बहुत ही निन्दित, गहिँत और दुःखकारक मानी जाने लगी थी। यही कारण है कि नीलांजना के नृत्य को देखने के बाद ऋषभदेव के वैराग्य में इस भावना को मूल बतलाया गया है। वे कहते हैं कि इस संसार में कोई तो पराधीन होकर दासवृत्ति को प्राप्त होता है और कोई गर्व से स्खलित वचन होता हुआ उसे आकाश प्रदान करता है।^{३०४} यहाँ की भी उस समय ठीक स्थिति नहीं थी इसी कारण उन्हें नीच कार्य करने वाला बतलाकर उनके प्रेक्ष्य आदि अनेक भेद किए गये।^{३०५} हिंसक जीवों से भरे हुए वन में छोड़कर मीठा को दयनीय अवस्था में देख कृतान्तवक्र सेनापति भृत्यवृत्ति की बहुत अधिक निन्दा करता है। उसके अनुसार जिसमें इच्छा के विरुद्ध चाहे जो करना पड़ता है, आत्मा परतंत्र हो जाती है और भद्र मनुष्य ही जिसकी सेवा करते हैं ऐसी लोकनिन्दा भृत्यवृत्ति (दासवृत्ति) को धिक्कार है।^{३०६} जो यन्त्र की जेठों के समान है तथा जिसकी आत्मा निरन्तर दुःख उठाती है ऐसे सेवक की अपेक्षा कुक्कुर का जीवन बहुत अच्छा है।^{३०७} सेवक कचड़ाघर के समान है जिस प्रकार लोग कचड़ाघर में कचड़ा डालकर पीछे उससे अपना चित हटा लेते हैं उसी प्रकार लोग सेवक से काम लेकर पीछे उससे चित हटा लेते हैं। जिस प्रकार कचड़ाघर निर्माल्य अर्थात् उपभुक्त वस्तुओं को धारण करता

३००. पद्य० १०९।८०।

३०१. पद्य० १०९।८१।

३०२. वही, १०९।८२।

३०२.* वही, १०९।८३।

३०३. वही, १०९।८४।

३०४. वही, ३।२६५।

३०५. वही, ३।२५८।

३०६. विग् भृत्यतां जगन्निन्दां यत् किञ्चन विषायिनीम् ।

परायसी कृतात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम् ॥ पद्य० ९७।१४०।

३०७. यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य दुःखेकनिहितात्मनः ।

भृत्यस्य जीविताद् दूरं वरं कुक्कुरजीवितम् ॥ पद्य० ९७।१४१।

है उसी प्रकार सेवक भी स्वामी को उपभुक्त वस्तुओं को धारण करता है ।^{३०८} जो अपने गौरव को पीछे कर देता है तथा पानी प्राप्त करने के लिए भी जिसे झुकना पड़ता है इस प्रकार तुला यन्त्र की उपमा धारण करने वाले भृत्य का जीवित रहना धिक्कारपूर्ण है ।^{३०९} जो उन्नति, लज्जा, दीप्ति और स्वयं निज की इच्छा से रहित है तथा जिसका स्वरूप मिट्टी के पुतले के समान क्रियाहीन है ऐसे सेवक का जीवन किसीको प्राप्त न हो ।^{३१०} जो स्वयं शक्ति से रहित है, अपना मांस भी बेचता है, सदा मर से शून्य है और परतन्त्र है ऐसे भृत्य के जीवन को धिक्कार है ।^{३११}

विभिन्न जातियाँ या वर्ग—पञ्चचरित में विभिन्न जातियाँ या वर्गों के नाम आए हैं । ये जातियाँ या वर्ग निम्नलिखित हैं—

सेवक^{३१२}—सेवा करने वाले को सेवक कहते थे ।

धानुष्क^{३१३}—धनुष धारण करने वाला धानुष्क कहलाता था ।

क्षत्रिय^{३१४}—जो पुरुष आपत्ति से अस्त मनुष्य की रक्षा करते थे ।

धार्मिक—धर्म सेवन करने वाला^{३१५} व्यक्ति धार्मिक कहलाता था ।

ब्राह्मण—ब्रह्मचर्य धारण करने वाला^{३१६} ब्राह्मण कहलाता था ।

श्रमण—जो राजा राज्य छोड़कर तप के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते थे वे श्रमण कहलाते थे । क्योंकि श्रम करे सो श्रमण और तपश्चरण ही श्रम कहा जाता है ।^{३१७}

३०८. संकारकूटकस्यैव पश्चान्निर्वृत चेतसः ।

निर्मल्यवाहिनो धिग्विभृत्यनाम्नोऽनुधारणम् ॥ पद्य० ९७।१४४ ।

३०९. पश्चात्कृतगुरुत्वस्य तोयार्थमपि नाग्निः ।

तुलायन्त्रसमानस्य धिग्भृत्यस्याऽनुधारणम् ॥ पद्य० ९७।१४५ ।

३१०. उन्नत्या त्रपया दीप्त्या वजितस्य निजेच्छया ।

मा स्म भूजन्म भृत्यस्य पुस्तकर्म समात्मनः ॥ पद्य० ९७।१४६ ।

३११. निःसत्त्वस्य महाभासविक्रयं कुर्वतः सदा ।

निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य विग्भृत्यस्याऽनुधारणम् ॥ पद्य० ९७।१४८ ।

३१२. सेवकः सेवया युक्तः ॥ पद्य० ६।२०८ ।

३१३. धानुष्को धनुषो योनाद् ॥ पद्य० ६।२०८ ।

३१४. पद्य० ३।२५६ ।

३१५. धार्मिको धर्मसेवनात् । पद्य० ६।२०९ ।

३१६. ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यतः । पद्य० ६।२०९ ।

३१७. परित्यज्य नृपो राज्यं श्रमणो जायते महान् ।

तपसा प्राप्तसम्बन्धं तपो हि श्रम उच्यते ॥ पद्य० ६।२११ ।

विद्याधर—तमि और विनमि के वंश में उत्पन्न हुए पुरुष विद्याधारण करने के कारण विद्याधर कहे जाते थे ।^{३१८} इन्हें खेचर भी कहते थे ।^{३१९}

गोपाल^{३२०}—जो गायों की रक्षा, देखरेख बगैरह करते थे ।

पालक^{३२१}—जो जिसका पालन करते थे उसके पालक कहे जाते थे । जैसे अश्वपालक (अश्वपाल) गोपालक (गोपाल) उष्ट्रपालक (उष्ट्रपाल) । इसीलिए रविवेण ने इनका सामान्य नाम पालक दिया है ।

वेद्या^{३२२}—जो रूप यौवन द्वारा जीविकोपार्जन करती थी ।

लासक^{३२३}—जो नृत्य द्वारा जीविकोपार्जन करते थे ।

शस्त्रि^{३२४}—जो शस्त्र धारण करते थे ।

अर्थि^{३२५}—जो दूसरे से याचना करते थे ।

विद्यार्थी^{३२६}—जो विद्योपार्जन करते थे ।

धूर्त^{३२७}—जो छल कपट और धूर्तता द्वारा अर्थ का अर्जन करते थे ।

गीतशास्त्र कौशलकोविद^{३२८}—जो संगीतशास्त्र के विद्वान् थे ।

विज्ञान ग्रहणोद्युक्त^{३२९}—जो कि ज्ञान के ग्रहण करने में उद्यत रहते थे ।

शरणप्राप्त^{३३०}—जो शरण में आकर रहते थे ।

सज्जन^{३३१}—जो साधुओं का संग करते थे ।

वार्तिक^{३३२}—समाचार प्रेषक ।

विदग्ध^{३३३}—चतुर पुरुष ।

विट^{३३४}—वेद्याओं के साथ रहने वाले ।

मार्गवर्ति^{३३५}—सही मार्ग पर चलने वाले ।

चारण^{३३६}—जो राजसभा में या जनता के सामने गीत गाया करते थे ।

३१८. नसेक्ष विनमेस्तथा ।

कुले विद्याधरा जाता विद्याधरणयोगतः ॥ पद्य० ६।२१० ।

३१९. पद्य० ८०।५० ।

३२०. पद्य० २।१० ।

३२१. वही, २।२४ ।

३२२. वही, २।३९ ।

३२३. वही, २।३९ ।

३२४. वही, २।४० ।

३२५. वही, २।४० ।

३२६. वही, २।४० ।

३२७. वही, २।४० ।

३२८. वही, २।४१ ।

३२९. वही, २।४१ ।

३३०. वही, २।४२ ।

३३१. वही, २।४२ ।

३३२. वही, २।४३ ।

३३३. वही, २।४३ ।

३३४. वही, २।४३ ।

३३५. वही, २।४३ ।

३३६. वही, २।४४ ।

कामुक^{३३७}—कामी पुरुष ।

सुखो^{३३८}—जिनके समस्त सांसारिक कार्य सिद्ध हो जाया करते थे ।

मातंग^{३३९}—चाण्डाल को कहते थे ! पञ्चरित में चाण्डाल^{३४०} नाम भी आया है ।

बन्दि^{३४१}—जिनको किसी अपराध के कारण कारागार में बन्द रखा जाता था ।

रजक^{३४२}—जो अनेक प्रकार का शब्द करता हुआ शिलातल पर वस्त्र पछाड़ता था अर्थात् कपड़े साफ करने का कार्य करता था ।

ऋत्विक्^{३४३}—यज्ञ के लिए आमन्त्रित तथा उत्तकर्म करने में निष्णात ब्राह्मण ऋत्विज कहलाता था । ये चार होते थे और एक-एक वेद के साथ सम्बद्ध होकर उसकी सहायता से अपना पञ्जीय कर्म निष्पादन करते थे ।

तापस—जो ब्राह्मण घरदार छोड़कर (तपस्या के हेतु) वन में रहते थे और कन्दमूल आदि भक्षण करते थे । इनके साथ इनकी पत्नी भी रहती थी ।^{३४४}

पुरोहित^{३४५}—जो राजा के धार्मिक कार्यों में योग देता था ।

पुलिन्द^{३४६}—एक प्रकार की असभ्य जंगली जाति को पुलिन्द कहते थे ।

घोष^{३४७}—अहीरों अथवा गोपालकों की बस्ती को घोष कहते हैं । घोष शब्द संस्कृत साहित्य में कई स्थान पर आया है ! गंगायां घोषः का उदाहरण तो सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

लुब्धक^{३४८}—कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में शकुनि लुब्धक शब्द आया है, जिसका अर्थ चिड़ियों को मारने वाला शिकारी है । शकुनि लुब्धक का ही संक्षिप्त रूप लुब्धक हो गया । पञ्चरित में लुब्धक शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है । ये लुब्धक पक्षियों को पकड़कर बेचा भी करते थे ।

श्रेष्ठि—महाजनों के जोधरी या अगुआ पुरुष को प्राचीन काल से ही श्रेष्ठि

३३७. पद्य० २।४४ ।

३३९. वही, २।४५ ।

३४१. वही, ३।१४९ ।

३४३. वही, ११।१०७ ।

३४५. वही, ४१।११५ ।

३४७. वही, ३३।५२ ।

३३८. पद्य० २।४४ ।

३४०. वही, १४।२७ ।

३४२. वही, ११।१०१ ।

३४४. वही, ११।११७, ११८ ।

३४६. वही, ४१।३ ।

३४८. वही, ३९।१३८ ।

कहते थे । इसका नगर में वही स्थान होता था जो मुगल काल में नगर सेठ का । राजदरबार में उसका बड़ा मान था । वह व्यापारियों का प्रतिनिधि होता था । जातकों के कथानुसार उसका पद पुष्टतनी होता था । वह अपने सरकारी पद से नित्य राजदरबार में उपस्थित होता था । भिक्षु (साधु) बनते समय अपना धन दूसरों को बाँटते समय उसे राधा की आज्ञा लेनी पड़ती थी । महाजन बहुधा रईस होते थे और उनके अधिकार में दास, घर और गोपालक होते थे ।^{३४९}

गोप^{३५०}—गायों के रक्षक को गोप कहा जाता था ।

सूद^{३५१}—रसोइया ।

कैवर्त^{३५२}—कहार ।

पीठमर्द^{३५३}—पञ्चरित के चतुर्दश पर्व में दिन में भोजन करने का फल राजा तथा महामन्त्री होने के साथ-साथ पीठमर्द होना भी लिखा है ।^{३५४} आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नायक के बहुदूरव्यापी प्रसङ्ग प्राप्त पञ्चरित में नायक के सामान्य गुणों से कुछ न्यून गुण वाले नायक के सहायक को पीठमर्द कहा है । साहित्य दर्पण ३।३९

लेखवाह^{३५५}—जो पत्र ले जाने का कार्य करते थे । इस कार्य को कमी-कमी विद्याधर तक करते थे ।^{३५६}

तक्ष (तक्षक)—बढ़ई का काम करने वाले को तक्ष कहते थे । यह शिल्पियों का अग्रणी था तथा युद्ध में सवारी के लिए रथ, माल ढोने के लिए ढकड़े बनाता था जिसकी छत छदिस कहलाती थी । वह परशु और बसूले से काम करता था और सुन्दर नक्काशी का भी काम करता था ।^{३५७}

नट^{३५८}—जो तरह-तरह का वेष धारण^{३५९} कर विचित्र प्रकार की चेष्टायें करता था ।^{३६०} पञ्चरित में कहा गया है कि संसारी प्राणियों की अनेक जन्म धारण करने के कारण नट के समान विचित्र चेष्टायें होती हैं ।^{३६१}

३४९. डॉ० मोतीचन्द्र : सार्ववाह पृ० ६५, ६६ ।

३५०. पद्य० ३४।६० ।

३५१. पद्य० २२।१३४ ।

३५२. वही, १४।२७ ।

३५३. वही, १४।२८७ ।

३५४. वही, १२।८२ ।

३५५. वही, १२।८२ ।

३५६. वही, १२।८१ ।

३५७. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० १४० ।

३५८. पद्य० ९१।३९ ।

३५९. पद्य० १२।३१० ।

३६०. वही, ८५।९२ ।

३६१. वही, ८५।९२ ।

उपाध्याय—यह बालकों को शिक्षा देता था ।^{३१२}

कुम्भकार^{३१३}—वह मिट्टी के बर्तन (घड़े आदि) बनाने का काम करता था ।

घात्री^{३१४}—राजघराने में दाय या धाय का कार्य करने वाली स्त्री को घात्री कहते थे । इसका भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता था । राजकन्या के स्वयंवर के समय वह बाहिने हाथ या स्वयं की छोटी छार उन्मः के हाथ चलती हुई क्रम-क्रम से उपस्थित कुमारों या राजाओं का परिचय देती थी ।^{३१५}

कंचुकी^{३१६}—अन्तःपुर में रहने वाले वृद्ध, गुणवान् ब्राह्मण को जो सब कार्यों के करने में कुशल होता है, उसे कंचुकी कहते हैं ।^{३१७} पद्मचरित के अष्टम पर्व में जलक्रीड़ा के समय राजकन्याओं की रक्षा के लिए साथ में कंचुकी के जाने का उल्लेख है ।^{३१८} अष्टाईसवें पर्व में सीता स्वयंवर के अवसर पर कंचुकी आगत राजकुमारों या राजाओं का परिचय देता है ।^{३१९} उन्नीसवें पर्व में राजा दशरथ सुप्रभा के लिए कंचुकी के हाथ से जिनेन्द्र भगवान् का गंधोदक भेजते हैं ।^{३२०} इस पर दशरथ की अन्य रानियाँ सुप्रभा को बहुत सौभाग्यशाली मानती हैं, क्योंकि उन सबके लिए दशरथ ने दासियों के हाथ से गंधोदक भेजा था ।^{३२१}

भाण्डागारिक^{३२२} (भण्डारी)—यह राजा के भण्डार का स्वामी होता था ।

दासी—जो स्त्रियाँ राजा के अन्तःपुर में सेवा का कार्य करती थीं । पद्मचरित में इनको निन्दनीय बतलाया गया है ।^{३२३}

विदूषक^{३२४}—जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष और बोली आदि

३६२. पद्य० २५।४१ ।

३६३. पद्य० ५।२८७ ।

३६४. वही, ६।३८१ ।

३६५. वही, ६।३८१-४२२ ।

३६६. वही, ८।१११ ।

३६७. अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।

सर्वकार्यार्थकुशलः कंचुकीत्यभिधीयते ॥ (नाट्यशास्त्र)

३६८. पद्य० ८।१११ ।

३७०. पद्य० २९।१२ ।

३६९. वही, २८।२१०-२२३ ।

३७२. वही, २९।१७ ।

३७१. वही, २९।३५, ३६ ।

३७४. वही, १।२८ ।

३७३. वही, २९।३५ ।

७२ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

के द्वारा जनता को हँसाता है, कलह में प्रेम रखता है और हास्य आदि के कार्य को ठीक जानता है उसे विदूषक कहते हैं । कुसुम, वसन्त आदि उसके नाम होते हैं ।^{३७५}

घोर^{३७६}—जो दूसरे का धन चुराने का काम करते थे ।

शबर^{३७७}—जो जंगल में रहने थे और शिकार आदि किया करते थे उन्हें शबर कहा जाता था । पञ्चचरित के ३२वें पर्व में इनका शर्वरी नदी के किनारे रहने का उल्लेख मिलता है ।^{३७८} इसी आधार पर कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में इनका निवास शर्वरी नदी के किनारे रहा होगा, इस कारण इनका नाम शबर पड़ गया ।

ताम्बूलिक^{३७९}—पान बेचने वाले को ताम्बूलिक कहते थे ।

सूपकारी^{३८०}—रसोइन अथवा सूप (दाल) बनाने वाली ।

निषाद^{३८१}—जंगल में रहने वाली और शिकार पर निर्भर करने वाली एक जाति विशेष को निषाद कहते थे । हरिण का शिकार इनमें विशेष प्रचलित था ।

ठ्याघ^{३८२}—जंगल में रहने वाले शिकारियों की एक जाति विशेष ।

भिषक्^{३८३}—वैद्य ।

कपाटजीवि^{३८४}—जो कपाट (किबाड़) बनाकर जीविका करते थे ।

द्राग्^{३८५}—द्राग् के लिए पञ्चचरित में कोषाध्यक्ष^{३८६} शब्द भी आया है । राजकीय कोष की सुरक्षा का यह सबसे बड़ा अधिकारी होता था ।

प्राग्रहर^{३८७}—मुखिया या प्रमुख पुरुष को कहा जाता था ।

श्लेच्छ—पद्मचरित के २७वें पर्व से श्लेच्छों के विषय में बहुत कुछ जानकारी मिलती है । इसमें कहा गया है कि विजयार्द्र पर्वत के दक्षिण ओर कैलाश पर्वत के उत्तर की ओर बीच-बीच में अन्तर देकर बहुत से देश स्थित हैं ।^{३८८}

३७५. कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषमापाद्यैः ।

हास्यकरः कलहहरतिविदूषकः स्यात् स्वकर्मजः ॥ —साहित्यदर्पण ३।४२ ।

३७६. पद्य० २।१७६ ।

३७७. पद्य० २।१६९ ।

३७८. वही, ३२।२९ ।

३७९. वही, ८०।१७८ ।

३८०. वही, ८०।१९८ ।

३८१. वही, ८५।८० ।

३८२. वही, ८५।७९ ।

३८३. वही, ८९।५३ ।

३८४. वही, ९१।२४ ।

३८५. वही, ९९।१०५ ।

३८६. वही, ९९।१०७ ।

३८७. वही, ९६।३६ ।

३८८. वही, २७।५ ।

उन देशों में एक अर्धवर्षर नाम का देश है जो असंयमी जनों के द्वारा मान्य है, घूर्तजनों का उसमें निवास है तथा वह अत्यन्त भयंकर म्लेच्छ लोगों से व्याप्त है।^{३८९} उस देश में यमराज के नगर के समान मयूरमाल नाम का नगर है। उसमें आन्तरंगतम नाम का राजा राज्य करता था। पूर्व से लेकर पश्चिम तक की लम्बी भूमि में कपोत, शुक, काम्बोज, मंकन आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकार के शस्त्र तथा अनेक प्रकार के भौषण अस्त्रों से युक्त हो आन्तरंगतम की उपासना करते थे।^{३९०} धरा से रहित हो आर्य देशों की उजाड़ते हुए वे जनक के देश की उजाड़ने के लिए उद्यत हुए।^{३९१} तब जनक ने राजा दशरथ को बुलाया। दशरथ की आज्ञा से राम-लक्ष्मण ने उनको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। पराजित होकर जो कुछ म्लेच्छ बचे थे वे सद्य और विन्ध्य पर्वतों पर रहने लगे।^{३९२} इन म्लेच्छों की वेषभूषा तथा आभार वगैरह के विषय में कहा गया है कि उनमें से कितने ही लाल रंग का शिरस्त्राण (साफा) धारण किए थे, कोई छुरी हाथ में लिए थे।^{३९३} कोई मसले हुए अंजन के समान काले थे। कोई सूखे पत्तों के समान कान्ति वाले थे, कोई कीचड़ के समान थे और कोई लाल रंग के थे।^{३९४} वे अधिकतर कटिसूत्र में मणि बाँधे हुए थे, पत्तों के वस्त्र पहिने हुए थे, विभिन्न धातुओं से उनके शरीर लिप्त थे, फूल की मंजरियों से उन्होंने स्रखर (सेहरा) बना रखा था।^{३९५} कौड़ियों के समान उनके दाँत थे, बड़े मदका (पिठर) के समान उनके पेट थे और सेना के बीच वे फूले हुए कुटज वृक्ष के समान लगते थे।^{३९६} उनके हाथों में भयंकर शस्त्र थे, उनकी जाँघें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे तथा वे असुर के समान जान पड़ते थे।^{३९७} वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओं का मांस खाने वाले थे, मूढ़ थे, पापी थे, बिना बिचारे सहसा काम करने वाले थे।^{३९८} बराह, महिष, व्याध, शुक और कंक आदि के चिह्न उनकी पताकाओं में थे। अनेक प्रकार के वाहन, चहर, छत्र आदि उनके साथ थे।^{३९९} युद्ध में पराजय के बाद भयभीत होकर कन्द, मूल और फल खाकर वे अपना निर्वाह करने लगे और उन्होंने अपनी दुष्टता छोड़ दी।^{४००}

३८९. पद्य० २७।६।

३९१. वही, २७।१०-११।

३९३. वही, २७।६७।

३९५. वही, २७।६९।

३९७. वही, २७।७१।

३९९. वही, २७।७३।

३९०. पद्य० २७।८-९।

३९२. वही, पर्व २७।

३९४. वही, २७।६८।

३९६. वही, २७।७०।

३९८. वही, २७।७२।

४००. वही, २७।८८।

वस्त्र और आभूषण

किसी भी देश की संस्कृति को भली भाँति समझने के लिए वहाँ की वेश-भूषा एवं आभूषण आदि का भी ज्ञान करना परमावश्यक है। पञ्चचरित में इस दृष्टि से उपयोगी सामग्री मिलती है, जिसका विवरण निम्नलिखित है—

वस्त्र—पञ्चचरित में प्रच्छदपट^{४०१} (चादर), अम्बर^{४०२}, परिकर^{४०३} (कमरबन्द), उत्तरीय^{४०४} (दुपट्टा), अंशुक^{४०५}, पत्र^{४०६} (वृक्ष के पत्ते), बल्कल^{४०७} (छाल के बने वस्त्र), चर्मणिवासः^{४०८} (चमड़े के वस्त्र), नाना चित्रों को धारण करने वाले बादली रंग के वस्त्र^{४०९} (मेघकाण्डानि वस्त्राणि नानाचित्रधराणि च), कुशा के वस्त्र (कुशचीवर)^{४१०}, पट्टांशुक^{४११}, कंचुक^{४१२} (चोली), दुकूल पट, ^{४१३} गल्लक^{४१४} (गद्दा), उपवान^{४१५} (तकिया), वस्त्र^{४१६} स्वच्छ, लम्बे, विचित्र और जल की सदृशता को धारण करने वाले वस्त्र (स्वच्छायतविचित्रेण पयः-सादृश्यधारिणा अंशुकैः), ^{४१७} कुशल शिल्पी के द्वारा रंगा वस्त्र^{४१८} (विशिष्ट शिल्पिता रक्तं वस्त्रं), काषाय वाससी^{४१९} (गेहूआ वस्त्र), लाल रंग का साफा (रक्तवस्त्रशिरस्त्राणाः^{४२०}), कटिसूत्र^{४२१} तथा पत्र चीवर^{४२२} आदि वस्त्रों का उल्लेख मिलता है।

अंशुक—बृहत् कल्पसूत्र भाष्य^{४२३} की टीका में इसे कोमल और चमकीला रेशमी कपड़ा कहा गया है। निशोष^{४२४} में इस शब्द की लम्बी-चौड़ी व्याख्या

४०१. पञ्च० १६।२४०।	४०२. पञ्च० २।७, ३।२१३।
४०३. वही, २७।३१।	४०४. वही, ३।१९८।
४०५. वही, ३।१९८।	४०६. वही, ३।२९६।
४०७. वही, ३।२९६।	४०८. वही, ३।२९६।
४०९. वही, ४०।११।	४१०. वही, ३।२९७।
४११. वही, ३।१२२।	४१२. वही, २।४६।
४१३. वही, ७।१७१।	४१४. वही, ७।१७२।
४१५. वही, ७।१७२।	४१६. वही, १०२।१०३।
४१७. वही, ७३।३३।	४१८. वही, ४९।४५।
४१९. वही, ३।२९३।	४२०. वही, २७।६७।
४२१. वही, २७।६९।	४२२. वही, २७।६९।
४२३. बृहत् कल्पसूत्र भाष्य ४।३६-६१।	
४२४. निशोष ४ पृ० ४६७ निशोष में दुकूल की कुछ और ही व्याख्या है।	
- दुगुल्लो रुक्खो तस्स वागोधेतुं उदूखले कुट्टइज्जति पाणि एण ताव जाव भूसी भूतो ताहे कच्चति दुगुल्लो अर्थात् दुकूल वृक्ष की छाल लेकर पानी

है—'अंशुयाणि कणगकंतानि, कणगखसियानि, कणगखिसाणि, कणगखिचित्तानि अर्थात् अंशुक में तारखीन का काम होता था, अलंकारों में अरखोजी (खचितानि) का काम तथा उसमें सोने के तार से चित्र विचित्र नक्काशियाँ बनी हुई थीं। उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि अंशुक किमखाव अथवा पोत जैसा कोई कपड़ा था। आचारांग में भी इसका उल्लेख है।^{४२५} नायाधम्म कहाओ^{४२६} में राजकुमार गौतम को अंशुक की धोती और दुपट्टा जो रंगीन, महीन और मुलायम था और जिनके किनारों पर सुनहरा काम था, पहिने बतलाया गया है। बाण ने अंशुक वस्त्र को अत्यन्त ही शीना और स्वच्छ वस्त्र माना है।^{४२७} पद्मचरित में उत्तरीय वस्त्र के प्रसङ्ग में वस्त्र अर्थ का स्रोतन कराने के लिए अंशुक शब्द का प्रयोग हुआ है।^{४२८} यहाँ पर इसके ऊपर कसीदा के अनेक फूल बनाने (कृतपुष्पकम्) का उल्लेख है।^{४२९}

पट्टांशुक—सफेद और लाल रेशमी कपड़ा को सम्भवतः पट्टांशुक कहा जाता था।^{४३०}

कंचुक—पद्मचरित के द्वितीय पर्व में मगध देश की स्त्रियों को कंचुक (चोली) पहने बतलाया गया है। गांधार कला में स्त्रियाँ साड़ी के ऊपर या नीचे कंचुक पहने दिखलाई गई हैं। ये कंचुक लम्बे और कसे हुए होते थे तथा उन पर सलबटें पड़ी रहती थीं।^{४३१}

दुकूल—पद्मचरित के सातवें पर्व में केकशी की शय्या का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसकी शय्या दुकूल पट से कोमल थी। आचारांग में दुकूल को गोड विषय विशिष्ट कार्पासिकं अर्थात् गोड देश (बंगाल) में उत्पन्न एक विशेष

के साथ सब तक ओखली में कूटते हैं जब तक उसके रेशे अलग नहीं हो जाते। बाद में वे रेशे कात लिए जाते हैं (निषीण ७, पृ० ४६७।

४२५. आचारांग, ३, ५, १, ३ डॉ० मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १४८।

४२६. नाया धम्म कहाओ १, १३ प्राचीन भारतीय वेशभूषा पृ० १५९।

४२७. सूक्ष्मविमलेन अंशुकेनाच्छादितशरीरा देवी सरस्वती (९) विषयानु-मयेन अंशुकेन उन्नतस्तनमभ्यवहगात्रिका ग्रन्थिः सावित्री (१०) वासुदेव-शरण भगवान् : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७८।

४२८. उत्तरीयं च विन्यस्तमंशुकं कृतपुष्पकम् ॥ पद्य० ३।१९८।

४२९. वही, ३।१९८।

४३०. प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० ९५।

४३१. वही, पृ० १०९, ११०।

७६ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

तरह की कपास से बना वस्त्र कहा गया है।^{४३२}

वासस्^{४३३}—ऋग्वेद^{४३४} और बाद के साहित्य में पहनने के कपड़ों के लिए साधारणतः वासस् शब्द का व्यवहार हुआ है। वसन और वस्त्र के भी वही माने होते हैं।^{४३५} अमरकोश में कपड़ों के छः पर्यायवाची यथा—वस्त्र, आच्छादन, वास, चैल, वसन और अंशुक नाम आए हैं।^{४३६} पद्मचरित में वासस्^{४३७}

४३२. आचारांग २।५, १, ३ अमरकोश में दुकूल शीम का पर्यायवाची है और उसके आवरणों को निवीत और प्रावृत कहते थे। ऐसा लगता है कि लोग जब दुकूल के अर्थ को भूल गए तब सभी महीन धुले वस्त्रों को दुगूल कहा जाने लगा। (अमरकोश २, ६, ११२, रघुवंश पर मल्लिनाथ की टीका १, ६५) हंस दुकूल गुप्तयुग की वस्त्र निर्माणकला का उत्कृष्ट नमूना था। आचारांग में एक जगह कहा गया है कि शक्र ने महावीर को जो हंस दुकूल का जोड़ा पहनाया था वह इतना हलका था कि हवा का मामूली झटका उसे उड़ा ले जा सकता था। इसकी बनावट की तारीफ कारीगर भी करते थे। वह कलावस्तु के तार से मिलाकर बना था और उसमें हंस के अलंकार थे (आचारांग २, १५, २०)। नावाधम्म कहाओ के अनुसार यह जोड़ा वर्ण स्पर्श से युक्त, स्फटिक के समान निर्मल और बहुत ही कोमल होता था (नावाधम्म कहाओ १, १३)। मूल्यवान् कपड़ों के साथ दुकूल के जोड़े भी दिए जाते थे (अंतगह दसाओ पृ० ३२)। दुकूल के विषय में बाण ने लिखा है कि वह पुंड्रदेश (पुंड्रवर्धनभुक्ति या उत्तरी बंगाल) से बनकर आता था। उसके बड़े-बड़े थान में से काटकर चादर घोंती या अन्य वस्त्र बनाए जाते थे। बाण का पुस्तक बाबक सुदृष्टि इस प्रकार के कपड़े पहने था (दुगूलपट्टप्रभवे शिखंड्यपांगपांडुनी पांडूवाससी वसानः; ८५)। दुकूल से बने उत्तरीय, साड़ियाँ, पलंग की चादरें, तकियों के गिलाफ आदि नाना प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख बाण के ग्रन्थों में आया है। सावित्री को दुकूल का वस्त्र पहने हुए (दुकूलवल्कलवसाना, १०) और सरस्वती को दुकूल वल्कल का उत्तरीय ओढ़े हुए (हृदयमुत्तरीय दुकूलवल्कलैकवेक्षेन संछादयन्ती) कहा गया है।

वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७७।

४३३. पद्म० ३।२९३।

४३४. ऋग्वेद १।३।४।६; १।११५।४, ८।३।२४ प्राचीन भारत की वेशभूषा, पृ. १५।

४३५. ऋग्वेद १।९५।७।

४३६. अमरकोश २, ६, २१५।

४३७. पद्म० ३।२९३।

बसन,^{४३८} तथा वस्त्र^{४३९} का व्यवहार कपड़ों के लिए हुआ है।

वस्त्र रखने के पात्र—

पटल—पटल या वस्त्र रखने के पिटारे के विषय में पद्मचरित में एक प्रसंग आया है। जब दशरथ राम को बुलाकर राज्य देने को उद्यत हुए तब नूपुरों से सुन्दर शब्द करने वाली तथा उत्तम वेष से युक्त स्त्रियाँ पिटारों (पटलेषु) में वस्त्रालंकार लेकर आ गईं।^{४४०}

आभूषण

आभूषणों की रमणीयता ने भारतीय हृदय को अत्यधिक विमोहित किया। यहाँ मनुष्य के अङ्ग-अङ्ग के लिए पृथक्-पृथक् आभूषण थे। पद्मचरित में उल्लिखित आभूषणों का विवरण इस प्रकार है—

शिरोभूषण—सिर पर किरीट^{४४१} (मुकुट)^{४४२}, मूर्ध्निरत्न^{४४३} (मस्तक का मणि), मौलि^{४४४}, सोमन्तमणि^{४४५} (माँग में मणि), छत्र^{४४६}, शोखर^{४४७} तथा चूणाभूषण^{४४८} धारण किए जाते थे।

मौलि—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने केशों के ऊपर के गोल सुवर्णपट्ट के रूप में मौलि की सम्भावना की है।^{४४९} पद्मचरित में मौलि को हेमसूत्र (स्वर्णसूत्र) से वेष्टित^{४५०}, रत्नों की किरणों से जगमगाने वाला^{४५१} तथा श्रेष्ठ मालाओं से युक्त कहा गया है।^{४५२}

शोखर—शोखर सिर के चारों ओर की एक माला होती थी।^{४५३} डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने मौलि के ऊपर लगे हुए शिखंड के रूप में इसका अनुमान किया है।^{४५४}

४३८. पद्म० ३।२२३।

४३९. पद्म० ४।७५।

४४०. चोखनूपुरनिस्वाना दधानावेषमन्त्रितम्।

वस्त्रालंकारमादाय पटलेष्वागतः स्त्रियः॥ पद्म० २७।३२।

४४१. पद्म० ११।८।४७।

४४२. पद्म० ८५।१०७।

४४३. वही, ७१।६५।

४४४. वही, ७१।७।

४४५. वही, ८।७०।

४४६. वही, २७।५७।

४४७. वही, ३।१९९।

४४८. वही, ३६।७।

४४९. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१९।

४५०. पद्म० ७१।७।

४५१. पद्म० ११।३२७।

४५२. वही, ३।३५३।

४५३. नरेन्द्रदेव शास्त्री : भारतीय संस्कृति का इतिहास।

४५४. वासुदेव शरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१९।

सीमन्तमणि—यह एक विशेष प्रकार की मणि थी जिसे स्त्रियाँ माँग में पहना करती थीं। इसकी कान्ति का समूह घूँघट का काम देता था।^{४५५} ऐसा पद्मचरित में कहा गया है।

चूणामणि—चूणामणि प्रायः स्वर्ण की खोल में जटित पद्मराग (लालमणि) होती थी। यह मुकुट, साफे और नंगे सिर वालों के ऊपर भी पहिनी जाती थी। यह स्त्रियों और पुरुषों दोनों में समान रूप से प्रिय थी। राजा लोगों और सम्पन्न लोगों की चूणामणि विविध रत्नों से जटित होती थी।^{४५६} पद्मचरित में यक्षाविष द्वारा सीता को देदीप्यमान चूणामणि देने का उल्लेख किया गया है।^{४५७} ७१वें पर्व में निर्दिष्ट मूर्ध्निरत्न^{४५८} से तात्पर्य सम्भवतः चूणामणि से है।

कर्णभूषण

कुण्डल—कान का सामान्य भूषण कुण्डल था, जो एक भारी-सा घुमावदार लटकने वाला गहना था और लेनामात्र शरीर संचालन से हिलने-डुलने लगता था। पद्मचरित में 'चपलो मणिकुण्डलः' कहकर इसकी चंचलता का कथन किया गया है। कुण्डल शब्द संस्कृत के 'कुंडलिन' (कुंडली मारने वाले साँप) से सम्बद्ध है, क्योंकि दोनों घुमावदार होते हैं। कुण्डल सपाट गए सोने के बने होते थे और रत्न या मणि जटित होने पर रत्नकुण्डल या मणिकुण्डल कहलाते थे।^{४५९} पद्मचरित^{४६०} में ऐसे मणिकुण्डलों का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

अवतंस^{४६१}—बाण में हर्षचरित में कान के दो आभूषणों का वर्णन किया है। एक अवतंस जो प्रायः फूलों के होते थे और दूसरे कुण्डलादि आभूषण।^{४६२} पद्मचरित में अवतंस को चंचल (चलावतंसका) अर्थात् हिलने-डुलने वाला कहा है।^{४६३}

वालिका—(वालियाँ) पद्मचरित के आठवें पर्व में रविषेण ने मन्वोदरी

४५५. पद्य० ८।७०।

४५६. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास।

४५७. पद्य० ३६।७।

४५८. वही, ७१।१५।

४५९. शान्तिकुमार जानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति।

४६०. पद्य० ११८।४७, ११।३१७, ७१।१३।

४६१. पद्य० ३।३।

४६२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४७।

४६३. पद्य० ७१।६।

का वर्णन करते हुए कहा है—उसने अपने कानों में बालियाँ पहन रखी थीं ।
उनकी प्रभा से वह ऐसी जान पड़ती थी मानो सफेद सिन्दुवार (निर्गुण्डी) की
मंजरी ही धारण कर रही हो ।^{४६४}

तलपत्रिका—कान में पहिने का दांत से निर्मित एक आभूषण जिसे पुरुष
एक कान में पहनता था । पद्मचरित में इसे महाकान्ति से कोमल (महाकान्ति
कोमला) कहा गया है ।^{४६५}

इनके अतिरिक्त पद्मचरित में कर्णभूषण^{४६६} तथा कर्णभरण^{४६७} शब्दों का
भी प्रयोग कानों के आभूषण के अर्थ में हुआ है ।

कण्ठाभूषण

हार—पद्मचरित में अनेक स्थलों पर हार^{४६८} का उल्लेख किया गया है ।
रावण के पिता के पास ऐसा हार था जिसकी नानेन्द्र रक्षा करते थे ।^{४६९} वह
हार अपनी किरणों से दसों दिशाओं को प्रकाशमान करता था ।^{४७०} उस हार
में बड़े-बड़े स्वच्छ रत्न लगे थे । उन रत्नों में असली मुख के सिवाय नौ मुख
और भी प्रतिबिम्बित होते थे । रावण का दशानन नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि
उसके असली मुख के सिवाय नौ मुख और भी प्रतिबिम्बित होते थे ।^{४७१} इस
हार की हजार नामकुमार रक्षा करते थे ।^{४७२} माला को भी हार कहते थे ।
मोतियों की बनाई हुई माला को भुक्ताहार^{४७३} कहते थे । इसका दूसरा नाम
मुक्तामाला^{४७४} भी मिलता है । हार की दीप्ति से लोग बहुत आकर्षित थे ।
एक स्थान पर हार का नाम स्वयम्प्रभ^{४७५} बतलाया गया है । इस हार को
यथाधिप ने प्रसन्न होकर राम को दिया था । हार प्रायः रत्नों या मणियों से
सूँधे जाते थे । रामायण में हारों को चंद्ररश्मियों की-सी कान्तिवाला (चन्द्रांशु
किरणाभा हाराः ५।९।४८) बतलाया गया है ।^{४७६}

४६४. कर्णयोर्बालिकालोकान्मुक्ताफलसमुत्थितात् ।

सितस्य सिन्दुवारस्य मञ्जरीमिव बिभ्रतीम् ॥ पद्म० ८।७१ ।

४६५. पद्म० ७।१।२ ।

४६६. पद्म० ३।१०२ ।

४६७. वही, १०३।९४ ।

४६८. वही, ८५।१०७, ८८।३१, १०३।९४, ७।२२१, ७।२१८, ७।२१५,
३।२७७ ।

४६९. पद्म० ७।२१९ ।

४७०. पद्म० ७।२२१ ।

४७१. वही, ७।२२२ ।

४७२. वही, ७।२१५ ।

४७३. वही, ३।२७७ ।

४७४. वही, ७।१।२ ।

४७५. वही, ३६।६ ।

४७६. शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ६० ।

सूक्—^{४७७} माला में अनेक भारतीय भावनाओं ने ग्रथन प्राप्त किया था। प्रत्येक सांस्कृतिक कार्य में माला को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। अधिकतर ये मालाएँ फूल की हुआ करती थीं। सोने, मोती आदि की भी मालाएँ हुआ करती थीं। माला जिस विशेष वस्तु से निर्मित होती थी उसीके आधार पर उसका नाम पड़ जाता था।^{४७८}

हाटक—पद्मचरित के प्रसङ्गानुसार हाटक का तात्पर्य सुवर्णमाला से लगाया जा सकता है। लव-कुश की बाल्यावस्था का वर्णन करते हुए रविषेण ने कहा है कि हाटक (सुवर्णमाला) में खचित व्याघ्र सम्बन्धी नखों की बड़ी पंक्ति उनके हृदय में ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानों दर्प के अंकुरों का समूह ही हो।^{४७९}

रत्नजटित स्वर्णसूत्र^{४८०}—(रत्नसंयुक्तं कांचनसूत्रकम्)—सोने के धागे में पिरोया हुआ रत्नों का हार।

कराभूषण

केयूर^{४८१}—बाँहों में भुजबन्ध (अंगद या केयूर) पहनने की परम्परा स्त्री और पुरुष दोनों में थी।^{४८२} केयूर सोने या चाँदी के बनते थे, जिनमें लोग अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार मणियाँ जड़ा लेते थे।^{४८३} पद्मचरित में एक स्थान पर स्वर्णनिर्मित केयूर (हेमकेयूर)^{४८४} का उल्लेख मिलता है। चाँदी के केयूर का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। आधुनिक पहलवान के गंडों के समान लोग केयूरों को भुजदण्ड पर कुहनी से ऊपर बाँधा करते थे।^{४८५} ग्यारहवें पर्व में बाजुबन्धों की किरणों से कन्धों के देवीप्यमान होने का कथन किया गया है।^{४८६}

कटक—हाथ में सोने, चाँदी हाथीदाँत तथा शंख के कड़े पहनने की प्रथा प्राचीनकाल में प्रचलित थी।^{४८७} पद्मचरित से हमें बायें हाथ में स्वर्णनिर्मित

४७७. पद्म० ८८।३१, ३।२७७।

४७८. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ११४।

४७९. पद्म० १००।२५।

४८०. पद्म०, ३३।१८३।

४८१. वही, ८५।१०७, ११।३२८, ८।४१५, ८८।३१, ३।२, ३।१९०।

४८२. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ११५।

४८३. पद्म०।

४८४. पद्म० ३।१९०।

४८५. भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ११५। ४८६. पद्म० ११।३२८।

४८७. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ११५।

कड़े पहनने की जानकारी मिलती है।^{४८८} कड़े की आभा से किरणें निकलती थीं, जिन्से हाथों की हथेलियाँ आच्छादित हो जाती थीं।^{४८९}

ऊर्मिका^{४९०}—(अँगूठी)—अँगूठी के साथ भारतवासियों की पता नहीं कितनी मधुर भावनायें लिपटी हुई हैं। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल में अँगूठी एक महत्वपूर्ण नाटकीय भूमिका बदा करती है। पद्मचरित के तृतीसवें पर्व में एक वर्णन आता है कि बज्रकर्ण ने मुनिसुव्रतनाथ भगवान् की प्रतिभा से युक्त एक स्वर्ण की अँगूठी (ऊर्मिका) बनवाई तथा उसीके सहारे जिनेन्द्रदेव के अतिरिक्त अन्य किसीको नमस्कार न करने की महत्वपूर्ण प्रतिज्ञा निभाई।^{४९१}

कटि के आभूषण

काञ्ची—स्त्री की करधनी के लिए पद्मचरित में काञ्ची^{४९२} और मेखला दो शब्द आए हैं। आभूषण के रूप में तो इनका आकर्षण या ही अलौकिक को यथास्थान रखने में भी यह सहायक होती थी। काञ्ची घुंघरुदार सोने के कमर-बन्द को कहते थे।^{४९३} पद्मचरित में एक स्थान पर इसे मणिसमूह से सुशोभित कहा है।^{४९४} मणियों की दानेदार करधनी को मेखला भी कहते थे।^{४९५}

पैरों के आभूषण

नूपुर—पैरों के आभूषण के रूप में पद्मचरित में एकमात्र नूपुर का उल्लेख हुआ है। राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर स्त्रियाँ नूपुरों का शब्द करती हुई, उत्तम वस्त्र धारण कर तथा पिठारों में वस्त्रालङ्कार लेकर आ गईं।^{४९६} नूपुर सादे या मणिजटित बोर मधुर अंकार करने वाले घुंघरुओं से युक्त होते थे। नूपुर जल्दी से पहनाया-उतारा जा सकता था।^{४९७}

आर्थिक जीवन

पद्मचरित का समाज एक सुव्यवस्थित समाज है। सुव्यवस्थित समाज में जीविकोपार्जन अव्यवस्थित समाज की तरह कठिन नहीं होता है। अनेक प्रकार के कला-कौशल ऐसे समाज में विकसित हो जाते हैं। पद्मचरित में समाज की

४८८. पद्म० ३।३।

४८९. पद्म० ३।३।

४९०. वही, ३३।१३१।

४९१. वही, ३३।१३१-१३३।

४९२. वही, ८।७२।

४९३. वही, ७१।६५।

४९४. वही, ८।७२।

४९५. शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ६१।

४९६. पद्म० २७।३२।

४९७. शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ६१।

इस विकसित अवस्था के स्पष्ट वर्णन होते हैं, जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट है—

वाणिज्य—कृषि तथा औद्योगिक शिल्पों से उत्पन्न वस्तुओं का क्रय-विक्रय हुआ करता था। १४वें पर्व में बेर आदि को बेचने वाले भद्र नामक पुरुष की कथा आती है। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं एक दीनार का ही परिग्रह रखूँगा।^{४९८} इसमें ज्ञात होता है कि क्रय-विक्रय का माध्यम दीनारें थीं।^{४९९} काम्पिल्य नगर में बाईस करोड़ दीनारों का धनो एक वैश्य रहता था।^{५००} इससे स्पष्ट है कि संचित धन के रूप में लोग दीनारों को रखते थे। धनोपार्जन के लिए लोग विदेशों में भी जाया करते थे। एक स्थान पर कहा गया है कि धन का उपार्जन करना, विद्याग्रहण करना और धर्म संचय करना ये तीनों कार्य यद्यपि मनुष्य के आधीन हैं फिर भी प्रायः इनकी सिद्धि विदेशों में होती है।^{५०१} व्यापार करने के लिए व्यापारियों के बड़े-बड़े संघ विदेशों में जाया करते थे। द्वितीय पर्व में वर्तमान जिनेन्द्र की स्तुति में इन्द्र कहता है कि आप सार्थवाह^{५०२} हो, भव्य जीव रूपी व्यापारी आपके साथ निर्वाण धाम को प्राप्त करेंगे तथा दोष रूपी चोर उन्हें नहीं छूट सकेंगे। समुद्री मार्गों की दूरी तय करने के लिए नौकाओं (नौ)^{५०३} से लेकर बड़े-बड़े जहाज तक प्रयुक्त किए जाते थे। जहाज के लिए पोत^{५०४} तथा यानपत्र^{५०५} शब्द प्रयुक्त किए जाते थे। व्यापार करने वाले को वणिज्^{५०६}, वणिक्^{५०७}, तथा वैश्य कहते थे। इनकी क्रिया वाणिज्य कहलाती थी। वाणिज्य विद्या की विधिवत् शिक्षा दी जाती थी। तैंतीसवें पर्व में विष्णुदत्त का व्यापार की विद्या से युक्त हो (युक्तो वाणिज्यविद्यया) उज्जयिनी नगरी जाने का उल्लेख हुआ है।^{५०८} स्थल व्यापार में मार्ग की दूरी तय करने के लिए^{५०९} शकट (गाड़ी) का उपयोग किया जाता था। आवश्यकता पड़ने पर

४९८. पद्म० १४।१९५।

४९९. पद्म० ७१।६४।

५००. वही, ८५।८५।

५०१. वही, २५।४४।

५०२. समान या सहयुक्त अर्थ (पूँजी) वाले व्यापारी जो बाहरी मण्डियों के साथ व्यापार करने के लिए टाँडा लादकर चलते थे वे सार्थ कहलाते थे। उनका नेता ज्येष्ठ व्यापारी सार्थवाह कहलाता था। डॉ० मोतीचन्द्र : सार्थवाह (भूमिका), पृ० १०२।

५०३. पद्म० ११०।५६।

५०४. पद्म० १०।१७४, ८३।८०, ४५।६९।

५०५. वही, ११८।९९, ५५।६१।

५०६. वही, ५।४१, ६।१५४।

५०७. वही, ५५।६०।

५०८. वही, १३३।१४५।

५०९. वही, ३३।४६।

लोग एक-दूसरे का धन उधार ले लेते थे । इस प्रकार के लेनदेन के लिए व्यवहार शब्द आया है । कर्मभूमि के प्रारम्भ में प्रजा इस प्रकार के व्यवहार से रहित थी ।^{५१०}

कृषि—पद्मचरित में खेत के लिए क्षेत्र^{५११} शब्द का प्रयोग किया गया है । खेत दो प्रकार के थे—उपजाऊ तथा अनुपजाऊ । अनुपजाऊ क्षेत्र या खेत के लिए खिल^{५१२} (खल) तथा उपजाऊ खेत के लिए उर्वरा^{५१३} (क्षेत्र) कहा जाता था । उस समय खेती हलों^{५१४} (लांगल) से होती थी । जिस व्यक्ति के यहाँ जितने अधिक हल चलाये जाते थे वह व्यक्ति उतना अधिक सम्पन्न माना जाता था । भरत चक्रवर्ती के यहाँ एक करोड़ हल थे ।^{५१५} राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के यहाँ पचास लाख थे ।^{५१६} खेती करने वाले को कर्षक कहते थे ।^{५१७} हलवाहक को कीनाश कहते थे ।^{५१८} खेतों में पुण्ड्र (पोंडा)^{५१९} तथा इक्षु^{५२०} (ईख) के अतिरिक्त, अनेक धान्यों^{५२१} को बोया जाता था । शाक तथा कन्दमूल की खेती भी होती थी ।^{५२२} फलों के लिए नालिकेर^{५२३} (नारियल), दाडिमी^{५२४} (अनार), द्राक्षा^{५२५} (दाख), पिण्डखर्जूर^{५२६} आदि के वृक्ष लगाये जाते थे । बिना जोते-बोए उत्पन्न हुए धान को अकृष्टपच्यसस्य^{५२७} कहते थे । कर्मभूमि के प्रारम्भ में भरत क्षेत्र की भूमि अकृष्टपच्यसस्य से युक्त थी ।^{५२८}

सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था थी । कुँए से घटीयन्त्र (अरहट या रहट) के द्वारा सिंचाई होती थी ।^{५२९} पद्मचरित में अनेक तालाब^{५३०} तथा नदियों का उल्लेख है । अतः इनसे भी सिंचाई की जाती होगी । अनाज पककर काटने के

५१०. पद्य० ३।३३२ ।

५१२. वही, ३।७० ।

५१४. वही, २।३ ।

५१६. वही, ८३।१५ ।

५१८. वही, ३४।६० ।

५२०. वही, २।४ ।

५२२. वही, २।१५ ।

५२४. वही, २।१६ ।

५२६. वही, २।१९ ।

५२८. वही, ३।२३१ ।

५३०. वही, २।२३, २।१०० ।

५११. पद्य० २।३ ।

५१३. वही, २।७ ।

५१५. वही, ४।६३ ।

५१७. वही, ६।२०८ ।

५१९. वही, २।४ ।

५२१. वही, २।५-९ ।

५२३. वही, २।१५ ।

५२५. वही, २।१८ ।

५२७. वही, ३।२३१ ।

५२९. वही, २।६, ९।८२ ।

बाद जहाँ रखा जाता था उस स्थान को खलधाम^{५३१} (खलिहान) कहा जाता था ।

पशुपालन—पशुपालन जीविका का उत्तम साधन था । द्वितीय पर्व में मगध देश का वर्णन करते हुए कहा गया है—हिंसकारी पालक जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसे खेलते हुए सुन्दर शरीर के धारक भेड़, ऊँट तथा गायों के बछड़ों से उस देश की ममस्त दिशाओं में भीड़ लगी रहती थी ।^{५३२} इस उल्लेख से गायों, भेड़ों तथा ऊँटों की संख्या का सहज अनुमान लगाया जा सकता है । गोपाल के द्वारा रक्षित गायों का बड़ा ही सुन्दर चित्र रविशेष ने खींचा है—बड़े-बड़े भैंसों की पीठ पर बैठे गाते हुए ग्वाले जिनकी रक्षा कर रहे हैं, शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में लगे हुए कीड़ों के लोभ से ऊपर की गर्दन उठाकर चलने वाले बगुले मार्ग में जिनके पीछे लग रहे हैं, रंग-विरंगे मूत्रों में बंधे हुए घंटाओं के शब्द से जो बहुत मनोहर जान पड़ती हैं मानों पहले पिए हुए क्षीरोदक को अजीर्ण के भय से छोड़ती रहती हैं, मधुर रस से सम्पन्न तथा इतने कोमल कि मुँह की भाप मात्र से टूट जायें ऐसे सर्वत्र व्याप्त तुणों के द्वारा जो अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त होती थीं ऐसी गायों के द्वारा उस देश (मगधदेश) के वन सफेद-सफेद हो रहे हैं ।^{५३३} कृषक समाज के लिए पशुओं की और उनमें भी विशेषकर माय-बैलों की बहुत अधिक महत्ता रहती है, इस कारण गोपालन आदि की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था । सवारी के लिए घोड़े,^{५३४} हाथी^{५३५} आदि की विशेष महत्ता थी । जो व्यक्ति जितने अधिक पशुओं का स्वामी होता था, वह उतना ही अधिक धनी माना जाता था । भरत चक्रवर्ती के यहाँ तीन करोड़ गायें, बीस लाख उत्तम हाथी तथा वायु के समान वेगशाली अठारह करोड़ घोड़े थे ।^{५३६} राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के एक करोड़ से अधिक अपने-आप दूध देने वाली गायें थीं ।^{५३७} सुन्दर गायों और भैंसों से युक्त कुटुम्बियों को

५३१. पद्य० २।५ ।

५३२. पद्य० २।२४ ।

५३३. महामहिषपुष्टस्थगायद्गोपालपालितैः ।

कोटातिलम्पटोवृषीय बलाकानुगताब्बभिः ॥ पद्य०, २।१०

विधर्णसूत्रसम्बद्धधण्टारटितहारिभिः ।

सारदिभरजरत्रासात् पीतक्षीरोदवत् पयः ॥ पद्य० २।११

सुत्वादरससम्पर्ज्वर्ण्यच्छेदीरनन्तरैः ।

तूर्णस्तृप्ति परिप्राप्तैर्गोषनैः सितकक्षभूः ॥ पद्य० २।१२

५३४. पद्य० ४।८ ।

५३५. पद्य० ४।८ ।

५३६. वही, ४।६३-६४ ।

५३७. वही, ८।३।१५ ।

अत्यधिक सुखी माना जाता था। एक स्थान पर ऐसे कुटुम्बियों को उत्तम देवों के समान सुशोभित कहा गया है।^{५३८} दूध, दही, घी तथा जी से तैयार किए गए अनेक स्वादिष्ट व्यञ्जन उस समय का प्रमुख भोजन था।^{५३९}

अन्य उद्यम—कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य के अतिरिक्त अन्य अनेक उद्यम थे। इन उद्यमों को करने वाले व्यक्ति विशेष नामों से पुकारे जाते थे। जैसे सेवक, धानुष्क, क्षत्रिय, ब्राह्मण, नृत्यकार, रजक, पुरोहित, शबर, पुलिन्द, लुब्धक, संगीतज्ञ तथा श्रेष्ठि आदि। इन सबका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

आर्थिक समृद्धि की पराकाष्ठा—आर्थिक समृद्धि की पराकाष्ठा का रूप यद्यपि तीर्थङ्कर की भोगोपभोग सामग्री में मिलता है, किन्तु तीर्थङ्कर के पुण्य-प्रकर्ष से यह सब देवोपनीत होने से यहाँ पर उसका विशेष कथन नहीं किया जाता है। भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त करने में दूसरा स्थान चक्रवर्ती का है। चक्रवर्ती की सम्पदा की गणना में भरत चक्रवर्ती की कृषि और पशु सम्पदा का उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उनके पास नव रत्नों से भरी हुई अक्षय नौ निधि^{५४०} भी^{५४०} निम्नलिखित प्रकार की थीं। इनमें से पहली दशनिधि

५३८. पद्य० ८३।२०।

५३९. पद्य० ३४।१३-१६।

५४०. आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण में भरत चक्रवर्ती की नौ निधियों में १-काल, २-महाकाल, ३-पाण्डुक, ४-माणव, ५-नौसर्प, ६-सर्वरत्न, ७-शंख, ८-पद्म और ९-पिम्बल को गिनाया है। ये सभी निधियाँ अविनाशी थीं, निधिपाल नामक देवों के द्वारा सुरक्षित थीं और निरन्तर लोगों के उपकार में आती थीं। ये गाड़ी के आकार की थी, चार-चार भौंरों और आठ-आठ पहियों सहित थीं। नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी, आठ योजन गहरी और दक्षारगिरि के समान विशाल कृत्ति से सहित थीं। प्रत्येक की एक-एक हजार देव निरन्तर देखरेख करते थे।

इनमें से पहली कालनिधि में ज्योतिःशास्त्र, निमित्तशास्त्र, न्याय-शास्त्र, कलाशास्त्र, व्याकरण शास्त्र एवं पुराण आदि का सद्भाव था अर्थात् कालनिधि से इन सबकी प्राप्ति होती थी। दूसरी महाकाल निधि में विद्वानों के द्वारा निर्णय करने योग्य पंचलोह आदि नाना प्रकार के लोहों का सद्भाव था। तीसरी पाण्डुक निधि में णालि, घोहि, जी आदि समस्त प्रकार की धान्य तथा कडुए, चरपरे आदि पदार्थों का सद्भाव था। चौथी माणवक निधि कवच, ढाल, तलवार, बाण, शक्ति, पशुष तथा चक्र आदि नाना प्रकार के दिव्य शस्त्रों से परिपूर्ण थी। पाँचवीं

८६ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

कहा गया है ।^{५४१} बत्तीस हजार महाप्रतापी राजा थे । नगरों से सुशोभित बत्तीस हजार देश थे, देव लोग सदा जिनकी रक्षा करते थे, ऐसे चौदह रत्न थे^{५४२} और छियानवे हजार स्त्रियाँ थीं ।^{५४३}

चक्रवर्ती के बाद दूसरा स्थान नारायण तथा बलभद्र की सम्पदा का है । पद्मचरित ने विशेष रूप से नारायण, लक्ष्मण और बलभद्र राम की सम्पदाओं और उनके कार्य-कलापों का वर्णन है । तदनुसार उनके अनेक द्वारों तथा उच्च गोपुरों से युक्त इन्द्रभवन के समान सुन्दर लक्ष्मी का निवासभूत नन्द्यावर्त नाम का भवन था ।^{५४४} किसी महागिरि की शिखरों के समान ऊँचा क्षतुःशाल नाम का कौट था, वैजयन्ती नाम की सभा थी । चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित सुषोभी नाम की मनोहर शाला थी, अत्यन्त ऊँचा तथा सब दिशाओं का अवलोकन कराने वाला प्रासादकूट था, विन्ध्यगिरि के समान ऊँचा वर्द्धमानक नाम का प्रेक्षागृह था, अनेक प्रकार के उपकरणों से युक्त कार्यालय थे, उनका गर्भगृह कुक्कुटी के अण्डे के समान महान् आश्चर्यकारी था, एक खम्भे पर खड़ा था और कल्पवृक्ष के समान मनोहर था । उस गर्भगृह को चारों ओर से घेरकर

सर्प निधि, शय्या, आसन आदि नाना प्रकार की वस्तुओं तथा घर के उपयोग में आने वाले नाना प्रकार के भाजनों की पात्र थी । छठवीं सूर्य-रत्ननिधि, इन्द्रनीलमणि, महानीलमणि, वज्रमणि आदि बड़ी-बड़ी शिखा के धारक उत्तमोत्तम रत्नों से परिपूर्ण थी । सातवीं शंख नामक निधि भेरी, शंख, नगाड़े, बीणा, झल्लरी और मृदंग आदि आघात से तथा फूँककर बजाने योग्य नाना प्रकार के बाजों से पूर्ण थी । आठवीं पद्मनिधि पाटाम्बर, चीन, महानेत्र, दुकूल, उत्तम कम्बल तथा नाना प्रकार के रंग-विरंगे वस्त्रों से परिपूर्ण थी । नौवीं पिंगल निधि कड़े तथा कटिसूत्र आदि स्त्री-पुरुषों के आभूषण और हाथी, घोड़ा आदि के अलंकारों से पारपूर्ण थी । ये नौ को नौ निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपति के आधीन थीं और सदा चक्रवर्ती के समस्त मनोरथों को पूरा करती थीं ।

जिनसेन : हरिवंश पुराण ११।११०-१२३ ।

५४१. पद्म० ४।६२ ।

५४२. भरत चक्रवर्ती के चक्र, छत्र, खंग, दण्ड, काकिणी, मणि, चर्म, सेनापति, गृहपति, हस्ती, अश्व, पुरोहित, स्थपति और स्त्री ये चौदह रत्न थे । इनमें से प्रत्येक की एक-एक हजार देव रक्षा करते थे । जिनसेन : हरिवंशपुराण, ११।१०८-१०९ ।

५४३. पद्म० ४।६४-६६ ।

५४४. पद्म० ८३।४ ।

सरङ्गावली नाम से प्रसिद्ध तथा रत्नों से देदीप्यमान राजियों के महलों की पंक्ति थी। बिजली के खम्भों के समान कान्तिवाला अम्भोजकाण्ड नामक शय्यागृह था, जगते हुए सूर्य के समान उत्तम सिंहासन था, चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान चमर थे। इच्छानुकूल छाया को करने वाला चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त बड़ा भारी छत्र था। सुख से गमन कराने वाली विषमोचिका नाम की झड़कें थी, अनर्घ्य वस्त्र थे, विष्व आभूषण थे, दुर्भेद्य कवच था, देदीप्यमान मणिमय कुण्डलों का जोड़ा था, कभी व्यर्थ नहीं जाने वाले गदा, खड्ग, चक्र, कनक, बाण तथा रणाङ्गण में चमकने वाले अन्य बड़े-बड़े वास्त्र थे, पचास लाख हल थे, एक करोड़ से अधिक अपने-आप दूध देने वाली गायें थीं। अयोध्या नगरी में अत्यधिक सम्पत्ति को धारण करने वाले कुछ अधिक रात्तर करोड़ कुल थे। गृहस्थों के समस्त घर अत्यन्त सफेद, नाना आकारों के धारक, अशीष खजानों से परिपूर्ण तथा रत्नों से युक्त थे। नाना प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण नगर के बाह्य प्रदेश छोटे-मोटे गोल पर्वतों के समान जान पड़ते थे और पक्के फलों से युक्त भवनों की चौपालें अत्यन्त सुखदायी थीं। उत्तमोत्तम बगीचों के मध्य में स्थित नाना प्रकार के फूलों से सुशोभित, उत्तम सीढ़ियों से युक्त एवं कीड़ा के योग्य अनेक वापिकायें थीं।^{५४५} अयोध्या नगरी के बड़े-बड़े विद्यालयों को देखकर यह सन्देह होता था कि ये देवों के क्रीडास्थल हैं अथवा शरद् ऋतु के मेघों का समूह है।^{५४६} इस नगरी का प्राकार समस्त दिशाओं को देदीप्यमान करने वाला अत्यन्त ऊँचा, समुद्र की वेदिका के समान तथा बड़े-बड़े शिखरों से सुशोभित था।^{५४७} ये सब वैभव जिनका कि कथन किया गया है बलभद्र और नारायण पद के कारण उनके प्रकट हुआ। वैसे उनका जो वैभव और भोग था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।^{५४८}

जनजीवन—साधारण मनुष्य भी उस समय समृद्ध और सुखी थे। आज की तरह उस समय भी नगर वैभव और समृद्धि के प्रतीक थे। नगर में प्रत्येक प्रकार के व्यक्तियों और प्रत्येक प्रकार के उद्यमों का समवाय था। पद्मधरित के द्वितीय पर्व में प्रतिपादित राजगृह नगर इसका सबसे बड़ा प्रतीक है। गाँव का जीवन सीधा-सादा था। विशेषकर हस्त-कौशल, खेती और पशुपालन ग्रामीणों की मुख्य आजीविका थी। देश के कुछ भाग ऐसे भी थे जहाँ किन्हीं प्राकृतिक कारणों से लोगों को आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। एकादश पर्व में राक्षस का ऐसे देश में जाने का वर्णन है जहाँ जाने पर पृथ्वी अकृष्टपक्ष धान्य

५४५. पद्य० ८३।५-१९।

५४६. पद्य० ८३।२८।

५४७. वही, ८३।२९।

५४८. वही, ८३।२-३।

से युक्त हो गई थी।^{५४९} प्रसन्न होकर किसान लोग हम प्रकार कहने लगे कि हम लोग बड़े पुण्यात्मा हैं, जिससे राक्षस इस देश में आया।^{५५०} अब तक हम जेती में लगे रहे, हम लोगों का सारा शरीर रुखा-सूखा हो गया, हमें फटे-पुराने वस्त्र पहिनने को मिले, कठोर स्पर्श और तीव्र-वेदना से युक्त हाथ-पैरों को धारण करते रहे और आज तक कभी सुख से अल्प भोजन हमें प्राप्त नहीं हुआ। हम लोगों का काल बड़े क्लेश से व्यतीत हुआ परन्तु इस भयंकर जीव के प्रभाव से हम लोग सब प्रकार से सम्पन्न हो गए हैं।^{५५१}

भोगोपभोग के प्रकार—शयन, आमन, पान, गन्ध, भाला, वस्त्र, आहार, विलेपन, वाहन, चारण आदि परिकर^{५५२} की उत्कृष्टता अनुत्कृष्टता समृद्धि तथा असमृद्धि का लक्षण माना जाता था।

धन की महत्ता—धन का सदैव सांसारिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व रहा है। संसार में धन ही सब कुछ है। जिसके पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बान्धव हैं, जिसके पास धन है लोक में वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है। जब मनुष्य धनरहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई। पर वही मनुष्य जब धन सहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते हैं।^{५५३} धन को इतना महत्त्व देने पर भी अन्त में धर्म से युक्त धन को श्रेष्ठ माना गया है। धन वही है जो धर्म से सहित है और धर्म वही है जो निर्मल दया से सहित है तथा निर्मल दया वही है जिसमें मांस नहीं खाया जाता। मांस भोजन से दूर रहने वाले समस्त प्राणियों के अन्य स्वाग चूँकि मूल से सहित होते हैं इसलिए उनकी प्रशंसा होती है।^{५५४}

त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम लोक में त्रिवर्ग के नाम से प्रसिद्ध है। राक्षस धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग से सहित था।^{५५५} इनमें से किसी एक की सिद्धि या प्राप्ति ही उचित नहीं अपितु इन तीनों की सिद्धि होनी चाहिए। इन तीनों का सेवन कर अन्त में तृप्त होकर विवेकी लोग सब कुछ छोड़कर धन सेवन करते थे। इसके कारण के लिए उनके बालों में से एक पका बाल या

५४९. पद्य० ११।३४८।

५५१. वही, ११।३५१-३५२।

५५३. वही, ३५।१६१, १६२।

५५५. वही, ५३।८६।

५५०. पद्य० ११।३५०।

५५२. वही, ३।२२३, १०२।१०३।

५५४. वही, ३५।१६३, १६४।

सफेद बाल^{१५९} ही दिखाई दे जाना पर्याप्त था । इतने से ही वैराग्य युक्त हो लोग किसी साधु के समीप जाकर दीक्षा ले लेते थे ।^{१५७}

प्राकृतिक सम्पदा—किसी देश के आर्थिक जीवन को प्रभावित करने में उस देश की प्राकृतिक सम्पदा (नदियाँ, पर्वत, पशु-पक्षी आदि जीव-जन्तु, वृक्ष, लता, वन आदि) का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहता है । पद्मचरित में इस प्रकार की विपुल सामग्री का उल्लेख हुआ है, जो निम्न प्रकार है—

वृक्षादि वनस्पति—पद्मचरित में निम्नलिखित वृक्षादि वनस्पति के नाम आए हैं—अशोक (४।२४), तमाल (१।३७), पुंड्र (२।४), इक्षु (२।४), नालि-
केर (नारियल, २।१५), मातुलिङ्गी (झिजीरा, २।१७), पिण्डसर्जूर (२।१९),
भोच (केला, २।१९), कुङ्कुम (केशर, २।२५), मुद्ग (मूँग २।७), कोशोपुट
(मोठ, २।७), राजभाष (बर्बटी, २।८), भोष्म (गेहूँ, २।९), शालि (धान, २।९९)
भाष (सहद, २।१५६), कल्पपादक (कल्पवृक्ष, ३।४९), जम्बू वृक्ष (जामुन,
३।४८), निम्ब (नीम, ३।७०), कुश (कुशा, ३।२९७), व्रीहि (धान, ४।१०९),
कदली (केला, ५।२८१), आमलकी (आंवला), तोष (६।९१), कविरथ (कैया, ६।९१),
अगुध (६।९१), चंदन (६।९१), प्लक्ष (६।९१), अर्जुन (६।९१), कदंब (९।९१),
आम्र (आम ६।९१), प्रियाल (अचार, ६।९१), धव (६।९१), दाडिमी (६।९२),
पूग (सुपारी ६।९२), कंकोल (६।९२), लवङ्ग (लौंग, ६।९२), अश्वत्थ (पीपल,
६।३९१), सर्षप (सरसों, ९।१६९), शिम्ब (११।३२०), नमोऋक्ष (१२।७६),
वेणु (बांस, १२।२५८), कोद्रव (कोबों, १३।६८), बदर (बेर, १४।२४९),
किशुक (पलाश, १९।४९), सप्तपर्णवृक्ष (२०।३८), वटवृक्ष (२०।३७), शालवृक्ष
(२०।३९), सरलवृक्ष (देवदारु, २०।४०), प्रियंगु (२०।४१, ४२), शिरीषवृक्ष
(२०।४३), नागवृक्ष (२०।४४), प्लक्ष (२०।४६), तिन्दुक (तेंदू, २०।४७),
पाडला (पाटलावृक्ष) २०।४८, दक्षिपर्ण (२०।५१), नन्दवृक्ष (२०।५२), तिलक-
वृक्ष (२०।५३), चम्पकवृक्ष (२०।५६), बकुलवृक्ष (२०।५७), मेरुष्णवृक्ष
(२०।५८), वववृक्ष (२०।५९), ताम्बूल (नागवल्ली, २०।१३९), हरिचन्दन
(२०।१३९), कर्णिकार (कनेर, २१।८७), लोघ्र (२१।८७), प्रियाल (२१।८७),
काश (कौंस, २१।१३३), किम्पाक (२९।७७), एरण्ड (३२।६०), शालमली
(३२।१९४), कर्णिकार (३३।८३), किजल्क (३८।१३), यूथिका (४०।८),
मल्लिका (मालती, ४०।८), नागा (नागकेशर, ४०।८), वंश (बांस, ४१।८),
हृद्गुध (४१।२६), तिम्तिङ्गी (इमली, ४२।११), विभीतक (बहेबे, ४२।११),
लक्ष (लाख, ४२।११), अक्षोट (अखरोट, ४२।११), पाटल (गुलाब, ४२।१२),

आम्रातक (४२।१२), ताल (४२।१३), तमाल (४२।१३), मन्दि (४२।१३), भूर्ज (भोजवृक्ष, ४२।१४), गुलकैवट (४२।१४), सित अगुरु (४२।१४), सफेद अगुरु, असित अगुरु (काला अगुरु, ४२।१४), रम्भा (४२।१४), केला, पद्मक (४२।१५), मुचिलिन्द (४२।१५), कुटिल (४२।१५), पारिजातक (४२।१५), बन्धूक (दुपहरिया, ४२।१५), केतकी (४२।१५), मधूक (महुआ, ४२।१५), खदिर (खैर, ४२।१५), मदन (मैदार, ४२।१६), सज्जर (खजूर, ४२।१६), नारिंग (नारंगी, ४२।१६), असन (४२।१६), रस (रसोद, ४२।१७), शमी (४२।१७), हरीतकी (४२।१७), कोविदार (काचनार, ४२।१७), करज (४२।१८), कुष्ठ (४२।१८), कालीव (४२।१८), उत्कच (४२।१८), अजमोदक (अजमोद, ४२।१८), जाति (चम्पा, ४२।१८), धातकी (आंवला, ४२।१९), चवि (चव्य, ४२।१९), कूर्षक (४२।१९), एला (इलायची, ४८।१९), रत्नचंदन (लालचंदन, ४२।१९), वेय (बैत, ४२।२०), श्यामलता (४२।२०), हरिद्रु (४२।२०), स्पदन-विल्व (तेन्दू, ४२।२०), चिरविल्व (वेल, ४२।२०), मेथिक (मेथी, ४२।२०), अरडूक (४२।२१), बीजक (बीजसार, ४२।२१), शंवाल (सेवार, ४२।६६), पुन्नाग (४२।१५), पनस (कटहल, ५३।१९७), परिभद्र (६२।४६), कुरवक (९५।१५), सहकार (आम, ९७।८५), धातकी (९९।३३), कर्कंधु (बैर, ९९।४८), कपिकच्छू (करेंच, ९९।४९), गुंजा (गुमची, ९९।५०), अम्भोज (कमल, १२०।६) ।

लतायें

प्राक्षा (२।१८), माधवी (२८।८८), वंशलता (३७।६५), अतिमुक्ताकलता (३९।८), ताम्बूलवल्ली (४२।१९), प्रियंगुलतिका (४२।३५), चित्रभूत (ककड़ी, ८०।१५४) तथा कूष्माण्ड (काशीफल, ८०।१५४) ।

पुष्प

पद्म (कमल, १।६, १।१६), कुन्द (१।७), शिरीष (२।४६), सरोरुह (कमल, २।८४), कदम्ब (२।११६), कुमुद (२।२१७), पुन्नाग (३।१२८), मालती (३।१२८), कुन्द (३।१२८), चम्पक (चम्पा, ३।१२८), बकुल (मोलिधी, ७।१५१, केतकी (११।३८१), कुमुदवती (१५।५४), केसर (१५।६७), किशु-कोत्कर (पलाश के फूल, १८।४९), इन्दीवर (नीलकमल, २५।२६), उत्पल (३०।२), पुण्डरीक (३८।५१), बन्धूक (४४।६१), धातपत्र (कमल, ५३।२३), यक्षिका (जुही, ७३।१३१), अंकोट (९५।१५), तथा सहस्रच्छदर्न पद्म (१०५।४८) ।

उद्यान

पञ्चचरित में निम्नलिखित उद्यानों के नाम आए हैं—विपुल उद्यान (२१।३६), महेंद्रोदय (२९।९०), वसन्ततिलक (३९।९७), देवरमणोद्यान (४६।७१), देवार्चक (४८।४८), प्रमदोद्यान (७२।२४), कुसुमामोद (८४।१३), तिलक (८५।४०), कुसुमायुध (पर्व ७८-मध्यभाग), कामोद्यान (पर्व ७८-मध्य-भाग), पाण्डुकोद्यान (१२।८४, ८५) प्रकीर्णक (४६।१४५), जनानन्द (४६।१४५), सुखसेव्य (४६।१४५), समुच्चय (४६।१४५), चारणप्रिय (४६।१४५), निबोध (४६।१४५), अक्षय (४६।१४५), तथा भवनोन्माद (१९।६४) ।

वन

पञ्चचरित में निम्नलिखित वनों के नाम आए हैं—

भूताटवी (१।७५), दादिसीवन (२।१६), अर्जुनवन (२।२०), पद्मवन (२।११७), भद्रघालवन (६।१३४), मौमनस वन (६।१३४), नन्दनवन (६।१३४), मौमवन (७।२५७), सन्दारुणारण्य (८।२४), पाण्डुकवन (११२।४०), विन्ध्यारण्य (१८।३९), भूतरव वन (१८।४८), कदलीकानन (१९।५३), परियात्रा (३२।२८), शेषुकान्तार (३७।४५), कालंजर (५९।१२), रक्ताशोकवन (६२।४६) किशुककानन (६२।४६), परिभद्रदुमारण्य (६२।४६), स्वापद (६४।५५), कपित्थवन (६४।७६), दण्डकारण्य (८२।१०), निकुंजवन (८५।६३), गिरिवन (८५।७९), शल्लकी (८५।१५१), तिलकवन (९१।२६), कुमुदखण्ड (९३।१), सिंहरवा (१०२।६९) तथा सहस्राश्रवन (१०९।२६५) ।

सरोवर

पञ्च (२१।२१), महापञ्च (२१।२१) ।

नदियाँ

गङ्गादि^{५५८} चौदह नदियाँ—जम्बू द्वीप में गङ्गादि चौदह नदियों का निर्देश पञ्चचरित में किया गया है । तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार ये चौदह नदियाँ ये हैं—१-गङ्गा, २-सिन्धु, ३-रोहित, ४-रोहितास्या, ५-हरित्, ६-हरिकान्ता, ७-सीता, ८-सीतोदा, ९-नारी, १०-नरकान्ता, ११-सुवर्णकूला, १२-रूप्यकला, १३-रक्ता, १४-रक्तोदा ।

गङ्गा^{५५९}—वर्तमान गङ्गा नदी । इसका जाह्नवी^{५६०} नाम भी आया है ।

९२ : पथचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

शर्वरी^{५६१}—परिशान्नानामक वन में स्थित एक नदी, जिसके किनारे अनेक वावर रहते थे ।

नर्मदा^{५६२}—

कर्णरवानदी^{५६३}—

कुशाग्रगिरि^{५६४}—(विपुलाचल) मगध देश का राजगृह के समीप का एक पर्वत जहाँ भगवान् महावीर का समवसरण आया था ।

विजयार्ध पर्वत^{५६५}—भरत और ऐरावत क्षेत्र में दो रजतमय विजयार्ध पर्वत हैं ।^{५६६}

वंशपर्वत^{५६७}—वंशस्थल पर्वत ।

विपुल^{५६८}—विपुलाचल ।

सहामेरु^{५६९}—(सुमेरु पर्वत)—जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु पर्वत है । यह पर्वत कभी नष्ट नहीं होता । इसका मूलभाग वज्र अर्थात् हीरों का बना है और ऊपर का भाग सुवर्ण तथा मणियों एवं रत्नों से निर्मित है ।^{५७०} मोक्षार्थ स्वर्ग की भूमि में और इस पर्वत के शिखर में केवल बाल के अग्रभाग बराबर ही अन्तर रह जाता है ।^{५७१} यह निम्नानवे हजार योजन ऊपर उठा है और एक हजार योजन नीचे पृथ्वी में प्रविष्ट है ।^{५७२} यह पर्वत पृथ्वी पर दस हजार योजन और शिखर पर एक हजार योजन चौड़ा है ।^{५७३}

वक्षारगिरि^{५७४}—यहाँ से ऋषभदेव का निर्वाण हुआ था ।

त्रिकूटाचल^{५७५}—राक्षस द्वीप के मध्य में स्थित पर्वत ।

अष्टापद^{५७६}—कैलाश पर्वत ।

सम्मोदशिखर^{५७७}—यहाँ से वासुपूज्य, ऋषभदेव, नेमिनाथ तथा महावीर को छोड़कर शेष २० तीर्थंकर निर्वाण को प्राप्त हुए थे ।

५६१. पृष्ठ० ३२।२८ ।

५६३. वही, ४०।४० ।

५६५. वही, १।५९ ।

५६७. वही, १।८४ ।

५६९. वही, ३।३३ ।

५७१. वही, ३।३४ ।

५७३. वही, ३।३६ ।

५७५. वही, ५।१५५ ।

५७७. वही, ५।२४६ ।

५६२. पृष्ठ० १०।६० ।

५६४. वही, १।४६ ।

५६६. वही, ३।४१ ।

५६८. वही, २।१०२ ।

५७०. वही, ३।३३ ।

५७२. वही, ३।३५ ।

५७४. वही, ३।४२ ।

५७६. वही, ५।१९९ ।

मानुष पर्वत—मानुषोत्तर पर्वत । इसका मनुष्य उल्लंघन कर नहीं जा सकते ।

अंजनक्षोणीधर^{५७८}—अंजनगिरि अथवा नीलगिरि ।

ऊर्जयन्त^{५७९}—गिरनार पर्वत । यहाँ से नर्मिनाथ भगवान् का निर्वाण हुआ था ।

निकुञ्जगिरि^{५८०}—जम्बूद्वीप का एक पर्वत ।

चन्दनगिरि^{५८१}—मलयगिरि ;

वंशाद्रि^{५८२}—रामगिरि ।

तूणीगति^{५८३}—यहाँ से जम्बूद्वीप नामक मुनि अहमिन्द्र अवस्था को प्राप्त हुए थे ।

हिमवान्^{५८४}—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है ।

महाहिमवान्^{५८५}—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है ।

निषध^{५८६}—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है ।

नील^{५८७}—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है ।

रुक्मि^{५८८}—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है ।

शिखरी^{५८९}—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है ।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पर्वतों के नाम भी पञ्चचरित में आये हैं—

५७८. पृष्ठ ८। १९७ ।

५८०. वही, २७। १७ ।

५८२. वही, ४०। ४५ ।

५८४. वही, १०५। १५७ ।

५८६. वही, १०५। १५७ ।

५८८. वही, १०५। १५८ ।

५७९. पृष्ठ ८०। ५८ ।

५८१. वही, ३३। ३१६ ।

५८३. वही, ८०। १३७ ।

५८५. वही, १०५। १५७ ।

५८७. वही, १०५। १५७ ।

५८९. वही, १०५। १५८ ।

मधुपर्क (१।५८), अस्ताचल (२।२०१), पंचगिरि (५।२७), किष्कु (६।८२), बलाहक (८।२४), सन्ध्यावर्त (८।२४), मेघरव (८।९०), गुंज (८।२०१), गन्धमादन (१३।३८), विन्ध्य (१४।२३०), वसन्तगिरि (२१।८०), नन्दीगिरि (२७।१६), कलिन्दगिरि (२७।१६), सह्याद्रि (२७।८७), नगोत्तर (३०।१३२), हिमवत् (हिमालय, ७६।१०), हिमनग (हिमालय, ५०।३२), चित्रकूट (३३।२०) वंशधर (३९।११), पुष्पगिरि (५३।२०१), बेलम्बर (५४।६४), सुबेल (५४।७०) मन्दर (८९।८), दुर्गगिरि (८९।१३९), आपवस (८८।३९), सुरदुन्दुभि (११२।७३) ।

समुद्र

पञ्चचरित में निम्नलिखित समुद्रों के नाम मिलते हैं —

लवणाम्भोधि (लवण समुद्र) ३।३२, दक्षिण समुद्र (६।५०८), क्षीरसमुद्र (७।१७१), स्वयम्भूरमण (८९।७२) ।

पशु-पक्षी आदि जीवजन्तु

पञ्चचरित में निम्नलिखित पशु-पक्षी आदि जीवजन्तुओं का उल्लेख हुआ है—कुम्भ^{५५०}, वारण^{५३९} (हाथी), हरिण^{५३२}, शम्बुक^{५३३}, जलोका^{५५४} (जोंक), हंस^{५५५}, काक^{५५६}, उलूक^{५५७} (उल्लू), गो^{५५८} (गाय), अश्विक^{५२९} (भेड़), सष्ट^{६००} (छैंट), बलाका^{६०१} (बगुला), मयूर^{६०२} (मोर), गज^{६०३} (हाथी), ग्राह^{६०४} (मगर), कोक^{६०५} (चकवा), राजहंस^{६०६}, मृग^{६०७} (हरिण), सिंह^{६०८}, गण्डपद^{६०९} (पानी का साँप), अहि^{६१०} (साँप), शूनः^{६११} (कुत्ता),

५९०. पद्य० १।११ ।

५९२. वही, १।१९ ।

५९४. वही, १।३१ ।

५९६. वही, १।३६ ।

५९८. वही, २।१२ ।

६००. वही, २।२४ ।

६०२. वही, २।२८ ।

६०४. वही, २।६३ ।

६०६. वही, २।२१० ।

६०८. वही, २।२४७ ।

६१०. वही, २।४७ ।

५९१. पद्य० १।१९ ।

५९३. वही, १।३१ ।

५९५. वही, १।३५ ।

५९७. वही, १।३७ ।

५९९. वही, १।२४ ।

६०१. वही, २।१० ।

६०३. वही, २।५६ ।

६०५. वही, २।२०३ ।

६०७. वही, २।२४७ ।

६०९. वही, २।२४७ ।

६११. वही, २।२४७ ।

सह^{११८} (एक प्रकार का मृग), महिष^{११९} (भैंसा), वृषभ^{१२०} (बैल), मोन^{१२१} (मछली), नक^{१२२}, कामधेनु^{१२३}, बाजि^{१२४} (घोड़ा), कालेयक^{१२५}, ऋगाल^{१२६}, वृषदंश^{१२७}, वृष^{१२८} (बैल), लघोत^{१२९} (जुगनू), मधुकर^{१३०}, मेघ^{१३१} (मेढा), वृक^{१३२} (भेड़िया), क्रीच^{१३३}, सारस^{१३४}, शिल्पि^{१३५} (मयूर), शादूल^{१३६}, बोलेय^{१३७} (गधा), खर^{१३८} (गधा), अघाघ, छाग^{१३९} (बकरा), वर्हण^{१४०} (भोर), शयु^{१४१} (अजगर), कुरंग^{१४२} (हरिण), शाखामग^{१४३} (मन्दार), खड्गि^{१४४} (गेंडा हाथी), सारङ्गक^{१४५} (हरिण), कूम^{१४६} (कछुआ), गण्डपद^{१४७} (केंचुआ), शललि^{१४८} (सेहो), वेनतेय^{१४९} (गरुड), कीट^{१५०} (कीड़ा), शरभ^{१५१} (अष्टापद), वृश्चिक^{१५२} (बिच्छू), शक्ति^{१५३} (सोप), मार्जार^{१५४} (बिल्ली), श्व^{१५५} (मछली), कारण्डव^{१५६}, वक्रवाक^{१५७} (बकवा), सारिका^{१५८} (मैना),

६१२. पद्य० २।२४८ ।

६१४. वही, ३।१२५ ।

६१६. वही, ३।१३४ ।

६१८. वही, ४।६४ ।

६२०. वही, ५।१०८ ।

६२२. वही, ५।१०८ ।

६२४. वही, ५।३०७ ।

६२६. वही, ५।१३६ ।

६२८. वही, ६।१६५ ।

६३०. वही, ७।३९ ।

६३२. वही, ७।४८ ।

६३४. वही, ७।६९ ।

६३६. वही, ९।१२१ ।

६३८. वही, ९।१२३ ।

६४०. वही, ९।१५२ ।

६४२. वही, १२।२४६ ।

६४४. वही, १२।३१४ ।

६४६. वही, १४।३३ ।

६४८. वही, १४।२८० ।

६५०. वही, १६।१०५ ।

६५२. वही, १७।२४ ।

६१३. पद्य० २।१० ।

६१५. वही, ३।१३१ ।

६१७. वही, ३।३२० ।

६१९. वही, ५।१०८ ।

६२१. वही, ५।१०८ ।

६२३. वही, ५।१२९ ।

६२५. वही, ५।१३८ ।

६२७. वही, ६।१४३ ।

६२९. वही, ६।२७५ ।

६३१. वही, ७।४० ।

६३३. वही, ७।६९ ।

६३५. वही, ९।१२० ।

६३७. वही, ९।१२३ ।

६३९. वही, ९।१३८ ।

६४१. वही, ११।२७७ ।

६४३. वही, १२।३१२ ।

६४५. वही, १४।३३ ।

६४७. वही, १४।७७ ।

६४९. वही, १६।१०४ ।

६५१. वही, १६।१०७ ।

१६ : पञ्चवरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

कीर^{१५६} (तोता), मरीचुप^{१५४}, पुंस्कोकिला^{१५५} (कोयल), आशीविषमहानाग^{१५६},
गुह^{१५७} (नीध), ऋज^{१५८} (रीछ), गोमायु^{१५९} (सियाग), मत्स्य^{१६०}, कुररी^{१६१},
खलम^{१६२} (टिड्डी, पसिया), कंक^{१६३}, घट्पद^{१६४} (भ्रमर), हरि^{१६५} (सिंह),
द्वीपि^{१६६} (गार्दूल, खोता), केवारी^{१६७} (सिंह), मातंग^{१६८} (हाथी), उवाङ्क^{१६९}
(कोवा), जम्बुक^{१७०} (शृगाल), तुरङ्ग^{१७१} (घोड़ा), पन्नग^{१७२} (साँप),
भोमि^{१७३} (साँप), श्येन^{१७४} (बाज), गजेन्द्र^{१७५} (सिंह), दिग्गज^{१७६}, साम्र-
बुह^{१७७} (मुगी), अवव^{१७८} (घोड़ा), उवाल^{१७९} (साँप), शुक्र^{१८०} (तोता),
कौशिक^{१८१} (उल्लू), तरसु^{१८२} (भेड़िया), चमरी^{१८३} (चमरी नामक मृग या
गाय), दवा^{१८४}, गवय^{१८५} (नीलगाय), सारमेय^{१८६} (कुत्ता), द्विरद^{१८७},
तैर्ययु, ^{१८८} धम्ति^{१८९} (हाथी), रासम^{१९०} (गधा), करि^{१९१} (हाथी), गरुड^{१९२},

६५३. पञ्च० १७।२९४ ।

६५५. वही, २१।८५ ।

६५७. वही, २२।६८ ।

६५९. वही, २२।६८ ।

६६१. वही, २६।१५० ।

६६३. वही, २७।७३ ।

६६५. वही, २८।८७ ।

६६७. वही, २८।१४८ ।

६६९. वही, २८।१४३ ।

६७१. वही, २८।२१८ ।

६७३. वही, २९।७७ ।

६७५. वही, ३२।४४ ।

६७७. वही, २९।१०० ।

६७९. वही, ३२।१९२ ।

६८१. वही, ३३।६ ।

६८३. वही, ३३।२७ ।

६८५. वही, ३३।२९ ।

६८७. वही, ३७।१७ ।

६८९. वही, ३७।१९ ।

६९१. वही, ३७।४४ ।

६५४. पञ्च० २०।१०४ ।

६५६. वही, ८१।१०० ।

६५८. वही, २२।६८ ।

६६०. वही, २६।८४ ।

६६२. वही, २७।११ ।

६६४. वही, २८।२७ ।

६६६. वही, २८।१०४ ।

६६८. वही, २८।१४८ ।

६७०. वही, २८।१९३ ।

६७२. वही, २८।२२९ ।

६७४. वही, ३०।१३० ।

६७६. वही, ३२।५३ ।

६७८. वही, ३२।१११ ।

६८०. वही, ३३।६ ।

६८२. वही, ३३।२७ ।

६८४. वही, ३३।२८ ।

६८६. वही, ३३।२२ ।

६८८. वही, ३७।१७ ।

६९०. वही, ३७।४० ।

६९२. वही, ३७।१२४ ।

व्यापक^{१९३}, स्त्रीपृष्ठ^{१९४} (हस्तिनी), कुलीर^{१९५} (केकड़ा), शिवा^{१९६}
(शृगालियाँ), नाग^{१९७} (हाथी), अजा^{१९८} (बकरी), मेले^{१९९} (गाऊँ),
महोक्ष^{२००} (बैल), जीवजीवक^{२०१} (बकरी), मेरुण्ड^{२०२}, श्येन^{२०३} (बाज),
कुरुर^{२०४}, कपोत^{२०५} (कबूतर), भृंगराज^{२०६}, भारद्वाज^{२०७}, गवली^{२०८} (भैंसा),
वराह^{२०९} (शूकर), सुरभिपुत्र^{२१०} (बैल), वायस^{२११} (कौआ), गोधरः^{२१२}
(गुहेरा), दम^{२१३} (हाथी), द्विप^{२१४}, पतंग^{२१५}, मण्डूकि^{२१६} (मेंढकी), शशक^{२१७}
(खरगोश), मेक^{२१८} (मेंढक), मूषक^{२१९} (चूहा), बहिण^{२२०} (मयूर), पुदाकुत^{२२१}
(अजगर), रुत^{२२२} (मृगविशेष), हस्ती^{२२३} (हाथी), दर्दुर^{२२४} (मेंढक),
वर्षाभू^{२२५} (मेंढक), कुक्कुट^{२२६} (मुर्गी), शिशुमार^{२२७}, कोड^{२२८} (सूकर),
बकरी^{२२९}, सुवीशत^{२३०} (सेही), गर्मुत^{२३१} (मोरा), सुमर^{२३२} (सामर),

६९३. पद्य० ३७।१६३ ।

६९५. वही, ३९।२७ ।

६९७. वही, ४१।४२ ।

६९९. वही, ४१।१२९ ।

७०१. वही, ४२।२७ ।

७०३. वही, ४२।२७ ।

७०५. वही, ४२।२८ ।

७०७. वही, ४२।२८ ।

७०९. वही, ४२।४३ ।

७११. वही, ४८।५० ।

७१३. वही, ७०।३४ ।

७१५. वही, ८३।५३ ।

७१७. वही, ८५।६३ ।

७१९. वही, ८६।६४ ।

७२१. वही, ८६।६४ ।

७२३. वही, ८५।६५ ।

७२५. वही, ८५।६६ ।

७२७. वही, ८५।६८ ।

७२९. वही, ९९।६५ ।

७३१. वही, ९९।५४ ।

६९४. पद्य० ३८।२५ ।

६९६. वही, ३९।६२ ।

६९८. वही, ४१।१२८ ।

७००. वही, ४२।७ ।

७०२. वही, ४२।२७ ।

७०४. वही, ४२।२७ ।

७०६. वही, ४२।२८ ।

७०८. वही, ४२।३८ ।

७१०. वही, ४२।४६ ।

७१२. वही, ४८।१७७ ।

७१४. वही, ७३।१०७, १६० ।

७१६. वही, ८३।६४ ।

७१८. वही, ८५।६४ ।

७२०. वही, ८६।६४ ।

७२२. वही, ८६।८४ ।

७२४. वही, ८५।६५ ।

७२६. वही, ८५।६६ ।

७२८. वही, ९०।६ ।

७३०. वही, ९९।५४ ।

७३२. वही, १०४।११९ ।

९८ : पञ्चवर्त और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

पारायत^{७३३} (कबूतर), तुरग^{७३४} (घोड़ा), एणक^{७३५}, नैचिकी^{७३६} (बैल),
प्लवंग^{७३७} (बन्वर), काववेय^{७३८} (सर्प), द्विजोत्तमः^{७३९} (गर्ह) तथा परपुष्ठा^{७४०}
(शेरिङ्ग) ।

नगर-ग्राम

- रथनूपुर^{७४१}—विजयार्ध पर्वत के दक्षिण भाग का एक नगर ।
किष्किन्धपुर^{७४२}—मधुपर्धत के शिखर पर स्थित एक नगर ।
रामपुरी^{७४३}—अरुण ग्राम के पास देवों द्वारा बसायी हुई नगरी ।
राजगृह^{७४४}—मगधदेश का एक समृद्ध नगर । इसे कुशाग्रनगर भी कहते
थे । यहाँ मुनिसुव्रत नाथ भगवान् का जन्म हुआ था ।^{७४५}
त्रिपुर^{७४६}—देवताओं का नगर ।
कुबेरनगर^{७४७}—कुबेर की नगरी ।
यमपत्तन^{७४८}—यमराज का नगर ।
धूतपत्तन^{७४९}—धूतों का नगर ।
काञ्चनपुर^{७५०}—विदेह क्षेत्र का एक नगर ।
किष्कुपुर^{७५१}—दक्षिणसागर के द्वीप में स्थित नगर ।^{७५२}
अलंकारपुर^{७५३}—पाताल लंका ।^{७५४}
असुरनगर^{७५५}—इसे असुरसंगीतनगर भी कहते थे । यह विजयार्ध पर्वत
की दक्षिण श्रेणी में स्थित था ।
शतद्वार^{७५६}—यह नगर धातकी स्रण्ड द्वीप के ऐरावत क्षेत्र में स्थित था ।

७३३. पृष्ठा १०५।१५ ।

७३५. वही, ९९।४८ ।

७३७. वही, १०२।१२६ ।

७३९. वही, ११७।२८ ।

७४१. वही, १।५९ ।

७४३. वही, १।८३ ।

७४५. वही, २०।५६ ।

७४७. वही, २।३८ ।

७४९. वही, २।४० ।

७५१. वही, ६।१२२, १७७ ।

७५३. वही, ६।४९०, ५०० ।

७५५. वही, ७।११७ ।

७३४. पृष्ठा १०६।४० ।

७३६. वही, १०२।१११ ।

७३८. वही, ११७।२८ ।

७४०. वही, ३२।३० ।

७४२. वही, १।६६, १।१५ ।

७४४. वही, २।३३ ।

७४६. वही, २।३६ ।

७४८. वही, २।३९ ।

७५०. वही, ५।३५१ ।

७५२. वही, ७।११५ ।

७५४. वही, ६।५०६ ।

७५६. वही, १२।२२ ।

पुण्डरीकिणी^{७५७}—यह नगरी ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ तथा क्षान्तिनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

सुसीमा^{७५८}—यह नगर अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ तथा कुन्धुनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

क्षेमा^{७५९}—यह नगरी सुपार्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त तथा अरुनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

सत्तनसंचयपुरी^{७६०}—यह नगरी शीतल, श्रेयांस तथा वासुपूज्य तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

सुमहानगर^{७६१}—यह नगर विमलनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

अरिष्टपुर^{७६२}—यह नगर अनन्तनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

सुमाद्रिका^{७६३}—यह नगरी धर्मनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

वीतशोका^{७६४}—यह नगरी मल्लिनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

चम्पा^{७६५}—यह नगरी मुनिमुदतनाथ भगवान् की पूर्वभव की राजधानी थी । इसमें वासुपूज्य जिनेन्द्र का जन्म तथा मोक्ष हुआ था ।^{७६६}

कौशाम्बी^{७६७}—यह नगरी नमिनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी । इसे वत्सनगरी भी कहते थे । यहाँ पद्मप्रभ जिनेन्द्र का जन्म हुआ था ।^{७६८}

नागपुर^{७६९}—यह नगर नेमिनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी ।

साकेता^{७७०}—यह नगरी पार्श्वनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी । इसमें अजितनाथ^{७७१} तथा सुमतिनाथ^{७७२} तीर्थंकर का जन्म हुआ था ।

७५७. पृष्ठ ० २०।११, १४ ।

७५९. वही, २०।११, १५ ।

७६१. वही, २०।१४ ।

७६३. वही, २०।१४ ।

७६५. वही, २०।१५ ।

७६७. वही, २०।१६ ।

७६९. वही, २०।१६ ।

७७१. वही, २०।३८ ।

७५८. पृष्ठ ० २०।११, १५ ।

७६०. वही, २०।१२ ।

७६२. वही, २०।१४ ।

७६४. वही, २०।१५ ।

७६६. वही, २०।४८, ६१ ।

७६८. वही, २०।४२ ।

७७०. वही, २०।१६ ।

७७२. वही, २०।४१ ।

छत्राकारपुर^{७७३}—यह वर्द्धमान तीर्थंकर की पूर्वभक्ष की राजधानी थी ।

विनीतानगरी—इसे अयोध्या भी कहते थे । इसमें ऋषभदेव तथा अनन्त-
नाथ का जन्म हुआ था ।^{७७४} यह अभिनन्दननाथ तीर्थंकर की राजधानी थी^{७७५} ।
यह नगरी नी योजन चौड़ी तथा बारह योजन लम्बी थी । इसकी परिधि अष्ट-
सीस भोजन थी^{७७६} ।

काशीपुरी^{७७७}—इस नगरी में सुषार्वनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था ।

चन्द्रपुरी^{७७८}—इस नगरी में चन्द्रप्रभ तीर्थंकर का जन्म हुआ था ।

काकन्दौ^{७७९}—इस नगरी में सुविधि (पुष्पदन्त) तीर्थंकर का जन्म हुआ
था ।

भद्रिका^{७८०}—इस नगर में शीतलनाथ भगवान् का जन्म हुआ था ।

सिंहपुरी^{७८१}—इस नगरी में श्रेयासनाथ भगवान् का जन्म हुआ था ।

काम्पिल्यनगर^{७८२}—इसमें विमलनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था ।

रत्नपुरी^{७८३}—यह धर्मनाथ तीर्थंकर की जन्मनगरी थी ।

हस्तिनागपुर^{७८४}—इस नगर में शान्ति कुण्ड तथा अरनाथ तीर्थंकर का
जन्म हुआ था ।

मिथिला—इस नगर में मल्लिनाथ तथा नमिनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ
था ।^{७८५}

शौरिपुर^{७८६}—यहाँ नेमिनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था ।

वाराणसी^{७८७}—यहाँ पार्श्वनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था ।

कुण्डपुर^{७८८}—यहाँ वर्द्धमान तीर्थंकर का जन्म हुआ था ।

पावा^{७८९}—यहाँ वर्द्धमान तीर्थंकर का निर्वाण हुआ था ।

हरिपुर^{७९०}—यह नगर विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित था ।

७७३. पृष्ठ० २०।१६ ।

७७५. वही, २०।४० ।

७७७. वही, २०।४३ ।

७७९. वही, २०।४५ ।

७८१. वही, २०।४७ ।

७८३. वही, २०।५१ ।

७८५. वही, २०।५५, २०।५७ ।

७८७. वही, २०।५९ ।

७८९. वही, २०।६० ।

७७४. पृष्ठ० २०।३७ ।

७७६. वही, ८१।१२० ।

७७८. वही, २०।४४ ।

७८०. वही, २०।४६ ।

७८२. वही, २०।४९ ।

७८४. वही, २०।५२-५४ ।

७८६. वही, २०।५८ ।

७८८. वही, २०।६० ।

७९०. वही, २१।४ ।

मधूरमालतगर^{७९१}—यह विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण ओर कैलाश पर्वत के उत्तर की ओर स्थित अर्द्धवर्षर देश का एक नगर था ।

नैमिक^{७९२}—एक ग्रामविशेष । पद्यचरित के कुछ संस्करणों में इसका नाम नैमिष भी मिलता है ।^{७९३}

मेघरव^{७९४}—विन्ध्यवन की भूमि में स्थित एक स्थान है जहाँ इन्द्रजित के साथ मेघवाहन मुनि रहे । उपर्युक्त घटना के कारण यह स्थान मेघरव तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

पिठरक्षित^{७९५}—रजोगुण तथा तमोगुण से रहित कुम्भकर्ण योगी नर्मदा के जिस तीर पर निर्वाण को प्राप्त हुए थे वहाँ पिठरक्षित नामक तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ।

प्रजाग^{७९६}—नीलांजना अप्सरा का नृत्य देख भगवान् ऋषभदेव अपने सौ पुत्रों को राज्य व प्रजा से निस्पृह हो घर छोड़कर तिलक नाम के उद्यान में गए इसलिए लोक में वह उद्यान प्रजाग इस नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

चन्द्रादित्यपुर^{७९७}—धुष्कर द्वीप का एक नगर ।

रत्नपुर^{७९८}—विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण दिशा का एक नगर ।

क्षेत्र^{७९९}—भरतक्षेत्र का एक नगर ।

क्षेमपुरी^{८००}—मेरुपर्वत की पश्चिम दिशा में स्थित एक नगरी ।

दिति^{८०१}—ऐरावत क्षेत्र का एक नगर ।

मत्तकोकिल^{८०२}—यह जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में विजयावती नगरी के समीप स्थित एक ग्राम था ।

विजयावती^{८०३}—जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र की एक नगरी ।

उपर्युक्त नगरों के अतिरिक्त पद्यचरित में पुष्पान्तक,^{८०४} अरुणग्राम,^{८०५}

७९१. पद्य० २/७।५-७ ।

७९२. पद्य० ५५।५७ ।

७९३. पद्यपुराण (भाग २) पृ० ३५५ (अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य) ।

७९४. पद्य० ८०।१३६ ।

७९५. पद्य० ८०।१४० ।

७९६. वही, ८५।३८-४० ।

७९७. वही, ८५।९६ ।

७९८. वही, ९३।१ ।

७९९. वही, १०६।१० ।

८००. वही, १०६।७५ ।

८०१. वही, १०६।१८७ ।

८०२. वही, १०६।१९० ।

८०३. वही, १०६।१९० ।

८०४. वही, १।६१ ।

८०५. वही, १।८३ ।

कुमदावली, ^{८०६} धनपालपुर, ^{८०७} विहायस्तिलक, ^{८०८} सद्युक्त, ^{८०९} राजोवली, ^{८१०}
 पद्मक, ^{८११} चन्द्रपुर, ^{८१२} रत्नसंख्य, ^{८१३} पृथिवीपुर, ^{८१४} किन्नरगीत, ^{८१५} मोदन-
 पुर, ^{८१६} गन्धर्वगीतनगर, ^{८१७} सन्ध्याकार, ^{८१८} सुबेल, ^{८१९} मनोह्लाद, ^{८२०} मनो-
 हर, ^{८२१} हंसद्वीप, ^{८२२} हरि, ^{८२३} योष, ^{८२४} समुद्र, ^{८२५} कांचन, ^{८२६} अर्धस्वर्गो-
 त्कण्ट, ^{८२७} आवर्त, ^{८२८} विषट, ^{८२९} अम्भोद, ^{८३०} उत्कण्ट, ^{८३१} उत्कट, ^{८३२}
 स्फुट, ^{८३३} दुर्ग्रह, ^{८३४} तट, ^{८३५} तोप, ^{८३६} आवली, ^{८३७} रत्नद्वीप, ^{८३८} मेघपुर, ^{८३९}
 हरि, ^{८४०} जलधि, ^{८४१} छवि, ^{८४२} हंसद्वीप, ^{८४३} भरभम, ^{८४४} अर्धस्वर्गोत्कट, ^{८४५}
 रोषन, ^{८४६} अमल, ^{८४७} कान्त, ^{८४८} सर, ^{८४९} अलंघन, ^{८५०} नभोभानु, ^{८५१}

८०६. पद्य० ५।३७ ।
 ८०८. वही, ५।३८ ।
 ८१०. वही, ५।१२४ ।
 ८१२. वही, ५।१३५ ।
 ८१४. वही, ५।१३८ ।
 ८१६. वही, ५।१७९ ।
 ८१८. वही, ५।३७१ ।
 ८२०. वही, ५।३७१ ।
 ८२२. वही, ५।३७१ ।
 ८२४. वही, ५।३७१ ।
 ८२६. वही, ५।३७१ ।
 ८२८. वही, ५।३७२ ।
 ८३०. वही, ५।३७३ ।
 ८३२. वही, ५।३७३ ।
 ८३४. वही, ५।३७३ ।
 ८३६. वही, ५।३७३ ।
 ८३८. वही, ५।३७३ ।
 ८४०. वही, ६।६६ ।
 ८४२. वही, ६।६६ ।
 ८४४. वही, ६।६७ ।
 ८४६. वही, ६।६७ ।
 ८४८. वही, ६।६७ ।
 ८५०. वही, ६।६८ ।

८०७. पद्य० ५।३६ ।
 ८०९. वही, ५।९६ ।
 ८११. वही, ५।११४ ।
 ८१३. वही, ५।१३७ ।
 ८१५. वही, ५।१७९ ।
 ८१७. वही, ५।३६७ ।
 ८१९. वही, ५।३७१ ।
 ८२१. वही, ५।३७१ ।
 ८२३. वही, ५।३७१ ।
 ८२५. वही, ५।३७१ ।
 ८२७. वही, ५।३७२ ।
 ८२९. वही, ५।३७३ ।
 ८३१. वही, ५।३७३ ।
 ८३३. वही, ५।३७३ ।
 ८३५. वही, ५।३७३ ।
 ८३७. वही, ५।३७३ ।
 ८३९. वही, ६।२ ।
 ८४१. वही, ६।६६ ।
 ८४३. वही, ६।६६ ।
 ८४५. वही, ६।६७ ।
 ८४७. वही, ६।६८ ।
 ८४९. वही, ६।६७ ।
 ८५१. वही, ६।६८ ।

क्षेम, ^{८५२} वज्रपंजर, ^{८५३} मन्दरकुंज, ^{८५४} नाकार्धपुर, ^{८५५} हेमपुर, ^{८५६} प्रीतिकूट-
पुर, ^{८५७} कनकाभपुर, ^{८५८} सोतिःसंग, ^{८५९} मेघपुर, ^{८६०} यक्षगीत, ^{८६१} किन्नर-
पुर, ^{८६२} गन्धर्वपुर, ^{८६३} पुष्पान्तकपुर, ^{८६४} स्वयंप्रभ, ^{८६५} कुम्भपुर, ^{८६६} ज्योतिः-
प्रभपुर, ^{८६७} काम्पिल्यनगर, ^{८६८} सूर्योदयपुर, ^{८६९} मुरसंगीतपुर, ^{८७०} किष्कुप्रमोद-
नगर, ^{८७१} राजपुर, ^{८७२} दुर्लङ्घ्यनगर, ^{८७३} शिक्षापदनगर, ^{८७४} अरिजयपुर, ^{८७५}
अरुणनगर, ^{८७६} हनूरुहपुर, ^{८७७} महेंद्रनगर, ^{८७८} कर्णकुण्डलपुर, ^{८७९} पृथ्वीपुर, ^{८८०}
गोवर्धनपुर, ^{८८१} धान्यपुर, ^{८८२} विजयपुर, ^{८८३} शैलनगर, ^{८८४} द्वापुरी, ^{८८५}
चक्रपुर, ^{८८६} कुशाग्रपुर, ^{८८७} मथुरा, ^{८८८} पृथ्वीपुरी, ^{८८९} आनन्दपुरी, ^{८९०} नन्द-
पुरी, ^{८९१} सुसीमा, ^{८९२} कमलसंकलपुर, ^{८९३} कौतुकमङ्गलनगर, ^{८९४} विदग्ध-

८५२. पृष्ठ ६।६८ ।
८५४. वही, ६।४०९ ।
८५६. वही, ६।५६४ ।
८५८. वही, ६।५६७ ।
८६०. वही, ७।१११ ।
८६२. वही, ७।११८ ।
८६४. वही, ७।१६४ ।
८६६. वही, ८।१४२ ।
८६८. वही, ८।२८१ ।
८७०. वही, ८।४९४ ।
८७२. वही, ११।८ ।
८७४. वही, १३।५५ ।
८७६. वही, १७।१५४ ।
८७८. वही, १८।१५ ।
८८०. वही, २०।१२७ ।
८८२. वही, २०।१७० ।
८८४. वही, २०।२०७ ।
८८६. वही, २०।२२१ ।
८८८. वही, २०।२२२ ।
८९०. वही, २०।२३० ।
८९२. वही, २०।२३१ ।
८९४. वही, २४।२ ।

८५३. पृष्ठ ६।३९६ ।
८५५. वही, ६।४१६ ।
८५७. वही, ६।५६६ ।
८५९. वही, ७।९ ।
८६१. वही, ७।११८ ।
८६३. वही, ७।११८ ।
८६५. वही, ८।१३८ ।
८६७. वही, ८।१५० ।
८६९. वही, ८।३६२ ।
८७१. वही, ९।१३ ।
८७३. वही, १२।१३४ ।
८७५. वही, १३।७३ ।
८७७. वही, १७।३९७ ।
८७९. वही, १९।१०३ ।
८८१. वही, २०।१३७ ।
८८३. वही, २०।१८५ ।
८८५. वही, २०।२२१ ।
८८७. वही, २०।२२१ ।
८८९. वही, २०।२२९ ।
८९१. वही, २०।२३० ।
८९३. वही, २२।१७३ ।

१०४ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

नगर, ८९५ रन्ध्रपुर, ८९६ नन्दनिका, ८९७ सूरपुर ८९८ दानुग्राम, ८९९ पुष्कलावती-
नगरी, ९०० गान्धारी, ९०१ उज्जयिनी, ९०२ दशाङ्गपुर, ९०३ दशारण्यपुर, ९०४
कुन्दनगर, ९०५ वैजयन्तपुर, ९०६ नद्यावर्तपुरी, ९०७ क्षेमांजलिपुर, ९०८ वंशस्थ-
पुति, ९०९ पद्मिनी, ९१० यज्ञस्थान, ९११ कौमुदीनगरी, ९१२ गन्धवती, ९१३ कम्बर-
ग्राम, ९१४ अलंकारोदय, ९१५ मृत्तिकावती, ९१६ देवोपगीतनगर, ९१७ वेणातट, ९१८
कूर्मपुर, ९१९ बेलन्धरपुर, ९२० हंसपुर, ९२१ कुशस्थल, ९२२ प्रतिष्ठपुर, ९२३
असपुर, ९२४ भ्रान्तग्राम, ९२५ व्याघ्रपुर, ९२६ सुरेन्द्ररमण, ९२७ वालिलिखपुर, ९२८
दशाङ्गमोगनगर, ९२९ बन्धिप्रभ, ९३० आलोकनगर, ९३१ भीनगर, ९३२ मधुरा, ९३३
रविप्रभ, ९३४ शशाङ्कनगर, ९३५ शिवमन्दिर, ९३६ अमृतपुर, ९३७ लक्ष्मीधर, ९३८

८९५. पृष्ठ ० २६।१३ ।

८९७. वही, २८।११ ।

८९९. वही, ३०।११६ ।

९०१. वही, ३१।४१ ।

९०३. वही, ३३।७५ ।

९०५. वही, ३३।४३ ।

९०७. वही, ३७।६२ ।

९०९. वही, ३९।९ ।

९११. वही, ३९।१३७ ।

९१३. वही, ४१।११५ ।

९१५. वही, ४३।२५ ।

९१७. वही, ४८।९७ ।

९१९. वही, ४८।१६६ ।

९२१. वही, ५४।७७ ।

९२३. वही, ६४।५२ ।

९२५. वही, ८०।१५९ ।

९२७. वही, ८०।२१ ।

९२९. वही, ८२।१५ ।

९३१. वही, ८५।१४१ ।

९३३. वही, ८९।५८ ।

९३५. वही, ८९।१३३ ।

९३७. वही, ९४।५ ।

८९६. पृष्ठ ० २८।२१९ ।

८९८. वही, २८।११० ।

९००. वही, ३१।३० ।

९०२. वही, ३३।७४ ।

९०४. वही, ३३।८० ।

९०६. वही, ३६।११ ।

९०८. वही, ३८।५७ ।

९१०. वही, ३९।९५ ।

९१२. वही, ३९।१८० ।

९१४. वही, ४१।१२८ ।

९१६. वही, ४८।४३ ।

९१८. वही, ४८।१३८ ।

९२०. वही, ५४।६५ ।

९२२. वही, ५९।६ ।

९२४. वही, ७७।५७ ।

९२६. वही, १७३ ।

९२८. वही, ८२।१४ ।

९३०. वही, ९४।४ ।

९३२. वही, ८८।३९ ।

९३४. वही, ९४।४ ।

९३६. वही, ९४।४ ।

९३८. वही, ९४।५ ।

किन्नरोद्गीत^{१४९} जीमूतशिखर,^{१४०} मर्त्यानुगीत,^{१४१} बहुरथ,^{१४२} मलय,^{१४३} श्रीगृह,^{१४४} भास्कराभ,^{१४५} अरिजय,^{१४६} उमोति-पुर,^{१४७} शशिष्णाम,^{१४८} गान्धार,^{१४९} श्रीविजयपुर,^{१५०} यक्षपुर,^{१५१} तिलकपुर,^{१५२} पुण्डरीकपुर,^{१५३} पृथिवीनगर,^{१५४} लोकाक्षनगर,^{१५५} मृणालकुण्ड,^{१५६} वामली,^{१५७} शालिग्राम,^{१५८} कांचनस्थान,^{१५९} कोशलापुरी^{१६०} नगरों के नाम आए हैं—

लौकिक मान्यतायें व प्रथायें

पराचरित से अनेक लौकिक मान्यताओं व प्रथाओं का निर्देश प्राप्त होता है, जो कि उस समय जनसाधारण में प्रचलित थीं। ये मान्यतायें निम्नलिखित हैं—

भूत-प्रेतों में विश्वास—अष्टम पर्व में कहा गया है कि नागवती के विरह में हरिषेण भूतान्त मानव (ग्रही) के समान इधर-उधर घूमने लगा।^{१४१} एक स्थान पर हरिषेण अञ्जनगिरि हाथी को जोकि महावत के वश में नहीं था, जानने आते देवदत्त नृपाय ने हाथी को दूसरे स्थान पर ले जाने को कहता है कि जान पड़ता है कि तू मृत्यु के समीप पहुँचने वाला है इसलिए तो हाथी के विषय में गर्व धारण कर रहा है। अथवा तुझे कोई भूत लग रहा है। यदि भला चाहता है तो धीध्र हो इस स्थान से चला जा।^{१४२} एक अन्य स्थान पर अञ्जना की ओर आते हुए सिंह के विषय में कवि कल्पना करता है—क्या यह मृग्य है? अथवा दैत्य है अथवा कृतान्त है अथवा प्रेतराज है अथवा कलिकाल

१३९. पद्य० ९४।५।	१४०. पद्य० ९४।५।
१४१. वही, ९४।६।	१४२. वही, ९४।६।
१४३. वही, ९४।६।	१४४. वही, ९४।७।
१४५. वही, ९४।७।	१४६. वही, ९४।७।
१४७. वही, ९४।७।	१४८. वही, ९४।७।
१४९. वही, ९४।७।	१५०. वही, ९४।८।
१५१. वही, ९४।८।	१५२. वही, ९४।८।
१५३. वही, १०१।८४।	१५४. वही, १०१।५।
१५५. वही, १०१।६९।	१५६. वही, १०६।१३३।
१५७. वही, १०८।४०।	१५८. वही, १०९।५२।
१५९. वही, ११०।१।	१६०. वही, ११८।५३।
१६१. वही, ८।३१९।	

१६२. नूनं मृत्युसमीपोऽसि सन्मदं वहसे गजे।

गृहेण वा गृहीतोऽसि वज्रास्मादाशु गोचरात् ॥ पद्य० ८।३३७।

है, आदि-आदि।^{१६३} इन सबसे विदित होता है कि उस समय लोग भूत-प्रेतों में विश्वास करते थे। भूत किसी व्यक्ति को आविष्ट कर उससे किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करा सकता है, ऐसा ये लोग मानते थे।

वटवृक्ष की पूजा—उस समय वटवृक्ष (न्यग्रोध वृक्ष) की पूजा होती थी। इसके प्रारम्भ के विषय में कहा गया है कि एक बार जब भगवान् ऋषभदेव वटवृक्ष के समीप विद्यमान थे तब उन्हें समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान प्रकट हुआ।^{१६४} उस समय उस स्थान पर देवों द्वारा भगवान् की पूजा की गई थी इसलिए उसी पद्धति से आज भी लोग प्रवृत्ति करते हैं।^{१६५} अर्थात् वट-वृक्ष की पूजा करते हैं।

शकुन में विश्वास—किसी कार्य के फल के निर्धारण में लोग शकुन को बहुत महत्त्व देते थे। शुभ शकुन कार्य-सिद्धि का द्योतक तथा अपशकुन कार्य में बाधा आने या कार्यसिद्धि न होने का प्रतीक समझा जाता था। उस समय में प्रचलित शकुन के प्रकारों आदि का निरूपण पहले किया जा चुका है।

ज्योतिष विद्या पर विश्वास—किसी भी मंगल कार्य करने से पूर्व ग्रह, राशि आदि की ज्योतिष गणना का प्रयोग के आधार पर शुभमुहूर्त का निश्चय किया जाता था, ताकि कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो। अञ्जना और पवनजय के पिताओं ने जब अपनी पुत्री और पुत्र के वैवाहिक सम्बन्ध का निश्चय किया तब समस्त ज्योतिषियों की गति को जानने वाले ज्योतिषियों ने तीन दिन बीतने के बाद वैवाहिक कार्य करना उचित है, ऐसी सलाह दी।^{१६६}

शस्त्रपूजा—जब रथनूपुर के क्षियाधर राम की बल-परीक्षा के लिए बज्रावर्त और सागरावर्त धनुषों को मिला ले जाने लगे उस समय उन्होंने जिनेंद्र भगवान् की पूजा और स्तुति करने के पश्चात् गदा, हल आदि शस्त्रों से युक्त उन दोनों धनुषों की पूजा की।^{१६७} इस उल्लेख से सिद्ध होता है कि उस समय शस्त्रपूजा की जाती थी।

१६३. पद्य० १७।२३०।

१६४. ऋषभस्य तु संजातं केवलं सर्वभासनम्।

महान्यग्रोधवृक्षस्य स्थितस्यासन्नगोचरे ॥ पद्य० ११।२९२।

१६५. तत्प्रवेक्षो कृता देवैस्तस्मिन् काले विभोर्यतः।

पूजा तेनैव मार्गेण लोकोऽद्यापि प्रवर्तते ॥ पद्य० ११।२९३।

१६६. पद्य० १५।९३।

१६७. पद्य० २८।१७१-१७३।

आचार-व्यवहार

आचार-व्यवहार ही किसी देश अथवा काल की संस्कृति की समझने का सबसे बड़ा माध्यम है। पद्मचरितकालीन समाज को भी बहुत कुछ इसी आचार पर परखा जा सकता है। सम्प्रदाय, शिष्ट व्यवहार, मधुरसंवाद, विनम्र व्यवहार और उच्च शिष्टाचार उस युग की विशेषता थी।

सामाजिक शिष्टाचार में अतिथि-सत्कार को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। द्वितीय पर्व में भगवद्देश का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—‘आहार आदि की व्यवस्था से उस देश के गृहस्थ पथिकों को सन्तुष्ट करते हैं इस कारण उस देश में लोगों का सदा आवागमन होता रहता है।’^{१९९} मुनिवेषधारी अतिथि को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था, क्योंकि समाज को नैतिकता की ओर ले जाने तथा आत्मिक गुणों की ओर उन्मुख करने में उस समय मुनियों का अधिक हाथ रहता था। मुनि अवस्था में जब भगवान् ऋषभदेव एक बार हस्तिनापुर पहुँचे तब राजा श्रेयांस महल के नीचे उतरकर अन्तःपुर तथा अन्य मित्र जनों के साथ उनके पास आया और हाथ जोड़कर स्तुति पाठ करता हुआ प्रदक्षिणा देने लगा।^{१९९} सर्वप्रथम राजा ने अपने केशों से भगवान् के चरणों का मार्जन कर आनन्द के आसुओं से उनका प्रक्षालन किया।^{२००} रत्नमयी पात्र से अर्घ्य देकर उनके चरण धोए, पवित्र स्थान में उन्हें विराजमान किया और बाद में उनके गुणों से आकृष्ट हो कलश में रखा हुआ द्रक्षु का शीतल जल देकर विधि-पूर्वक आहार कराया।^{१९९}

भगवान् को आहार देने का फल यह हुआ कि ऐसे उत्कृष्ट पान को दान देते देखकर देवता भी हर्षित होकर साधु-साधु और धन्य-धन्य के शब्दों से आकाश को गुंजायमान कर दुन्दुभि बाजों का शब्द करने लगते थे।^{१९९} अत्यन्त सुखकर स्पर्श से मुक्त दिशाओं की सुगन्धित करने वाली वायु बरसने लगती थी और आकाश में रत्नों की धारा बरसने लगती थी।^{१९९}

स्त्रियाँ भी अतिथि-सत्कार में निपुण होती थीं। दशानन के यहाँ एक बार जब मन्थोदरी का पिता मय पहुँचा तब उस समय महल के सातवें खण्ड में दशानन की बहिन चन्द्रनखा थी। उसने सबका अतिथि-सत्कार किया था।^{१९९} उस

१९८. पद्य० २।३०।

१९९. पद्य० ४।१२, १३।

१९९. वही, ४।१४।

१९९. वही, ४।१५, १६।

१९९. वही, ४।१७।

१९९. वही, ४।१९।

१९९. अथेन्दुनखाया तस्य कृताभ्यागमसत्क्रिया ॥ पद्य० ८।३१।

समय वन में रहने वाले तापस भी अतिथि-सत्कार करने में अपना गौरव अनुभव करते थे।^{१७५} राम, लक्ष्मण और सीता के साथ जब तापसों के एक सुन्दर आश्रम में पहुँचे तब उन तापसों ने विभिन्न प्रकार के मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदर से भरे स्वागत के शब्द, अर्घ्य के साथ दिए गये भोजन, मधुर संभाषण, कुटी का दान और कीमल वहाँ की शय्या आदि पक्काबट को दूर करने वाले उपचार से उनका बहुत सम्मान किया।^{१७६} अतिथियों के लिए अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु देने में लोग संकोच का अनुभव नहीं करते थे। एक बार जब लक्ष्मण वञ्जकर्ण के यहाँ गए तब वञ्जकर्ण ने आओ! शीघ्र प्रवेश करो, कहकर उनको प्रवेश कराया।^{१७७} लक्ष्मण भी सन्तुष्ट होकर विनीत वेष्ट^{१७८} में उनके पास गया। वञ्जकर्ण ने विद्वस्त पुरुष से कहा—“जो अन्न मेरे लिए तैयार किया है वह इन्हें शीघ्र आदर के साथ खिलाओ।”^{१७९} उस समय के लोग अपने से बड़ों का विशेष ध्यान रखते थे। लक्ष्मण ने वञ्जकर्ण को उत्तर दिया कि “मैं यह भोजन यहाँ नहीं करूँगा। पास हो मैं मेरे अग्रज ठहरे हुए हैं, पहले उन्हें भोजन कराऊँगा, इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ।”^{१८०} एवमस्तु कहकर राजा ने उन्हें उत्तमोत्तम व्यंजनों से युक्त बहुत अन्न दिया।^{१८१} वह भोजन इतना मधुर था कि उससे सन्तुष्ट होकर राम ने वञ्जकर्ण की मद्रता की सराहना की। साथ ही यह भी कहा कि ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाई के लिए भी नहीं दिया जाता।^{१८२} इस अमृततुल्य अन्न के खाने से हमारा मार्ग से उत्पन्न हुआ गर्मी का खम एक साथ नष्ट हो गया है।^{१८३} इस प्रकार उन्होंने इस भोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की।^{१८४}

बड़ों का अभिवादन करना उस समय के शिष्टाचार का एक अङ्ग था। सिर झुकाकर बड़ी चिन्त से चरणों में नमस्कार करना,^{१८५} अर्घ्यादि की भेंट देना,^{१८६} हाथ जोड़कर प्रणाम करना,^{१८७} वन्दना करना,^{१८८} तीन प्रदक्षिणा

१७५. पद्य० ३३।१०।

१७६. पद्य० ३३।८, ९।

१७७. वही, ३३।१९३।

१७८. विनीतवेष्टसम्पन्नो वीक्षितं सादरं नरैः। पद्य० ३३।१९४।

१७९. पद्य० ३३।१९५।

१८०. पद्य० ३३।१९६।

१८१. वही, ३३।१९७।

१८२. वही, ३३।१९९, २००।

१८३. वही, ३३।२०१।

१८४. वही, ३३।२०२-२०४।

१८५. वही, ८।३९५।

१८६. वही, १८।२०।

१८७. वही, १६।७१।

१८८. वही, १७।१४७।

देना,^{९८९} हाथ जोड़कर नमस्कार करना,^{९९०} चरणवन्दना^{९९१} तथा अयजयकार करना,^{९९२} ये सब सम्मान प्रकट करने की शैलियाँ थीं।

आलिगन करने की उस समय परम्परा थी। आलिगन वास्तविक सोहार्द का प्रतीक माना जाता था। जिस समय दशानन आदि तीनों भाइयों का राज्याभिषेक हुआ उस समय आनन्द से व्याप्त नेत्रों वाले माता-पिता ने प्रणाम करते हुए दशानन आदि के शरीर का चिरकाल तक स्पर्श किया।^{९९३} अतिचिरकाल तक जीते रहो (जोवतातिचिरं कालम्)^{९९४} ऐसा कहकर सुमाली, माखवान्, सूर्यरज, अश्वरज और रत्नभवा आदि गुहजनों ने स्नेहवश उनका बार-बार आलिगन किया (आलिङ्गिषुः पुनः पुनः)^{९९५}। रत्नजटी विद्याधर ने राम को राक्षस द्वारा सीता के हरे जाने की सूचना दी तब सूचना-प्राप्ति के कारण हर्षित हो नाना प्रकार के स्नेह को धारण करते हुए राम ने आदर में रत्नजटी के साथ अपने शरीर का स्पर्श दिया।^{९९६} राम बार-बार आलिगन कर उससे समाचार पूछते थे और वह हर्ष से स्तब्ध हो अश्वरों में बार-बार उक्त समाचार सुनाता था।^{९९७} हनुमान् द्वारा युद्ध में पकड़े जाने पर मातामह महेन्द्र ने उसका मस्तक सूँघा और रोमांचित हो उसका आलिगन किया।^{९९८} इन को प्रस्थान करने के बाद राम-लक्ष्मण जब अरजिनेन्द्र के मन्दिर में ठहर गए तब उनकी मातायें तत्काल दौड़ी आयीं। आँसुओं से युक्त हो उन्होंने बार-बार पुत्रों का आलिगन किया^{९९९} और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा की। राम का वन-गमन जानकर भरत छह दिन में ही राम के पास पहुँच गया। वह घोड़े से उतर पड़ा और जहाँ से राम दिखाई दे रहे थे उसने मार्ग में पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँच गया तथा उनके चरणों का आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गया।^{१०००} पति-पत्नी के आलिङ्गन के अनेक प्रसङ्ग पद्यचरित में मिलते हैं।^{१००१} इस प्रकार पद्यचरित में परस्पर आलिङ्गन के अनेक उदाहरण हैं। इन सबसे मन

९८९. पद्य० १७।१२३।

९९०. पद्य० १७।१२३।

९९१. वही. ७।३६७।

९९२. वही. २१।८५।

९९३. सवेपथुकरेणैषां गात्रस्पृश्यतां विरम्।

पितरो सप्रणामानामानुष्वाङ्गकुलेक्षणौ ॥ पद्य० ७।३५८।

९९४. पद्य० ७।३६८।

९९५. पद्य० ७।३६९।

९९६. अंगस्पर्शं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेजिने ॥ पद्य० ४८।९६।

९९७. पद्य० ४८।९८।

९९८. अजिघ्रन्मस्तके मग्नं पुलकी परिष्वज्ये ॥ पद्य० ५०।४५।

९९९. पद्य० ३१।२३१।

१०००. पद्य० ३२।११८।

१००१. वही. १६।१८३, १८४, १८५, २२९, ७३।१५२-१५३, ५४।१५।

की शुद्धि हो समस्त प्रशस्त है । स्त्री पाति और पुत्र दोनों का आलिङ्गन करती है परन्तु भाव जुदे-जुदे होते हैं ।^{१००२}

मनुष्य मिलते समय सबसे पहले कुशल-श्रेम पूछ कर लेते थे । अञ्जना तथा वसन्तमाला को गुफा में जब मुनिराज दिखाई पड़े तब दोनों सखियों ने कहा— हे भगवन् ! हे कुशल अभिप्राय के धारक ! हे उत्तम चेष्टाओं से सम्पन्न ! आपके शरीर में कुशलता तो है ? क्योंकि समस्त साधनों का मूल कारण यह शरीर ही है । हे गुणों के सागर ! आपका तप उत्तरोत्तर बढ़ तो रहा है ? हे इन्द्रियविजय के धारक ! आपका विहार उपसर्गरहित तथा महाक्षमा से युक्त तो है ? हे प्रभो ! हम आपसे जो इस तरह कुशल पूछ रही हैं सो ऐसी पद्धति है यही ध्यान रखकर पूछ रही हैं अन्यथा आप जैसे लोग किस कुशल के योग्य नहीं हैं ? आप जैसे पुरुषों की शरण में पहुँचे हुए लोग कुशलता से युक्त हो जाते हैं, अतः स्वयं अपने-आपके विषय में अच्छे और बुरे पदार्थों की चर्चा ही क्या करना ?^{१००३} विद्या सिद्ध करने के बाद दशानन आदि से उनके गुरुजनों ने कहा कि हे पुत्रो ! इतने दिनों तक तुम मुख से रहे ?^{१००४} इस प्रकार कुशल-श्रेम के अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

बड़े लोग छोटी के प्रति वत्स ।^{१००५} अहो पुत्र !^{१००६} हे पुत्र !^{१००७} कह कर सम्बोधित करते थे । बड़ा भाई छोटे भाई के लिए हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! नाम लेकर सम्बोधित करता था ।^{१००८} बड़ों के लिए हे देव ! (देव),^{१००९} हे नाथ ! (नाथ),^{१०१०} हे महाबुद्धिमान् !^{१०११} (महाबुद्धि), हे प्रभो ! (प्रभो),^{१०१२} हे स्वामिन् ! (स्वामिन्),^{१०१३} हे परमेश्वर ! (परमेश्वर),^{१०१४} हे विचक्षण ! (विचक्षण),^{१०१५} हे नाथ ! (नाथ),^{१०१६} हे देव ! (देव),^{१०१७} हे आर्य ! (आर्य),^{१०१८} हे पूज्य ! (पूज्य),^{१०१९} राजा के लिए हे राजन् ! इस प्रकार सम्बोधित कर बातचीत की जाती थी ।

१००२. पद्य० ३१।२३३ ।

१००४. वही, ७।३७२ ।

१००६. वही, ७।३८० ।

१००८. वही, ३६।५४ ।

१०१०. वही, ५४।१८ ।

१०१२. वही, ५५।९ ।

१०१४. वही, ५५।१० ।

१०१६. वही, ३२।४२ ।

१०१८. वही, ५०।४७ ।

१००३. पद्य० १७।१२६-१२९ ।

१००५. वही, ७।३७८ ।

१००७. वही, ३२।१२८ ।

१००९. वही, ५४।२२ ।

१०११. वही, ५४।२५ ।

१०१३. वही, ५५।१० ।

१०१५. वही, ५५।१२ ।

१०१७. वही, ३२।४७ ।

१०१९. वही, ५०।४७ ।

स्त्री के प्रति गुण तथा समय के अनुसार हे पावने ! (पावने),^{१०२०} हे स्वामिनि ! (स्वामिनि),^{१०२१} हे साध्वि ! (साध्वि),^{१०२२} हे सुन्दरि ! (सुन्दरि),^{१०२३} हे विदुषी ! (विदुषि),^{१०२४} हे शुभे ! (शुभे),^{१०२५} हे पूजिते ! (पूजिते),^{१०२६} हे सुमुखि ! (सुमुखि),^{१०२७} हे प्रिये !^{१०२८} हे वरानने !^{१०२९} हे भद्रे !^{१०३०} हे प्राणवल्लभे !^{१०३१} हे सुन्दर जाँघों वाली ! (वरोह),^{१०३२} हे सुन्दर विलासों को धारण करने वाली (सुविभ्रमे),^{१०३३} हे सुग्धे ! (सुग्धे),^{१०३४} हे परम सुन्दरि ! (परम सुन्दरि),^{१०३५} हे सौम्यमुखी ! (सौम्य-वक्त्रे),^{१०३६} हे भामिनि (भामिनि)^{१०३७} इत्यादि कहा जाता था। सामान्य व्यक्ति के लिए हे भद्र ! (भद्र),^{१०३८} हे कुलीन ! (सद्गोत्र),^{१०३९} हे भाई ! (भातः)^{१०४०} इत्यादि कहकर सम्बोधित किया जाता था।

बापने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए शपथ या सौगन्ध लाने की परम्परा थी। लक्ष्मण ने वज्रकर्ण तथा सिंहोदर को कभी शत्रुता नहीं करेंगे इस प्रकार शपथ दिलाकर दोनों की मित्रता कराई थी।^{१०४१} विभीषण और राम की मैत्री तब हुई जब विभीषण अपनी निष्कलता की शपथ खा चुका।^{१०४२} लक्ष्मण ने भाई के साथ वन को जाते समय वनमाला को बहुत समझाया किन्तु वह न मानी तो लक्ष्मण ने शपथ खाई कि यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सम्यग्दर्शन से होन मनुष्य जिस गति को प्राप्त होत है उसी गति को प्राप्त होऊँ।^{१०४३} मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओं की निन्दा करने वाले अहंकारी मनुष्य के पाप से लिप्त होऊँ।^{१०४४} दो व्यक्तियों में परस्पर

१०२०. पद्य० ५३।५४।

१०२२. वही, ५३।५५।

१०२४. वही, ५२।८१।

१०२६. वही, ५३।५९।

१०२८. वही, ३८।३७।

१०३०. वही, ३८।३७।

१०३२. वही, ३८।४२।

१०३४. वही, ३६।४८।

१०३६. वही, ५२।६३।

१०३८. वही, ५३।६३।

१०४०. वही, ५३।७१।

१०४२. वही, ५५।७३।

१०४४. वही, ३८।३९।

१०२१. पद्य० ५३।५५।

१०२३. वही, ५२।८१।

१०२५. वही, ५३।५९।

१०२७. वही, ३६।४२।

१०२९. वही, ३८।३७।

१०३१. वही, ३८।४०।

१०३३. वही, ३८।३८।

१०३५. वही, ३६।४३।

१०३७. वही, ५२।६३।

१०३९. वही, ५३।६४।

१०४१. वही, ३३।३०७।

१०४३. वही, ३८।३८।

सौहार्द प्रकट कराते या मित्रता स्थापित कराते समय हाथ से हाथ मिलाया जाता था। लक्ष्मण ने सिंहोदर और वज्रकर्ण की मित्रता हाथ मिलाकर कराई।^{१०४५} अपरिचित व्यक्ति अपना परिचय कुल, गोत्र, माता-पिता का नाम आदि कहकर देता था।^{१०४६}

बड़ों की आज्ञा मानना तथा उनके प्रति विनय का भाव रखना उस समय के शिष्टाचार का महत्त्वपूर्ण अङ्ग था। जब इन्द्र नास का राजा रावण से पराजित होकर बन्दी बना लिया गया तब इन्द्र के पिता ने रावण से इन्द्र को छोड़ देने को कहा। इस पर रावण ने उत्तर दिया—हे नात ! जिस प्रकार आप इन्द्र के पूज्य हैं, उसी प्रकार मेरे भी पूज्य हैं, बल्कि उससे भी अधिक। इसलिए मैं आपकी आज्ञा का उत्तराधिकारी कर सकता हूँ ? यदि यद्यार्थ में आप जैसे गुरुजन न होते तो यह पृथ्वी पर्वतों से छोड़ी हुई के समान रसातल की चली जाती। आप जैसे पूज्य पुरुष मुझ आज्ञा दे रहे हैं अतः मैं पुण्यवान् हूँ। आप जैसे पुरुषों की आज्ञा के पान पुण्यहीन मनुष्य नहीं हो सकते। इसलिए हे प्रभो ! आप विचार कर ऐसा उत्तम कार्य कीजिये जिससे इन्द्र और मुझमें सौहार्द उत्पन्न हो जाय। इन्द्र सुख से रहें और मैं भी सुख से रहूँ। यह शक्तिशाली इन्द्र मेरा चौथा भाई है, इसे पाकर मैं पृथ्वी को निष्कण्टक करूँगा। आप जिस प्रकार इन्द्र को आज्ञा देते हैं उसी प्रकार मुझे करने योग्य कार्य की आज्ञा देते रहें, क्योंकि गुरु-जनों की आज्ञा ही शेषाशत की तरह रक्षा करने वाली है। आप इच्छानुसार यहाँ रहें या रघनूपुर रहें अथवा जहाँ इच्छा हो वहाँ रहें। हम दोनों आपके सेवक हैं। हमारी भूमि ही कौन है ?^{१०४७} बड़ों की आज्ञा मानने का दृष्टान्त राम द्वारा दशरथ की आज्ञा स्वीकार करने^{१०४८} तथा लक्ष्मण द्वारा राम की आज्ञा माने जाने इत्यादि अनेक प्रसंगों में मिलता है।

बड़ों को बिदा करने के लिए कुछ दूर तक उनके साथ जाने की परिपाटी थी।^{१०४९-१०५०} नदी या तालाब तक पहुँचाना शुभ और परम्परानुकूल माना जाता था। राम ने वर्णरत्ना नदी के तट पर पहुँच अनेक आगन्तुक राजाओं आदि को समझा-बुझाकर लौटा दिया।^{१०५१} जो लोग नहीं लौटे थे उन्हें लौटाने का यत्न किया।^{१०५२} कर्तव्यशील राजा के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मानना प्रजा अपना कर्तव्य समझती थी। राम-धन-भगमन के समय लोग राम-लक्ष्मण के साथ जाने

१०४५. पद्य० ३३।३०७।

१०४६. पद्य० ५३।५१।

१०४७. वही, १३।१४-२१।

१०४८. वही, ३१।१२४, १२५।

१०४९. वही, १३।३२।

१०५०. वही, ३२।४०।

१०५१. वही, ३२।४०।

१०५२. वही, ३२।३०, ४१।

को उत्सुक हो गए। नगरी के समस्त घर सूने हो गए तथा समस्त उत्सव नष्ट हो गया।^{१०५३} कर्णरवा नदी के तट पर पहुँचने पर राम ने उनसे लौटने की कहा तब उन्होंने उत्तर दिया—हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवों के समूह से भरे हुए वन में रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्ग में भी नहीं रहना चाहते। हमारा चित्त ही नहीं लौटता है, फिर हम कैसे लौटें? यह चित्त ही तो इन्द्रियों में प्रधान है। जब आप जैसे नररत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवों को घर से क्या प्रयोजन है? भोगों से क्या मतलब है? स्त्रियों से क्या अर्थ है? तथा बन्धुओं की क्या आवश्यकता है?^{१०५४}

कुल की प्रतिष्ठा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दशरथ से अपनी प्रतिष्ठा पालन करने की प्रार्थना कर राम ने कहा—आप अपकीर्ति को प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्र की लक्ष्मी से भी क्या प्रयोजन है?^{१०५५} लक्ष्मण भी हमें अपने पिता की उज्ज्वल कीर्ति की रक्षा करनी चाहिए, यह निश्चय कर राम के साथ वन जाने को उद्यत हो गए।^{१०५६} एक राजा दूसरे राजा का सम्मान कुछ भेट और उपहार आदि देकर करता था। रावण की सहायता के लिए एक बार जो राजा आए थे उनका उसने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर सम्मान किया।^{१०५७}



१०५३. पद्य० ३१।२१५।

१०५४. पद्य० ३२।४४-४६।

१०५५. तात रक्षारमनः सत्यं त्यजाहमत्परिचिन्तनम्।

साकस्वापि श्रिया किं मे स्वयकीर्तिमुपागते ॥ पद्य० ३१।२२५।

१०५६. मितकीर्तिसमुत्पत्तिविधातव्या हि नः पितुः।

तूष्णीमेवानुमन्तामि व्यासान्त्तं साधुकारिणम् ॥ पद्य० ३१।१९९।

१०५७. अस्त्रवाहनसन्नाहप्रभृतिप्रतिपत्तिभिः।

रावणोऽपूजयद् भूपान् सुव्रता त्रिदशानिव ॥ पद्य० ५५।८९।

अध्याय ३

मनोरंजन

प्रकृति के अन्य जीवधारियों की अपेक्षा मानव अधिक विनोदप्रिय है। प्राचीन भारत में लोगों का जीवन आजकल की अपेक्षा सुखी था, उसको जीवन संग्राम में हम लोगों की भाँति अधिक व्यस्त नहीं रहना पड़ता था। ऐसी स्थिति में लोगों ने समय-समय पर आनन्द की सृष्टि के लिए मनोविनोद के रूप में कलाओं का विकास किया। पद्यचरित में इस विकास के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं जो निम्नलिखित हैं—

क्रीड़ा

क्रीड़ा के भेद—चेष्टा, उपकरण, वाक्क्रीड़ा और कलाव्यत्यसन के भेद से क्रीड़ा चार प्रकार की होती है।^१

चेष्टा—शरीर से उत्पन्न होनेवाली क्रीड़ा को चेष्टा कहते हैं।^२

उपकरण—कन्दुक आदि खेलना उपकरण है।^३

वाक्क्रीड़ा—नाना प्रकार के मुभाषित आदि कहना वाक्क्रीड़ा है।^४

कलाव्यत्यसन—जुआ आदि खेलना कलाव्यत्यसन है।^५

शास्त्रनिर्णयित चेष्टाओं से क्रीड़ा करना उज्ज्वल क्रीड़ा कहलाती थी। सीता इसी प्रकार की क्रीड़ाएँ करने वाली कही गई हैं।^६

क्रीडाधाम (क्रीडास्थल)—जहाँ विभिन्न प्रकार के मनोरंजन और भोगोपभोग की वस्तुएँ होती थीं उसे क्रीडाधाम कहा जाता था। इस प्रकार के क्रीडाधाम बनाने के लिए रमणोक स्थान चुनकर वहाँ सब प्रकार की वस्तुएँ सुलभ की जाती थीं। राम, लक्ष्मण तथा सीता के लिए क्रीडाधाम बनाने हेतु वंशस्थल-पुर के राजा सुरप्रभ की आज्ञा से वंशस्थल पर्वत के शिखर पर बुद्ध दर्पणतल के समान सुन्दर भूमि तैयार की गई। वह पर्वतशिखर अत्यधिक रमणोक था तथा हिमगिरि के शिखर के समान था। वहाँ एक समान लम्बे-चोड़े अच्छे रंग के मनोहर शिलातल थे। वह अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से व्याप्त

१. पद्य० २४।६७।

२. वही, २४।६८।

३. वही, २४।६९।

४. वही, ४०।२४।

२. पद्य० २४।६७।

४. वही, २४।६८।

६. वही, ४०।२६।

था। अनेक प्रकार के पक्षी वहाँ शब्द कर रहे थे, वह सुगन्धित वायु से पूर्ण था, अनेक प्रकार के पुष्पों और फलों से युक्त था, सब ऋतुओं के साथ वसन्त ऋतु वहाँ उपस्थित थी। उस भूमि पर पाँच प्रकार की धूलि से अनेक चित्र बनाये गये थे। अनेक प्रकार के भावों से रमणीय मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर, सुन्दर पल्लवों से युक्त असोक वृक्ष तथा इनके अतिरिक्त सुन्दर कान्ति और सुगन्धयुक्त अन्य बहुत से वृक्ष बनाये गये थे। वहाँ पर बादली रंग के वस्त्र फैलाये गये थे तथा सघन पताकायें फहराई गई थीं। छोटी-छोटी घंटियों से युक्त सैकड़ों मोतियों की मालायें, विचित्र-विचित्र कमर, मणिमय फानूस (लभूपमणिपट्टिका), दर्पण तथा जिन पर सूर्य की किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले—ये सब ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओं में लगाये गये थे।^८ पृथ्वीतल पर जहाँ-तहाँ कलश रखे गये थे जो कमलिनी-वन में बैठे हुए हंसों के समान सुशोभित हो रहे थे। राम ने जहाँ-जहाँ शरण रखे थे वहाँ पृथ्वीतल पर बड़े-बड़े कमल रख दिये गये थे। जहाँ-तहाँ मणियों और स्वर्ण से चिभित तथा अतिशय सुखदायक स्पर्श को धारण करने वाले आसन तथा सोने के स्थान बनाये गये थे। स्वर्ण शक्ति से सहित ताम्रदूध, रक्तग वस्त्र, गन्धासुगन्धित गन्ध और देवीप्यमान आभूषण वहाँ जहाँ-तहाँ रखे गये थे। सब ओर से नाना प्रकार की भोजनसामग्रियों से युक्त, जिनमें रसोईघर अलग बनाया गया था ऐसी सैकड़ों भोजनशालायें वहाँ निर्मित की गई थीं।^९ वहाँ की भूमि कही गुड़, घी, दही से पंकिल होकर सुशोभित हो रही थी तो कहीं कर्तव्यपालन करने में तत्पर आदर से युक्त मनुष्यों से सहित थी। कहीं मधुर आहार से तृप्त हुए पथिक अपनी इच्छा से बैठे थे तो कहीं निश्चिन्तता के साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरे को प्रसन्न कर रहे थे। कहीं सेहरे को धारण करने वाला और मदिरा के नशे में झुमते हुए नेत्रों से युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्री की सुगन्धि को धारण करने वाली नशा से भरी स्त्री दृष्टिगोचर होती थी। कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुष्पचर्चा हो रही थी और कहीं विलासयुक्त स्त्रियाँ पतियों के साथ क्रीड़ा कर रही थीं। कहीं मुस्कुराते हुए लीला से युक्त ब्रिट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे ऐसी देवनर्तकियों के समान वेवयायें सुशोभित हो रही थीं।^{१०}

जलक्रीड़ा

पञ्चचरित में अनेक स्थलों पर जलक्रीड़ा का आकर्षक चित्रण किया गया

८. पद्य० ४०।४-१३।

९. पद्य० ४०।१४, १४।१८।

१०. वही, ४०।१९-२३।

है। जलक्रीड़ा में स्त्रियाँ और पुरुष समान रूप से भाग लेकर मनोविनोद करते थे। एक बार दशानन अथ मेघरथ नामक पर्वत पर स्वच्छ जल से भरी वायिका पर पहुँचा तब उस वायिका पर छह हजार कन्यायें क्रीड़ा में लीन थीं।^{११} उनमें से कुछ कन्यायें दूर तक उड़ने वाले जल के फव्वारे में क्रीड़ा कर रही थीं और कुछ अपराध करने वाली सखियों से दूर हटकर अकेली-अकेली ही घूम रही थीं। कोई कन्या रीवाल से सहित कमलों के समूह में बैठकर दाँत दिसा रही थी और अपनी सखियों के लिए कमल की आर्षिका उत्पन्न कर रही थी।^{१२} कोई कन्या पानी को हथेली पर रख दूसरे हाथ की हथेली से उसे पीट रही थी और उससे मृदङ्ग जैसा शब्द निकल रहा था। कोई कन्या भ्रमरों के समान गा रही थी।^{१३} दशानन क्रीड़ा करने की इच्छा से उनके बीच खड़ा गया तथा वे कन्यायें भी उसके साथ क्रीड़ा करने के लिए बड़े हर्ष से तैयार हो गईं।^{१४}

माहिष्मती के राजा सहस्ररश्मि ने उत्कृष्ट कलाकारों के द्वारा नाना प्रकार के जलयन्त्र बनवाये थे। उन सब यन्त्रों का आश्रय कर सहस्ररश्मि ने नर्मदा में उतरकर नाना प्रकार की क्रीड़ा की।^{१५} उसके साथ यन्त्रनिर्माण को जानने वाले अनेक मनुष्य थे जो समुद्र का भी जल रोकने में समर्थ थे।^{१६} यन्त्रों के प्रयोग से नर्मदा का जल क्षण भर में रुक गया था, इसलिए नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में निपुण स्त्रियाँ उसके तट पर भ्रमण करने लगीं।^{१७} शरीर का लेप घुल जाने के कारण जो नखक्षती से चिह्नित स्तन दिखला रही थी। ऐसी कोई स्त्री अपनी सीत के लिए ईर्ष्या उत्पन्न कर रही थी। जिसके समस्त अंग दिख रहे थे ऐसी कोई उत्तम स्त्री लजाती हुई दोनों हाथों से बड़ी आकुलता के साथ पति की ओर पानी उछाल रही थी। कोई स्त्री सीत के नितम्ब स्थल पर नखक्षत देख-कर क्रीडाकमल की नाल से पति पर प्रहार कर रही थी। कोई एक स्वभाव की क्रोडिनी स्त्री मोन लेकर निश्चल खड़ी रह गई थी तब पति ने शरणों में प्रणाम कर उसे किसी तरह संतुष्ट किया।^{१८} किसी स्त्री ने चन्दन के लेप से पानी को सफेद कर दिया था तो किसी ने केदार के द्रव से उसे स्वर्ण के समान पीला बना दिया था।^{१९} उत्तमीक्ष्म स्त्रियों से घिरे मनोहर रूप के धारक राजा सहस्ररश्मि

११. पद्म० ८।९०, ९५।

१३. वही, ८।९८।

१५. वही, १०।६८।

१७. वही, १०।६९।

१९. वही, १०।८१।

१२. पद्म० ८।९६, ९७।

१४. वही, ८।१००।

१६. वही, १०।६८।

१८. वही, १०।७१-७४।

ने स्त्रियों के साथ निम्न^{२०} प्रकार से क्रीड़ा की ।

किसी को देखकर, किसी को स्पर्श कर, किसी के प्रति कोप प्रकट कर, किसी के प्रति अनेक प्रकार की प्रसन्नता प्रकट कर, किसी को प्रणाम कर, किसी के ऊपर पानी उछालकर, किसी को कर्णाभरण से ताड़ित कर, किसी का धोखे से वस्त्र खींचकर, किसी को मेखला से बांधकर, किसी के पास से दूर हटकर, किसी को भारी डाट दिखाकर, किसी के साथ सम्पर्क कर, किसी के स्तनों में कम्पन उत्पन्न कर, किसी के साथ हँसकर, किसी के आभूषण गिराकर, किसी को गुद्गुदाकर, किसी के प्रति मौह चलाकर, किसी से छिपकर, किसी के समक्ष प्रकट होकर तथा किसी के प्रति अन्य प्रकार से विभ्रम दिखाकर ।

जलक्रीड़ा सांसारिक आकर्षण का एक उत्तम केन्द्र था । जिस समय भरत संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर वन जाने को उद्यत हुआ उस समय अन्य लोगों के साथ राम तथा लक्ष्मण को अनेक रानियाँ बहूँ आकर भरत से जलक्रीड़ा के लिए निवेदन करने लगीं । भरत उनकी प्रार्थना को नहीं टाल सका और उनके साथ उसने जलक्रीड़ा की ।^{२१}

वनक्रीड़ा

प्रकृति में जो कुछ मनोरम है उसका अधिकांश नगर के बाहर होता है । यदि नागरिक को अपने जीवन की आनन्दवृत्तियों को बहुमुखी करना है तो उसे नगर के बाहर प्रकृति के उत्सर्ग में क्रीड़ा करनी चाहिए । ऐसे मनोरम स्थानों में वन की सर्वप्रथम गणना की जाती है । पद्मचरित के पंचम पर्व में महारक्ष विद्याधर का अपने अन्तःपुर के साथ क्रीड़ा करने के लिए प्रमद वन में जाने का उल्लेख है । वह वन कमलों से आच्छादित बापिकर्मों से सुशोभित था ।

२०. वर्शनात् स्पर्शनात् कोपात् प्रसादाद्विबोधितात् ।

प्रणामाहारिनिक्षेपादवर्तसकताडनात् ॥ पद्य० १०।७६ ।

बंधनादंशुकाक्षेपान्मेखलादामदन्धनात् ।

पलायान्महारावाससंपत्ति कुचकम्पनात् ॥ पद्य० १०।७७ ।

हासाद् भूषणनिक्षेपात् प्रेरणाद् भ्रूविलासतः ।

अन्तर्धानात् समुद्भूतेरन्यस्माच्च सुविभ्रमात् ॥ पद्य० १०।७८ ।

रेमे बहुदसं तस्यां स मनोहर वर्शनः ।

आवृत्तो वरनारोभिर्देवीभिरिव वासवः ॥ पद्य० १०।७९ ।

२१ पद्य० ८३।९०-१०८ ।

उसके बीच में नाना रत्नों की प्रभा से ऊँचा दिखने वाला क्रीड़ापर्वत बना हुआ था। खिले हुए फूलों से सुशोभित वृक्षों के समूह उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। अभ्यक्त मधुर शब्दों के साथ इधर-उधर मड़राते पक्षियों से वह व्याप्त था। उसमें रत्नमयी भूमि से वेष्टित अनेक प्रकार की कान्ति तथा सघन पल्लवों की समीचीन छाया से युक्त लता-मण्डप^{२२} थे। राजा महारक्ष ने उस प्रमद वन में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा की थी। कभी स्त्रियाँ उसे फूलों से ताड़ना करती थी और कभी वह फूलों से स्त्रियों को ताड़ना करता था।^{२३} कोई स्त्री अन्य स्त्री के पास जाने के कारण यदि ईर्ष्या से कुपित हो जाती थी तो वह चरणों में झुककर उसे शान्त कर लेता था। इसी प्रकार कभी आप स्वयं कुपित हो जाता था तो लीला से भरी स्त्री इसे प्रसन्न करती थी।^{२४} कभी वह त्रिकूटाचल के तट के समान सुशोभित अपने वक्षःस्थल से किसी स्त्री को प्रेरणा देता था तो अन्य स्त्री उसे भी अपने स्थूल स्तनों के आलिंगन से उसे प्रेरणा देती थी।^{२५}

उपर्युक्त वर्णन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि वनक्रीड़ा सामूहिक रूप से भाग लेने वाले पति-पत्नियों तथा नायक-नायिकाओं के प्रेमालिङ्गन, हास-परिहास आदि के लिए अपूर्व अवसर प्रदान करती थी। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि पद्मचरित में कहीं-कहीं उद्यान और वन एक दूसरे के पर्याय-वाची हो गये हैं।^{२६} इस प्रकार के अनेक उद्यानों तथा उनमें होने वाले अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोदों का वर्णन पद्मचरित में अनेक स्थानों पर किया गया है। ये उद्यान निसर्गतः सुन्दर तो हुआ ही करते थे, इसके साथ ही साथ मनुष्य अनेक आकर्षक वस्तुओं का संयोग उपस्थित कर उसे और अधिक सुन्दर और आकर्षक बनाकर सोने में सुगंध वाली बात चरितार्थ करता था। उदाहरण के लिए त्रिकूटाचल प्रकीर्णक, जनानन्द, सुखसेव्य, समुच्चय, चारणप्रिय, निबोध और प्रमद इस प्रकार सात उद्यानों से विरा था।^{२७} इनमें से प्रकीर्णक नाम का वन पृथ्वीतल कहा गया है। उसके आगे जनानन्द नाम का वन था जिसमें वे ही मनुष्य क्रीड़ा करते थे, जिनका कि आता-जाता निषिद्ध नहीं था।^{२८} उसके ऊपर चलकर सुखसेव्य नामका वन था जो कोमल वृक्षों से व्याप्त था। उसकी छवि मेघसमूह के समान थी। वह नदियों और धापिकाओं के कारण मनोहर था। उस वन में सूर्य के मार्ग को रोकने वाले केतकी और जूही आदि से सहित तथा पान

२२. पद्य० ५।२९६-३००।

२३. पद्य० ५।३०१।

२४. वही, ५।३०२।

२५. वही, ५।३०३।

२६. वही, ४६।१४१, १५४।

२७. वही, ४६।१४३, १४५।

२८. वही, ४६।१४६।

की लताओं से लिपटे दश बेमा प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष थे ।^{२९} उसके ऊपर उपद्रव-रहित गमनागमन से युक्त समृद्ध नाम का नदीका उद्यान था । जिसमें कहीं हाव-भाव धारण करने वाली स्त्रियाँ तथा कहीं मनुष्य रहते थे ।^{३०} उसके ऊपर चारणप्रिय नाम का पाँचवाँ मनोहर वन था जिसमें चारण ऋद्धिधारी मुनिराज स्वाध्याय में तत्पर रहते थे ।^{३१} उसके ऊपर छठवाँ निबोध नाम का उद्यान था जो ज्ञान का निवास था । उसके आगे चढ़कर प्रमद नाम का सातवाँ उद्यान था जो घोड़े की पीठ के समान उत्तम तथा सुख से चढ़ने योग्य सीढ़ियों से दिखाई देता था ।^{३२}

प्रमद वन में स्नानक्रीड़ा के योग्य कमलों से सुशोभित मनोहरवापिकार्यें थीं । स्थान-स्थान पर पानीयशालायें तथा अनेक खण्डों से युक्त सभागृह थे ।^{३३} वहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षों से घिरे एवं फलों से लदे नारंग और बीजपुर आदि के वृक्ष थे । उस प्रमदवन में वृक्षों की सब जातियाँ थीं ।^{३४} वहाँ मन्द-मन्द वायु से नृत्य करती हुई वापिकार्यें राजहंस पक्षियों के समान ऐसी जान पड़ती थी मानो कोकिलाओं के आलाप से युक्त सधन वनों की हँसी ही कर रही हों । उसमें अशोकमालिनी नाम की वापी थी जो कमलपत्रों से सुशोभित तथा स्वर्णमय सोपानों से युक्त और विचित्र आकार वाले गोपुरों से अलंकृत थी ।^{३५} इसके अतिरिक्त वह उद्यान झरोखे आदि से अलंकृत उत्तमोत्तम लताओं से आलिंगित मनोहर गृहों तथा जलकणों से युक्त निक्षरों से सुशोभित था ।^{३६}

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर उत्तम उद्यान में हम निम्नलिखित विशेषताएँ पाते हैं—

२९. पद्य० ४६।१४७-१४८ ।

३०. पद्य० ४६।१४९ ।

३१. वही, ४६।१५० ।

३२. वही, ४६।१५१ ।

३३. वही, ४६।१५२ ।

३४. नारङ्गमातुलिङ्गाद्यैः फलैर्यत्र निरन्तराः ।

खजूरैर्नारिकेलैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिताः ॥ पद्य० ४।१५३ ।

तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातयः ।

कुसुमस्तवकैश्छान्ना गीयन्ते मत्तवट्पदैः ॥ पद्य० ४।१५४ ।

३५. अशोकमालिनी नाम यत्रपद्मविराजिता ।

वापीकनकसोपाना विचित्राकारगोपुरा ॥ पद्य० ४।१६० ।

३६. मनोहरगृहं भवति गवासाद्युपशोभितैः ।

सल्लतालिङ्गितप्रान्तेर्निर्झरैश्च ससीकरैः ॥ पद्य० ४।१६१ ।

१२० : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

१. अधिकांश जातियों के वृक्ष ।
२. अनेक विशेषताओं वाली वापों (तरोवर, नदी आदि) ।
३. लक्ष्मगृह ।
४. मनोहर गृह, आवास आदि ।
५. पानीयक्षाला तथा स्नानगृह आदि ।
६. कोकिलादि पक्षियों का कलरव ।
७. उत्तमोत्तम झरने ।
८. पहाड़ी प्रदेश । पहाड़ियों पर चढ़ने के लिए सीढ़ी आदि का निर्माण ।

धूत-क्रीड़ा

प्राचीन साहित्य के मनोविनोद में धूत का स्थान था । पञ्चचरित में धूत को कला के रूप में स्वीकार किया गया है ।^{३७} ब्राह्मण भी उस समय जुआ खेलते थे । लक्ष्मण की अपना परिचय देते हुए मृदभृति कहता है—“मैं कौशाम्बी नगरी के विश्वामल नाम के पवित्र ब्राह्मण की स्त्री प्रतिसन्ध्या से उत्पन्न पुत्र हूँ तथा शस्त्र और जुए की कला का पारगामी हूँ ।”^{३८} इसी प्रकार ८५वें पर्व में शकुना ब्राह्मणी के पुत्र मृदुमति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जुए में सदा जीतता था, अत्यन्त धनुर था, कलाओं का घर था और कामोपभोग में सदा आसक्त रहता था । इस तरह वह नगर में सदा क्रीड़ा किया करता था ।^{३९} धूत को कला के रूप में इस प्रकार स्थान देते हुए भी पञ्चचरित में इसकी गणना दुष्ट चेष्टाओं में की गई है ।^{४०}

दोला-विलास

पञ्चचरित के षष्ठ पर्व में लंका के राजा विद्युत्केश की क्रीड़ाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि राजा विद्युत्केश उन वेशकीमती झूलों (दोलासु) पर झूमता था जिसमें बैठने का अच्छा आसन बनाया गया था, जो ऊँचे वृक्ष से बँधे थे तथा जिनकी उछाल बहुत लम्बी होती थी ।^{४१} ३९वें पर्व में राम-लक्ष्मण द्वारा वन में किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीता को बैठाकर बगल में दोनों ओर खड़े हो सीता को झूला झुलाने का उल्लेख है ।^{४२} एक स्थान पर दशानन के साथ क्रीड़ा करती हुई कन्याओं की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए कहा गया है कि उस अपूर्व समागम के कारण उन कन्याओं का कामरूपी रस लज्जा

३७. पद्य० ३४।७८, ८५।१२९ ।

३९. वही, ८५।१२९ ।

४१. वही, ६।२२९ ।

३८. पद्य० ३४।७६-७८ ।

४०. वही, ८५।१२० ।

४२. वही, ३९।४ ।

से मिश्रित हो रहा था, अतः उनका मन दोला पर आरुढ़ हुए के समान अत्यन्त आकुल हो रहा था।^{४३} वात्स्यायन से पता चलता है कि वाटिका में सधन छाया में प्रेक्षादोला या झूला लगाया जाता था और छायादार स्थानों में विश्राम करने के लिए स्थण्डिल पीठिकामें (बैठने के आसन) बनाए जाते थे, जिनपर सुकुमार कुसुम दल बिछा दिए जाते थे। प्रेक्षा-दोला की प्रथा वर्षा ऋतु में ही अधिक थी।^{४४} आज भी सावन मास में झूले लगाए जाते हैं।

पर्वतारोहण

पर्वतारोहण के प्रति प्राचीनकाल से ही लोगों का एक विशेष आकर्षण रहा है। यही कारण है कि हमारे बहुत से तीर्थस्थल आज भी पर्वतों या पहाड़ियों पर हैं। पद्मचरित में राजा विद्युरक्श के संदर्भ में पर्वतारोहण की एक झलक मिलती है। लंका के राजा विद्युरक्श के विषय में कहा गया है कि वह कभी उम स्वर्णमय पर्वतों पर चढ़ता था जिनके ऊपर जाने के लिए सीढ़ियों के मार्ग बने हुए थे, जिनके शिखर रत्नों से सज्जित थे और जो वृक्षों के समूह से वेष्टित थे।^{४५} इन पर्वतों पर अच्छे-अच्छे उद्यान निर्मित होते थे, ऐसा पहले किए गए वन-कीड़ा के वर्णन से स्पष्ट ही है।

गोष्ठी

हास्य-विनोद के सार्वजनिक स्थल गोष्ठी कहलाते थे।^{४६} पद्मचरित में अनेक स्थानों पर गोष्ठी का प्रसङ्ग आया है। किष्कुपुर नगर का स्वामी महोदधि स्त्रियों के साथ महामनोहर उत्तुंग भवन के शिखर पर सुन्दर गोष्ठीरूपी अमृत का स्वाद लेता था।^{४७} जब गोष्ठियों में राजाओं के गुणों की चर्चा होती तब विद्वज्जन सबसे पहले नभस्तिलक नगर के राजा मार्तण्डकुण्डल का नाम लेते थे।^{४८} पद्मचरित में वीरपुरुष^{४९} की गोष्ठी, विद्वानों^{५०} की गोष्ठी तथा

४३. मिथे कामरसे तासां त्रपया पूर्वसङ्गमात् ।

मनो दोलामिवाकृढं वभूवात्यन्तमाकुलम् ॥ पद्य० ८।१०२ ।

४४. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ४१ ।

४५. पद्य० ६।२३० ।

४६. नानुराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ९८ ।

४७. पद्य० ५३।११३ ।

४८. पद्य० ६।३८६ ।

४९. वही, ६।४७६ ।

५०. वही, ५३।११३ ।

मूर्खगोष्ठी^{५१} इन तीनों गोष्ठियों के नाम आए हैं। वात्स्यायन तथा जिनसेन ने अपने ग्रन्थों में गोष्ठियों का अन्धा निरूपण किया है।^{५२}

कथा

कथा-कहानियाँ कहने और सुनने की मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति रही है। पद्मचरित में भी इस प्रवृत्ति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। ३६वें पर्व में कहा गया है कि राम, लक्ष्मण तथा सीता स्वच्छानुसार पृथ्वी पर बिहार करते हुए नाना प्रकार के स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएँ और देवों के समान रमण करते हुए वैजयन्तपुर के समीपवर्ती मैदान में पहुँचे।^{५३} एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि आत्मीय जनों के साथ मिले हुए राम ने प्रभादरहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुख से रात्रि व्यतीत की।^{५४} वनवास के समय सघन पत्तों वाले द्रुमखण्ड में बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओं से सीता का मनोविनोद करना^{५५} राम-लक्ष्मण अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानते थे। इस प्रकार कथाओं की जब समय विशेष महत्ता थी। विशेषकर सत्पुरुषों की कथा को विशेष महत्त्व दिया जाता था। सत्पुरुषों की कथाओं की महत्ता प्रतिपादित हुए करते हुए रवि-वेणु कहते हैं—जिस पुरुष की वाणी में अकार आदि अक्षर व्यक्त हैं पर जो सत्पुरुषों की कथा को प्राप्त नहीं कराई गई वह वाणी निष्फल है।^{५६} महापुरुषों का कीर्तन करने से विज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है, निर्मल यश फैलता है और पाप दूर चला जाता है।^{५७} जीवों का यह शरीर रोगों से भरा हुआ है तथा

५१. वही, १५।१८४

५२. जिनसेन ने अपने आदि पुराण में गीतगोष्ठी (१२।१८८, १४।१९२) वाद्यगोष्ठी (१४।१९२) कथागोष्ठी (१२।१८७), जल्पगोष्ठी (१४।१९१) पद्यगोष्ठी (१४।१९१), काव्यगोष्ठी (१४।१९१), कलागोष्ठी (२९।९४), विद्यासंवाद गोष्ठी (७।६५) नृत्यगोष्ठी (१४।१९२), प्रेक्षणगोष्ठी (१४।१९२) तथा चित्रगोष्ठी (१४।१९२) के नाम दिए हैं। कामसूत्र के अनुसार विद्या, बुद्धि, सम्पत्ति, आयु और शील में अपने समान मित्रों या सहचरों के साथ, वेश्या के घर में, महफिल में अथवा किसी नागरिक के निवासस्थल पर गोष्ठी का समवाय आयोजित करना चाहिए। ऐसे स्थान पर साहित्य, संगीत और कला जैसे विषयों पर आलोचनात्मक सुलभारमक चिन्तन किया जाय (कामसूत्र ४।१९),

५३. पद्म० ३६।१०, ११।

५४. वही, ३७।९३।

५५. वही, ३९।५।

५६. वही, १।२३।

५७. वही, १।२४।

अल्पकाल तक ही ठहरने वाला है परन्तु सत्पुरुषों की कथा से जो यश उत्पन्न होता है वह जब तक सूर्य, चन्द्रमा और तारे रहेंगे, तब तक रहता है।^{१८} जो मनुष्य सज्जनों को आनन्द देने वाली मनोहारिणी कथा करता है वह दोनों लोकों का फल प्राप्त करता है।^{१९} मनुष्य के जो कान सत्पुरुषों की कथा का श्रवण करते हैं, मैं उन्हें ही कान मानता हूँ, बाकी तो विदूषक के कानों के समान केवल कानों का आकार धारण करते हैं।^{२०} सत्पुरुषों की चर्चा का वर्णन करने वाले वर्ण—अक्षर जिस मस्तक में घूमता है वही वास्तव में मस्तक है, बाकी तो नारियल के करंक (कड़े आवरण) के समान है।^{२१} जो जिह्वा सत्पुरुषों के कीर्तिरूपी अमृत का स्वाद लेने में लीन है, उसे ही मैं जिह्वा मानता हूँ, बाकी तो दुर्बचनों को कहने वाली छुरी का मानो फलक ही है।^{२२} श्रेष्ठ ओठ वे ही हैं जो महापुरुषों का कीर्तन करने में लगे रहते हैं, बाकी तो शम्बूक नामक कन्तु के मुख से मुक्त जोक के पृष्ठ के समान ही है।^{२३} दांत वही हैं जो शान्त पुरुषों की कथा के समागम से सदा रंजित रहते हैं, उसीमें लगे रहते हैं, बाकी तो कफ निकलने के द्वार को रोकने वाले मानो आवरण ही है।^{२४} मुख वही है जो कल्याण की प्राप्ति का प्रमुख कारण है और श्रेष्ठ पुरुषों की कथा कहने में सदा अनुरक्त रहता है बाकी तो मल से भरा एवं दन्तरूपी कीड़ों से व्याप्त मानो गड़ढा ही है।^{२५} जो मनुष्य कल्याणकारी वचनों को कहता अथवा सुनता है वही मनुष्य है, बाकी तो शिल्पकार के द्वारा बनाए हुए मनुष्य के पुतले के समान है।^{२६} उसमें कथा के सुनने से मनुष्यों को जो सुख प्राप्त होता है वह कृती लोगों का स्वार्थ (आत्मप्रयोजन) कहलाता है तथा यही पुण्योपाजन का कारण है।^{२७}

कथा के भेद—कथा चार प्रकार की होती है : आक्षेपणी, निक्षेपणी, संवेजनी तथा निवेदनी।

आक्षेपणी—वह कथा जिसके द्वारा अन्य मत-मतान्तरों की आलोचना की जाती है।^{२८}

निक्षेपणी—वह कथा जिसमें तत्त्व का निरूपण किया जाता है।^{२९}

५८. पद्य० १।२५।

६०. वही, १।२८।

६२. वही, १।३०।

६४. वही, १।३२।

६६. वही, १।३४।

६८. वही, १०६।९२।

५९. पद्य० १।७०।

६१. वही, १।२९।

६३. वही, १।३१।

६५. वही, १।३३।

६७. वही, १।३५।

६९. वही, १०६।९२।

संवेजनी—संसार से मग उत्पन्न करनेवाली कथा संवेजनी है ।^{७०}

निर्वेदनी—भोगों से वैराग्य उत्पन्न करनेवाली पुण्यवर्द्धक कथा निर्वेदनी है ।^{७१}

इन्द्रजाल^{७२}

मनोरंजन के लिए अलौकिक साधनों से अलौकिक सिद्धियों का प्रदर्शन इन्द्रजाल है । पञ्चचरित के पंचम पर्व में श्रुतसागर मुनि महारक्ष विद्याधर को वैराग्य का उपदेश देते हुए कहते हैं कि जो करोड़ों कल्प तक प्राप्त होने वाले देवों के भोगों से तथा विद्याधरों के मनचाहे भोग-विलास से सम्पुष्ट नहीं हो सका, वह सौ आठ दिन तक प्राप्त होने वाले स्वप्न अथवा जाल (इन्द्रजाल) सदृश भोगों से कैसे तृप्त होगा ।^{७३} प्राचीनकाल में इन्द्रजाल के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं । इन उल्लेखों से इन्द्रजाल के विकास पर^{७४} पर्याप्त प्रकाश पड़ता है ।

७०. पद्य० १०६।९३ ।

७१. पद्य० १०६।९३ ।

७२. वही, २८।१६५ ।

७३. अष्टभिर्दिवसैः स त्वं कथं प्राप्स्यसि तर्पणम् ।

स्वप्नजालोपमैर्भोगैरधुना भज्यतां शमः ॥ पद्य० ५।३५९ ।

७४. प्रारम्भ में इन्द्रजाल शब्द का प्रयोग इन्द्र के जाल (माया) के अर्थ में हुआ (अथर्व० ८।८।८) । इन्द्र देवसेना का नेता था । वह असुरों को जब साधारण अस्त्र-वास्त्रों से पराजित न कर सका तो सम्भवतः उसने कुछ अलौकिक और अद्भुत प्रयोगों के द्वारा विजय प्राप्त की थी । ऐसे प्रयोगों को इन्द्र जाल कहा गया । शतपथ ब्राह्मण में असुरविद्या (माया) का नाम मिलता है । यह इन्द्रजाल है और यज्ञ के अवसर पर निष्पन्न होता था (शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।११) । बौद्ध साहित्य के अनुसार इन्द्रजाल के निम्नलिखित रूप प्रचलित थे—मन्त्रबल से जीभ बाँधना, ठुड्डी को बाँध देना, किसी के हाथ को उल्टा देना, किसी के कान को बहुरा बना देना, दर्पण पर देवता बुलाकर प्रश्न करना, मुँह से अग्नि निकालना आदि । इसके अतिरिक्त गान्धारी विद्या में बौद्धभिक्षु एक से अनेक और अनेक से एक हो जाते थे । चिन्तामणि विद्या के द्वारा दूसरों की बात जान लेते थे (दीघनिकाय १।१ महासील १।११) ।

सूत्र-कृतांग में इन्द्रजाल के द्वारा मनोरंजन करते हुए अपनी जीविका कमाने वाले मदारियों के उल्लेख मिलते हैं । उनके प्रदर्शन निम्नलिखित प्रकार के होते थे—पुष्कलतारा गिराना, चन्द्र, सूर्य आदि के मार्ग

युद्ध-क्रीडा

प्राचीनकाल में युद्ध बड़े उत्साह और शान के साथ लड़ा जाता था। यही कारण है कि इसे स्थान-स्थान पर युद्धक्रीडा, युद्ध-महोत्सव आदि के रूप में अभिहित किया गया है। राम-रावण के युद्ध में रावण के गद्दीजे पितृ तैत्तिरीय ऋण्ड के ऋण्ड बनाकर अत्यधिक हर्ष से युक्त हो रावण चमकाते हुए रणभूमि में उछलते जा रहे थे।^{७५} वे योद्धा परस्पर एक दूसरे को अपछादित कर लेते थे, एक दूसरे के सामने दोड़ते थे, एक दूसरे से स्पर्धा करते थे, एक दूसरे को जीतते थे, उनसे जीते जाते थे, उन्हें मारते थे, उनसे मारे जाते थे और वीरश्रवणा करते थे।^{७६} रावण ने बहुरूपिणी विद्या में प्रवेश कर युद्धक्रीडा की। उसका सिर लक्ष्मण के तीक्ष्ण शार्णों से बार-बार कट जाता था तथापि बार-बार देवी-पद्मान कृण्डलों से सुशोभित हो उठता था। एक सिर कटता था तो दो सिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धि को प्राप्त हो जाते थे। दो भुजाएँ कटती थीं तो चार हो जाती थीं, चार कटती थीं तो आठ हो जाती थीं। हजारों शिरों और अत्यधिक भुजाओं से घिरा रावण ऐसा जान

दिखाना, प्रदाह, मृगच्छा, कौए उड़ाना, घूल उड़ाना, रक्त की वृष्टि करना, मन्त्र के द्वारा दण्ड देने के लिए डण्डा चलाना, किसी व्यक्ति को मुका देना, द्वार खोल देना, किसी को गिरा देना, उठा देना, जैमाई लियाना, अचल कर देना, चिपका देना, रोगी बना देना, स्वस्थ बना देना, अंतर्धान कर देना आदि। उस समय शबर, चाण्डाल, द्रविड, कलिङ्ग, शौड, गान्धार आदि विविध इन्द्रजालों का प्रचलन देशभेद के अनुरूप था (सूयग-जंग २।२।२७)।

सातवीं शताब्दी के ऐन्द्रजालिक पृथ्वी पर चन्द्र, आकाश में पर्वत, जल में अग्नि, मध्याह्न में सायंकाल, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता तथा मिथ, चारण, असुर आदि के सामूहिक नृत्य दिखला सकते थे। सबसे अधिक आश्चर्य तो इन्द्रजाल के द्वारा अन्तःपुर की अग्निदाह का दृश्य दिखलाना था। इसमें तो वास्तविक अग्निदाह के समान कुछ जलता हुआ प्रतीत होता था (रत्नावली, कपूरमंजरी एवं दशकुमारचरित में अवन्ति मुन्दरी प्रकरण)। रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ९५४-९५६, ९५७।

७५. पद्य० ७४।४१।

७६. आस्तुण्यन्तिभिधायन्ति स्पृहन्ति निर्जयन्ती च।

जीमन्ते धनन्ति ह्यन्ते कुर्वन्ति भटगजितम् ॥ पद्य० ७४।४३।

पड़ता था मानो अगणित कमलों के समूह से घिरा हो।^{७७} सुरसुन्दर और पद्मानन के युद्ध में दशानन के अवयव युद्धरूपी महोत्सव पाकर इतने अधिक फूल गए और रोमांचों से कर्कश हो गए कि आकाश में बड़ी कठिनाई से समा सके।^{७८} इन सब उल्लेखों से युद्धक्रीड़ा मनोविनोद का एक उत्तम साधन सिद्ध होती है।

पारिवारिक उत्सव

साधारणतः विवाह के अवसर पर या किसी राजकीय उत्सव के अवसर पर ऐसे आयोजनों का भूरिः उल्लेख पाया जाता है।^{७९} राम, लक्ष्मण तथा भरत के विवाहोत्सव के समय मिथिला नगरी पताका, तोरण और मालाओं से सजाई गई, बाजार के लम्बे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलों से व्याप्त किए गए, समस्त घरों में शंख और तुरही के मधुर शब्द किए गए।^{८०} उस समय धन से सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि' अर्थात् देओ यह शब्द महाप्रलय को प्राप्त हो गया था—नष्ट हो गया था। तदनन्तर अपने पुत्रों तथा बहुओं के साथ दशरथ ने बड़े वैभव से युक्त हो अयोध्या में प्रवेश किया। उस समय उत्तम शरीर को धारण करने वाली बहुओं को देखने के लिए समस्त नगर-निवासी अपना आधा कार्य छोड़ बड़ी व्यग्रता से राजमार्ग में आ गए।^{८१}

राजा युद्ध आदि की समाप्ति के बाद हाथी आदि पर सवार हो बड़ी धूम-

७७. पद्य० ७५।२२।

लक्ष्मोधरशरैस्तीक्ष्णैः शिरो लङ्कापुरीप्रभोः।

छिन्नं छिन्नमभूद् भूयः श्रीमत्कृष्णलमण्डितम् ॥ पद्य० ७५।२३।

एकस्मिन् शिरसि छिन्ने शिरोद्वयमजायत।

तस्योत्कृष्टमोर्वृद्धि शिरसि द्विगुणं ययुः ॥ पद्य० ७५।२४।

मिकृत्ते बाहुयुग्मे च जज्ञे बाहुचतुष्टयम्।

तस्मिन् छिन्ने ययौ वृद्धि द्विगुणा बाहुसन्ततिः ॥ पद्य० ७५।२५।

सहस्रैस्तमाङ्गानां भुजानां चातिभूरिभिः।

पद्मखण्डैरगण्यैश्च शायते रावणो वृतः ॥ पद्य० ७५।२६।

नभःकरिकराकारैः करैः केयूरभूषितैः।

शिरोभिषवाभवत् पूर्णं शस्त्ररत्नांशुर्पिजरम् ॥ पद्य० ७५।२७।

७८. पद्य० ८।१३१।

७९. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ८६।

८०. पद्य० २८।२६७, २६८।

८१. पद्य० २८।२७६, २७७।

घाम से नगर में प्रवेश करता था। सम्दीजन उसकी स्तुति करते थे। राजा के दोनों ओर चँवर बुलाए जाते थे। सफेद छत्र की राजा पर छाया की जाती थी। मृत्यु करती हुए लोग उसके आगे-आगे चलते थे। गवाक्ष (झरोखे) में बैठी हुई स्त्रियाँ उसे अपने नयनों से देखती थीं। रत्नमयी ध्वजाओं से नगर की शोभा बढ़ाई जाती थी। नगर में ऊँचे-ऊँचे तोरण खड़े किए जाते थे, गलियों में घुटने तक फूल बिछाए जाते थे और केशर के अल से समस्त नगर सींचा जाता था।^{८२}

पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में बड़ा भारी महोत्सव किया जाता था। दशानन का जन्म होने पर पिता ने पुत्र का बड़ा भारी जन्मोत्सव मनाया।^{८३} ऐसे उत्सवों में समस्त भाई, बन्धु और सम्बन्धी सम्मिलित होते थे।^{८४}

पंचकल्याणक महोत्सव

प्राचीन साहित्य में तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और निर्वाण ये पाँच कल्याणक देवों द्वारा मनाये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। पञ्चचरित में भी इनमें से अनेक का विशेष वर्णन उपलब्ध होता है।

गर्भ-महोत्सव (गर्भकल्याणक)—पञ्चचरित के तीसरे पर्व में भगवान् ऋषभदेव के गर्भमहोत्सव का विस्तृत वर्णन है। जब ऋषभदेव के गर्भावतार का समय हुआ, उस समय इन्द्र की आज्ञा से सन्तुष्ट हुई दिक्कुमारियाँ माता मरुदेवी की सेवा करने लगीं।^{८५} ये देवियाँ निम्नलिखित कार्य करती थीं—

१—वृद्धि की प्राप्ति होओ (नन्द), आज्ञा देओ (आज्ञापय), जीवित रहो (जीव) इत्यादि शब्दों का सम्मेलन के साथ उच्चारण।^{८६}

२—हृदयहारी गुणों के द्वारा स्तुति करना।^{८७}

३—धीमा बजाकर गुणगान करना।^{८८}

४—अमृत के समान आनन्द देने वाला आश्चर्यजनक गीत गाना।^{८९}

५—कोमल हाथों से पैर पलोटना।^{९०}

६—पान देना।^{९१}

८२. पद्य० ७।१००-१०३।

८४. वही, २६।१४७।

८६. वही, ३।११३।

८८. वही, ३।११४।

९०. वही, ३।११६।

८३. पद्य० ७।२१२।

८५. वही, ३।११२।

८७. वही, ३।११४।

८९. वही, ३।११५।

९१. वही, ३।११६।

१२८ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

७—आसन देना ।^{९२}

८—हाथ में तलवार लेकर सदा रक्षा करने में तत्पर रहना ।^{९३}

९—महल के भीतरी और बाहरी द्वार पर माल, स्वर्ण की छड़ी, दण्ड और तलवार आदि शस्त्र लेकर पहरा देना ।^{९४}

१०—चमर डुलाना ।^{९५}

११—वस्त्र लाकर देना ।^{९६}

१२—आभूषण लाकर उपस्थित करना ।^{९७}

१३—शय्या बिछाने के कार्य में लगना ।^{९८}

१४—बुहारना ।^{९९}

१५—सुगन्धित द्रव्य का लेप लगाना ।^{१००}

१६—भोजन-पान के कार्य में व्यग्र होना ।^{१०१}

१७—बुलाने आदि का कार्य ।^{१०२}

जन्माभिवेकोत्सव (जन्मकल्याणक)—तीर्थकर के जन्म के अवसर पर इन्द्र का आसन कम्पायमान हो जाता है ।^{१०३} भवनवासी देवों के भवनों में बिना बजाए शंख बजते हैं ।^{१०४} व्यन्तरी के भवनों में अपने आप भेरियों का शब्द होता है ।^{१०५} ज्योतिषी देवों के घर अकस्मात् सिंह की गर्जना होती है और कल्पवासी देवों के घर अपने आप ही घण्टा बजने लगता है ।^{१०६} पश्चात् अश्वभिषगम से तीर्थकर का जन्म जानकर इन्द्र भगवान् के माता-पिता की नगरी के लिए ऐरावत हाथी पर सवार हो प्रस्थान करता है ।^{१०७} इसके बाद वेद अनेक प्रकार^{१०८} से आनन्द मनाते हैं । जैसे—

१—भृत्य करना ।

२—तालियाँ बजाना ।

३—सेना को उत्तत बनाना ।

९२. पद्य० ३।११६ ।

९४. वही, ३।११७ ।

९६. वही, ३।११८ ।

९८. वही, ३।११९ ।

१००. वही, ३।११९ ।

१०२. वही, ३।१२० ।

१०४. वही, ३।१६२ ।

१०६. वही, ३।१६३ ।

१०८. वही, ३।१६६, १६७ ।

९३. पद्य० ३।११६ ।

९५. वही, ३।११८ ।

९७. वही, ३।११८ ।

९९. वही, ३।११९ ।

१०१. वही, ३।१२० ।

१०३. वही, ३।१६१ ।

१०५. वही, ३।१६२ ।

१०७. वही, ३।१६५ ।

४—सिंहनाद करना ।

५—विक्रिया से अनेक वेश बनाना ।

६—उत्कृष्ट गाना गाना ।

इसके पश्चात् कुबेर नगरी की रचना करता है । उस नगरी को विशाल कोट, परिखा तथा ऊँचे-ऊँचे गोपुरों के शिखरों से युक्त किया जाता है ।^{१०९} पश्चात् इन्द्र देवों के साथ नगर की प्रदक्षिणा कर इन्द्राणी के द्वारा प्रसूतिकागृह से जिन बालक को बुलवाता है ।^{११०} सौधर्मेन्द्र भगवान् को गोदी में बैठाता है । अन्य वेश छत्र, चमर आदि ग्रहण करते हैं । बाद में सुमेरु पर्वत की पाण्डुकशिला पर विशाल कलशों से भगवान् का इन्द्रादि देव अभिषेक करते हैं । पश्चात् इन्द्र उन्हें वस्त्राभूषणों से सज्जित कर स्तुति करता है । इसके बाद वह अन्य देवों के साथ अपने स्थान को चला जाता है ।^{१११} इस अवसर पर देवों द्वारा की गई क्रियाओं के कुछ रूप निम्नलिखित हैं :

१—तुम्बुरु, नारद और विश्वावसु का उत्कृष्ट मूर्च्छनायें करते हुए अपनी पत्नियों के साथ मन और कानों को हरण करने वाले गीत गाना ।

२—लक्ष्मी का शीणा बजाना ।

३—उत्तमोत्तम देवों का गायन, वादन और नृत्य करना ।

४—देवियों का गन्ध से युक्त अनुलेपन में भगवान् को उद्धर्तन करना ।

५—भगवान् के शरीर को उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों तथा विलेपनों से सज्जित करना ।

द क्षा-महोत्सव (दीक्षाकल्याणक)—किसी कारणवश तीर्थङ्कर को जब विराग हो जाता है और वे दीक्षा लेने की उद्यत होते हैं नव लीकाम्स्तिक देव आकर अनुमोदन करते हैं ।^{११२} पश्चात् उत्तम पालकी पर सवार हो भगवान् घर से बाहर निकलकर उद्यान आदि रमणोक स्थान में पहुँचते हैं ।^{११३} उस समय श्राव्यों की जनसनाहट और नृत्य करते हुए देवों के प्रतिध्वनिपूर्ण शब्द से तीनों लोकों का अन्तराल भर जाता है ।^{११४} 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर भगवान् दीक्षा लेकर मुष्टियों से केशलुञ्चन करते हैं । इन्द्र उन केशों की रत्नमयी पिटारे में रखकर औरमागर में निक्षिप्त करता है ।^{११५} उस प्रकार समस्त देव दीक्षा-कल्याणकसम्बन्धी उत्सव मनाकर यथास्थान चले जाते हैं ।^{११६}

१०९. पद्म० ३।१६९, १७० ।

११०. पद्म० ३।१७३ ।

१११. वही, ३।१७३, २१२ ।

११२. वही, ३।२६३, २७४, २६८ ।

११३. वही, ३।२७५-२७८, २८० ।

११४. वही, ३।२७९ ।

११५. वही, ३।२८३, २८४ ।

११६. वही, ३।२८५ ।

केवलज्ञान-महोत्सव (केवलज्ञानकल्याणक)—कुबलध्याम के प्रभाव से मोहनीय कर्म का क्षय हो तीर्थङ्कर को लोक और अलोक को प्रकट करने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है।^{११७} केवल ज्ञान के साथ ही बहुत भारी भा-मण्डल उत्पन्न होता है, उसके प्रकाश के कारण दिन-रात का भेद नहीं रह जाता।^{११८} जहाँ तीर्थङ्कर की पर्यवेक्षण होता है वहाँ एक अशोकवृक्ष प्रकट हो जाता है।^{११९} तत्पश्चात् देव नाना प्रकार के फूलों की वर्षा करते हैं।^{१२०} क्षीम को प्राप्त हुए समुद्र के समान भारी शब्दों से युक्त देवों द्वारा बजाये दुम्बुभि बाजे बजने लगते हैं। भगवान् के दोनों ओर दो यक्ष चमर डुलाते हैं। मेरु के शिखर के समान तथा सूर्य की किरणों को तिरस्कृत करने वाला एक सिंहासन उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त मोतियों की लड़ियों से विभूषित छत्र-त्रय उत्पन्न होता है। इस प्रकार समवसरण के बीच सिंहासन पर विराजमान भगवान् की शोभा अवर्णनीय हो जाती है।^{१२१} इन्द्र भी इस अवसर पर अपने-अपने परिवारों के साथ वन्दना के लिए वहाँ आते हैं।^{१२२}

निर्वाण-महोत्सव (निर्वाणकल्याणक)—तीर्थङ्कर की निर्वाणप्राप्ति के समय भी इन्द्रादिक देव आकर उत्सव करते हैं। पञ्चरित में सामान्य रूप से निर्देश होते हुए भी इस समय देवों के कार्यकलापों का विशेष कथन नहीं है।

वसन्तोत्सव

वसन्तोत्सव के विधानों में कामार्चन का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। साधारण स्त्रियाँ आन्नमंजरी को तोड़कर धनुर्धर कामदेव के लिए समर्पित कर देती थीं। यह उत्सव दो-चार क्षणों में समाप्त हो जाता था।^{१२३} जैन-परम्परा में इस प्रकार के कामार्चन को कोई स्थान नहीं था। फलतः सीता के दोहद के बहाने जिनेन्द्र भगवान् की अर्चना-हेतु राम द्वारा सीता तथा नगरवासियों सहित वसन्त ऋतु में उत्सव मनाने के लिए उद्यान-गमन की कल्पना कर ही ली गई। पञ्चरित के ९५वें पर्व में वसन्त के मनोहारी रूप के चित्रण के साथ इस उत्सव के मनाये जाने का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। राम ने प्रतिहारी से कहा कि बिना विलम्ब किये मन्त्रियों से कहो कि जिनालयों में अच्छी तरह पूजा

११७. पद्य० ४।२२।

११८. पद्य० ४।२३।

११९. वही, ४।२४, २५।

१२०. वही, ४।२५।

१२१. वही, ४।२६-३०।

१२२. वही, ४।३१।

१२३. राम जी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ९६२।

की जाय। सब लोग बहुत भारी आदर के साथ महेन्द्रोदय उद्यान में जाकर जिन-मन्दिरों की शोभा करें। तोरण, पताका, लम्बूष, घंटा, गोले, अर्द्धचन्द्र, चंदोबा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र तथा अत्यन्त सुन्दर उपकरणों के द्वारा लोग सम्पूर्ण पृथ्वी पर जिन-पूजा करें। निर्वाण-क्षेत्रों के मन्दिर विशेष रूप से विभूषित किये जायें तथा सर्व सम्पत्ति से सहित महाआनन्द बहुत भारी हर्ष के कारण प्रवृत्त किये जायें।^{१२४}

राम की आज्ञानुसार विशाल मन्दिरों के द्वारों पर उत्तम हार आदि से अलंकृत पूर्णकलश स्थापित किये गये। मन्दिरों की स्वर्णमयी लम्बी चौड़ी दीवारों पर मणिमय चित्रों से चित को आकर्षित करने वाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाये गये। स्वर्णों के ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियों के दर्पण लगाये गये और गवाक्षों (झरोखों) के आगे स्वच्छ झरने के समान मनोहर हार लटकाये गये। मनुष्यों के जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियों में पाँच वर्ण के सुन्दर रत्नमय पूर्ण से नानाप्रकार के बेल-बूटे खींचे गये। जिनमें-सी अथवा हजार कलिकायें थीं तथा जो लम्बी डंडी से युक्त थे, ऐसे कमल उन मन्दिरों की देहलियों पर तथा अन्य स्थानों पर रखे गये। हाथ से पाने योग्य स्थानों में मल स्त्री के समान शब्द करने वाली छोटी-छोटी घंटियों के समूह लटकाये गये। जिनकी मणिमय डण्डियाँ थीं ऐसे पाँच वर्ण के कामदार चमरों के साथ बड़ी-बड़ी हड्डियाँ लटकाई गईं। नाना प्रकार की मालायें फैलाई गईं। अनेक की संख्या में जगह-जगह बनाई गई विशाल वादनशालाओं, प्रेक्षकशालाओं (दर्शकगृहों) से वह उद्यान अलंकृत किया गया।^{१२५}

नगरवासी, देशवासी स्त्रियों, मन्त्रियों और सीता के साथ राम इन्द्र के समान बड़े वैभव से उस उद्यान की ओर चले। यथायोग्य ऋद्धि को धारण करने वाले लक्ष्मण तथा हर्ष से युक्त एवं अत्यधिक अन्नपान की सामग्रीसहित शेष लोग भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार जा रहे थे। वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदलीगृहों में तथा अतिमुक्तक लता के सुन्दर निकुञ्जों में महावैभव के साथ ठहर गईं तथा अन्य लोग भी यथायोग्य स्थानों में सुख से बैठ गये। हाथी से उतरकर राम ने विशाल सरोवर में सुखपूर्वक क्रीड़ा की। पद्मात् फूलों को तोड़कर जल से बाहर निकलकर सीता के साथ पूजन की दिव्य सामग्री से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा की।^{१२६} उस उद्यान में राम ने अमृतमय आहार,

विलेपन, धयन, आसन, निवास, गन्ध तथा माला आदि से उत्पन्न होनेवाले शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्शसम्बन्धी उत्तम सुख प्राप्त किये ।^{१२७}

आष्टाह्निक महोत्सव

यह पर्व कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मास के अन्त के आठ दिनों में मनाया जाता है । जैन-मान्यतानुसार इस पृथ्वी पर आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप है । उस द्वीप में ५२ जिनालय बने हुए हैं । उनकी पूजा करमे के लिए स्वर्ग से देव-गण उक्त दिनों में आते हैं । चूँकि मनुष्य वहाँ नहीं जा सकते, इसलिए वे उक्त दिनों में पर्व मनाकर यहीं पूजा कर लेते हैं ।^{१२८} पञ्चचरित में इस पर्व का प्राचीन रूप उपलब्ध होता है । इन दिनों मन्दिरों को पताकाओं से अलंकृत किया जाता था ।^{१२९} एक से एक बढ़कर समारोह, प्याऊ, मंच, पट्टशालायें, मनोहर नाट्यशालायें तथा बड़ी-बड़ी आपिकायें बनाई जाती थीं ।^{१३०} जिनालय स्वर्णादि की पराग से निर्मित नाना प्रकार के मण्डलादि से निर्मित एवं वस्त्र तथा कदली आदि से सुशोभित उत्तम द्वारों से शोभा पाते थे ।^{१३१} जो बूध, घी से भरे रहते थे, जिनके मुख पर कमल ढँके जाते थे, जिनके कण्ठ में मोतियों की मालायें लटकती थीं, जो रत्नों की किरणों से सुशोभित होते थे, जिनपर विभिन्न प्रकार के बेल-बूटे देदीप्यमान होते थे तथा जो जिन-प्रतिमाओं के अभिषेक के लिए इकट्ठे किये जाते थे, ऐसे हजारों कलश गृहस्थों के घरों में दिखाई देते थे ।^{१३२} मन्दिरों में कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजातक तथा मन्दार आदि फूलों से निर्मित अत्यन्त लज्ज्वल मालायें सुशोभित होती थीं । भौरे सुगन्धि के कारण उनपर भँड़राया करते थे ।^{१३३} उस समय के कार्यों की शोभा देखते ही बनती थी । कोई मण्डल बनाने के लिए बड़े आदर से पाँच रंग के चूर्ण पीयने का कार्य करता तो नाना प्रकार की रचना करने में निपुण कोई मालायें गुंथता ।^{१३४} कोई जल को सुगन्धित करता, कोई पृथ्वी को सौंघता,

१२७. पद्य० ९५।५६ ।

१२८. पं० कौलाशचन्द्र शास्त्री : जैनधर्म, पद्य० ६८।१, ५, ९, २९।१, ९ ।

१२९. पद्य० ६८।१० ।

१३०. पद्य० ६८।११ ।

१३१. वही, ६८।१३ ।

१३२. वही, ६८।१४, १५ ।

१३३. वही, ६८।१६, १७ ।

१३४ पिनाष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्चूर्णानि सादरः ।

कश्चिद् ग्रन्थाति मात्यानि लब्धवर्णः सुभक्तिषु ॥ पद्य० २९।३ ।

कोई नाना प्रकार के सुगन्धित पदार्थ पीसता ।^{१३५} कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रों से जिनमन्दिर के द्वार की शोभा करता तथा कोई नाना धातुओं के रस से दीवारों को अलंकृत करता ।^{१३६} इसके बाद उत्तमोत्तम सामग्रियों को एकत्रित कर तुरही के विशाल शब्द के साथ जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक किया जाता ।^{१३७} व्रत करने वाला व्यक्ति सहज और कृत्रिम पुष्पों (स्वर्ण, चाँदी तथा मणिरत्न से निर्मित कमलों आदि) से महापूजा करता था ।^{१३८} इसके बाद सब लोग गन्धोदक मस्तक पर लगाते थे ।^{१३९} इस अवसर पर उत्तमोत्तम मगाड़े, तुरही, मुदम, शंख तथा काहल आदि वाद्यों से मन्दिर में विशाल शब्द होता था ।^{१४०} कहीं-कहीं पर बड़ी धूमधाम से नगर में जिनेन्द्र भगवान् का रथ भी निकलवाया जाता था ।^{१४१} इन दिनों समस्त पृथ्वी पर राजा की ओर से जीवों के मारने का निषेध रहता था ।^{१४२} यदि दो राजाओं में युद्ध हो रहा होता तो दोनों पक्ष के लोग युद्ध से विरत रहते थे ।^{१४३}

मदनोत्सव^{१४४}

मदनोत्सव चैत्र शुक्ल द्वादशी को प्रारम्भ होता था । उस दिन लोग व्रत रखते थे । अशोकवृक्ष के नीचे भिट्टी का कलश स्थापन किया जाता था । उसमें सफेद चावल भर दिये जाते थे । नाना स्थान के पंडित और गुरु विशेष रूप से पूजोपहार का काम करती थी । कलश को सफेद वस्त्र से ढँक दिया जाता था और ध्वेत घन्टन छिड़का जाता था । कलश के ऊपर एक ताम्रपत्र रखा जाता था और उसके ऊपर कदलोदल बिछाकर कामदेव और रति की प्रतिमा बनाई जाती थी । नाना भाँति के गंध-धूप और नृत्य-वाद्य से कामदेव को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता था । इसके दूसरे दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भी मदन की पूजा होती थी और सुसज्जित भाव से स्तुति की जाती थी । चैत्र शुक्ल चतुर्दशी की रात को केवल पूजा ही नहीं होती थी, नाना प्रकार के अल्लोल गान भी गाये जाते थे और पूर्णिमा के दिन छककर उत्सव मनाया जाता

१३५. वासयत्युदकं कश्चिद्रव्यत्यपरः क्षितिम् ।

पितृष्टि परमान् गन्धान् कश्चिद्बहुविधच्छत्रोन् ॥ पद्य० २९।४ ।

१३६. द्वारशोभां करोत्यन्यो वासोभिरतिभासुरैः ।

नानाधातुरसैः कश्चित्कुसते भित्तिमण्डनम् ॥ पद्य० २९।५ ।

१३७. पद्य० २९।७ ।

१३८. पद्य० २९।८ ।

१३९. वही, २९।१० ।

१४०. वही, ६८।१९ ।

१४१. वही, ८।१८४ ।

१४२. वही, २२।२३५ ।

१४३. वही, ६८।२ ।

१४४. वही, ४७।१४० ।

का।^{१४५} पद्यचरित में मदनोत्सव का विशेष वर्णन उपलब्ध नहीं होता। हो सकता है जैनों की धार्मिक विचारधारा से इस उत्सव का विरोध होने के कारण एविषेण ने इसका विस्तृत विवरण देना आवश्यक न समझा हो, किन्तु इस उत्सव के आकर्षक लौकिक रूप से वे अवश्य प्रभावित रहे होंगे। इसीलिए ४७वें पर्व में उन्होंने सुग्रीव की कन्या मदनोत्सवा को मदन के उत्सव स्वरूप कहा है।^{१४६}

विद्या-निर्मित क्रीड़ायें

विद्याधर लोग विद्या के प्रभाव से अनेक प्रकार की क्रीड़ायें किया करते थे। इनके लिए अनेक प्रकार की विद्यायें आमोद-प्रमोद का अच्छा साधन थीं, साथ ही इनसे विद्या के प्रभाव^{१४७} को भी जाना जा सकता था। उदाहरण के लिए विद्या के प्रभाव से दशानन जिन-जिन क्रीड़ाओं को करता था, वे ये हैं :

१—एकरूप होकर भी अनेक रूप धरकर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करना।^{१४८}

२—सूर्य के समान सन्ताप उत्पन्न करना।^{१४९}

३—चन्द्रमा के समान चौंश्नी छोड़ना।^{१५०}

४—अग्नि के समान ज्वालायें छोड़ना।^{१५१}

५—भेड़ के समान बर्षा करना।^{१५२}

६—वायु के समान बड़े-बड़े पहाड़ों को चलाना।^{१५३}

७—इन्द्र जैसा प्रभाव जमाना।^{१५४}

८—समुद्र बन जाना।^{१५५}

९—पर्वत बन जाना।^{१५६}

१०—मदोम्मत हाथी बन जाना।^{१५७}

११—महावेगशाली घोड़ा बन जाना।^{१५८}

१४५. पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १०८।

१४६. मदनोत्सवभूताभ्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा ।। पद्य० ४७।१४०।

१४७. पद्य० ८।८५।

१४८. पद्य० ८।८६।

१४९. वही, ८।८६।

१५०. वही, ८।८६।

१५१. वही, ८।८७।

१५२. वही, ८।८७।

१५३. वही, ८।८७।

१५४. वही, ८।८७।

१५५. वही, ८।८८।

१५५. वही, ८।८८।

१५७. वही, ८।८८।

१५८. वही, ८।८८।

- १२-क्षणभर में पास आ जाना ।^{१५९}
 १३-क्षणभर में दूर पहुँच जाना ।^{१६०}
 १४-क्षणभर में दृश्य हो जाना ।^{१६१}
 १५-क्षणभर में अदृश्य हो जाना ।^{१६२}
 १६-क्षणभर में महान् हो जाना ।^{१६३}
 १७-क्षणभर में सूक्ष्म हो जाना ।^{१६४}
 १८-क्षणभर में भयंकर दिखाई पड़ना ।^{१६५}
 १९-क्षणभर में भयंकर नहीं रहना ।^{१६६}

विविध मनोरंजन

उपर्युक्त मनोरंजन के अतिरिक्त पद्यचरित में अन्य मनोरंजनों का भी उल्लेख मिलता है जो कि समय-समय पर मनोविनोद के लिए अपनाये गये थे ।

बानरों का अभिनय, उनका उछलना-कूदना आदि सदा ही लोगों के मनोरंजन का विषय रहा है । राजा श्रीकण्ठ जब बानरद्वीप में पद्माभा के साथ विहार कर रहे थे तो उन्होंने इच्छानुसार अनेक बानर देखे ।^{१६७} राजा श्रीकण्ठ ने बानरों के नाच क्रीड़ा की । कभी बड़ ताली बजाकर उन्हें नचाता था, कभी अपनी भुजाओं से उनका स्पर्श करता था और कभी बनार के फूल के समान लाल तथा चपटी नाक से युक्त एवं चमकीली सुनहली कनीनिकाओं से युक्त उनके मुख में उनके सफेद दाँत देखता था ।^{१६८} वे बानर परस्पर विनय से युक्त हो एक दूसरे के जुयों अलग करते थे । प्रेम से खो-खो शब्द करते हुए वे मनोहर कलह करते थे ।^{१६९} राजा श्रीकण्ठ ने उनका बड़े प्रेम से स्पर्श किया तथा उन बानरों के कुश पेट पर जो रोम अस्तव्यस्त थे, उन्हें उसने अपने स्पर्श से ठीक किया । साथ ही उनकी मोहों को तथा रेखा से युक्त कटाक्ष प्रदेशों को कुछ-कुछ ऊपर की ओर उठाया । इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए उसने प्रीतिपूर्वक बहुत से बानरों को मधुर अन्न-पान आदि के द्वारा पोषण करने के लिए सेवकों को दिए ।^{१७०}

१५९. पद्य० ८।८८ ।

१६१. वही, ८।८९ ।

१६३. वही, ८।८९ ।

१६५. वही, ८।८९ ।

१६७. वही, ६।१०७ ।

१६९. वही, ६।११५ ।

१६०. पद्य० ८।८९ ।

१६२. वही, ८।८९ ।

१६४. वही, ८।८९ ।

१६६. वही, ८।८९ ।

१६८. वही, ६।११३, ११४ ।

१७०. वही, ६।११७-११९ ।

प्राचीन भारतीय मनोरंजन में गणिकाओं को प्रमुख स्थान मिला था। गणिकायें राज्य की सम्पत्ति समझी जाती थीं। लक्ष्मण ने सिंहोदर और वज्रकर्ण की जब मित्रता करा दी तब सिंहोदर ने वज्रकर्ण को अपने राज्य का आधा भाग, चतुरंग सेना तथा धन आदि के साथ आधी गणिकायें भी वज्रोदर के लिए दीं।^{१७१} मृच्छकटिक में गणिका वसन्तसेना की समृद्धि का जो वर्णन किया गया है वह समाज में गणिकाओं के सम्मान का संकेत करता है। सम्भवतः उस काल में वेश्याओं के दो वर्ग थे : १. गणिकायें नृत्य गीतादि के द्वारा जोविकोपार्जन करती थीं तथा २. वेश्यायें रूप धौवन के द्वारा। गणिकाओं से समाज के प्रतिष्ठित लोगों का भी सम्बन्ध रहता था। गणिकायें अपनी पेशा छोड़कर कुलवधुयें भी बन सकती थीं और ब्राह्मण तक उनसे विवाह कर सकते थे। मृच्छकटिक में एक नहीं, दो-दो ब्राह्मणों का विवाह गणिकाओं से कराया गया है। चारुदत्त का विवाह वसन्तसेना से होता है, शबिलक मदनिका को अपनी बधू बनाता है। बिलासिनी (वेश्यायें) भी उस समय अच्छा मनोरंजन करती थीं। पञ्चचरित में एक स्थान पर ब्रिट पुरुषों से सेवित बिलामिनियों को देव-नर्तकियों के समान कहा गया है।^{१७२}

विदूषक^{१७३} और नट^{१७४} भी मनोरंजन में अत्यधिक योग देते थे। संस्कृत का शायद ही कोई नाटक हो जिसमें विदूषक न हो। शारीरिक अङ्गों में पञ्चचरित में इसके अटपटे कामों की विशेष चर्चा की गई है।^{१७५} इस प्रकार के शारीरिक अक्षय्यों तथा चेष्टाओं से हास्य-विमोद करने वाला व्यक्ति ही विदूषक की भूमिका अच्छी तरह निभा सकता था।

नृत्य करना,^{१७६} ताल बजाना,^{१७७} सिंहनाद करना (उदात्त नदितं) तथा गीत गाना आदि मनोरंजन के अच्छे साधन थे। इन सबका उल्लेख कला वाले अध्याय में किया गया है। बच्चों के मनोरंजन के लिए विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाए जाते थे। बाह्यावस्था की स्मृति के द्योतक होने के कारण ये किसी-किसी की अमूल्य धरोहर हो जाते थे।^{१७८} शुङ्ग नाम के मनुष्य के पास एक मयूर-पत्र का खिलौना था। एक दिन वह खिलौना हवा में उड़ गया और राजा के पुत्र को मिल गया। उस कृत्रिम मयूर के निमित्त शोक करता हुआ वह अपने मित्र से बोला कि मित्र ! यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरा

१७१. पद्य० ३३।३०७-३०९।

१७३. वही, ६।११७।

१७५. वही, ६।११७, १।२८।

१७७. वही, ७।३४८।

१७२. पद्य० ४०।२३।

१७४. वही, ९।१३९।

१७६. वही, ७।३४८।

१७८. वही, ७।३४९।

वह कृत्रिम समूहपत्र दे दो ।^{१७९} पद्मचरित के चौबीसवें पर्व में जय, उपजय और संक्रम के भेद से पुस्तकर्म के तीन भेद बतलाए गए हैं । इन सब उल्लेखों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बालकों के मनोरंजन के लिए अनेक प्रकार के खिलौने बनाने की कला का विकास उस समय तक अच्छी तरह हो गया था ।



अध्याय ४

कला

कला श्री व सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने का साधन है । प्रत्येक कलात्मक रचना में सौन्दर्य व श्री का निवास रहता है । जिस सृष्टि में श्री नहीं वह रसहीन होती है । जहाँ रस नहीं वहाँ प्राण नहीं रहता । जिस स्थान पर रस प्राण और श्री तीनों एकत्र रहते हैं वहीं कला रहती है ।^१ श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी 'परसनेलिटी' नामक पुस्तक में 'व्हाट इज आर्ट' शीर्षक लेख में ज्ञान के दो पक्ष कला और विज्ञान स्वीकार करते हुए लिखा है कि कला मनुष्य की बाह्य वस्तुओं की अपेक्षा स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है ।^२

कलाओं का वर्गीकरण—कलाओं की गणना के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध संख्या ६४ है । वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में ६४ कलाओं को गिनाया है । शुक्रनीति तथा तन्त्रग्रन्थों में कला की संख्या ६४ ही दी गई है, कहीं-कहीं सोलह, बत्तीस और ६४ कलाओं के नाम दिए गए हैं और कहीं ६४ से भी अधिक । ललितविस्तर में पुरुष-कला के रूप से ८६ नाम गिनाए हैं और काम-कला के रूप में ६४ नाम हैं । प्रबन्धकोश में कलाओं की संख्या ७१ लिखी हुई है । क्षेमेन्द्र की रचना 'कला विलास' में सर्वाधिक कलाओं के नाम दिए हुए हैं इनमें ६४ लोकोपयोगी कलाएँ हैं, ३२ धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति की और ३२ मात्सर्य, शील, प्रभाव और मान की हैं । इसके अतिरिक्त ६४ कलाएँ सुनारों की सोना चुराने की, ६४ कलाएँ वेवसायों की नागरिकों को मोहित करने की, १० भेषज कलाएँ और १६ कायस्थों की कलाएँ हैं, जिनमें उनके लिखने का कौशल और लेखनकला द्वारा जनता और शासन को बोझा देने की बातें हैं । इनके अतिरिक्त गणकों की कलाओं एवं १०० सार कलाओं का वर्णन है । वात्स्यायन एवं अन्यान्य आचार्यों द्वारा की गई कला-परिगणना पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन आचार्य किसी भी विषय पर कृत्य में निहित कौशल को कला मानते थे । पद्यचरित में भी हमें अनेक कलाओं के वर्णन होते हैं । ये कलाएँ निम्नलिखित हैं—

१. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : कला और संस्कृति, पृ० २३० ।
२. डॉ० राजकिशोर सिंह यादव : प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति, पृ० ४ ।
३. कामसूत्र की देवदत्त शास्त्रीकृत व्याख्या, पृ० ८३, ८४ ।

नाट्य-कला

भरत मुनि ने कहा कि कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म ऐसा नहीं है, जो नाट्य में न आता हो ।^{४८} पञ्चचरित के अनुसार गीत, नृत्य, वाद्य इन तीनों का एक साथ होना नाट्य कहलाता है ।^{४९} भरत मुनि ने भी कहा है कि नाट्य के प्रयोक्ता को पहले गीत में परिचय करना चाहिए, क्योंकि गीत नाट्य की शय्या है । गीत और वाद्य मलीर्भाति प्रयुक्त होने पर नाट्यप्रयोग में कोई विपत्ति नहीं होती ।^{५०} नाट्य के सम्पादन के लिए नाट्यशाला और प्रेक्षागृह होना चाहिए । पञ्चचरित में एक से एक बढ़कर नाट्यशालाओं^{५१} और अनेक की संख्या में बसाई गई प्रेक्षकशालाओं^{५२} (दर्शकगृहों) के होने का उल्लेख किया गया है ।

संगीत-कला

सम् (सम्पक्) और गीत दोनों के मेल से 'संगीत' शब्द बनता है । मौखिक गाना ही गीत है । इसे अभिनव गुप्त ने नाट्य का प्राण कहा है, अतः इसका प्रयोजन नाट्य से भिन्न नहीं है ।^{५३} सम् का अर्थ है अच्छा । वाद्य और नृत्य दोनों के मिलने से गीत अच्छा बन जाता है ।^{५४} अतः वाद्य और नृत्य को गीत के ऊपर एक एवं उत्कर्षविधायक मात्र कहा जाता है ।^{५५} पञ्चचरित में अनेक स्थानों पर संगीत का उल्लेख मिलता है ।^{५६} यही संगीतशास्त्र के अनेक

४८. न तच्छ्रुतं न सा विद्या न स न्यायो न सा कला ।

न स योगो न तत्कर्म नाटके घनं दृश्यते ॥

—भरतमुनि : नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय ।

५१. कलानां तिसृणामासां नाट्यमेकीक्रियोच्यते ॥ पद्य० २४।२२ ।

५२. गीते प्रयत्नः प्रथमं तु कार्यः शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम् ।

गीते च वाद्ये च सुप्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति ॥

—नाट्यशास्त्र, बम्बई संस्करण, अध्याय २२ ।

५३. पद्य० ६८।११ ।

५४. पद्य० ९५।६६ ।

५५. प्राणभूतं तावद् ध्रुवागतं प्रयोगस्थ ।

—अभिनव-भारती, बङ्गोदा सं० तृतीय खण्ड, पृ० ३८६ ।

५६. गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते ॥

—के० वासुदेवशास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० १ ।

५७. नृत्तं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ति च ॥

—आचार्य शाङ्ग देव : संगीतरत्नाकर (अङ्गार संस्करण, पृ० १५)

५८. पद्य० ६।१४, ३६।९२, ४८।२, ४०।३० ।

१४० : पञ्चरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

पारिभाषिक शब्द जैसे स्वर^{१३}, वृत्ति,^{१४} मूर्च्छना,^{१५} लय,^{१६} ताल,^{१७} जाति^{१८}, ग्राम,^{१९} आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है और उनमें से अनेक का विस्तार से वर्णन भी किया गया है ।

स्वर—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ये सात स्वर कहलाते हैं ।^{२०} भरत मुनि ने भी स्वरों की संख्या में इन्हीं को गिनाया है ।^{२१} स्वर का निजी अर्थ ग्रन्थों में ऐसा दिया गया है—

श्रुत्यनन्तरभावी यः शब्दोऽनुरणनात्मकः ।

स्वतो रञ्जयते श्रोतुश्चित्तं स स्वर ईर्यते ॥

इस श्लोक में स्वर का लक्षण ऐसा कहा है^{२२}—

(१) श्रुतियों को लगातार उत्पन्न करने से स्वर की उत्पत्ति होती है ।

(२) शब्द का अनुरणन रूप ही स्वर कहलाता है । अर्थात् प्रत्येक शब्द में आह्वति के बाद होने वाला शब्द, लहरों के क्रम से उत्पन्न होकर फिर क्रम से लीन हो जाता है । इसका नाम अनुरणन है । अनुरणन ही स्वर का मुख्य स्वरूप है, क्योंकि अनुरणन में स्वर श्रुतियों का प्रकाशन होता है ।

(३) प्रत्येक स्वर दूसरे स्वर की सहायता के बिना स्वयं रञ्जक है ।

वृत्ति—पञ्चरित में द्रुता, मध्यमा और विलम्बिता इन तीन वृत्तियों के प्रयोग का उल्लेख किया है ।^{२३}

मूर्च्छना—क्रमयुक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहे जाते हैं ।^{२४} मूर्च्छना

१३. पद्य० १७।२७७ ।

१४. पद्य० १७।२७८ ।

१५. वही, १७।२७८ ।

१६. वही, २४।९ ।

१७. वही, २४।९ ।

१८. वही, २४।१५ ।

१९. वही, ३७।१०८ ।

२०. षड्जर्षभौ तृतीयश्च गान्धारो मध्यमस्तथा ।

पञ्चमो धैवतश्चापि निषादश्चेत्यमी स्वराः ॥ पद्य० २४।८ ।

२१. षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा ।

पञ्चमो, धैवतश्चैव सप्तमश्च निषादवान् ॥

—नाट्यशास्त्र ब० सं० अ० २८, पृ० ४३२ ।

२२. संगीतशास्त्र, पृ० १४ ।

२३. पद्य० १७।२७८ ।

२४. क्रमयुक्त स्वराः सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसंज्ञिताः ॥

—नाट्यशास्त्र, बम्बई सं० अ० १२८, पृ० ४३५ ।

शब्द मूर्च्छा धातु से बना है जिसका अर्थ मोह और समुच्छाया (उत्सेव, उभार, चमकना, व्यक्त होना) है। मूर्च्छन धातु का अर्थ चमकना या उभारना है। श्रुति की मृदु (उतरी हुई अवस्था) को कुछ लोगों ने मूर्च्छना कहा है, कुछ लोगों का कथन है कि रागरूपी वमृत के हृद (सरोवर) में गायकों और श्रोताओं के हृदय का निमग्न होना ही मूर्च्छना है परन्तु भरत-संगीत में मूर्च्छना का अर्थ सात स्वरों का क्रमपूर्वक प्रयोग ही है।^{२५} पञ्चचरित में गन्धर्व द्वारा इक्कीस मूर्च्छना^{२६} और ४९ ध्वनियों^{२७} के प्रयोग का उल्लेख है। यही इक्कीस मूर्च्छना से तात्पर्य पद्म शास की इक्कीस औडुव तानें तथा ४९ ध्वनियों से तात्पर्य सब मूर्च्छनाओं में की जानेवाली उनघास (षाडव) तानों से है।

षड्ज शास की इक्कीस^{२८} औडुव तानें

उत्तरमध्यमा—

१	५	रे	ग	म	×	ध	नि
२	स	×	ग	म	×	ध	नि
३	सरे		×	म	प	ध	

रजनी—

४	नी	×	रे	ग	म	×	ध
५	नी	स	×	ग	म	×	ध
६	×	स	रे	ग	म	प	ध

उत्तरायता—

७	ध	नी	×	रे	ग	म	×
८	ध	नी	स	×	ग	म	×
९	ध	×	स	रे	×	म	प

गुह्यषड्जा—

१०	×	ध	नी	×	रे	ग	म
११	×	ध	नी	स	×	ग	म
१२	प	व	×	स	रे	×	म

मत्सरीकृता—

१३	म	×	ध	नी	×	रे	ग
१४	म	×	ध	नी	स	×	ग
१५	म	प	ध	×	स	रे	×

२५. कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति : भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० ३५, ३६।

२६. पद्म० १७।१२८।

२७. पद्म० १७।२८०।

२८. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० ४६।

१४२ : पञ्चरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

अष्टक्रान्ता—

- १६ ग म × ध नी × रे
 १७ ग म × ध नी स ×
 १८ × म प ध × स रे

अभिद्विगता—

- १९ रे ग म × ध नी ×
 २० × ग म × ध नी स
 २१ रे × म प ध × स

सब मूर्च्छनाओं में की जाने वाली उनचास^{२९} (षड्ध) तानें—

उत्तरसम्भ्रा—

- १ × रे ग म प ध नि
 २ स × ग म प ध नि
 ३ स रे ग म × ध नि
 ४ स रे ग म प ध ×

रजनी—

- ५ नी × रे ग म प ध
 ६ नी सा × ग म प ध
 ७ नी सा रे ग म × ध
 ८ × सा रे ग म प ध

उत्तरायता—

- ९ ध नी × रे ग म प
 १० ध नी स × ग म प
 ११ ध नी स रे ग म ×
 १२ ध × स रे ग म प

शुद्ध षड्जा—

- १३ प ध मो × रे ग म
 १४ प ध नी सा × ग म
 १५ × ध नी सा रे ग म
 १६ प ध × सा रे ग म

भत्सरीकृता—

- १७ म प ध नी × रे ग
 १८ म प ध नी सा × ग
 १९ म × ध नी सा रे ग
 २० म प ध × सा रे ग

धश्चक्रान्ता—

- २१ ग म प ध नी × रे
 २२ ग म प ध नी स ×
 २३ ग म × ध नी स रे
 २४ ग म प ध × स रे

अभिरुद्वगता—

- २५ रे ग म प ध नी ×
 २६ × ग म प ध नी स
 २७ रे ग म × ध नी स
 २८ रे ग म प ध × स

सौखीरी (मध्यम धाम)

- २९ म प ध नी × रे ग
 ३० म प ध नी स × ग
 ३१ म प ध नी स रे ×

हृदिणादवा—

- ३२ ग म प ध नी × रे
 ३३ ग म प ध नी स ×
 ३४ × म प ध नी स रे

कलोपनता—

- ३५ रे ग म प ध नी ×
 ३६ × ग म प ध नी स
 ३७ रे × म प ध नी स

शुद्धमध्या—

- ३८ × रे ग म प ध नि
 ३९ स × ग म प ध नि
 ४० स रे × म प ध नि

भागों—

- ४१ नी × रे ग म प ध
४२ नी सा × ग म प ध
४३ नी सा रे × म प ध

पौरवी—

- ४४ ध नी × रे ग म प
४५ ध नी स × ग म प
४६ ध नी स रे × म प

हृष्यका—

- ४७ प ध नी × रे ग म
४८ प ध नी स × ग म
४९ प ध नी स रे × म

लय—तालक्रिया के अनन्तर (अगली तालक्रिया से पूर्व तक) किया जाने वाला विश्राम लय कहलाता है।^{१०} पद्मचरित में लय के द्रुत, मध्य और विलम्बित ये तीन भेद किए हैं।^{११} शीघ्रतम लय द्रुत, उससे द्विगुण मध्य तथा उससे द्विगुण विलम्बित कहलाती है। दिश, वार्तिक एवं दक्षिण मार्ग में विश्रान्तिकाल के परिणाम में भेद होने के कारण लय के अनेक भेद हो जाते हैं। फलतः क्षिप्रभाष में द्रुत, मध्य, विलम्बित, मध्यभाष में द्रुत, मध्य एवं चिरभाष में द्रुत, मध्य एवं विलम्बित भेदों का पृथक्-पृथक् रूप होता है।^{१२}

तीनों भागों में एक मात्रा का काल पाँच लघु अक्षरों के उच्चारणकाल के समान होता है, तथापि चित्रमार्ग में दस लघु अक्षरों के उच्चारणकाल से परिमित काल के पश्चात् होनेवाली लय द्रुत कहलाती है, वार्तिक मार्ग में बीस लघु अक्षरों के उच्चारण काल के पश्चात् उत्पन्न होनेवाली लय मध्य कहलाती है, दक्षिण मार्ग में चालीस लघु अक्षरों के उच्चारणकाल के पश्चात् उत्पन्न होनेवाली लय विलम्बित कहलाती है।^{१३}

१०. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २४२।

११. पद्य० २४।९।

१२. क्रियानन्तरविश्रान्तिलयः स त्रिविधो मतः।

द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुतः शीघ्रतमो मतः।

द्विगुणद्विगुणो ज्ञेयो तस्मान्मध्यविलम्बितौ।

मार्गभेदाच्चिरमप्रमध्यभाषैरनेकधा ॥

—भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २४२।

१३. वही, पृ० २४२।

किसी स्थान को जाने के तीन मार्ग हैं, दूसरा मार्ग पहले मार्ग की अपेक्षा दुगुना लम्बा है, तीसरे मार्ग की लम्बाई दूसरे मार्ग की अपेक्षा भी दुगुनी है। एक ही गति से चलने वाले तीन व्यक्तियों में प्रथम व्यक्ति प्रथम मार्ग से लक्ष्य स्थल पर जितने समय में पहुँचेगा, दूसरे मार्ग से चलने वाला उससे दुगुने और तीसरे मार्ग से चलने वाला उससे भी दुगुने समय में लक्ष्यस्थल तक पहुँचेगा। अपेक्षया पहले व्यक्ति के पहुँचने का काल द्रुत, दूसरे व्यक्ति के पहुँचने का काल मध्य और तीसरे व्यक्ति के पहुँचने का काल विलम्बित होगा। मार्गभेद से लय-भेद की भी स्थिति ऐसी ही है। इस लय का उपयोग अक्षर, शब्द या वाक्य में नहीं होता, क्योंकि बोलबाल के समय इनकी जो लय होती है, उसका संगीत से कोई सम्बन्ध नहीं है।^{३४}

ताल—प्रतिष्ठार्यक 'तल' धातु के पश्चात् अधिकरणार्थक 'व' प्रत्यय लगने से 'ताल' शब्द बनता है, क्योंकि गीत-वाद्य-नृत्य ताल में ही प्रतिष्ठित होते हैं। लघु, गुरु प्लुत से युक्त सशब्द एवं निःशब्द क्रिया द्वारा गीत, वाद्य और नृत्य को परिमित करने वाला ताल कहलाता है।^{३५} लघु, गुरु, प्लुत-पाँच निमेष या पाँच अक्षरों का उच्चारणकाल भरत^{३६} वर्णित तालों में लघु या मात्रा कहलाता है। दो लघु एक गुरु का निर्माण करते हैं और तीन लघुओं से एक प्लुत बनता है। ये लघु, गुरु, प्लुत छन्दःशास्त्र या व्याकरण शास्त्र के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत से भिन्न हैं।^{३७} गुरु का पर्याय कला भी है, तालभाग को भी कला कहते हैं तथा निःशब्द एवं सशब्द क्रियायें भी कला कहलाती हैं। तालशास्त्र में लघु का चिन्ह 'l', गुरु का चिन्ह 'G' और भरतवर्णित तालों में प्लुत का भी चिन्ह 'S' है।^{३८}

ताल का स्वरूप स्पन्दन है। संसार की सारी शक्तियाँ स्पन्दनरूप में हैं। कहा गया है कि ताल का अर्थ शिवशक्ति (ता = शिव, ल = शक्ति) है।^{३९} पद्मचरित में बल और चतुरस्र ये ताल की दो धोनियाँ कही गई हैं।^{४०}

३४. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २४३।

३५. वही, पृ० २३४।

३६. निमेषाः पञ्च मात्रा स्यात्—नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), अ० सं०, पृ० ४७५।

३७. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २३४।

३८. वही, पृ० २३५।

३९. के० वासुदेव शास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० २०६।

४०. पद्य० २४।९।

भरतीकृत तालों में चतुरस्र अर्थात् च चत्पुट (चञ्चत्पुट, चञ्चत्पुट) और त्र्यस्त अर्थात् चाचपुट (चापपुट) मुख्य हैं।^{४१} इन दोनों के तीन भेद, यथाक्षर (एककल) द्विकल और चतुष्कल होते हैं।^{४२} यथाक्षर से द्विगुण मात्रायें होने के कारण द्विगुण और चतुर्गुण मात्रायें होने पर चतुष्कल रूपों का निर्माण होता है।^{४३}

तालों का रूप जब ताल के नाम में प्रयुक्त अक्षरों की स्थिति के अनुसार होता है, तब ये यथाक्षर कहलाते हैं। यथाक्षर चञ्चत्पुट में अन्तिम अक्षर ट प्लुत होता है और चाचपुट में नहीं। संयुक्त वर्ण से पूर्व वर्ण ह्रस्व होने पर भी दीर्घ या गुरु माना जाता है, फलतः चञ्चत्पुट शब्द में क्रमशः गुरु, गुरु, लघु, प्लुत है। इसलिए यथाक्षर चञ्चत्पुट का रूप 'SSIS' और यथाक्षर चाचपुट का रूप 'SIS' है। यथाक्षर चञ्चत्पुट में आठ और यथाक्षर चाचपुट में छः मात्रायें होती हैं।^{४४}

जाति—रञ्जन और अदृष्ट अम्बुदम को जन्म देते हुए विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर जाति कहे जाते हैं। दश लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर-सन्निवेश जाति कहलाता है।^{४५}

जातियाँ ध्रुति, ग्रह, स्वर आदि के समूह से जन्म लेती हैं, इसलिए जातियाँ कहलाती हैं, जातियों से रस की प्रतीति उत्पन्न या आरम्भ होती है। अथवा

४१. त्र्यस्तश्च चतुरस्रश्च स तालो द्विविधः स्मृतः ।

चतुरस्रस्तु विज्ञेयस्तालश्चापपुटो भवेत् ।

—भरत : नाट्यशास्त्र, पृ० ४७६ ।

४२. त्र्यस्तः स खलु विज्ञेयस्तालश्चापपुटो भवेत् ।

—भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २४३ ।

४३. तौ चञ्चत्पुट-चाचपुटौ (द्विगुणौ) द्विकलापेक्षया द्विगुणीकृतौ सन्तौ चतुष्कला-
वित्युच्येते । अष्टगुरुसंमितौ द्विकलचञ्चत्पुटौ द्विगुणीकृतय षोडशगुरु-
संमितः संक्षतुष्कलो भवति । षड्गुरुसंमितौ द्विकलचाचपुटौ द्विगुणीकृत्य
द्वादशगुरुसंमितः संक्षतुष्कलो भवति ।

—संगीत-रत्नाकर, मल्लिनाथकृत टीका, अ० सं०, त्यला, पृ० ९ ।

(भरत का संगीतशास्त्र, पृ० २३६)

४४. कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति : भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २३६ ।

४५. तत्र केयं जातिर्नाम ? उच्यते—स्वरा एव विशिष्ट सन्निवेशभाजो महा-
ष्टाम्बुर्ध्वं च जनयन्तो जातिरित्युक्ताः । कोऽसौ सन्निवेश इति चेत् जाति-
लक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः ।

—आचार्य अभिनवगुप्त : भरतकोश, पृ० २२७ ।

राग आदि के जन्म का कारण होने से विशिष्ट स्वरसन्निवेश जाति की संज्ञा ले लेता है। अथवा ये जातियाँ मनुष्य की बाह्यणत्व आदि जातियों के समान हैं।^{४६}

जातियों के भेद—पद्मचरित में वैवती, आर्षभी, षड्ज, षड्जोदीच्या, निषादिनी, गान्धारी, षड्जकैकशी, षड्जमध्यमा, गान्धारोदीच्या, मध्यमपंचमी गान्धारपञ्चमी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, आन्धी, मध्यमोदीच्या, कमरिची, नन्दिनी और कौशिकी ये अठारह जातियाँ कही हैं।^{४७} भरतमुनि ने भी जातियों के ये ही अठारह भेद गिनाए हैं।^{४८}

वैवती—आरोह में षड्ज और पंचम लंघ्य या वर्ज्य हैं। रि ध बहुल स्वर हैं। ताल पंचपाणि है। मार्ग, गीति, प्रयोग इत्यादि षाड्जी जाति की तरह होते हैं। कलायें बारह हैं। इस जाति में चौक, केशिकी, देशी, सिंहली इत्यादि रागों की छाया है।^{४९}

आर्षभी—इस जाति में गान्धार और निषाद का दूसरे पाँच स्वरों के साथ मिलाकर प्रयोग करना पड़ता है। इस जाति में गान्धार और निषादबहुल स्वर हैं। पंचम अल्प स्वर है। पंचम का लंघन होता है। ताल चञ्चत्पुट (८ अक्षर) है। कलायें आठ हैं। नैष्कामिक ध्रुवा में प्रयोग किया जाता है। इस जाति में देशी मधुकारी की छाया है।^{५०}

षड्ज—इसे षाड्जी भी कहते हैं। इस जाति में (१) षाड्ज और मांडव-रहित सम्पूर्ण रूप में काकली स्वरों का प्रयोग है। (२) सग-सधा जोड़कर प्रयोग करना है। (३) गान्धार जब अंश होता है तब निषाद का लोप नहीं है। (४) इस जाति के प्रबन्ध में ताल है। पंचपाणि में की षट्पितामृतक नामक ताल का एक भेद है, ताल है। (५) यह ताल एक कला, द्विकला और चतुष्कला में प्रयुक्त किया जाता है। इस ताल के मार्ग में त्रिच, वार्तिक तथा दक्षिण कर्क (अर्थात् हर कला

४६. श्रुतिग्रहस्वरादिसमूहाज्जायन्त इति जातयः। अतो जातय इत्युच्यन्ते यस्माज्जायते रसप्रतीतिरारम्यत इति जातयः। अथवा सकलस्य रागादेः जन्महेतुस्वाज्जातय इति। यद्वा जातय इव जातयः, यथा नराणां बाह्यणत्वा-दयो जातयः।
—मत्सङ्ग : भरतकोश, पृ० २२७।

४७. पद्म० २४।१२-१५।

४८. भरत : नाट्यशास्त्र, (बम्बई संस्करण), पृ० ४३९।

४९. के० बासुदेव शास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० ५३।

५०. वही, पृ० ५२।

की दो, चार और आठ मात्राओं का) प्रयोग होता है। (६) गीति में मानवी, संभाविता और पृथुला इन तीनों का प्रयोग है। (७) नाटक में इस जाति का प्रयोग नैऋतिक ध्रुवा में पहले दृश्य में किया जाता था। संगीतरत्नाकार-काल के (ई० सन् १२०० के) बराटी राग की छाया इस जाति में थी।^{५१}

षड्जोदीच्या—स भ नि और ग इन चारों में दो-दो स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता है। मध्य गान्धारबहुल स्वर है। षड्ज और ऋषभ अतिबहुल स्वर हैं। निषाद और गांधार अंश होते हैं तो निषाद का अल्पत्व नहीं होता। गीति, ताल, कला, विनियोग आदि षड्जी के ही समान हैं। इसका प्रयोग दूसरे दृश्य में ध्रुवा गान में होता था।^{५२}

निषादी—स भ प ध अल्पत्व स्वर है और नि रि ध बहुल स्वर है। विनियोग षड्जी की ही तरह होता है। ताल चम्पत्पुट है। कलायें सोलह हैं। चौक्ष, साधारित, देशी बेलावली आदि की छाया इस जाति में पाई जाती है।^{५३}

गांधारी—इस जाति में न्यास, स्वर एवं अंशस्वर अन्य स्वरों के साथ प्रयुक्त किये जाते हैं। रि और ध का साथ प्रयोग किया जाता है। पंचम के अंश होने पर जाति षाडव और ओडवरहित अर्थात् पूर्ण होती है। नि, स, म, इनमें कोई एक स्वर अंश होता है तो ओडव रूप नहीं होता। पूर्ण और षाडव रूप ही होते हैं। इसका ताल चम्पत्पुट है। प्रत्येक अक्षर की कलायें सोलह हैं। इसका प्रयोग तीसरे दृश्य में ध्रुवा गान में होता था। गांधारपंचमी, देशी बेलावली इन दोनों रागों की छाया इस जाति में है।^{५४}

षड्ज कौशिकी—ऋषभ और मध्यम अल्पत्व स्वर हैं। ताल चम्पत्पुट है। कलायें सोलह हैं। दूसरे दृश्य में प्रावेशिकी ध्रुवा में इसका प्रयोग होता था। इस जाति में गांधार पंचम, हिंदोल और देशी बेलावली की छायायें हैं।^{५५}

षड्ज मध्यमा—इस जाति में सब अंश स्वरों में से (स रि ग भ प ध नि) दो-दो स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता है। इस जाति में अन्तर काकली स्वरों का प्रयोग है। निषाद का अल्पत्व है। गांधारांश न होने पर षाडव-ओडव में गांधार और निषाद विवादी स्वर है। गीति, ताल, कला ये षड्जी की तरह हैं। यह दूसरे दृश्य में ध्रुवा गान में प्रयुक्त होती है।^{५६}

५१. के० वासुदेव शास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० ५२।

५२. वही, पृ० ५४।

५३. वही, पृ० ५५।

५४. वही, पृ० ५२-५३।

५५. वही, पृ० ५३।

५६. वही, पृ० ५४।

गांधारोदीच्या—पूर्ण स्वरूप में अंश के सिवा अन्य स्वर अल्पत्व के हैं । षाडव रूप में भी नि, ध, प तथा ग का अल्पत्व है । रि और ध साथ-साथ आते हैं । ताल चञ्चत्पुट है । कलायें सोलह हैं । चौथे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग है ।^{५७}

मध्यपंचमी (पंचमी)—इस जाति में स ग और म अल्पत्वस्वर हैं । रिम और गनि के प्रयोग साथ-साथ होते हैं । इस जाति में भी अन्तर काकली स्वरों का प्रयोग है । ऋषभ, अंश रहता है तो औडव रूप नहीं होता । पूर्ण और षाडव मात्र होते हैं । ताल चञ्चत्पुट है । तीसरे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था । चौथ पंचम तथा देशी आंधाली की रागछायायें इस जाति में हैं ।^{५८}

गांधारपंचमी—इस जाति में गांधारी और पंचमी दोनों जातियों के समान, स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता है । ताल चञ्चत्पुट है । कलायें सोलह हैं । चौथे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था ।^{५९}

रक्तगांधारी—षड्ज और गांधारी का साथ-साथ प्रयोग होता है । धैवत और निषाद बहुल स्वर हैं । ताल, गीति और कला षाड्जी के ही अनुसार है । तीसरे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था ।^{६०}

मध्यमा—इस जाति में षड्ज और मध्यम बहुल स्वर हैं । इस जाति में साधारण स्वर अर्थात् अन्तर काकली स्वरों का प्रयोग है । गांधार और निषाद अल्पत्व स्वर हैं । ताल चञ्चत्पुट है । कलायें आठ हैं । इसका प्रयोग दूसरे दृश्य में ध्रुवा गान में होता था । चौस (षुख) षाडव और देशी आंधाली इन दोनों की छाया इस जाति में है ।^{६१}

आन्ध्री—इस जाति में रि ग ध और नि इन स्वरों को मिला-मिलाकर प्रयोग करना चाहिए । अंशस्वर से न्यासस्वर तक का क्रमसंचार है । अन्य लक्षण गांधारपंचमी के अनुसार ही हैं ।^{६२}

मध्यमोदीच्या (मध्यमोदीच्यवा)—इस जाति में अल्पत्व, बहुत्व और स्वरसंगति गांधारोदीच्यवा के समान हैं । ताल चञ्चत्पुट है । कलायें सोलह हैं । चौथे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था ।^{६३}

कर्मारवी—इस जाति में जो स्वर अंश के नहीं हैं, वे अन्तरमार्ग प्रयोग के बहुत स्वर हैं । गांधार अति बहुल स्वर हैं । अंश स्वरों में से दो-दो स्वरों का

५७. वासुदेवशास्त्री, संगीतशास्त्र, पृ० ५४ ।

५८. वही, पृ० ५३ ।

६०. वही, पृ० ५४ ।

६२. वही, पृ० ५५ ।

५९. वही, पृ० ५५ ।

६१. वही, पृ० ५३ ।

६३. वही, पृ० ५५ ।

साथ-साथ प्रयोग होता है। ताल चञ्चत्पुट है। कलायें सोलह हैं। पाँचवें दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था।

तन्त्रन्ती—(तन्त्रयन्ती) इस जाति में गांधार ग्रहस्वर है। मतान्तर में पंचम भी ग्रहस्वर है। मन्द्र ऋषभ बहुल स्वर है। ताल चञ्चत्पुट है। कलायें बत्तीस हैं। नाट्य में बहुत दृश्य में ध्रुवागान में इसका प्रयोग होता था।^{६४}

कौशिकी—इस जाति में निषाद और धैवत अंश हों तो पंचम व्यास रहना चाहिए। इस विषय में मतान्तर भी है कि नि एवं ग अंश होने पर नि ग और प इस तीनों को व्यासस्वर रहना चाहिए। ऋषभ अल्पस्वर है। निषाद और पंचम बहुल स्वर है। सारे अंश स्वरों में अर्थात् स ग म प ष नि में दो-दो स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता है। ताल, कला और गीति षाड्जी के समान है। इसका प्रयोग पाँचवें दृश्य में और ध्रुवागान में होता था।^{६५}

संगीत की अभिव्यक्ति—संगीत की अभिव्यक्ति कंठ, शिर और उरःस्थल से होती है।^{६६}

सङ्गीत के चार पद—स्थायी, संचारी, आरोही और अवरोही इन चार प्रकार के वर्णों के सहित होने के कारण चार प्रकार के पद कहे गये हैं। संगीत इन चार पदों में स्थित होता है।^{६७}

स्थायी पद के अलङ्कार—प्रसन्नान्ति, प्रसन्नान्त, मध्यप्रसाद और प्रसन्ना-शब्दान ये चार स्थायी पद के अलंकार हैं।^{६८}

संचारी पद के अलङ्कार—निर्वृत्त, प्रस्थित, बिन्दु, प्रेङ्खोलित, तार, मन्त्र और प्रसन्न ये छः संचारी पद के अलंकार हैं।^{६९}

आरोही पद के अलङ्कार—आरोही पद का प्रसन्नान्ति नामक एक ही अलंकार है।^{७०}

अवरोही पद के अलङ्कार—अवरोही पद के प्रसन्नान्त और कुहर दो अलंकार हैं।^{७१}

ग्राम^{७२}—ग्राम शब्द समूहवाची है। जिस प्रकार कुटुम्ब में लोग मिल-जुलकर मर्यादा की रक्षा करते हुए एकट्ठे रहते हैं उसी प्रकार संवादी स्वरों का वह

६४. के० वासुदेवशास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० ५५।

६५. वही, पृ० ५४।

६६. पद्य० २४।७।

६७. पद्य० २४।१०।

६८. वही, २४।१६।

६९. वही, २४।१७।

७०. वही, २४।१८।

७१. वही, २४।१८।

७२. वही, ३७।१०८।

समूह ग्राम है, जिसमें भुक्तियाँ व्यवस्थित रूप में विद्यमान हों और जो मूर्च्छना, तान, वर्णन, क्रम, अलंकार आदि का आश्रय हो ।^{७३}

नृत्य-कला

पद्यचरित में कई स्थानों^{७४} पर नृत्य का उल्लेख तथा वर्णन किया गया है । साधारण^{७५} लोगों से लेकर राजपरिवार^{७६} (भूमणोचरी^{७७} और विद्याधरी^{७८} तक के यहाँ) तक सभी स्थानों पर नृत्यकला सीखी जाती थी । राजा सहस्रार के यहाँ छब्बीस हजार नृत्यकार नृत्य करते थे ।^{७९} पशुओं को भी नृत्य की शिक्षा दी जाती थी । राजा सहस्रार के पुत्र-जन्मोत्सव पर मनुष्यों की तो बात ही दूर रही, हाथियों ने भी अपनी चंचल सूँड़ उठाकर गर्जना करते हुए नृत्य किया था ।^{८०}

सुन्दर नृत्य के लिए आवश्यक बातें—

- १—सुन्दर नृत्यों के लक्षण का ज्ञान ।^{८१}
- २—मनोहर वेषभूषा (हार, मात्यादि) से भलंकृत होना ।^{८२}
- ३—परम लीला से युक्त होना ।^{८३}
- ४—स्पष्ट रूप से अभिनय दिखलाना ।^{८४}
- ५—शरीर के अंग-प्रत्यङ्ग (बाहु आदि) सुन्दर होना ।^{८५}
- ६—हाव-भाव आदि के दिखलाने में निपुण होना ।^{८६}
- ७—चरणों का विन्यास शब्दरहित होना ।^{८७}
- ८—नृत्य करते समय एक जाँच चलना ।^{८८}

७३. समूहवाचिनी ग्रामो स्वरश्रुत्यादिसंयुतो ।

यथा कुटुम्बिनः सर्वे एकोभूय वसन्ति हि ॥

सर्वलोकेषु स ग्रामो यत्र नित्यं व्यवस्थितः ।

षड्जमध्यम संज्ञौ तु द्वौ ग्रामौ विश्रुतौ किल ॥

—मतङ्ग : भरतकोश, पृ० १८९ (भरत का संगीतसिद्धान्त, पृ० ५)

७४. पद्य० ३८।१३०, ३९।५३, ५६, ४०।२३, ३७।९५, ८८।२८, ३७।१०८, ७।३४८, ७।१६, १०३।६६, २।२२, २४।६, ७१।८, ३७।१०९ ।

७५. पद्य० ७१।८ ।

७६. पद्य० २४।६ ।

७७. वही, १०३।६६ ।

७८. वही, १०३।६६ ।

७९. वही, ७।२५ ।

८०. वही, ७।१६ ।

८१. वही, ३९।५३ ।

८२. वही, ३९।५३ ।

८३. वही, ३९।५४ ।

८४. वही, ३९।५४ ।

८५. वही, ३९।५४ ।

८६. वही, ३९।५४ ।

८७. वही, ३९।५५ ।

८८. वही, ३९।५५ ।

१५२ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

९—शरीर की समस्त चेष्टायें संगीतशास्त्र के अनुरूप होना ।^{८९}

१०—दर्शकों के नेत्रों को रूप से, कानों को मधुर स्वर से और मन को रूप तथा स्वर दोनों से मजबूत बाँधने की चेष्टा करना ।^{९०}

११—साथ में नृत्य करने वाले के स्वर में स्वर मिलाकर गाना ।^{९१}

नृत्य की मुद्रायें—पद्मचरित में नृत्य की निम्नलिखित मुद्राओं के वर्णन होते हैं :

१—मन्द-मन्द मुस्कान के साथ देखना ।^{९२}

२—मोहों का चलाना ।^{९३}

३—सुन्दर स्तनों को कोंपाना ।^{९४}

४—झीमी-झीमी सुन्दर चाल से चलना ।^{९५}

५—स्थूल नितम्ब का मटकाना ।^{९६}

६—भुजाओं का चलाना ।^{९७}

७—उत्तम लीला के लक्षण हस्तरूपी पल्लवों का गिराना ।^{९८}

८—शीघ्रता से स्पर्श कर जिसमें पृथ्वीतल छोड़ दिया जाता है ऐसे पैर रखना ।^{९९}

९—शीघ्रता से नृत्य की अनेक मुद्राओं का बदलना ।^{१००}

१०—केशपाश का चलाना ।^{१०१}

११—कटि की अस्थि हिलाना ।^{१०२}

१२—नाभि आदि शरीर के अवयवों का दिखलाना ।^{१०३}

नृत्य के भेद—अङ्गहाराश्रय, अभिनयाश्रय और व्यायामिक ये नृत्य के तीन भेद हैं। इनके अवान्तर भेद भी होते हैं ।^{१०४} इन सभी नृत्यों के करते समय पैरों में नूपुर^{१०५} पहने जाते हैं जिनकी सनकार आकषक होती है।

८९. पद्य० ३९।६० ।

९१. वही, ३७।१०८ ।

९३. वही, ३७।१०४ ।

९५. वही, ३७।१०५ ।

९७. वही, ३७।१०५ ।

९९. वही, ३७।१०६ ।

१०१. वही, ३७।१०६ ।

१०३. वही, ३७।१०७ ।

१०५. वही, ३८।१३ ।

९०. पद्य० ३७।११० ।

९२. वही, ३७।१०४ ।

९४. वही, ३७।१०४ ।

९६. वही, ३७।१०५ ।

९८. वही, ३७।१०५ ।

१००. वही, ३७।१०६ ।

१०२. वही, ३७।१०७ ।

१०४. वही, २४।६ ।

वाद्य-विभागः

पञ्चवरित में वीणा^{१०१}, पणिव^{१०२}, वेणु^{१०८}, मृदंग^{१०९}, बंध^{११०} (बांसुरी), मुरज^{१११}, सझर^{११२} (साझ), आनक^{११३} (नगाडा), गझ^{११४}, भेरी^{११५}, सुर्य^{११६}, काहल^{११७}, कुन्कुभि^{११८}, झलरी^{११९} (झालर), पटह^{१२०}, तन्त्री^{१२१} (वीणा), डक्का^{१२२} आदि वाद्यों का प्रयोग मिलता है।

वाद्यों के चार भेद—पञ्चवरित में वाद्यों के चार प्रकार कहे गये हैं :

१. तत—तन्त्री अर्थात् वीणा से उत्पन्न होनेवाले।^{१२३}
२. अवनद्ध—मृदङ्ग से उत्पन्न होनेवाले।^{१२४}
३. सुषिर—बांसुरी से उत्पन्न होनेवाले^{१२५} अर्थात् छिद्रों में फूक मारने से ध्वनित होनेवाले^{१२६} वाद्यों का नाम सुषिर वाद्य है।
४. घन—ताल से उत्पन्न होने वाले।^{१२७}

के० बासुदेव शास्त्री के अनुसार तत वाद्य अनेक प्रकार की वीणायें अर्थात् एकतन्त्री, तकुल, त्रितन्त्रिका, चित्रा, विपञ्ची, मत्तकोकिला, आलापिनी, किन्नरी, पिताकी और आधुनिक तन्त्रीवाद्य अर्थात् जन्त्र, चतुस्तन्त्री, विविध-वीणा, यद्वीणा, सितार, सरोद, स्वरवत्, बाल सरस्वती, स्वरमण्डली, सारङ्गी, दिलरबा, वायलिन, तानपूरा, मोरसिंह आदि हैं।

सुषिर वाद्य में बंशी आदि विविध प्रकार की बांसुरियाँ, गहनाई, सुन्धरी, नागस्वर, मुखवीणा या छोटा नागस्वर, काहल, श्रीचिह्न, (तिहचिन्न), छद्म, शृङ्ग, कलारिनट, ट्रम्पेट, साक्सफोन आदि हैं।

१०६. पद्य० ३९।४७, ३६, ९२, ४८।२, १२।१६।

१०७. वही, १७।२७५।

१०९. वही, ३६।९२।

१११. वही, ४०।३०।

११३. वही, ४०।३०।

११५. वही, ४०।३०।

११७. वही, ६८।९।

११९. वही, ८८।२७।

१२१. वही, २४।२०।

१२३. वही, २४।२०।

१२५. वही, २४।२०।

१२६. के० बासुदेव शास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० २५३।

१२७. पद्य० २४।२०।

१०८. पद्य० १७।२७५।

११०. वही, ४०।३०।

११२. वही, ४०।३०।

११४. वही, ४०।३०।

११६. वही, ६८।९।

११८. वही, ८८।२७।

१२०. वही, ३।१६२।

१२२. वही, ८०।५५।

१२४. वही, २४।२०।

अनवद्य बाधों में प्राचीनकाल के बाद्य मृदङ्ग या मारदल या मुददल, मुरज, पणव, बर्दुर, हुडुक्का, पुष्कर, घट, डिडिम, ठक्का, आयुज, कुडुक्का, कुडुवा, ढवस, घढस, चञ्जा, डमरुक, मण्डि, ठक्का, ठक्कुलि, सेल्लुका, अल्लरी, भाण, त्रिवली, दुन्दुभि, भेरी, निस्साण आदि हैं।^{१२८}

तन्त्री—प्राचीन ग्रन्थों में वीणा के अनेक प्रकारों का उल्लेख हुआ है। संगीत-रत्नाकर के अनुसार एकतन्त्री नामक वीणा के दण्ड की लम्बाई तीन हस्त अर्थात् ७२ अंगुल (५४ इंच) होती थी। दण्ड की परिधि या घेरे का नाप एक वितस्ति या वित्ता (९ इंच) होता था। दण्ड का छिद्र पूरी लम्बाई में डेढ़ अंगुल (१½ इंच) व्यास का रहता था। एक सिरे से १७ अंगुल की दूरी पर मलानु या कद्दू को बाँधना होता था। दण्ड आबनूस की लकड़ी से बनाया जाता था। कद्दू का व्यास ६० अंगुल (४५ इंच) होता था। दूसरे सिरे में ककुभ रहता था। ककुभ के ऊपर धातु से बनाई हुई कूर्मपृष्ठ की मूर्ति पत्रिका होती थी। कद्दू के ऊपर नागपाशसहित रस्सी बाँधी जाती थी। तंत अर्थात् स्नायु की तन्त्री को नागपाश में बाँधकर ककुभ के ऊपर की पत्रिका के ऊपर शंकु या छूंटो से बाँधा जाता था। तन्तु और पत्रिका के बीच में नादसिद्धि के लिए वेणु-निमित्त जीवा रखते थे। इस वीणा में सारिकायें नहीं हैं। बायें हाथ के अँगूठा कनिष्ठिका और मध्यमा पर वेणुनिमित्त कन्निका को धारण करके तथा कद्दू को अधोमुख करके, ककुभ को दाहिने पाँव पर रखकर कद्दू को कंधे के ऊपर रहने की स्थिति में रखकर जीवा से एक वित्ता की दूरी पर ऊँगली से वादन किया जाता था।^{१२९} पद्मचरित में तंत का स्वरूप समझाते हुए तन्त्री शब्द का प्रयोग किया गया है।^{१३०}

अनवद्य बाद्य

मृदङ्ग—मृदङ्ग शब्द आदिकाल में पुष्कर बाद्य का नाम था। पुष्करबाद्य में चमड़े से मढ़े हुए तीन मुख थे। दो मुख बायें और दाहिनी ओर रहते थे, तीसरा मुख ऊपर रहता था। उसका पिण्ड मृत् या मिट्टी से बनाया जाता था। इसी कारण इसका नाम मृदङ्ग पड़ा। कुछ समय बाद बायें और दाहिनी ओर दो ही मुखवाले बाद्य की सृष्टि हुई, पश्चात् उसका पिण्ड लकड़ी से बनाया गया।

१२८. संगीतशास्त्र, पृ० २५३, २५४।

१२९. वही, पृ० २५५।

१३०. पद्म० २४।२०।

मृदङ्ग का पिण्ड बीजवृक्ष (तमिल में वेङ्कः) या पनस की लकड़ी से बनाया जाता है। उसकी लम्बाई २१ (२५ है इञ्च) है। लकड़ी का दल आधे अंगुल का है। दाहिना मुख १४ अंगुल और बाया मुख १३ अंगुल है, मध्य में १५ अंगुल है। दोनों ओर के मुख चमड़े से मढ़े जाते थे। किनारे पर चमड़ा घनता से युक्त रहता था। उस चमड़े के घेरे में २४ छिद्र रहते थे। छिद्रों का पारस्परिक अन्तर एक अंगुल रहता था। उन छिद्रों में से वेणो की तरह चमड़े की रस्सी (बध्र, बन्दी) से बाँधा जाता था। इन दोनों पूड़ियों को चमड़े की रस्सी से दोनों ओर खींचकर दृढ़ता से बाँधा जाता था। रस्सी के बन्धन को ढोला करने पर सानने से मृदङ्ग के स्वर को ऊँचा या नीचा कर सकते थे। पकाये हुए चावल की अपामार्ग के भरम के साथ मिलाकर दोनों पूड़ियों के मध्य में लगाया जाता था। उसका नाम कोहण है। संगीत-रत्नाकर में कहा गया है कि बायीं ओर अधिक और दाहिनी ओर थोड़ा कम लगाया जाता था। पर आजकल बायें मुख में बजाने से पूर्व गुँवा हुआ आटा छोटी मात्रा में लगाते हैं और दाहिने मुख में मृदङ्ग बनाते समय ही लकड़ी का कोयला, पकाया हुआ चावल तथा गीद को मिश्रित कर तीन इञ्च व्यास के चक्राकार में लगाते हैं। उसे स्थिर रहने देते हैं।^{१११}

पटह^{११२} (नगाड़ा)—आबनूस की लकड़ी से बनाया जाता था। उसकी लम्बाई २१। हाथ की है। मध्य में घेरे का नाप ६० अंगुल है। दाहिने मुख का व्यास ११। अंगुल है। बायें मुख का व्यास १० अङ्गुल है। दाहिनी ओर लोहे का पट्टा होता है। बायीं ओर लताओं का पट्टा लगाना पड़ता है। उससे चार अङ्गुल पूर लोहनिर्मित तीसरा पट्टा लगता है। दोनों ओर मृत बछड़े के चमड़े से मढ़ाया जाता है। बायीं ओर के चमड़े के घेरे में सात छिद्र बनाकर उनमें पतली रस्सी से सीने, चाँदी आदि से बनाए हुए चार अंगुल लम्बे सात कलशों को ढोला बाँधा जाता है। दाहिनी ओर से उन्हें फिर उस चमड़े से बाँध दिया जाता है। इसे कोण नामक साधन या हाथ से बजाते हैं। इसी तरह का पटह कुछ छोटा रहे तो उसे देशी पटह या अड्डावुज कहते हैं। पटह का देवता स्कन्द है।^{११३}

लकका^{११४}—इसकी लम्बाई एक हस्त की है। परिधि ३९ अंगुल और मुख का व्यास १३ अंगुल है। लता का बलय है। चमड़े से मढ़ा रहता है। चमड़े

१११. के० वासुदेवशास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० २७३, २७४।

११२. पद्य० ८०।३०, ८०।५४।

११३. संगीतशास्त्र, पृ० २७९, २८०।

११४. पद्य० ८०।५५।

में सात छिद्र रहते हैं। यह छिद्रों के द्वारा रस्सी से बांधा जाता है। मध्यभाग के हाथ से कुबुप नामक कोण के द्वारा वादन किया जाता है।^{१३५}

परिध (तबला)^{१३६}—तबले में मृदङ्ग के दो भाग अलग-अलग हैं। दोनों भागों में मुख रहते हैं। दाहिने भाग में मृदङ्ग की दाहिनी ओर उत्पन्न होने-वाले शब्द उत्पन्न होते हैं। बायें में मृदङ्ग की बायीं ओर के शब्द बोलते हैं। दाहिना भाग लकड़ी के और बायाँ ताले धातु से बनाया जाता है। उत्तरभारत में तबला मृदङ्ग के स्थान में है।^{१३७}

घनवाद्य ताल^{१३८}

कांस्य धातु से बनाया जानेवाला वाद्य घनवाद्य है। इस धातु को आग में भलीभाँति पकाकर पहले चकाकार कर लेते हैं। इस चक्र का मुख सवा दो अंगुल का होता है। उसका मध्य भाग अंगुल भर नीचा रहता है। उस निम्न देश के ठीक बीच में एक रंध्र होता है जिसमें छोरा पिरोया जाता है जो उन्नत भाग निम्न प्रदेश को घेरे रहता है। वह बड़े अंगुल का बनाना चाहिए, जिससे तालों की ध्वनि कानों को अच्छी लगेगी। उसी रंध्र में टिका रखने के लिए सूत्र को एक घन्धि से ग्रथित करते हैं।

ऐसे दोनों तालों को दोनों हाथों की तर्जनी व अंगूठे के सूत्रों को पकड़कर बजाते हैं। ध्वनि कम उत्पन्न होती हो तो वह शक्ति है, अधिक होती हो तो वह शिव है। बायें हाथ के ताल से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि अरुण होनी चाहिए। वैसे ही दाहिने हाथ के ताल से उत्पन्न ध्वनि घनता से युक्त होनी चाहिए। ऐसे नियम के वादन करने में वादक को अवबोध का फल प्राप्त होता है। अभ्यसा वादक का अमञ्जल होता है। इन दोनों तालों का देवता तुंबुरु है, अलग-अलग रूप में शक्तिताल का देवता शक्ति और शिवताल का देवता शिव है। इस वाद्यताल को बजाने में भी कल्पना होती है, जो अंगुलियों को ऊँचा करके बजाने से सिद्ध होती है।^{१३९}

चित्रकला

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्र-सूत्र में कहा गया है कि समस्त कलाओं में चित्रकला श्रेष्ठ है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देनेवाली है। जिस गृह में यह कला रहती है वह गृह भांगल्य होता है (तृतीय स्कन्ध ४५।४८) एक

१३५. संगीतशास्त्र, पृ० २८०।

१३६. पद्य० १७।२७५।

१३७. संगीतशास्त्र, पृ० २८१।

१३८. पद्य० २४।२०।

१३९. संगीतशास्त्र, पृ० २८२।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह कही गई है कि नृत्य और चित्र में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा था कि नृत्य और चित्र दोनों ही त्रैलोक्य की अनुकृति होती है। महानृत्य में दृष्टि, हाव-भाव आदि की ओर झुकी बताई गई है वह चित्र में भी प्रयोज्य है, क्योंकि वस्तुतः नृत्य ही परम चित्र है। 'नृत्यं चित्रं परं स्मृतम्।' ^{१४०} पद्यचरित में स्वर्ण से चित्रित आसन और सोने के स्थान बनाये जाने का उल्लेख है। ^{१४१} जिनेन्द्र भगवान् के चरित्र से सम्बन्धित चित्रपट फँलाने का भी यहाँ उल्लेख किया गया है। ^{१४२}

चित्र के भेद—चित्र दो प्रकार का होता है : १. शुष्क चित्र, २. आर्द्र चित्र।

शुष्क चित्र के भेद—नाना शुष्क और वर्जित के भेद से शुष्क चित्र दो प्रकार का है। ^{१४३}

आर्द्र चित्र के भेद—चन्दन आदि के द्रव्य से उत्पन्न होनेवाला आर्द्रचित्र अनेक प्रकार का है। कृत्रिम और अकृत्रिम रंगों के द्वारा पृथ्वी, जल तथा वायु आदि के ऊपर इसकी रचना होती है। यह अनेक रंगों के सम्बन्ध से संयुक्त होता है। ^{१४४}

सीमेश्वर की अभिलाषार्थ-चिन्तामणि नामक पुस्तक में चार ^{१४५} प्रकार के चित्रों का उल्लेख है : (१) विद्व चित्र—जो इतना अधिक वास्तविक वस्तु से मिलता हो कि दर्शक में पड़ी परछाई के समान लगे। (२) अविद्व चित्र—जो काल्पनिक होते थे और चित्रकार के भावोल्लास की उमंग में बनाए जाते थे। (३) रस-चित्र जो भिन्न-भिन्न रसों की अभिव्यक्ति के लिए बनाए जाते थे। (४) वृत्ति-चित्र। पद्यचरित के २८वें पर्व में रुचित नारद द्वारा सीता का सुन्दर चित्र बताये का उल्लेख मिलता है। ^{१४६} इस चित्र को विद्व-चित्र कहा जा सकता है, क्योंकि रविवेण ने इसकी विशेषता प्रत्यक्ष के समान (प्रत्यक्षमिव, अर्थात् यथार्थ के समान दिखाई दे, ऐसा) कही है। इस चित्र में अंकित बहिन सीता को देखकर भामण्डल शीघ्र ही लज्जा, शालग्रजान तथा स्मृति से रहित

१४०. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद (हजारीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ६४।

१४१. पद्य० ४०।१६।

१४२. पद्य० २४।३६।

१४३. वही, २४।३६।

१४४. वही, २४।३६-३७।

१४५. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ६४।

१४६. पद्य० २८।१९।

हो गया ।^{१४७} वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीर को वह चाहे जहाँ लपेटा से ढालने लगा ।^{१४८} उसे न रात्रि में नींद आती थी, न दिन में चैन पड़ता था । वह दिन-रात उसीके ध्यान में मग्न रहता था । सुन्दर उपचारों से उसे कभी सुख नहीं मिलता था ।^{१४९} वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहार से द्वेष करने लगा मानो उन्हें विषमय समझता हो ।^{१५०} उसकी समस्त चेष्टायें ऐसी हो गईं मानो उसे भूत लग गया हो । तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषों ने उसकी आतुरता का पता लगाया ।^{१५१} नारद के प्रकट होने पर लोगों ने उनसे पूछा—‘वह कोई नागकुमार देव की अङ्गना है या पृथ्वी पर आई हुई किसी कल्पवासी देव की स्त्री, किस तरह की देवी है ।’^{१५२} आदि । इसी प्रकार ४०वें पर्व में वंश-स्थल पर्वत के शिखर पर शुद्ध दर्पणतल के समान उत्कृष्ट भूमि तैयार कर पाँच वर्णों की धूलि से अनेक चित्र बनाए जाने का उल्लेख है । इन्हें स्पष्ट रूप से धूलि-चित्र कहा जा सकता है ।^{१५३}

मूर्ति-कला

डा० रायकृष्णदास के अनुसार सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, पीतल, अष्ट-धातु आदि प्राकृतिक तथा कृत्रिम धातु, पारे के मिश्रण, रत्न उपरत्न, काँच, कड़े और मुलायम पत्थर, मसाले, कच्ची या पकाई मिट्टी, मोम, लाख, गंधक, हाथी दाँत, शंख, सीप, अस्थि, सींग, लकड़ी एवं कागद के कुट आदि उपादानों को उनके स्वभाव के अनुसार गढ़कर, खोदकर, उभारकर, कोरकर (चारों ओर

१४७. तत्राज्ञानात् समालोक्य स्वसारं चित्रगोचराम् ।

ह्रींश्रुतिस्मृतिमुक्तात्मा द्राक् प्रभामण्डलोऽभवत् ॥ पद्य० २८।२२ ।

१४८. ततः शोचति निःश्वासान्मुञ्चतेऽत्यन्तमायतान् ।

शुष्यति क्षिपति अस्तं गात्रं पत्रक्वचिद् द्रुतम् ॥ पद्य० २८।२३ ।

१४९. न रात्रौ न दिवा निद्रां लभते ध्यानतत्परः ।

उपचारेण कान्तेन न जातु सुखमश्नुते ॥ पद्य० २८।२४ ।

१५०. पुष्पाणि गन्धमाहारं द्वेष्टि स्वेष्टं यथा भुक्षम् ।

करोति लोठनं भूयः संतापी जलकुट्टिमे ॥ पद्य० २८।२५ ।

१५१. ततो ग्रहगृहीतस्य सदृशैर्स्तिब्धिचेष्टितैः ।

जातं तदाऽऽतुरत्वस्य कारणं मतिनालिभिः ॥ पद्य० २८।२७ ।

१५२. महोरगाङ्गना किं स्याद् भवेत् किंवा विमानजा ।

मर्त्यलोकं समायाता त्वया दृष्टा कथञ्चन ॥ पद्य० २८।२९ ।

१५३. पद्य० ४०।७ ।

से गड़कर) पीटकर, हाथ से या औजार से डौलिया कर (हाथ से उपकरण को जहाँ जैसी आवश्यकता हो, ऊँचा उठाकर तथा नीचे दबाकर आकृति उत्पन्न करना) ठप्पा करके या साँचा छापकर (अर्थात् जो प्रक्रिया जिस उत्पादन के अनुकूल हो एवं जिस प्रक्रिया में जो खिलता हो), उत्पन्न की हुई आकृति को मूर्ति कहते हैं।^{१५४}

जिन-प्रतिमा—पञ्चचरित में हमें अनेक स्थलों पर विभिन्न मूर्तियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें सर्वोच्च उल्लेख तीर्थंकर की मूर्ति या प्रतिमा के विषय में मिलते हैं। यहाँ जिन-प्रतिमा की चैत्य भी कहा है।^{१५५} ये चैत्य कुबिम और अकुबिम दोनों प्रकार के थे।^{१५६} प्रतिमायें विशेषतया पंचवर्ण (काला, नीला, हरा, लाल, सफेद) की निर्मित होती थीं।^{१५७} रघनूपुर के वन में निर्मित जैनमन्दिर में राजा जनक ने जिस जिन-प्रतिमा का दर्शन किया था वह प्रतिमा अग्नि की शिखा के समान गौर थी। उसका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान था। वह पद्मासन से स्थित तथा बहुत ऊँची थी। उसके सिर पर जटाएँ थीं।^{१५८} साथ ही साथ वह आठ प्रातिहार्यों से युक्त थी।^{१५९} प्रातिहार्यों से युक्त जिन-प्रतिमा बनाये जाने के उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि उस समय यक्षों और देवों की मूर्तियाँ भी तीर्थंकर मूर्ति के साथ बनाई जाती थी। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि कुषाण-काल की जिन-मूर्तियों में प्रतीक-संयोजना के अतिरिक्त यक्ष-यक्षिणी-अनुगामिस्व प्राप्त नहीं होता। यह विशेषता गुप्त-काल से प्रारम्भ होती है, जबसे तीर्थंकर की प्रतिमाओं में यक्ष-यक्षिणियों आदि का साहचर्य अनिवार्य बन गया।^{१६०}

१५४. रामकृष्णदास : भारतीय मूर्तिकला, पृ० १५, १६।

१५५. पद्य० ९८।५६।

१५६. पद्य० ९८।५६।

१५७. वही, ९५।२७।

१५८. वही, २८।९५।

१५९. पद्य० २८।९६, जैनग्रन्थों में तीर्थंकरों के ४६ मूलगुणों का उल्लेख आता है। इनमें आठ प्रातिहार्य भी सम्मिलित हैं। ये प्रातिहार्य तीर्थंकर के केवलज्ञान के बाद प्रकट होते हैं। इनकी गणना इस प्रकार है—
१. अशोकवृक्ष का होना, २. रत्नमय सिंहासन, ३. भगवान् के सिर पर तीन छत्र का फिरना, ४. भगवान् के पीछे भामण्डल का होना, ५. निरक्षरी दिव्यध्वनि, ६. देवों द्वारा पुष्पवृष्टि, ७. यक्षों द्वारा चौसठ चवरों का डुलाना, ८. दुम्भुमि-बाजों का वजना।

१६०. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ४९३।

जैन-साधु केशों का लूंचन करते हैं, उनके लिए जटा रखना निषिद्ध है, फिर भी पद्मचरित में जिनमूर्ति को जटाखूयी मुकुट से युक्त^{१६१} कहा है। इससे अनुमान होता है कि इस प्रकार की मूर्तियाँ उनके तप की अवस्था का खोसत कराने के लिए बनाई जाती होंगी। अक्रवर्ती भरत ने कैलास पर्वत पर सर्वरत्नमय दिव्य मन्दिर बनवाकर ऋषभदेव की प्रतिमा विराजमान कराई थी। वह सूर्य के समान देदीप्यमान थी, पाँच सौ धनुष ऊँची थी, दिव्य थी। उसकी पूजा गन्धर्व, देव, किन्नर, अप्सरा, नाग तथा दैत्य आदि किया करते थे।^{१६२} वंशगिरि पर्वत पर राम ने हजारों जिन-चैत्य (जिन-प्रतिमायें) बनवाए थे।^{१६३} बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत भगवान् के समय समस्त भरतखेत्र में वह पृथ्वी अर्हन्त भगवान् की पवित्र प्रतिमाओं से अलंकृत थी।^{१६४} उन मन्दिरों में स्वर्ण, चाँदी आदि की बनी छत्रत्रय, चामरादि परिवार से सहित पाँच वर्ण की अत्यन्त सुशोभित जिन-प्रतिमायें थी।^{१६५} विभीषण के भवन में पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पद्मरागमणिनिमित्त अनुपम प्रतिमा विराजमान थी जो अपनी प्रभा से मणिमय भूमि में कमलसमूह की शोभा प्रकट करती थी।^{१६६}

शासनदेव—जैन-साहित्य में मन्दिरों के रक्षक के रूप में शासन-देवों का उल्लेख आया है। पद्मचरित में जैन मन्दिरों (जैनाः प्रासादः) को समीचीन रक्षा करने में निपुण, कल्याणकारी तथा भक्तियुक्त शासन-देवों से अधिष्ठित बताया गया है।^{१६७}

रविमूर्ति (सूर्यमूर्ति)—सीता की तमोमयी अवस्था का वर्णन करते हुए रविषेण ने कहा है कि वस्त्रमात्र परिग्रह को धारण करने वाली आर्या सीता बाह्य अलंकारों से यद्यपि रहित थी, तथापि वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो रवि की मूर्ति की तरह संयत हो।^{१६८} इस उल्लेख से उस समय रविमूर्ति बनाने की प्रथा का संकेत मिलता है।

मुनिमूर्ति—मुनि-मूर्तियाँ भी प्राचीनकाल में स्थापित कराई जाती थीं।

१६१. पद्म० २८।९५।

१६२. पद्म० ९८।६३-६५।

१६३. वही, ४०।२७।

१६४. वही, ६७।९, १०।

१६५. वही, ६७।१९।

१६६. वही, ७८।६८, ६९।

१६७. अधिष्ठिता भूतं भक्तियुक्तैः शासनदेवतैः।

सद्धर्मपक्षरक्षाप्रवर्णः शुभकारिभिः ॥ पद्य० ६७।१२।

१६८. बाह्यालङ्कारमुक्ताऽपि वस्त्रमात्रपरिग्रहाः।

आर्या रराज वंदेही रविमूर्त्यैव संयता ॥ पद्य० १०५।१०३।

रावण ने सुन्दर अक्षयों के धारक सप्तविधों की प्रतिमाएँ विराजमान कराई थीं।^{११९} ये सप्तविध सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिष्य, सर्वसुन्दर, जयवान्, विनय लालस और जयमित्र नाम के सात निर्घन्यमनि थे जो विहार कर्मों द्वारा मधुरा पुरी आए थे।^{१२०}

प्रतिहार-मूर्ति (द्वारपाल-मूर्ति)—रावण के महल में प्रवेश करते समय अङ्गद के किसी सुभट (योद्धा) ने हाथ में स्वर्णमयी वेत्रलता को धारण करने वाला एक (कृत्रिम) प्रतिहार (द्वारपाल) देखा। उससे उसने शान्ति भिनालय का मार्ग पूछा परन्तु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? अब कुछ उत्तर नहीं मिला तो 'अरे ! यह अहंकारी तो कुछ भी नहीं कहता' यह कहकर किसी सुभट ने वेग से उसे एक थप्पड़ मार दी, पर इससे उसकी अंगुलियाँ चूर हो गईं। बाद में हाथ के स्पर्श से उन्होंने जाना कि यह सचमुच का द्वारपाल नहीं, अपितु कृत्रिम द्वारपाल है।^{१२१} इससे स्पष्ट है कि प्रतिहार आदि की भी मूर्तियाँ बनाई जाती थीं तथा ये मूर्तियाँ इतनी सजीव सी होती थीं कि कोई भी अपरिचित इनको देखकर भ्रम में पड़ सकता था।

पशुमूर्तियाँ—पशुओं की भी मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। रावण के आलय में प्रवेश करते समय अंगद के सैनिकों ने ऐसे हाथी देखे जो अंजनगिरि के समान थे, उनके गण्डस्थल अत्यन्त चिकने थे, दाँत बड़े-बड़े और अत्यन्त देदीप्यमान थे तथा इन्द्रनीलमणि से निर्मित थे। उनके मस्तक पर ऐसे सिंहों के बच्चों ने पैर जमा रखे थे, जिनकी पूँछ ऊपर को उठी हुई थी, जिनके मुख दाढ़ों से अत्यन्त मयंकर थे, जिनके नेत्र भीषण थे तथा जिनकी मनोहर जटायें थीं।^{१२२} इस

१६९. पद्य० ९२।८२।

१७० पद्य० ९२।१-३।

१७१. दृष्टं कश्चित्प्रतीहारं हेमवेनलताकरम्।

जमाद शान्तिगेहस्य पन्थानं देशयाश्विति ॥ पद्य० ७१।३५।

कथं न किञ्चिदुरितकतो ब्रवीत्येष विसम्भ्रमः।

इति घनं पाणिना वेगादवापाङ्गुलिचूर्णनम् ॥ पद्य० ७१।३६।

कृत्रिमोऽयमिति ज्ञात्वा हस्तस्पर्शनपूर्वकम्।

किञ्चित् कलान्तरं जग्मुर्द्वारं विज्ञाय कुच्छ्रुतः ॥ पद्य० ७१।३७।

१७२. अञ्जनादिप्रतीकाशानिन्द्रनीलमयान् गजान्।

स्तिग्धगण्डस्थलान् स्थूलदन्तानत्यन्तभासुरान् ॥ पद्य० ७१।३९।

सिंहे बालाश्च तन्मूर्धन्यस्ताङ्घ्रीन् बालघोन्।

दंष्ट्राकरालवदनान् भीषणाक्षान् सुकेसरान् ॥ पद्य० ७१।४०।

१६२ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

प्रकार के हाथी और सिंहों को सचमुच का हाथी और सिंह समझ पैदल सैनिक भयभीत और अत्यन्त विह्वलता को प्राप्त हो भागते छने थे ।^{१७२}

वास्तु-कला

मानसार के अनुसार भूमि, हर्म्य (भवन आदि), मान एवं पर्यंक इन चारों का ही वास्तु-शब्द से बोध होता है । वास्तु की इस चतुर्मुखी व्यापकता की सौदाहरण व्याख्या करते हुए डा० प्रसन्नकुमार आचार्य वास्तु विश्वकोश (पृ० ४५६) में लिखते हैं—‘हर्म्य में प्रासाद, मण्डप, सभा, शाला, प्रपा तथा रंग ये सभी सम्मिलित हैं । यान आदिक स्थन्दन, शिविका एवं रथ का बोधक है । पर्यंक में पंजर, मंचली, मंच, फलकासन तथा बाल-पर्यंक सम्मिलित है । वास्तु-शब्द ग्रामों, पुरों, दुर्गों पत्तनों, पुटभेदनों, आवासभवनों एवं निवेश्यभूमि का भी वाचक है । साथ ही मूर्तिकला अथवा पाषाणकला वास्तुकला की सहचरी कही जा सकती है ।’^{१७४}

नगर वास्तु

नगरप्रभेद—नगरप्रभेद के अन्तर्गत खेट, कर्वट, द्रोणमुख आदि आते हैं । इन सबका विवरण राजनीतिक जीवनवाले अध्याय में दिया जा चुका है ।

मठ^{१७३}—मठ या विहार उस स्थान को कहते हैं जहाँ छात्रों के आवास एवं अध्ययन के स्थान हों । परन्तु कालान्तर पाकर ये ही छोटे-छोटे गुरुगृह, कुलपति-कुटीर, छात्रावास तथा भिक्षु-सटज बड़े-बड़े नगरों के आकार में परिणत हो गए ।^{१७५} पञ्चचरित के ३३वें पर्व के उल्लेख से इन मठों के वातावरण की बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है ।

एक बार भ्रमण करते हुए राम जटिल (जटाधारी) तापसियों के आश्रम में पहुँचे । उस आश्रम में अनेक मठ बने थे । मठों पर विशाल पत्ते छाए थे । सबके आगे बैठने के लिए चबूतरे बने हुए थे । इन चबूतरों पर एक ओर पलाश तथा ऊपर की लकड़ियों की गड़िड़ियाँ थीं । बिना जोते-बोए अपने आप उत्पन्न होने वाले धान उनके आश्रम में सूख रहे थे । निश्चिन्तता से हरिण वहाँ रोमन्ध कर रहे थे । जटाधारी बालक उन मठों में जोर-जोर से रटा करते थे । गायों के

१७३. दृष्ट्वा पादचरास्त्रस्ताः सत्यव्यालामिषाङ्किताः ।

पलायितुं समारब्धाः प्राप्ता विह्वलतां पराम् ॥ पद्म० ७१।२१ ।

१७४. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १७ ।

१७५. पद्म० ३३।३ ।

१७६. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ५८ ।

बसबं पूँछ उठाकर उनके आंगनों में चौकाड़ियाँ भर रहें थे। फूलों से सुन्दर लताओं की छाया में बैठे हुए तोता, मैना आदि पक्षी भी बैठकर स्पष्ट उच्चारण करते थे। मठों में छोटे-छोटे वृक्ष थे, जिन्हें कस्यारों अपना भाई समझकर सींचा करती थीं। उन तपस्वियों ने विभिन्न प्रकार के मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदर से मरे स्वागत के शब्द, अर्घ्य के साथ दिए भोजन, मधुर संभाषण, कुटी का दान और कोमल पत्तों की शम्पा आदि बकावट को दूर करने वाले उपचार से उनका बहुत सम्मान किया।^{१७७} उस आश्रम में रहने वाले तापस सूखे पत्ते खाकर तथा वायु का पानकर जीवन बिताते थे।^{१७८} तापसों के साथ उनकी स्त्रियाँ भी रहती थीं।^{१७९}

विद्वानों के अनुसार कालान्तर पाकर ये ही छोटे-छोटे गुहगुह, कुलपति कुटीर, छात्रावास, भिक्षु-उटज बड़े-बड़े नगरों के आकार में परिणत हो गए। ऐसे विश्वविद्यालयीय नगर आज भी पाए जाते हैं। जैसे कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, वाराणसी, प्रयाग आदि विश्वविद्यालयीय नगर।^{१८०}

दुर्ग—प्राचीन काल में दुर्ग नगर के रूप में तथा नगर दुर्ग के रूप में सन्नि-
विष्ट होते थे। इसीलिए शब्द-कल्पद्रुम में पुर का अर्थ दुर्ग, अधिष्ठान, कोट्ट
तथा राजधानी लिखा है।^{१८१} प्राचीन काल में जब शासनपद्धति तथा शासन-
व्यवस्था के वे सुन्दर केन्द्रीय साधन उपलब्ध नहीं थे, जिन्हें किसी विशाल
भूभाग पर शासन की सुव्यवस्था तथा शान्तिरक्षा का प्रबन्ध किया जा सके।
विभिन्न बस्तियाँ, चाहे वे ग्राम हों अथवा नगर, अपनी-अपनी रक्षा का उत्तर-
दायित्व स्वयं सँभालती थीं।^{१८२} इसीलिए दुर्गम दुर्ग बनाए जाते थे। पद्म-
चरित में ऐसे दुर्गम दुर्ग^{१८३} का उल्लेख मिलता है। कालान्तर में साधनों और
आबादी के विकास के साथ-साथ इस प्रकार के कुछ दुर्ग नगर के रूप में परिणत
हो गए।

देश-चयन—प्रकृति, जनपद, एवं जलवायु को दृष्टि में रखकर देशभूमि-
चयन किया जाता है। राजधानी-नगर के निवेश के सम्बन्ध में आचार्य शुक्र

१७७. पद्य० ३३।३-९।

१७८. पद्य० ३३।१२।

१७९. वही, ३३।१५।

१८०. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ५९।

१८१. 'पुरं कोट्टमधिष्ठानं कोट्टी स्त्री राजधान्यपि'—शब्दकल्पद्रुम (भारतीय
स्थापत्य, पृ० ६६)।

१८२. भारतीय स्थापत्य, पृ० ६५-६६।

१८३. पद्य० २६।४७।

कहते हैं—उस सुरम्य एवं समतल भू प्रदेश पर राजधानी नगर का निवेश करना चाहिए, जो विविध प्रकार के वृष्टियों, लताओं और पौधों से आकीर्ण हो, जहाँ पर पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तुओं की पूर्ण सम्पन्नता हो, जहाँ पर खाद्य एवं जल की पूर्ण सुलभता हो, जहाँ पर चारों ओर हरियाली, बाग-बगीचे, जंगल के प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय हों। जहाँ पर समुद्र तट पर गमनशील नौकाओं के यातायात द्वारा उनका संचार दृष्टिपथ रहता हो और यह स्थान पर्वत से बहुत दूर न हो।^{१८४} शुकाचार्य द्वारा कथित ये सभी लक्षण न्यूनाधिक संख्या में पद्मचरित में वर्णित नगर के वातावरण में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए रविवेण को आदर्शभूत विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर स्थित रथनूपुर आदि नगरियों के वातावरण पर प्रकाश डाला जाता है।

रथनूपुर आदि नगरियाँ वापिकाओं और बगीचों से व्याप्त हैं। स्वर्ग-सम्बन्धी भोगों का उत्सव प्रधान करने वाली हैं। बिना जोते उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के फलों से सहित हैं, सब प्रकार की ओदवियों से आकीर्ण हैं और सबके मनोरथों को सिद्ध करने वाली हैं।^{१८५} वहाँ पर्वतों के समान अनाज की राशियाँ हैं, वहाँ की सत्तियों का कभी क्षय नहीं होता, वापिकाओं और बगीचों से घिरे हुए वहाँ के महल बहुत भारी कान्ति धारण करते हैं।^{१८६} मार्ग घूर्णल और कण्टक से रहित तथा मुख उपजाने वाले हैं।^{१८७} जिनकी मधुर ध्वनि कानों को आनन्दित करती है ऐसे भेष वहाँ चार मास तक योग्य देश तथा योग्य काल में अमृत के समान वर्षा करते हैं।^{१८८} वहाँ की हेमन्त ऋतु शीतल वायु से रहित तथा आनन्दप्रद होती है।^{१८९} वहाँ शीष्म ऋतु में भी सूर्य मन्द तेज का धारक रहता है।^{१९०} वहाँ की अग्न्य ऋतुएँ भी मनोवाञ्छित वस्तुओं को प्राप्त कराने वाली हैं तथा वहाँ की निर्मल दिशाएँ नीहार (कुहरा आदि) से रहित हैं।^{१९१} वहाँ ऐसा एक भी स्थान नहीं जो सुख से युक्त न हो। वहाँ की प्रजा सदा भोगभूमि के समान क्रीड़ा करती रहती है,^{१९२} इत्यादि।

मार्ग-विनिवेश—पुरनिवेश में स्थापत्य का परम कौशल मार्ग-विनिवेश है। मार्गों का निवेशन केवल पुर की विभिन्न वर्गीय आवास-मालिकाओं के लिए

१८४. शुक्नीति प्र० अ० (भारतीय स्थापत्य, पृ० ७४)।

१८५. पद्म० ३।३१६-३१७।

१८६. पद्म० ३।३२४।

१८७. वही, ३।३२५।

१८८. वही, ३।३३६।

१८९. वही, ३।३२७।

१९०. वही, ३।३२८।

१९१. वही, ३।३२९।

१९२. वही, ३।३३०।

ही आवश्यक नहीं, वरन् नगर के जनपद के साथ सम्बन्ध स्थापन के लिए भी कम उपादेय नहीं है। तीसरे मार्ग-विनिवेश का परम प्रयोजन दिक्काममुख्य वास्तुकला के आधारभूत सिद्धान्त के अनुरूप प्रत्येक वस्ती के लिए सूर्यकिरणों का उपभोग एवं प्रकाश तथा वायु का स्वच्छन्द सेवन भी कम अभिप्रेत नहीं है। चौथे मार्गों का विनिवेश इस प्रकार हो कि प्रधान मार्ग पुर के मध्य में जाते हों। प्रधान मार्ग या राजमार्गों पर ही नगर के केन्द्र-भवन, राजहर्म्य, सभा, देवायतन एवं पण्यवीथी (बाजार) निविष्ट किए जाते हैं। पाँचवें मार्ग-विनिवेश में संचार-सीकर्य के लिए मार्ग की चौड़ाई आदि भी कम अपेक्षित नहीं है। मार्गों की संख्या कितनी हो, यह पुर पर आश्रित है।^{१९३} पद्मचरित में मार्ग-घोतक राजमार्ग और रथ्या ये दो शब्द ही मिलते हैं। राजमार्ग उस समय सीधे (कीटिल्यवजिता) बनाए जाते थे।^{१९४}

राजमार्गों का मार्गों में पहला स्थान है। इसका निवेश नगर के मध्य में बताया जाता है। समराज्जुण के अनुसार राजमार्ग की चौड़ाई का प्रमाण ज्येष्ठ, मध्य एवं कनिष्ठ त्रिविध पुरप्रभेदों के अनुसार २४, २०, १६ हस्त (२६, २०, २४ फुट) क्रमशः होना चाहिए। इतना विस्तारपूर्ण होना चाहिए जिससे पदातिमें विशेषकर चतुरंगिणी सेना, राजसी जुलूस तथा नागरिकों के सुविधापूर्ण संचार में किसी प्रकार की रुकावट न हो। यह केन्द्रमार्ग पक्का बनाना चाहिए।^{१९५} शुक्राचार्य के अनुसार उत्तम, मध्यम एवं कनिष्ठ भेद से राजमार्गों की चौड़ाई ४५, ३०, २२।१ फुट होनी चाहिए।^{१९६}

समराज्जुण सूत्रधार में तीन प्रकार की रथ्यायें बतलाई गई हैं—(१) महारथ्या, (२) रथ्या, (३) उपरथ्या। आदर्शपुर में कम से कम दो महारथ्यायें होनी चाहिए जो पुर के बाहर जनपद महामार्गों में अनुस्यूत हो जायें। इन दोनों महारथ्याओं की चौड़ाई का प्रमाण १२, १० तथा ८ हस्त (१८, १५, १२ फुट) ज्येष्ठ, मध्यम एवं पुरप्रभेद से क्रमशः बताया गया है।^{१९७} रथ्या की चौड़ाई राजमार्ग से बाधी तथा उपरथ्या की चौड़ाई राजमार्ग से थोड़ी होनी चाहिए। ये रथ्यायें एवं उपरथ्यायें पुर के आन्तरिक निवेश में सहायक बनती हैं। ये

१९३. भारतीय स्थापत्य, पृ० ८५।

१९४. पक्ष = ६।१२१।

१९५. भारतीय स्थापत्य, पृ० ८५।

१९६. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ८९।

१९७. वही, पृ० ८५।

उपमार्ग पुर को मुहल्लों में बाँटते हैं।^{१९८} पद्मचरित में रथ्याओं को तिराहों और चौराहों सहित कहने से इस बात की पुष्टि होती है।^{१९९}

त्रिक-चत्वर (तिराहा, चौराहा)—प्राचीन मार्गविन्यास में मार्ग-संगमों पर विशेष अन्तर प्रदान करके वहाँ पर कोई न कोई सुन्दर वस्तु रखकर उसकी शोभा बढ़ाई जाती थी। तिराहों और चौराहों पर भी किसी न किसी वास्तुकृति के योग से ये संगम सुन्दर बनाए जाते थे।^{२००} किसी विशेष अवसर पर तो इनकी शोभा में चार चाँद लग जाते थे। पद्मचरित में ऐसे ही एक विशेष अवसर पर (सोता के आगमन पर) इन तिराहों, चौराहों तथा इनसे सहित मार्गों को सुगन्धित जल से सींचने तथा फूलों से आच्छादित किए जाने का उल्लेख है।^{२०१}

जिनालय (जैना प्रागमना)^{२०२}—पुरनिवेश की बहुमुखी योजना में देवा-यतन-विधान प्राचीन पुरनिवेश का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। पद्मचरित के एक उल्लेख के अनुसार पर्वत-पर्वत पर, गाँव-गाँव में, पत्तन-पत्तन में, महल-महल में, नगर-नगर में, संगम-संगम में तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे-चौराहे पर मन्दिर (जिनालय) बनाये जाने की परम्परा की सूचना मिलती है।^{२०३} इससे यह ज्ञात होता है कि नगर के अंदर तथा बाहर सभी स्थानों पर मंदिर बनाये जाते थे। ये मन्दिर देश के अधिपति राजाओं तथा गाँव का उपभोग करने वाले सेठों द्वारा बनाये जाते थे।^{२०४} इन मन्दिरों में तीनों काल में बन्दना के लिए उद्यत साधुसमूह (साधुसंघ) रहता था।^{२०५} साधुसंघ के रहने के उल्लेख से मन्दिरों के व्यावहारिक महत्त्व पर भी प्रकाश पड़ता है। प्राचीन काल के मन्दिर महा-विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का काम तो देते ही थे, साथ ही जनता की धार्मिक जिज्ञासा के पूर्ण समाधाता थे। जिज्ञासु धार्मिक जनता मन्दिरों में जाकर धर्म का उपदेश सुनती थी तथा भजन-संकीर्तन में भाग लेकर उपास्य देव की भक्ति में विभोर होकर अपने को कृतकृत्य करती थी। ये मन्दिर नगर की शिक्षा, दीक्षा, धर्म एवं भक्ति, अव्यात्म एवं चिन्तन, योग एवं वैराग्य के जीते-जागते केन्द्र थे।^{२०६}

१९८. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ८६।

१९९. पद्य० ९९।१२।

२००. भारतीय स्थापत्य, पृ० ८९।

२०१. पद्य० ९९।१३।

२०२. पद्य० ६७।११।

२०३. वही, ६७।१४-१५।

२०४. वही, ६७।११।

२०५. वही, ६७।१७।

२०६. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ९७।

उद्यान—पुरनिवेश के लिए कृत्रिम तथा अकृत्रिम (प्राकृतिक) दोनों प्रकार के उद्यान होने चाहिए। इनमें से अकृत्रिम उद्यानों के विषय में देश परीक्षा के प्रसंग में कहा जा चुका है। कृत्रिम उद्यान प्रत्येक नगर में बनाये जाते थे और उनको आकर्षक बनाने का पूरा प्रयत्न किया जाता था। पद्यचरित में प्रसंगानुसार नगरों में स्थान-स्थान पर उद्यानों के होने की शर्षा की गई है।^{२०७} रावण ने जिस देवारण्य उद्यान में सीता को ठहराया था, रविषेण ने उसकी उपमा स्वर्ग से दी है।^{२०८} जिस प्रकार स्वर्ग में सभी वस्तुयें सुलभ होती हैं, उसी प्रकार इन उद्यानों में भी सभी प्रकार के भोगोपभोग की वस्तुयें जुटाई जाती होंगी। उस उद्यान के वृक्षों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनके बड़े-बड़े वृक्षों की कान्ति कल्प-वृक्ष के समान थी।^{२०९} बापी,^{२१०} सरोवर तथा कूप उद्यान के चिर सहचर होते थे।^{२११} उद्यानों में मन्दिर बनाये जाते थे तथा मन्दिरों में फूल आदि से सजावट तथा अर्चन आदि किया जाता था।^{२१२} उद्यानों में बापियाँ बनाने के अनेक^{२१३} उल्लेख प्राप्त होते हैं। ये बापिकायें स्वच्छ जल से भरी होती थी। इनमें सोदियाँ भी होती थीं जिनमें कमल और उत्पल आदि लगाए जाते थे।^{२१४} सरोवरों में भी सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं तथा कमल आदि उगाकर मनोहर बनाने का यत्न किया जाता था।^{२१५}

रक्षा-संविधान—समराङ्गण सूत्रधार के अनुसार नगर के रक्षार्थ प्राकारादि निवेश के १. वप्र एवं परिखा, २. प्राकार, ३. द्वार एवं गोपुर, ४. अट्टालिक ५. रथ्या ये पाँच प्रधान अंग हैं।^{२१६}

वप्र एवं परिखा—नगर की सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर परिखा या खाई खोदी जाती थी। पद्यचरित में राजगृह नगर का वर्णन करते हुए कहा

२०७. पद्य० ८५।६, ७ पर्व ७८।

२०८. उदीचीनं प्रतीचीनं तथास्ति परमोज्ज्वलम्।

गीर्वाणरमणं ख्यातमुधानं स्वर्गसन्निभम्॥

तत्र कल्पतरुच्छाय-महापादपसंकुले।

स्थापयित्वा रहः सीतां विवेश स्वनिकेतनम्॥ पद्य० ४६।२७, २८।

२०९. पद्य० ४६।२८।

२१०. पद्य० ४६।५२।

२११. वही, ४८।४८।

२१२. वही, ६८।१६, १७।

२१३. वही, ६८।११, ४६।१६०, १४७, १५२, १५८, ९५।१९।

२१४. वही, ५१।४।

२१५. वही, ६८।२।

२१६. द्विजेन्द्र शुक्ल : भारतीय स्थापत्य पृ० १०१, १०२।

गया है कि समुद्र के समान गम्भीर परिखा उसे चारों ओर से घेरे हुई थी।^{२१७} नगर के अतिरिक्त बड़े-बड़े मन्दिरों के चारों ओर भी सुरक्षा की दृष्टि से परिखायें खोदी जाती थी।^{२१८}

परिखाओं का खनन एवं वप्र भूमि का निर्माण संयुक्त कार्य है।^{२१९} कौटिल्य के अनुसार खाई से चार दण्ड की दूरी पर ६ दण्ड (षोबीस हाथ) ऊँचा नीचे से मजबूत, ऊपर की लैन्चाई में द्वागुना निस्तृत वप्र (मिट्टी का चूल्हारा) शयली। इन वप्रों को बनाते समय बैलों और हाथियों द्वारा भलीभाँति खोदवाकर और दबवाकर खूब मजबूत कर दें। उस पर कटीली शङ्खियाँ और बिछली लतायें लगा दें।^{२२०}

प्राकार—प्राकार का साधारण अर्थ उत्तुङ्ग मोटी दीवार है, जो पुर के चारों ओर विभ्यस्त की जाती थी।^{२२१} प्राकारों का विन्यास वप्रों के ऊपर कराया जाता था। उसकी ऊँचाई वप्र के विस्तार से दूनी होनी चाहिए। इसका निर्माण ईंटों या पत्थरों से होता था। ईंटों की अपेक्षा पत्थरों का प्राकार प्रशस्त माना जाता था।^{२२२} पद्मचरित में अत्यधिक ऊँचे प्राकार बनाने का उल्लेख किया गया है। राजगृह नगर का जो प्राकार था वह मानुषोत्तर पर्वत के समान जान पड़ता था।^{२२३} इसीसे उसकी ऊँचाई का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। कौटिल्य के अनुसार प्राकार की नींव का विस्तार इतना होना चाहिए कि उसके ऊपर एक हाथी रथ पर बैठकर यातायात कर सके।^{२२४} पद्मचरित में लंका नगरी के प्राकार को महाप्राकार^{२२५} कहा है। प्राकारों पर पर चढ़कर शत्रुओं की अथवा नगर के बाहर की गतिविधियों की देखरेख की जाती थी।^{२२६} मायामय कोटों की भी उस समय रचना की जाती थी।^{२२७} यह कोट विरक्षत स्त्री के मन के समान दुष्प्रवेश होते थे।^{२२८} उनमें अनेक आकार के मुख होते थे, सबको भक्षण करने की शक्ति होती थी तथा वे देवों के

२१७. पद्म० २।४९।

२१८. पद्म० ४०।२९।

२१९. भारतीय स्थापत्य, पृ० १०२।

२२०. कौटिलीय अर्थशास्त्र २।३।

२२१. भारतीय स्थापत्य, पृ० १०३।

२२२. कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ० ७८ अधि० २।३।

२२३. पद्म० २।४९।

२२४. कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ० ७८ अधि० २।३।

२२५. पद्म० ५।१७५।

२२६. पद्म० ४६।२१५।

२२७. वही, ५२।७।

२२८. वही, ५२।८।

द्वारा भी दुर्गम्य होते थे।^{२२९} उनके अग्रभाग संकट से उत्कट तथा अत्यन्त लीक्षण करौंसी की श्रेणी से विष्टित होते थे। चंचल सर्पों की तनी हुई फशाओं की फूँकार से यह बाव्दायमान होता था तथा घुँघरे से युक्त अङ्गारों से दुःसह होता था।^{२३०} शूरवीरता के अहंकार से उद्धत जो मनुष्य उसके पास जाता था वह उसी प्रकार लोटकर नहीं आता था जैसे कि साँप के मुँह से भंडक।^{२३१} इस कोट के घेरे को सूर्य के मार्ग तक ऊँचा कहा गया है। इसके अतिरिक्त यह दुर्निरीक्ष्य, सब दिशाओं में विस्तीर्ण तथा हिसामय शास्त्र के समान अत्यन्त पाप-कर्मा मनुष्यों के द्वारा निर्मित होता था।^{२३२}

अट्टाल (अट्टालक)^{२३२(१)}—प्राकार के ऊपर अट्टालक (भवन) बनाए जाते थे। उनका विस्तार और उनकी उच्चता समान रखी जाती थी। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार उनकी ऊँचाई के अनुरूप ऐसी सीढ़ी बनाई जानी चाहिए, जो हटाई जा सके। प्रत्येक अट्टालक एक दूसरे से तीस बण्ड (एक सौ बीस हाथ) दूरी पर रहना चाहिए। इस प्रकार बनी प्रत्येक दो अट्टालिकाओं के बीच में एक ऐसी गली बनवाना चाहिए जिस पर रथ चल सके और अगल-बगल ईंटों का दोतल्ला श्वेत भवन (अट्टालक) तथा प्रतोली के मध्य में इन्द्रकोश नाम का स्थान बनवाना चाहिए। वह इतना लम्बा चौड़ा हो कि उसपर तीन धनुर्धारो सैनिक आराम से रह सकें। उसमें इस प्रकार का काठ का अनेक छिद्रों से युक्त एक तख्ता लगा होना चाहिए जिसकी आड़ में धनुर्धर छिपकर बैठे और उसके सामने आगन्तुक शत्रूसैनिकों को देखकर बाणवर्षा कर सके।^{२३२(२)} पद्म-चरित में नगरियों के विशाल अट्टालकों से विभूषित होने का उल्लेख किया गया है।^{२३३}

गोपुर^{२३४} (महाद्वार)—गोपुर शब्द शब्दकल्पद्रुम के अनुसार गुपु रक्षणे धातु से निष्पन्न हुआ है।^{२३५} अतएव गोपुर भी नगररक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। पद्मचरित में नगर में अनेक ऊँचे-ऊँचे गोपुर बनाने के

२२९. पद्म० ५२।९।

२३०. पद्म० ५२।१०-११।

२३१. वही, ५२।१२।

२३२. वही, ५२।१४।

२३२ (१). वही, ३।३१६।

२३२ (२). कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ० ७८ अधि० २।३।

२३३. पद्म० ३।३१६।

२३४. पद्म० ३।३१६।

२३५. भारतीय स्यापरम, पृ० १०५।

अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।^{२३१} इनको शक्त्यनुसार मणि आदि से आच्छादित किया जाता था।^{२३२} आज भी प्राचीन अथवा मध्यकालीन महानगरियों (राज-धानियों) में महाद्वारों की भव्य रचना दिखाई पड़ती है। पाटालिपुत्र के वर्णन में मेगस्थनीज ने उस प्राचीन महानगरी के ६४ महाद्वारों एवं प्राकार-भित्ति पर प्रतिष्ठित ५७० अट्टालकों का उल्लेख किया है।^{२३३} गोपुरों का पद्मचरित में बहुवचन से उल्लेख होने के कारण इनके अनेक की संख्या में बनाए जाने की पुष्टि होती है। पद्मचरित के ६३ वें अध्याय में एक स्थान पर कपड़े के डेरे बनाते तथा मण्डप बनाकर सात गोपुरों पर योद्धा लड़े कर विद्याम करते हुए सैनिकों की सुरक्षा करने का उल्लेख आया है।^{२३४} कपड़े के अस्थायी मण्डपों में जब इतने गोपुर बनाए जाते थे तब स्थायी नगरों में तो स्वाभाविकतया अधिक बनाए जाते होंगे।

भवन-निर्बंध

जन्म एवं विकास—पद्मचरित के अनुसार इस भरत क्षेत्र में पहले भोग, भूमि थी।^{२३५} उस समय लोग सर्वलक्षणों से पूर्ण थे।^{२३६} यहाँ स्त्री-पुरुष का जोड़ा साथ ही साथ उत्पन्न होता था, तीन पत्य की उनकी आयु होती थी और प्रेमबन्धनबद्ध रहते हुए साथ ही साथ उसकी मृत्यु होती थी।^{२३७} वृक्ष सब ऋतुओं के फल और फूलों से सुशोभित रहते थे तथा गाय, भैंस, भेड़ आदि पशु स्वतन्त्रतापूर्वक सुख से निवास करते थे।^{२३८} वहाँ न तो अधिक शीत पड़ती थी, न अधिक गर्मी होती थी, न तीव्र वायु चलती थी।^{२३९} वहाँ बड़े-बड़े बाग-बगीचे और विस्तृत भूभागसहित दूर तक फैलने वाली सुन्दर गन्ध तथा इनके सिवा और भी अनेक प्रकार की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती थी।^{२४०} इस प्रकार वहाँ के दम्पती देव-दम्पती के समान रात-दिन क्रीड़ा करते रहते थे।^{२४१} तृतीय काल का अन्त होने के कारण अब क्रम से कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे तब चौदह कुलकर उत्पन्न हुए।^{२४२} ये सब प्रकार की व्यवस्थाओं का

२३६. पद्म० ५।१७५, ९६।१६, ६।१३२, १३।४।

२३७. वही, ६।१३२।

२३८. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १०५।

२३९. पद्म० ६३।२८-३४।

२४०. पद्म० ३।४९।

२४१. वही, ३।५०।

२४२. वही, ३।५१।

२४३. वही, ३।५४।

२४४. वही, ३।५९।

२४५. वही, ३।६१-६२।

२४६. वही, ३।६३।

२४७. वही, ३।६४।

निर्देश करने वाले थे।^{२४८} जब कल्पवृक्ष पूर्णरूप से नष्ट हो गये तब पृथ्वी अकृष्टपच्य अर्थात् बिना जोते-बोये अपने आप ही उत्पन्न होने वाले धान्य से सुशोभित हुई।^{२४९} इक्षुरस ही उस समय प्रजा का आहार था।^{२५०} पहले तो इक्षुरस अपने आप निकलता था, पर काल के प्रभाव से अब उसका निकलना बन्द हो गया। लोग बिना बतलाये यन्त्रों के द्वारा ईख पेरने की विधि नहीं जानते थे।^{२५१} सामने खड़ी हुई धान को लोग देख रहे थे, पर उसके संस्कार की विधि नहीं जानते थे, इसलिए भूख से पीड़ित हो व्याकुल हो उठे।^{२५२} तब नाभिराज की सलाह से प्रजा के लोग ऋषभदेव की शरण में पहुँचे। ऋषभदेव ने प्रजा को सैकड़ों प्रकार की शिल्पकलाओं का उपदेश दिया। नगरों का विभाग, घास आदि का बसाना और मकान आदि के निर्माण की कला प्रजा को सिखाई।^{२५३} इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि भवन का प्रथम रूप (मॉडेल) वृक्ष था। इस बात की पुष्टि तृतीय पर्व के एक श्लोक के इस मन्तव्य से और अधिक होती है कि बौधर्ह्य (अन्तिम) कुलकर नाभिराज के समय जबकि सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे, तब इन्हींके क्षेत्र के मध्य एक कल्पवृक्ष रह गया जो प्रासाद अर्थात् भवन के रूप में स्थित था और अत्यन्त ऊँचा था।^{२५४} इसका सीधा तात्पर्य यही है कि कल्पवृक्ष ही उस समय प्रासाद होते थे। इन्हींका आगे चलकर विकास हुआ और बड़े-बड़े प्रासाद बनाये जाने लगे। इस वस्तु-स्थिति को सम्भवतः बाद में लोग नहीं भूले, या भूल भी गये हों तो भी इस तथ्य की एक अस्पष्ट रूपरेखा उनके मस्तिष्क में रह गई थी। इसलिए प्रासाद को कल्पवृक्ष के रूप में मानकर भी रविषेणाचार्य ने आगे कह दिया कि उनका वह प्रासाद मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, स्वर्ण और रत्नों से उसकी दीवारें निर्मित थीं। वह वापी और उद्यान से सुशोभित था तथा पृथ्वी पर एक अद्वितीय ही था।^{२५५} हो सकता है कि उस वृक्ष की शाखाओं से ही उन्होंने उस वृक्ष के चारों ओर भित्ति बना ली हो। बहुत बाद में लोगों की दीवारें स्वर्णमय और रत्नमय होने लगीं। अतः उन दीवारों के भी स्वर्ण और रत्नमय होने की उन्होंने कल्पना कर ली हो। शाल-भवन या शाला-भवन के निर्माण के पीछे यह

२४८. पद्म० ३।७४।

२४९. पद्म० ३।२३१।

२५०. वही, ३।२३३।

२५१. वही, ३।२३४।

२५२. वही, ३।२३५।

२५३. वही, ३।२५५।

२५४. अथ कल्पद्रुमो नाभेरस्य क्षेत्रस्य मध्यतः।

स्थितः प्रासादरूपेण विभात्यत्यन्तमुन्नतः ॥ पद्म० ३।८९।

२५५. पद्म० ३।९०।

कहानी छिपी हुई है, भले ही बाद में इन भवनों का रूप कितना ही परिवर्धित क्यों न हो गया हो ।

शाला-भवन या शाल-भवन—शाल-भवनों की परम्परा बहुत प्राचीन है । इसका विविध विकास हुआ । मन्त्रशाला, यज्ञशाला, गजशाला, पाठशाला, अश्वशाला, पाकशाला आदि शब्द इसके परिचायक हैं । पद्मचरित में भी शौशाला^{२५१}, यज्ञशाला^{२५७}, आतोद्यशाला^{२५८} (बावनशाला), प्रेक्षकशाला^{२५९}, नाट्यशाला^{२६०}, चतुःशाला^{२६१}, चन्द्रशाला^{२६२} आदि शाला-भवनों के नाम मिलते हैं । मानसार (अध्याय ३६) में शाल-भवन की जो व्याख्या दी है, तदनुसार शाल-भवन में चारों ओर अलिन्दों (बरामन्दी) का विन्यास होना चाहिए । सम्मुख मण्डप भी हो सकता है । इसके ऊपर एक से लगाकर अनेक मूमियाँ विनिर्मित हो सकती हैं और वे चुल्ली (एक प्रकार का भवन) एवं हर्म्य (एक प्रकार का भवन) आदि से मण्डित हो सकती हैं ।^{२६३}

यज्ञशाला—रामायण के उल्लेख से विदित होता है कि यज्ञशालायें प्रायः अस्थायी रूप में बनाई जाती थीं,^{२६४} पर कभी-कभी वे ईंटों की भी बनी होती थीं । पशरथ के अश्वमेध यज्ञ में अट्ठारह-अट्ठारह ईंटों से छः गठ्ठाकार त्रिगुण वेदियाँ बनायीं जाती थीं (१।१४।१८-९) । शुक्लसूत्रों में भी गठ्ठाकार वेदी बनाने का विधान है । उस समय के देवालय कैसे बनाये जाते थे, इसका कोई संकेत नहीं मिलता । यज्ञीय यूपों का शिल्पिगण कुशलता से निर्माण करते थे उनके अटपहलू (अष्टाक्षयः) होते थे (१।१४।२६) । ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय से ही भारती स्थापत्य में आठ पहलू यज्ञीय यूपों का निर्माण होता आ रहा है ।^{२६५}

चतुःशाला—पद्मचरित के ८३वें पर्व में कहा गया है कि राम तथा लक्ष्मण के पक्ष के फलों से युक्त अत्यन्त सुसज्जित शौशालों (चतुःशालाः)^{२६६} थीं । समराङ्गण-सूत्रधार में भी यद्यपि एक से लेकर दश-शाल-भवनों का वर्णन है,

२५६. पद्म० ३।२३१ ।

२५७. पद्म० ३५।९ ।

२५८. वही, ९५।४६ ।

२५९. वही, ९५।५७ ।

२६०. वही, ६८।११ ।

२६१. वही, ८३।१८ ।

२६२. वही, १४।१३१ ।

२६३. भारतीय स्थापत्य, पृ० १३२ ।

२६४. पद्म० ३५।९ ।

२६५. शान्ति कुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० २०८ ।

२६६. पद्म० ८३।१८ ।

तथापि शाल-भवनों की अवतारणा में चतुःशाल का प्रथम निर्देश है। चतुःशाल उसे कहते हैं जो एक चौकोर, विशाल एवं इसीत साङ्गण के चतुर्दिक् संतवर्तों से निष्पन्न होता है। इसी प्रकार मोटे तौर से आगिन के तीन ओर संस्थानों से विशाल, दो ओर से विशाल तथा एक ओर से एकशाल भवन विनिर्मित होते हैं। ये ही चार आदर्श भवन हैं जिनके संयोजन से पंचशाल, षट्शाल, सप्तशाल, अष्टशाल, नवशाल तथा दशशाल भवन विन्यस्त होते हैं।^{२६७}

द्वार—महल का द्वार ऊँचे प्राकार से युक्त रहता था। द्वार पर सैकड़ों देदीप्यमान बेल-बूटे लगाये जाते थे तथा वह इन्द्रधनुष के समान रंगविरंगे तौरणों से सुशोभित रहता था।^{२६८} दरवाजों पर पूर्ण कलश रखे जाते थे।^{२६९} बड़े-बड़े द्वार भी बनाये जाते थे। बृहदाकार होने के कारण एक स्थान पर एक द्वार की उपमा सुमेरु की गुहा के आकार से दी गई है।^{२७०} सामान्यतः द्वार के लिए काष्ठ का अधिक प्रयोग किया जाता है, किन्तु विशेष आकर्षण के लिए किसी विशेष महल आदि के द्वार^{२७१} रत्नों, मणियों तथा स्वर्ण आदि से भी निर्मित किये जाते थे।^{२७२} इस प्रकार के द्वारों पर मोतियों की भालायें लटकवाई जाती थीं।^{२७३} द्वार की देहली के सम्बन्ध में एक स्थान पर कहा गया है कि किष्कुपुर नगर के द्वार की देहली पद्मराग मणि से निर्मित होने के कारण लाल-लाल दीखती थी, इस कारण ऐसी जान पड़ती थी मानों ताम्बूल के द्वारा जिसकी लाली बढ़ गई थी ऐसा ओठ ही धारण कर रही हो। इस प्रकार पद्मचरित में द्वार का जो वर्णन किया गया है, उससे उसकी बाहरी साज-सज्जा पर ही विशेष प्रकाश पड़ता है। प्रमुख द्वार दो ही होते थे जिन्हें अम्यन्तर द्वार (भीतरी द्वार) और बाह्य द्वार (बाहरी द्वार) कहा गया है।^{२७४} वास्तुशास्त्र की शब्दावली के अनुसार चौखट के ऊपर जो लकड़ी अथवा निर्मिति होती है उसे उडुम्बर कहते हैं। इसी उडुम्बर अथवा लिटल के नीचे द्वार की स्थापना होती है। दोनों दीवारों का यह मध्यवर्काश देहली के नाम से पुकारा जाता है। इसका दूसरा नाम कपाटाश्रय है। द्वार के अम्य घटकों अर्थात् पल्लों को कपाटयुगल कहते हैं।^{२७५} पद्मचरित में एक कम्प नाम के व्यक्ति का उल्लेख आता है जो कपाट

२६७. मारसीम स्थापत्य, पृ० १३२।

२६८. पद्य० ३८।८३।

२६९. पद्य० १२।३६८।

२७०. वही, ७१।८।

२७१. वही, ७१।८।

२७२. वही, ६।१२४।

२७३. वही, ६।१२७।

२७४. वही, ३।११७।

२७५. भारतीय स्थापत्य, पृ० १७१।

१७४ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

बनाकर जीविका किया करता था।^{२७५} द्वार का तीसरा अङ्ग कलिका अथवा अर्गला है जो दोनों दरवाजों को बन्द करने में सहायक होती है। पद्मचरित से इसका भी सद्भाव सूचित होता है।

स्तम्भ—भवन का दूसरा प्रमुख अङ्ग स्तम्भ है। भारतीय स्थापत्य में मन्दिर, गोपुर और स्तम्भ ये ही सर्वोपरि सुन्दरतम कृतियाँ हैं। पद्मचरित में अनेक स्थान पर^{२७७} भवन तथा मन्दिरों में स्तम्भ लगाने का उल्लेख किया गया है। सामान्य स्तम्भ के अतिरिक्त हेमस्तम्भ^{२७८} तथा रत्नस्तम्भ भी उस समय लगाये जाते थे।^{२७९}

आस्थान-मण्डप—आस्थानमण्डप शब्द का प्रयोग पद्मचरित में कई बार किया गया है।^{२८०} इसे सभा, सभामण्डप, आस्थान, आस्थानो और आस्थायिका (नलचम्पू नहीं जाती) भी कहा जाता था।^{२८१} राजकुल की दूसरी कक्षा में इसकी स्थिति होती थी। इसे ही मुगल-महलों में 'दरिआम' कहा गया है। इसके सामने अजिर या खुला मैदान रहता था। अजिर से कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर आस्थान-मण्डप में पहुँच जाता था। दिल्ली के किले में दरिआम के सामने जो खुला भाग है वही प्राचीन शब्दों में अजिर है। सम्राट् सार्वजनिक राति से दरबार में भेंटणा करते या मिलते-जुलते वह सब इसी बाह्य मण्डप में होता था।^{२८२} पद्मचरित के ७३वें पर्व में रावण को ऐसे ही आस्थानमण्डप में बैठा दिखलाया गया है।^{२८३}

अन्य मण्डप—पद्मचरित में अन्य प्रकार के मण्डपों का भी उल्लेख मिलता है। जैसे आहार-मण्डप^{२८४}, सन्नाह-मण्डप^{२८५}, लता-मण्डप^{२८६}, कुन्द-मण्डप^{२८७} आदि। भोजन करने के विशेष स्थान को आहार-मण्डप कहते थे।

२७६. पद्य० ९१।२४।

२७७. वही, ५३।२६४, ८०।८, ६५, ३।२२५, ६७।२६, ४०।२८।

२७८. वही, ८०।८, ६५, ६७।२६, २८।८९।

२७९. वही, ७।३३९।

२८०. वही, ७३।१, ८।६०, ५३।२२१, ३।१, ७१।३।

२८१. वासुदेवशरण अग्रवाल : कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०५।

२८२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०५।

२८३. ततो दशाननोज्येष्ठ दिने परमभासुरः।

आस्थानमण्डपे तस्यावुदिते दिवसाधिपे ॥ पद्य० ७३।१।

२८४. पद्य० ८४।१४।

२८५. पद्य० १२।१८१।

२८६. वही, ४२।८५।

२८७. वही, २८।८७।

आहार-मण्डप में मित्रों, मन्त्री आदि परिजनों और भागियों के साथ भरत आहार करते थे ।^{२८८} सम्नाह-मण्डप आयुधशाला को कहते थे । इसमें युद्ध के शस्त्रास्त्र और बरजे आदि रखे जाते थे ।^{२८९} लताओं से बने मण्डपाकार गृह को लता-मण्डप कहते थे । डॉ० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल के अनुसार क्षेत्रों, उद्यानों, सरिताओं, तड़ागतीरों तथा सागरवेला पर मण्डपों का विकास हुआ । इन मण्डपों की रचना-कला सभा-भवनों से आई । एक दो मृण्मय अथवा काष्ठमय स्तम्भों के न्यास से एवं ऊपर की छावनी, वनशाखाओं अथवा तालपत्रों से सम्पन्न कर छोटे-छोटे कामचलाऊ मण्डपों का आज भी विन्यास हम देखते हैं । मण्डप को आज की भाषा में मंडवा तथा मड़िया कहते हैं । इसमें स्तम्भ और छाद्य दोनों आवश्यक हैं । चूँकि यह एक प्रकार का क्षणिक निवास है अतः स्तम्भ का स्थान कोई भी काष्ठ-पठिका ग्रहण करती है ।^{२९०} कालान्तर में केन्द्र स्तम्भ के अतिरिक्त अनेक स्तम्भ जोड़कर विशाल मण्डप बनाये जाने लगे और इनसे विशाल भवनों का निर्माण हुआ । मण्डपाकार रचना होने के कारण इनको मण्डप के नाम से कहा जाने लगा । पद्मचरित में अयोध्या में ऐसे मण्डप बनाये जाने का उल्लेख है, जिनमें हजारों खम्भे (स्तम्भ) लगे थे, जो मोतियों की मालाओं से सुशोभित थे, नाना प्रकार के पुतलों से युक्त थे तथा विविध प्रकार के थे ।^{२९१}

भवन-रचना—पद्मचरित में भवन-रचना गृह^{२९२}, प्रासाद^{२९३}, आगार^{२९४}, मन्दिर^{२९५}, निलय^{२९६}, सद्म^{२९७}, आलय^{२९८}, वेष्टम^{२९९}, गृह^{३००}, आगार^{३०१}, कूट^{३०२}, चैत्य^{३०३}, शाला^{३०४}, विमान^{३०५}, मण्डप आदि के रूप में मिलती है । सुन्दर भवन ऊँचे-ऊँचे शिखरों से युक्त होना चाहिए ।^{३०६} भवन में एक विशाल आँगन हो । सम्भवतः आँगन की लम्बाई, चौड़ाई भवन के आकार के अनुरूप बनाई जाती होगी । नाभिराज के भवन का आँगन (अजिर)

२८८. पद्य० ८४।१४-१५ ।

२८९. पद्य० १२।१८१ ।

२९०. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १९४ ।

२९१. पद्य० ८१।१०४ ।

२९२. पद्य० ६।१३० ।

२९३. वही, ८३।४१ ।

२९४. वही, २।३७ ।

२९५. वही, २।३९ ।

२९६. वही, २।४० ।

२९७. वही, २।४० ।

२९८. वही, ८०।६३ ।

२९९. वही, ५३।२०३ ।

३००. वही, ५३।२६६ ।

३०१. वही, २।३७ ।

३०२. वही, ११२।३२ ।

३०३. वही, ६७।१५ ।

३०४. वही, ६८।११ ।

३०५. वही, ११२।३४ ।

३०६. वही, ३३।३३२ ।

इतना बड़ा था कि वह रथों से, मदोत्तम हाथियों से, वायु के समान वेगधाली घोड़ों से, उपहार के अनेक द्रव्यों से युक्त ऊँटों के समूह से, छत्र, चमर, बाहन आदि विभूति त्यागकर राजाविराज महाराज के दर्शन की इच्छा करने वाले मण्डलेश्वर राजाओं से तथा नाना देशों से आये हुए अन्य अनेक बड़े-बड़े लोगों से सदा शोभ को प्राप्त होता रहता था ।^{३०७}

भवनों को अत्यन्त सफेद (अथवा अन्य वर्णयुक्त) नाना आकारों का धारक तथा रत्न आदि उत्तमोत्तम वस्तुओं से पूर्ण होना चाहिए ।^{३०८} भवन में पक्का फर्श होना चाहिए ।^{३०९} पद्मचरित में पद्मराग, दधिराग तथा विचित्र-विचित्र मणियों से अबे फर्शों से युक्त, जिममें मोतियों की मालायें लटकती थीं, जो अनेक वातायनों (झरोखों) से युक्त थे, ऐसे भवनों का वर्णन किया गया है ।^{३१०} भवन में उत्तमोत्तम फल से युक्त बगीचे तथा अनेक दीपिकायें (वापिकायें) होना चाहिए ।^{३११} राजा के भवन में अनेक गोपुर, कोट, सभा, शालायें, कूट, प्रेक्षागृह तथा कार्यालय आदि होना आवश्यक था । राम-लक्ष्मण के यहाँ अनेक द्वारों तथा उच्च गोपुरों से युक्त इन्द्रभवन के समान सुन्दर नन्द्यावर्त भवन था । किसी महागिरि के शिखरों के समान ऊँचा अश्वशाला नाम का कोट था, वैत्रयन्ती नाम की सभा थी । चन्द्रकान्तमणियों से निर्मित सुषोभी नाम की मनोहर शाला थी, अत्यन्त ऊँचा सब दिशाओं का अवलोकन कराने वाला प्रसाद-कूट था, विन्ध्यगिरि के समान ऊँचा बर्द्धमानक नामका प्रेक्षागृह था, अनेक प्रकार के उपकरणों से युक्त कार्यालय थे, उनका गर्भगृह कुक्कुटी के अण्डे के समान अत्यन्त आश्चर्यकारी था । वह गर्भगृह एक खम्भे पर खड़ा था और कल्पवृक्ष के समान मनोहर था ।^{३१२}

भवन की भूमियाँ चाँदी तथा स्वर्णादि के लेप से सुन्दर बनाना चाहिए । महल ऊँचे होना चाहिए, इनमें अनेक स्तम्भ लगाये जायें, मोतियों आदि मालाओं से सुशोभित हों, इनमें अनेक प्रकार के पुतलों से युक्त विविध प्रकार के मण्डप बनाये जायें । दरवाजे किरणों से चमकते हुए बड़े-बड़े रत्नों से खचित किये जायें । पद्मचरित में हमें अथोड्या के भवनों की रचना इसी प्रकार की देखने को मिलती है ।^{३१३} भवन का द्वार विशाल आकार का होना चाहिए ।^{३१४}

३०७. पद्य० २।८१-८३ ।

३०९. वही, ८३।१८ ।

३११. वही, ८३।१९ ।

३१३. वही, ८१।११२, ११३-११५ ।

३०८. पद्य० ८३।१७ ।

३१०. वही, १४।१२९ ।

३१२. वही, ८३।४-८ ।

३१४. वही, ७१।१८ ।

सभ्य—सभा, वाषिका, विमान तथा बाग-बगीचे से सुशोभित भवन की सद्म कहते थे।^{३१५} राजभवन को राजसदम^{३१६} कहा जाता था। ३५में राजा लोग रहते थे।^{३१७} राजाओं के साथ-साथ उनके भाई-बन्धुओं के रहने के लिए यह उपयुक्त होता था।^{३१८} स्वर्णमय सद्म (काञ्चनसद्म^{३१९}) भी उस समय बनाये जाते थे।

गेह—रचना की दृष्टि से किष्कुपुर नगर का वर्णन प्रकट करने योग्य है। पद्मचरित के अनुसार किष्कुपुर नगर में विद्याधरों ने महलों की ऐसी ऊँची-ऊँची श्रेणियाँ बनाकर तैयार की थीं जिनके सामने उसुङ्ग दरवाजे थे, जिनकी दीवारें मणि और स्वर्ण से निर्मित थीं, जो अच्छे-अच्छे बरामदों सहित था, रत्नों के स्वम्भों पर लड़ी थी, जिनकी कपोतपाली के समीप का भाग महानीलमणियों से बना था और ऐसा जान पड़ता था कि रत्नों की कान्ति ने जिस अन्धकार को सब जगह खदेड़ दिया था मानो उसे यहाँ अनुकम्पावश ही स्थान दिया गया था। उन महलों की देहली पद्मरागमणि से निर्मित होने के कारण लाल-लाल दीख रही थी। उनके दरवाजों के ऊपर अनेक मोतियों की मालायें लटकाई गई थीं। मालाओं का किरणों से वे ऐसे जान पड़ते थे मानो अन्य भवनों की सुन्दरता की हँसी उड़ा रहे हों। भवनों के शिखरों के ऊपर चन्द्रमा के समान आकार वाले मणि लगे हुए थे। मणियों के कारण रात्रि के समय अमली चन्द्रमा के विषय में भ्रम हो जाता था। चन्द्रकान्त मणियों की कान्ति से विद्याधरों के गेह उत्तम चाँदनी की शोभा प्रकट करते थे तथा उनमें लगे नाना रत्नों की प्रभा से ऊँचे-ऊँचे तोरणों का सन्देह होता था। गेहों के मणिनिर्मित फलों पर रत्नमय चित्र बनाये गये थे।^{३२०}

गृह—सामान्यतः गृह राजन्यवर्ग से लेकर मध्यमवर्ग तक के व्यक्तियों के होते थे। पद्मचरित में विशेष वर्णन राजन्यवर्ग के गृहों का ही मिलता है। इस दृष्टि से बड़े-बड़े प्रासाद और गृहों में कोई अन्तर नहीं रह जाता। ५३वें पर्व में गृह और वेश्म का प्रासाद के अर्थ में प्रयोग करना इसका बहुत बड़ा प्रमाण है।^{३२१} सामान्यतः गृह की यह विशेषता थी कि उसके वातायन सड़क के दोनों ओर खुले रहते थे। छत पर अलिन्द—अरोखे भी होते थे। गृह का अधभाग

३१५. पद्य० ५३।२०२।

३१७. वही, ४९।४८।

३१९. वही, ६।६५।

३२१. वही, ५३।२६४-२६६।

३१६. पद्य० ६५।९।

३१८. वही, ५।१७८।

३२०. वही, ६।१२४-१२०।

मुख कहलाता था, जिसको दूसरे शब्दों में द्वार भी कहते हैं। द्वार के ऊपर तोरण होता था, जो मत्स्य या भकर की आकृति का होता था। मथुरा की कला में भकराकृति तोरण अनेक उपलब्ध हैं। तोरण भवन का सबसे पहला फाटक होता था। यह कभी-कभी अस्थायी भी होता था। यहीं पर अतिथियों की अगवानी की जाती थी।^{३२२} पद्मचरित में कुन्द के समान सफेद, महानीलमणि के समान नील, पद्मरागमणि के समान लाल, पुष्पराज मणियों के समान प्रभास्वर और गरुत्मणि के समान गहरे नीले वर्णवाले गृहों का वर्णन आया है।^{३२३} गृहों में सुरंगें होती थीं। घोर लोग सुरंग द्वारा दूसरों के यहाँ जाते थे।^{३२४} सामान्यतः आपत्तिकाल में घर से बाहर निकलने के लिए इस प्रकार की सुरंगें बनाई जाती होंगी। जिस उद्देश्य के लिए गृह निर्मित होता था उस उद्देश्य के आधार पर उसका नाम पड़ जाता था। जैसे—सूतिगृह।^{३२५} रावण का गृह इन्द्रभवन के समान था। उसका स्वर्णमय कोट था। तथा उसमें अनेक स्तम्भ लगे हुए थे।^{३२६}

वेष्टम^{३२७}—भवनों का एक प्रकार वेष्टम है। साधारण साफ, स्वच्छ और मजबूत भवन को वेष्टम कहा जाता है। वेष्टम में उपयोग की सभी वस्तुएँ वर्तमान रहती हैं। वेष्टम ग्रीष्म ऋतु में सुखप्रद होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शीतल बनाया जाता था। वायु-प्रवेश के लिए दोनों ओर गवाक्ष रहते थे और छत पर्याप्त ऊँची होती थी। वेष्टम दुर्गजिले और तिम्रजिले भी होते थे।^{३२८}

आगार^{३२९}—आगार भी घर का एक प्रकार है। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार आगार ऐसे भवन को कहा जाता था जिसमें आंगन और छोटे उपवन का रहना आवश्यक था। आगार का जैसा वर्णन उपलब्ध होता है, उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह प्राकारमण्डित होता था। आगार को सामान्य व्यक्ति भी पसन्द करने थे। यह ईंटों और मिट्टी दोनों से बनाया जाता था। इष्टिकानिर्मित आगार पक्के होते थे और मृत्तिका से बनाए गए आगार कच्चे होते थे। आगार में वातायन और गवाक्ष भी रहते थे। पुष्प तथा लतायें भी आगार के सामने वाले आंगन में शोभित रहती थीं। आगार का द्वार

३२२. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ३०४।

३२३. पद्म० ८।५११, ५१२।

३२४. पद्म० ५।१०३, १०४।

३२५. वही, ७।२१३।

३२६. वही, ५।२६४-२६६।

३२७. वही, ५।२।०३।

३२८. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ३०५।

३२९. पद्म० ७।१७७, १२।३७।

बृहदाकार रहता था और उसमें मजबूत किवाड़ लगाए जाते थे। आगारों का ही एक प्रकार अट्टालिका और तल्प है। अट्टालिका वस्तुतः लगाए प्रकोष्ठ वाले भवन को कहा जाता है। तल्प केवल शिखर प्रदेश में स्थित कमरे को कहा जाता है।^{३३०} पद्यचरित में राजगृह नगर के आगारों के विषय में कहा गया है कि वे आगार घूने से पुते सफेद महलों की पंक्ति से लसें जान पड़ते थे मानो टाँकियों से गढ़े चन्द्रकान्त मणियों से ही बनाए गए हों।^{३३१} एक स्थान पर प्रसन्नागार का भी उल्लेख हुआ है।^{३३२}

आलय^{३३३}—आलय का सामान्य अर्थ होता है : निवास। जिसका जहाँ निवास हो वह उसका आलय है। जैसे विद्यालयः = विद्यायाः (विद्या का) आलय (निवास) = विद्यालयः। विद्या का जहाँ निवास हो वह विद्यालय कहलाता है। पद्यचरित के रावणालय^{३३४} (रावण का आलय), शत्रुन्दमालये^{३३५} (शत्रुन्दम का आलय) आदि शब्द इस अविश्रय के होते हैं। रावणालय इस प्रकार का था कि जब अङ्गद के पदाति उसकी मणिमय भूमि में पहुँचे तब मगरमच्छों से युक्त सरोवर समझकर भय को प्राप्त हुए। पश्चात् उस भूमि के रूप की निश्चलता देख जब उन्हें निश्चय हो गया कि यह तो मणिमय फर्श है तब कहीं आश्चर्यचकित होते हुए आगे बढ़े।^{३३६} सुमेरु की गुहा के आकार बड़े-बड़े रत्नों से निर्मित तथा मणिमय तोरणों से देदीप्यमान जब भवन के विशाल द्वार पर पहुँचे तो वहाँ अंजतगिरि के समान, चिकने गण्डस्थल वाले बड़े-बड़े दाती वाले तथा अत्यन्त देदीप्यमान इन्द्रनीलमणि निर्मित हाथियों को देखा। हाथियों के मस्तक पर सिंह के बच्चों ने पैर जमा रखे थे। उन बच्चों की पूँछ ऊपर की लठी हुई थी। उनके मुख दाढ़ों से अत्यन्त भयंकर थे, नेत्रों से भय टपक रहा था तथा उनकी सटाएँ मनोहर थीं। इन सबको सचमुच के हाथी और सिंह

३३०. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० २०५।

३३१. सुषारससमासङ्गपाण्डुरागारपङ्क्तिभिः।

टङ्ककल्पितशितांशुशिलाभिरिव कल्पितम् ॥ पद्य० २।३७।

३३२. पद्य० ३।१७२।

३३३. पद्य० ८०।६३।

३३४. वही, ७१।१६।

३३५. वही, ३८।८२।

३३६. रावणालयबाह्यरुमामणिकुट्टिमसङ्गताः।

ग्राहावत्सरसोऽभिज्ञास्त्रासनीयुः पदातयः ॥ पद्य० ७१।१६।

रूपनिश्चलतां दृष्ट्वा निर्झातमणिकुट्टिमाः।

पुनः प्रसरणं चक्रुर्भटाः विस्मयपूरिताः ॥ पद्य० ७१।१७।

समस्त पैदल सैनिक मयभीत हो गए और उद्दिग्ध होकर भागने लगे ।^{१३७} बाद में उनके यथार्थ रूप को जानने वाले अङ्गद ने उन पैदल सैनिकों को बहुत समझाया तब बड़ी कठिनाई से वे लीप वापिस लौटे ।^{१३८} भवन में डरते-डरते उन्होंने इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार की मृगों के झुण्ड सिंह के स्थान में प्रवेश करत हैं । बहुत से द्वारों को लांघकर जब वे आगे जाने में असमर्थ हो गए तब सघन भवनों की रचना में जन्मान्ध के समान हथर-उधर भटकने लगे ।^{१३९} वे इन्द्रनीलमणिनिर्मित दीवारों को देखकर उन्हें द्वार समझने लगते थे और स्फटिक मणियों से अचित्त भवनों को आकाश समझ उनके पास जाते थे जिसके फलस्वरूप दोनों ही स्थानों में शिलाओं से मस्तक टकरा जाने के कारण वे गिर जाते थे । वे अत्यधिक आकुलता को प्राप्त होते थे और वेदना के कारण उनके नेत्र बन्द हो जाते थे ।^{१४०} किसी तरह उठकर आगे बढ़ते तो दूसरी कदम में पहुँचकर फिर आकाशस्फटिक की दीवारों में बेल से टकरा जाते थे ।^{१४१} उनके पैर और घुटने टूट रहे थे तथा वे ललाट की चोट से तिलमिला रहे थे । ऐसी स्थिति में वे लौटाना चाहते थे पर उन्हें निकलने का मार्ग ही नहीं मिलता था ।^{१४२} जिस किसी प्रकार इन्द्रनीलमणिमय भूमि का स्मरण कर वे लौटे तो उगी के समान दूसरी भूमि देख उससे छकाए गए और पृथ्वी के नीचे जो घर बने थे उनमें जा गिरे ।^{१४३} बाद में कहीं पृथ्वी फट तो नहीं गई इस वांका से दूसरे घर में गए और वहाँ इन्द्रनीलमणिमय जो भूमियाँ थी, उनमें जान-जानकर घीरे-घीरे कदम बढ़ाने लगे ।^{१४४} कोई एक स्त्री स्फटिक की सीढ़ियों के ऊपर जाने के लिए उद्यत थी, उसे देखकर पहले तो उन्होंने समझा कि यह स्त्री अथर

३३७. पर्वतेश्वरगुहाकारे महारत्नविनिर्मिते ।

गम्भीरे भवनद्वारे मणितोरणभासुरे ॥ पद्म० ७१।१८ ।

अञ्जनान्निप्रतीकाशानिन्द्रनीलमयान् गजान् ।

स्तिम्भगण्डस्थलान् स्थूलदन्तान्त्यन्तभासुरान् ॥ पद्म० ७१।१९ ।

सिंहबालांघ्र तन्मूर्द्धन्यस्ताङ्घ्रीनूदूर्ध्ववालवीन् ।

दंष्ट्राकरालवदनान् भीषणाक्षान् सुकेसरान् ॥ पद्म० ७१।२० ।

दृष्ट्वा पादचरस्वस्ताः सत्यम्यालामिशङ्किताः ।

पलायितुं समारब्धाः प्राप्ता विह्वलतां पराम् ॥ पद्म० ७१।२१ ।

३३८. पद्य० ७१।२२ ।

३३९. पद्य० ७१।२३-२४ ।

३४०. वही, ७१।२५-२६ ।

३४१. वही, ७१।२७ ।

३४२. वही, ७१।२८ ।

३४३. वही, ७१।२९ ।

३४४. वही, ७१।३० ।

आकाश में स्थित है परन्तु बाद में पैरों के रखने-उठाने की क्रिया से निश्चय कर सके कि यह नीचे ही है।^{३४५} 'हे विनासिनि ! मुझे मार्ग दिखाओ' इस प्रकार कह कर किसी सुभट ने स्तम्भ में लगी शालभोजिका का हाथ पकड़ लिया।^{३४६} आगे चलकर हाथ में स्वर्णमयी वेङ्गलता को धारण करने वाला एक कृत्रिम द्वारपाल दिखाई दिया। उसे किसी सुभट ने पूछा कि शीघ्र ही शान्तिगृह का मार्ग कहो।^{३४७} परन्तु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो अरे यह अहंकारी युवक कुछ कहता ही नहीं है, यह कहकर किसी सुभट ने उसे एक बंग में धपका डाला, पर इससे उसकी अंगुलियाँ चूर-चूर हो गईं।^{३४८} बाद में हाथ से स्पर्श कर उन्होंने जाना कि यह सचमुच का द्वारपाल नहीं, अपितु कृत्रिम द्वारपाल^{३४९} है। ऐसा तो नहीं है कि कहीं यह द्वार न हो किन्तु महानोलमणियों से निमित्त दीवाल हो, इस प्रकार के संशय की प्राप्त हो उन्होंने पहले हाथ पसारकर देख लिया।^{३५०} उन सबकी भ्रांति इतनी कुटिल हो गई कि वे स्वयं जिस मार्ग से आए थे उसी मार्ग से निकलने में असमर्थ हो गए, अतः निरुपाय हो उन्होंने शान्ति जिनालय में पहुँचने का ही विचार स्थिर कर दिया।^{३५१} पश्चात् किसी मनुष्य को देख उसकी बोली से सचमुच मनुष्य जानकर उससे कहा कि मुझे शान्ति-जिनालय (शान्तिहर्म्यस्य) का मार्ग दिखाओ।^{३५२} उसके निर्देश से वे शान्ति-जिनालय में पहुँचे।

पृथ्वी के भीतर वस्तुयें छिपाकर रखने के लिए गर्भालय बनाए जाते थे। इनका दूसरा नाम भूमिगृह था। एक बार अयोध्या में भरत ने जब भेरी बजवाई तब वहाँ के किसी घनी मनुष्य ने अनिष्ट की आशंका कर अपनी स्त्री से कहा कि ये स्वर्ण और चाँदी के घट तथा मणि और रत्नों के पिटारे भूमिगृह में रख दो। रेशमी वस्त्र आदि से भरे हुए इन गर्भालयों को शीघ्र ही बन्द कर दो और जो सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है उसे ठीक तरह से रख दो।^{३५३}

राजभवन को राजालय कहा जाता था। शत्रुदम का आलय अनेक प्रकार के निष्क्यूहों से युक्त था, रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजाओं से सुशोभित था तथा सफेद मेघा-बलों के समान था।^{३५४} विभोषणालय के मध्य में श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र का मन्दिर था। यह मंदिर रत्नमयी तोरणोंसहित था, स्वर्ण के समान देदीप्यमान था, समीप

३४५. पृ० ७१।३१।

३४७. वही, ७१।३५।

३४९. वही, ७१।३७।

३५१. वही, ७१।३९।

३५३. वही, ६५।१७-१८।

३४६. पृ० ७१।३४।

३४८. वही, ७१।३६।

३५०. वही, ७१।३८।

३५२. वही, ७१।४०।

३५४. वही, ३८।८२।

स्थित महलों के समूह से मनोहर था, शेष नामक पर्वत के मध्य स्थित था, स्वर्णमय हजार स्तम्भों से युक्त था, उत्तम वेदीप्यमान था, शीघ्र लम्बाई तथा विस्तार से युक्त था, नाना मणियों के समूह से शोभित था, चन्द्रमा के समान चमकती हुई नाना प्रकार की वलभियों से युक्त था, शरीरों के समीप लटकते हुए मोतियों के जालों से सुशोभित था, अनेक अद्भुत रचनाओं से युक्त तथा प्रतिसर आदि विविध प्रदेणों से सुन्दर था और पापनाशक था ।^{३५५}

शालभञ्जिका^{३५६}—ऊपर शालभञ्जिका शब्द आया है । डॉ० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने अपनी 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन' नामक ग्रंथ में इस शब्द पर अच्छा प्रकाश डाला है । शालभञ्जिका शब्द का इतिहास बहुत पुराना है । आरम्भ में यह स्त्रियों की एक क्रीड़ा थी । खिले हुए साल के नीचे एक हाथ से उसकी डाली झुकाकर फूल चुनचुनकर स्त्रियाँ यह खेल खेलती थी । पाणिनि की अष्टाध्यायी में प्राचाँ क्रीडायाँ (६, ७, ७४) नित्यं क्रीडाजीविकयोः (२, २, १७) और संज्ञायाँ (३, ३, १०९) सूत्रों के उदाहरणों में शालभञ्जिका, उद्दालक पुष्पभञ्जिका आदि कई क्रीडाओं के नाम आए हैं, जो पूर्वी भारत में प्रचलित थी । वात्स्यायन की जयमंगला टीका में इनका विस्तार से वर्णन किया गया है । बुद्ध की माता माया देवी लुम्बिनी उद्यान में इसी प्रकार की शालभञ्जिका मुद्रा में खड़ी थीं, जब बुद्ध का जन्म हुआ था । धीरे-धीरे इस मुद्रा में खड़ी हुई स्त्री के लिए शालभञ्जिका शब्द रूढ़ हो गया । सांची, भग्नुत और मथुरा में तोरण की दंडेरी और स्तम्भ के बीच में तिरछे शरीर से खड़ी हुई स्त्रियों के लिए तोरणशालभञ्जिका शब्द चल गया था । कुषाणकाल में अश्वघोष ने इसका उल्लेख किया है ।^{३५७} इसी मुद्रा में खड़ी हुई स्त्री मूर्तियाँ मथुरा के कुषाण-कालीन वेदिका-स्तम्भों पर बहुतायत से मिलती हैं । उनके लिए स्तम्भशालभञ्जिका शब्द रूढ़ हो गया । खम्भे पर बनी हुई स्त्री मूर्ति के लिए चाहे वह किसी मुद्रा में हो, यह शब्द गुप्तकाल में चल गया था ।^{३५८} इसी को रविदेण ने 'स्तम्भसभासक्तामगूहीतशालभञ्जिकाम्' पद द्वारा व्यक्त किया है ।^{३५९}

३५५. पद्य० ८०।६३-६७ ।

३५६. पद्य० ७१।३४ ।

३५७. अवलम्ब्य गवाक्षपार्श्वमस्त्या शयिता चापविभुगगात्रयष्टिः ।

विरराज विलम्बिचारुहारा रचिता तोरणशालभञ्जिकेव ॥

—बुधचरित ५।५२, (हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६१)

३५८. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६१, ६२ ।

३५९. पद्य० ७१।३४ ।

प्रासाद—प्रासाद-रचना वास्तुकला (स्थापत्य) का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रासाद शब्द वैसे तो जन-साधारण में राजाओं के महलों के लिए प्रायः प्रयुक्त होता है परन्तु वास्तुशास्त्रीय परिभाषा में प्रासाद का तात्पर्य विशुद्धरूप में देवमन्दिर से है। प्रासाद में राज शब्द जोड़ देने से वह राजमहल का बोधक बन जाता है। अतः संक्षेप में प्रासाद शब्द परम्परा से देवमन्दिरों एवं राजमहलों दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अमरकोश में 'हर्म्यादि धत्तिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम्' जो उल्लेख है वह उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। शिल्परत्न में लिखा है :

‘देवादीनां नराणां च येषु रम्यतया चिरम् ।

मनांसि च प्रसीदन्ति प्रासादास्तेन कीर्तिताः ॥’

अर्थात् जिन भवन-विशेषों में पाषाण शिलाओं, इष्टिकाओं तथा सुधा एवं वज्रलेप आदि दृढ़ वस्तु संभारों से स्थायित्व प्रदान करने वाले वस्तुसौन्दर्य की चिर प्रतिष्ठा संस्थापित हो चुकी है और इसी सौन्दर्य के कारण ये भवन देवा-दिक एवं मनुष्यादि दोनों के भनों को प्रसन्न करते हैं, अन्तःकरण की कलिका खिलाते हैं, अतः ये भवन प्रासाद कहलाते हैं।^{३६०} पञ्चचरित में प्रासाद शब्द का प्रयोग प्रायः राजप्रासाद के लिए ही हुआ है। नाभिराय के क्षेत्र के मध्य जो कल्पवृक्ष था वह प्रासाद के रूप में स्थित था और अत्यन्त ऊँचा था।^{३६१} उनका वह प्रासाद मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, स्वर्ण और रत्नों से उसकी दीवारें बनी थीं, बायीं ओर उद्यान से सुशोभित था और पृथ्वी पर एक अद्वितीय ही था।^{३६२} भीमवन में दशानन का जो प्रासाद था, उसके सात स्रण्ड थे।^{३६३} एक अन्य स्थान पर रावण के प्रासाद की उपमा शक्र-प्रासाद से दी गई है। इस प्रासाद में अनेक स्तम्भ थे।^{३६४} राजा जनक ने विद्याधरों के ऐसे प्रासाद देखे थे जिनके शिखर सन्ध्या के बादलों के समान सुशोभित थे, जो गोलकाय स्थित थे तथा राजप्रासाद की सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे।^{३६५} क्षेमाञ्जलि नगर में लक्ष्मण ने विमान के समान आभा वाले तथा चम्पूमा के समान धवल उत्तमोत्तम भवनों को देखा।^{३६६} इन सब उल्लेखों से प्रासादों के सौन्दर्य, रचना

३६०. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० २२०, २२१।

३६१. पद्य० ३।८९।

३६२. पद्य० ३।९०।

३६३. वही, ८।२९, ३०।

३६४. वही, ५३।२६४।

३६५. वही, २८।८४।

३६६. वही, ३८।८०।

काल आदि का ज्ञान होता है। एक उल्लेख के अनुसार प्रासादों में शरोखे (गवाक्ष) लगाये जाते थे।^{३६७}

हर्म्य—हर्म्य को सात मंजिल वाला भवन कहा है। हर्म्य की छत बहुत ऊँची होती थी। महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत काव्य में हर्म्य का निर्देश किया है। हर्म्य ऊँची अट्टालिका वाले ऐसे भवन थे, जिनमें कपोत भी निवास करते थे। अमरकोश में (‘हर्म्यादि घनिनां वासः’ अमरकोश २।२।९) घनिकों के भवन को हर्म्य कहा है।^{३६७}●

मन्दिर—मन्दिर शब्द के दो अर्थ हैं : भवन तथा नगर। रामराज्जुण सूत्र-धार (१८ वीं अध्याय) में नगर-पर्यायों में मन्दिर शब्द का प्रथम उल्लेख किया गया है। अमरकोश तथा अन्य कोशों में मन्दिर शब्द भवन-वाचक है। प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तो पता चलेगा कि बहुत प्राचीन नगर मन्दिर स्थानों के विकास मात्र हैं। संसार के अन्य प्राचीन नगरों की यही कथा है।^{३६८} प्राचीनकाल में किसी देवायतन के पूत पावन भूभाग के निकट थोड़े से जिज्ञासु एवं साधक सज्जनों ने सर्वप्रथम अपने आवासों का निर्माण किया। धीरे-धीरे वह स्थान अपने निजी आकर्षण से एक विशाल तीर्थस्थान या नगर में परिणत हो गया। इसके अतिरिक्त मन्दिर यदि सुचारु रूप से संचालित है तो उसके निकट किसी सुरम्ह जलाशय, पुष्करिणी अथवा सरिता का होना आवश्यक है। अतः जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में जलपूर्ति की साधन सम्पन्नता के कारण मन्दिर के सुन्दर, स्वास्थ्यप्रद एवं पावन वातावरण के कारण वहाँ आवास स्थापन सहज हो जाता है।^{३६९} पञ्चचरित में राजगृह नगर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसे शत्रुओं ने काममन्दिर तथा विज्ञान के ग्रहण करने में तत्पर मनुष्यों ने विश्वकर्मा का मन्दिर (विश्वकर्माणः मन्दिरम्) समझा था।^{३७०} पञ्चचरित के इस उल्लेख से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

सभा—अथर्ववेद, तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् आदि में सभाओं के निर्देश आये हैं। अति प्राचीन वैदिक युगीन समाभवनों के विन्यास में दो ही प्रधान उपकरण थे—स्तम्भ तथा वेदियाँ। सभा एक प्रकार का द्वार, भित्ति आदि से विरहित स्तम्भ-प्रधान निवेश था। प्राचीन सभाभवन

३६७. पद्य० १९।१२२।

३६७.● नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ३०३।

३६८. भारतीय स्थापत्य, पृ० ५३।

३६९. वही, पृ० ५४।

३७०. पद्य० २।३९, २।४१।

की यह रूपरेखा सदा वर्तमान रही। बाद में द्वारों और भित्तियों की प्रकल्पना से इन भवनों की अन्य भवनों के सादृश्य में लाने की परम्परा पल्लवित हुई। सम्भवतः यह प्रभाव राजनैतिक था। सभा राजनैतिक निवेश का एक प्रधान अंग थी जिसको आजकल की भाषा में दरबार के नाम से पुकारते हैं।^{३७१} पञ्चचरित में इस प्रकार के दरबार (राजसभा^{३७२}) का वर्णन किया गया है। ३८वें पर्व में कहा गया है कि क्षेमाञ्जलि नगर में लक्ष्मण ऊँचे-ऊँचे देव मन्दिर, कुँबों, बापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकार के मनुष्यों को देखते हुए प्रविष्ट हुए।^{३७३} राजसभा के अतिरिक्त अन्य लोगों की समायें होती थीं। अष्टाह्निक पर्व के अथसर पर लंका में मनुष्यों ने एक से एक बढ़कर समायें बनाई थीं।^{३७४} राजसभा के चारों ओर बहुत बड़ा खुला मैदान होता था जहाँ पर बहुत से लोग आकर बैठते थे। यह मैदान राजमहल की दीवारों से घिरा रहता था। राजमहल के सघन गवाक्षों (खिड़कियों) से स्त्रियाँ झाँककर सभा में होने वाले कार्यक्रमों को देखा करती थीं।^{३७५} सघन गवाक्षों से एक प्रकार का मुँधला चित्र ही दिखाई देता होगा अतः आगे मैदान की ओर छपरियाँ (निर्व्यूह) बनाई जाती थीं, जहाँ से सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे सके। ऐसे ही निर्व्यूह पर आकर जितपथा लक्ष्मण पर मोहित हो उसे शक्ति झेलने से इशारे से मना करने लगी थी।^{३७६}

महाभारत में सभाओं के बहुत सुन्दर वर्णन मिलते हैं। महाभारत का एक पर्व ही सभापर्व के नाम से विख्यात है, जिसमें इन्द्रसभा, वरुणसभा, कुबेरसभा तथा ब्रह्मसभा के वर्णन हैं। उन सभाभवनों में प्राचीन वैदिक सभा की रचना-प्रसूति ही देखने को मिलती है। गणराज्यों में सभाभवनों की एक नवीन परम्परा विकसित हुई। तत्कालीन सभाभवनों में न केवल राजनीतिक चर्चा अथवा व्यवहार-निर्णय ही सम्पन्न होते थे बल्कि वाणिज्य-वार्ताओं के लिए भी ये स्थानविशेष उपयुक्त समझे जाते थे। सभाभवन के विकास का तीसरा सोपान वह था जब सभाभवनों में मनोरंजन, छूत, आमोद, वादविवाद तथा विभिन्न प्रतियोगितायें पल्लवित हुईं।^{३७७} पञ्चचरित में इस तीसरे सोपान की परम्परा में एक नृत्य-सभा का वर्णन मिलता है जहाँ इस प्रकार की नर्तकियों ने

३७१. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १९३।

३७२. पद्य० ३८।८९।

३७३. पद्य० ३८।६३-६४।

३७४. वही, ६८।११।

३७५. वही, ३८।९६।

३७६. वही, ३८।९७।

३७७. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १९३।

नृत्य किया कि वे नर्तकियाँ जिस स्थान में ठहरती थीं, सारी सभा उसी स्थान में खपने नेत्र लगा देती थी। सारी सभा के नेत्र उसके रूप से, कान मधुर स्वर से और मन रूप तथा स्वर दोनों से मजबूत बँध गये थे। सामन्त लोग नर्तकियों को पुरस्कार देते-देते अलङ्काररहित हो गये थे, उनके शरीर पर केवल पहिने के वस्त्र ही बाकी रह गये थे।^{३७८} सभा का दूसरा नाम सद्स भी मिलता है।^{३७९} सभायें रमणीक उद्यान में भी बनाई जाती थीं। ४६वें पर्व में प्रमदवन में अनेक खण्डों से युक्त सभागृह विद्यमान होने का कथन रविवेण ने किया है।^{३८०}

दीर्घिका—राजा भरत के क्रीडास्थल (क्रीडतक स्थान) में सुन्दर-सुन्दर दीर्घिकाओं के होने का कथन ८३वें पर्व में किया गया है।^{३८१} दीर्घिका एक लम्बी नहर होती थी जो राजमहलों के भागों में प्रवाहित होती हुई गृहोद्यान तक जाती थी। दीर्घिका के बीच में गन्धोदक से पूर्ण क्रीडावापियाँ बनाकर कमल, हंस आदि के विहारस्थल बनाये जाते थे।^{३८२} पद्मचरित में इस प्रकार की अनेक दीर्घिकाओं का वर्णन है जो उत्तमोत्तम बगीचों के मध्य में स्थित, अनेक प्रकार के फूलों से सुशोभित, उत्तम सीढ़ियों से युक्त एवं क्रीडा के योग्य थीं।^{३८३} गृहोद्यान छडी-राजनीं गतः की वे गतः गतः की गतः की विशेषता थी। लम्बी होने के कारण इसका नाम दीर्घिका पड़ा।^{३८४}

गवाक्ष^{३८५}—रावण के रूप का वर्णन करते हुए पद्मचरित में कहा गया है कि जब वह नगर में गमन करता हुआ आगे जाता था तब उसे देखने के लिए स्त्रियाँ अत्यन्त उत्कण्ठित हो समस्त कार्यों को छोड़कर झरोखों में आ जाती थीं।^{३८६} गवाक्षों में झाँकते हुए स्त्रीमुख गुप्तकाल की विशेषता थी।^{३८७} कालिदास ने लिखा है कि झाँकते हुए पुरस्त्रियों के मुखों से गवाक्ष भरे हुए थे।^{३८८}

३७८. पद्य० ३७।१०९-१११।

३७९. पद्य० ११०।८।

३८०. वही, ४६।१५२।

३८१. वही, ८३।४२।

३८२. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०६।

३८३. पद्य० ३८३।४२।

३८४. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०६।

३८५. पद्य० १२।३७।

३८६. पद्य० ११।३२८, ३२९।

३८७. वासुदेवशरण अप्पवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन,

—पृ० ८५, ८६।

३८८. सान्द्रकुतूहलानां पुरसुन्दरीणां मुखैः गवाक्षाः व्याप्तान्तराः ॥

—रघुवंश ७५।११।

डॉ० कुमारस्वामी ने भारतीय रोशनदान या खिड़कियों (प्राचीन वातायन^{३८९}, पाली-वातायाम) के विकास का अध्ययन करते हुए बताया है कि शुक्लकाल और कुषाणकाल में वातायन तीन प्रकार के थे—वेदिका वातायन, जाल वातायन तथा शलाका वातायन, किन्तु गुप्तकाल की वास्तुकला में तोरणों के मध्य में बने हुए वातायन गोल हो गये हैं। तभी उनका गवाक्ष (बेल की आँख की तरह गोल) यह अन्वर्थ नाम पड़ा।^{३९०} रजिनेज ने निम्नलिखित शिलेयों से (गुप्तकाल) निम्नलिखित स्तूप-विहित वनितानतः, पृष्ठ० ३८।१६) इनकी सघनता की ओर संकेत किया है। जाल के समान होमे के कारण इन्हें जालक भी कहते थे।^{३९१} इस प्रकार के जो जालक मणियों से युक्त या मणिनिर्मित होते थे, उन्हें 'मणिजालक' कहा जाता था।^{३९२}

क्रीडनक स्थान^{३९३}—(क्रीडास्थल) पञ्चचरित में भरत के ऐसे क्रीडनक स्थान या क्रीडास्थल का वर्णन किया गया है जो निर्व्यूह (छपरी) बलभी (अट्टालिका, शृङ्ग (शिखर) प्रवण (देहली) की मनोहर कांति से युक्त पंक्तिबद्ध रचित बड़े-बड़े प्रासादों (महलों) से सुशीलित था, जहाँ के फर्श (कुट्टिम) नाना प्रकार के रङ्ग-विरङ्ग मणियों से बने हुए थे, जहाँ सुन्दर-सुन्दर दीर्घिकायें थीं, जो मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, स्वर्णजटित था, जहाँ वृक्ष फूलों से युक्त थे, जो अनेक आश्चर्यकारी पदार्थों से व्याप्त था, समयाप्तकूल मन को हरण करने वाला था, बांसुरी (वंश) और मृदङ्ग (मुरज) के बजने का स्थान था, सुन्दरी स्त्रियों से युक्त था, जिसके समीप ही कपोलों से युक्त हाथी विद्यमान थे, जो मध की सुगन्ध से सुवासित था, थोड़ों की हिनहिनाहट से मनोहर था, जहाँ कोमल संगीत हो रहा था, जो नाना रत्नों के प्रकाशरूपी पट से आवृत था तथा देवों के लिए भी रुचिकर था। इस वर्णन को देखकर ऐसा लगता है मानो क्रीडनक स्थान के बहाने रजिनेज सुन्दर राजप्रासाद का ही वर्णन कर रहे हों। सुन्दर राजप्रासाद निर्व्यूह, बलभी, शृङ्ग और प्रवण से युक्त होता है। उसमें अच्छा फर्श होता है। स्नान आदि के लिए सुवासित जल से परिपूर्ण दीर्घिकायें होना तो उस काल के राजप्रासाद की विशेषता ही मानी जाती थी। प्रासाद के अन्तः-पुर में सुन्दर स्त्रियों का निवास होता ही था। मुख्य भवन के साथ-साथ उससे

३८९. पृष्ठ० १९।१२२।

३९०. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन।

३९१. पृष्ठ० १९।१२२।

३९२. पृष्ठ० १९।१२२।

३९३. वही, ८३।४१-४५।

सटे हुए अन्य भवन भी होते थे जहाँ अश्वशाला, गजशाला आदि का निर्माण किया जाता था। विनोद के नृत्य, गीत, वादित्र भी राजप्रासादों में हुवा करते थे।

प्रपा^{३९४}—(पानीयशाला या प्याऊ) प्राचीनकाल में स्थान-स्थान पर लोगों की पानी पीने के लिए प्याऊ (प्रपाः) बनाई जाती थीं। निजी उद्देश्य की पूर्ति के साथ-साथ इनसे जनकल्याण भी होता था। ये प्याऊ नगरों^{३९५} उद्यानों^{३९६} तथा मन्दिरों^{३९७} के साथ-साथ पथों (मार्गों) में भी बनाई जाती थीं। मार्ग में बनाई गई प्रपाओं के ऊपर वृक्षों की छाया होती थी। इनके पानी को रविषेण ने सब प्रकार के रसों से युक्त (सर्वरसान्विताः) कहा है।^{३९८}

कूटगृह—भवन-निर्माण के प्रकारों में एक कूटरचना भी है। पञ्चचरित में जिनकूट^{४००} भानुकूट^{४००} तथा प्रासादकूट^{४०१} का उल्लेख मिलता है। राम, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का अत्यन्त ऊँचा सब दिशाओं का अवलोकन कराने वाला प्रासादकूट था।^{४०२} ११२वें पर्व में वाष्पुकवन के जैन-भवन (जैनमन्दिर) का वर्णन करते हुए इसकी उपमा भानुकूट से दी गई है तथा मन्दिर को उत्तमोत्तम प्रकार, तोरण, ऊँचे-ऊँचे गोपुर, नाना रंग की पताकाओं, स्वर्णमय स्तम्भों एवं गम्भीर तथा सुन्दर छल्ले से युक्त बतलाया है। डा० द्विजेन्द्रनाथ गुप्त ने हेमकूट को पञ्चशाल-भवन (विशाल + विशाल के संयोजन से) का एक प्रकार माना है। इस आधार पर उपर्युक्त कूटों की भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

समवसरण—तीर्थंकर भगवान् की वह सभा, जिसमें विराजमान होकर वे धर्मोपदेश देते हैं, समवसरण कहलाती है। समवसरण में तीन कोट बनाए जाते हैं।^{४०३} कोटों की चारों दिशाओं में चार गोपुर होते हैं जो बहुत ही ऊँचे होते हैं। इन गोपुरों में चार बापियाँ होती हैं।^{४०४} गोपुर अष्टमंगलद्रव्य से युक्त होते हैं तथा इनकी शोभा अद्भुत होती है।^{४०५} समवसरण में स्फटिक की

३९४. पद्य० ३८।६३।

३९५. पद्य० ३८।६३।

३९६. वही, ४६।१५२।

३९७. वही, ६८।११।

३९८. रेणुकण्ठकनिर्मुक्ता रथ्यामार्गाः सुखावहाः।

महातस्कृतच्छायाः प्रपाः सर्वरसान्विताः ॥ पद्य० ३।३२५।

४००. पद्य० ११२।३२।

४००. पद्य० ११२।४४।

४०१. वही, ८३।६।

४०२. वही, ८३।६।

४०३. वही, २।१३५।

४०४. वही, २।१३६।

४०५. वही, २।१३७।

दीवारों से बारह कोठे बने होते हैं जो प्रदक्षिणा रूप से स्थित होते हैं।^{४०६} बीच में अशोक वृक्ष के नीचे सिंहासन पर तीर्थंकर विराजमान होते हैं, यह अशोक वृक्ष पाथिव होता है। इसकी शाखायें वैडूर्य मणि की होती हैं, यह कोमल पल्लवों से शोभायमान होता है। फूलों के गुच्छों की कान्ति से यह समस्त दिशाओं को व्याप्त करता हुआ अस्यायक सुशोभित होता है। यह कल्पवृक्षों के समान रमणीय होता है, इसके पत्ते हरे तथा सघन होते हैं और यह नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित पर्वत के समान जान पड़ता है। तीर्थंकर का सिंहासन नाना रत्नों के प्रकाश से हृन्मधुगुण को उत्पन्न करता है, दिव्य वस्त्र से आच्छादित होता है, कोमल स्पर्श से मनोहर होता है, तीनों लोकों की प्रभुतास्वरूप तीन छत्रों से सुशोभित होता है, देवी द्वारा बरसाए फूलों से व्याप्त रहता है। भूमण्डल पर वर्तमान रहता है तथा यक्षराज के हाथों में स्थित चमरों से सुशोभित होता है। कुन्दुभि बाजों की शान्तिपूर्ण प्रतिछवि वहाँ निकलती है।^{४०७} सूर्य के प्रकाश को तिरस्कृत करने वाले प्रभामण्डल के मध्य में तीर्थंकर भगवान् विराजमान होते हैं तथा गणेश्वर के द्वारा प्रश्न किये जाने पर समीपवेश देते हैं।^{४०८}

जिनेन्द्रालय^{४०९}—मह ऊँचे शिखरों से युक्त मन्दिर (बैचालय) होता था। प्रवेश करते समय इसमें सबसे पहले बाह्य कक्ष मिलता था।^{४१०} अधिक भीड़ एकत्रित होने पर सम्भवतः लोग यहाँ रुक जाते होंगे। विशेष महोत्सव आदि के अवसर पर भी लोग यहाँ एकत्रित हो जाते होंगे। यह अनेक स्तम्भों से युक्त होता था।^{४११} रावण का शान्तिनाथ जिनालय स्फटिक से निर्मित होने के कारण इसमें स्फटिक के लम्बे लगे थे।^{४१२} वहाँ की उत्तमोत्तम वस्तुओं के कारण लोग, 'यह आश्चर्य देखो, यह आश्चर्य देखो' इस प्रकार कहकर परस्पर एक दूसरे को उत्तम वस्तुयें दिखलाते थे।^{४१३} बाह्य कक्ष के बाद आद्यमण्डप^{४१४} मिलता था। इसे मन्दिर का गर्भगृह कहा जा सकता है। इसकी दीवारों पर जिनेन्द्र भगवान् के मूक चित्र बनाए जाते थे। यही सामने जिनेन्द्र प्रतिमायें भी विराजमान होती थीं। जिनेन्द्रालय की ये विशेषतायें ७१वें पर्व में किए गए शान्ति-जिनालय के वर्णन से प्राप्त होती हैं। अन्यत्र वर्णन के आधार पर ज्ञात होता है कि महा-

४०६. पृष्ठ ० २।१३८।

४०८. वही, २।१५३-१५४।

४१०. वही, ७१।४७।

४१२. वही, ७१।४३।

४१४. वही, ७१।४८।

४०७. पृष्ठ ० २।१४७-१५२।

४०९. वही, ९५।३७।

४११. वही, ७१।४३।

४१२. वही, ७१।४४।

१९० : पञ्चरत्न और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

पर्वत (सुमेरु पर्वत) की गुफाओं के समान जिनालयों के विशेष द्वार बनाए जाते थे। द्वारों पर द्वार आदि से अलंकृत पूर्ण कलश स्थापित किये जाते थे।^{४१५} मन्दिरों की स्वर्णमयी लम्बी चौड़ी दीवारों पर मणिमय चित्रों से चित्त को आकर्षित करने वाले चित्रपट फैलाये जाते थे।^{४१६} स्वर्णमयी दीवारों और मणियों के अभाव में भी उस समय चित्रपट मन्दिर की दीवारों पर फैलाने की परम्परा रही होगी। स्तम्भों के ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियों के दर्पण (अथवा सुन्दर दर्पण) लगाए जाते थे और गवाशों (झरोखों) के अग्रभाग पर स्वच्छ निर्झर (झरने) के समान अत्यन्त मनोहर द्वार लटकाये जाते थे।^{४१७} मनुष्यों के जहाँ चरण पड़ते थे, ऐसी भूमियों पर पांच वर्ण के रत्नमय चूर्णों से नाना प्रकार के बेल-बूटे खींचे जाते थे।^{४१८} जिनमें सौ अथवा हजार कलिकायें होती थीं तथा जो लम्बी दण्डी से युक्त होते थे, ऐसे कमल उन मन्दिरों की देहलियों पर रखे जाते थे।^{४१९} हाथ से पाने योग्य स्थानों में मत्त स्त्री के समान शब्द करने वाली उज्ज्वल छोटी-छोटी घंटियाँ लगाई जाती थीं।^{४२०} दक्षलक्षण पर्व या अन्य समारोहों पर अथवा कहीं-कहीं सदैव इस प्रकार की ह्रादिघाँ लटका कर शोभा करने की परम्परा अब भी है। सुगन्धि से भ्रमरों को आकर्षित करने वाली, उत्तम कारीगरों से निर्मित नाना प्रकार की मालायें फैलाई जाती थीं। सुन्दर वस्त्रों से द्वार की शोभा की जाती थी तथा कहीं विभिन्न प्रकार की धातुओं के रस से दीवारों को अलंकृत किया जाता था।^{४२१} ऊपर जिन आकर्षक चित्रपटों के फैलाए जाने का उल्लेख है, उनमें अधिकतर जिनेन्द्र भगवान् के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले चित्रपट ही फैलाए जाते थे।^{४२२} जिनेन्द्रालय के जो वर्णन उपलब्ध होते हैं, उनसे ज्ञात होता है कि इस प्रकार के अधिकांश आलय मन्दिरों का निर्माण आवासगृहों, महलों आदि में होता था। एक ही शान्ति-जिनालय के लिए शान्तिभवन,^{४२३} शान्ति-गेह,^{४२४} शान्त्यालय,^{४२५} शान्ति-हर्म्य,^{४२६} शान्तिनाथ-भवन,^{४२७} (शान्तिनाथ) सद्म,^{४२८} शान्तेः परमालयम्^{४२९} शब्दों का प्रयोग यह सूचित करता है कि भवन, गेह, आलय, हर्म्य

४१५. पद्य० ९५।३८।

४१७. वही, ९५।४०।

४१९. वही, ९५।४२।

४२१. वही, २९।५।

४२३. वही, ७१।३३।

४२५. वही, ७१।३९।

४२७. वही, ७१।४२।

४२९. वही, ७१।४९।

४१६. पद्य० ९५।३९।

४१८. वही, ९५।४१।

४२०. वही, ९५।४३।

४२२. वही, ९६।२१।

४२४. वही, ७१।३५।

४२६. वही, ७१।४१।

४२८. वही, ७१।४४।

तथा सस्य की रचनाओं में सामान्यतः कोई भेद नहीं माना जाता था। प्राचीन काल में निश्चय ही ये या इनमें से अधिकांश शब्द अलग-अलग प्रकार के भवनों के वाचक थे, किन्तु रविषेण के काल तक आते-आते ये शब्द एक दूसरे के पर्याय-वाची बन गए थे, ऐसा उपर्युक्त प्रयोगों से सिद्ध होता है। जिनवेसम^{४३०} शब्द भी जिनेन्द्रालय का वाचक हो गया था, क्योंकि २८वें पर्व में जिनवेसम का जो वर्णन आया है तदनुसार उसमें (रत्नमय) वातायन थे, (स्वर्णमय) हजारों स्तम्भ थे तथा मेरु के शिखर के समान प्रभा थी। महापीठ (भूमिका) वज्र-निबद्ध के समान थी।^{४३१} ये सभी विशेषताएँ उपरिलिखित आलय में समाहित हो जाती हैं। आगे इसकी उपमा रविषेण ने इन्द्र के क्रीडागृह^{४३२} तथा नोन्द्रालय^{४३३} से दी है। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि आलय, गृह तथा वेसम तीनों में कोई भेद नहीं माना जाता था। जिनालयों की शोभा के लिए उस समय उद्यान भी बनाये जाते थे।^{४३४}

चैत्य^{४३५}—ऊपर जिनालय के जिस रूप का वर्णन किया गया है उसी के बृहद् रूप चैत्य आवासगृहों के भाग न होकर स्वतन्त्र रूप से बनाए जाते होंगे। इन चैत्यों में सुदृढ़ स्तम्भ लगाए जाते थे। कहीं-कहीं ये स्तम्भ रत्न और स्वर्ण के बने होते थे।^{४३६} चैत्य घोम्य चौड़ाई तथा ऊँचाई से युक्त होते थे। ये झरोखे, महल (हर्म्य) बरुभी (छपरी) आदि की रचना से सुशोभित होते थे।^{४३७} इनमें अनेक शालायें निर्मित होती थी। इनके बड़े-बड़े द्वार तोरणयुक्त होते थे। इनके चारों ओर परिक्षा खोदी जाती थीं। सफेद और सुन्दर पत्ता-काओं से ये युक्त होते थे। इनके अन्दर बड़े-बड़े घंटा लगाए जाते थे।^{४३८} इनमें सब प्रकार के लक्षणों से युक्त पंचवर्ण की जिनप्रतिमाएँ सुशोभित होती थीं।^{४३९} ये मन्दिर परम विभूति से युक्त रहते थे।^{४४०} इनमें झरोखें बने रहते थे। झरोखों में मोतियों की मालायें लटका दी जाती थीं।^{४४१} ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओं में छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त मोतियों की मालायें, चित्र-विविध घमर, मणिमय फानूस, दर्पण तथा बेगले (बुद्बुदावत्यः) लगाये

४३०. पद्य० २८।१००।

४३२. वही, २८।९१।

४३४. वही, ६७।२१।

४३६. वही, ७।३३८।

४३८. वही, ४०।२९।

४४०. वही, ६७।१८।

४३१. पद्य० २८।८८।

४३३. वही, २८।९२।

४३५. वही, ३३।३३२।

४३७. वही, ४०।२८।

४३९. वही, ४०।३२।

४४१. वही, ३।३३८।

१९२ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

जाते थे।^{४४२} द्वारों पर वस्त्र तथा कदली आदि से शोभा की जाती थी।^{४४३} कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजात तथा मदार आदि के फूलों से निर्मित मालाओं से मन्दिर सजाया जाता था।^{४४४} रत्नमयी^{४४५} मालाओं के लगाये जाने का भी उल्लेख मिलता है। चैत्यों में अनेक प्रकार के मणियों के बेल-बूटे लगाये जाते थे।^{४४६} चैत्यभूमि में विस्तृत वेदिकायें बनी होती थी। ये वेदिकायें वैदूर्य मणिनिर्मित दीवारों तथा हाथी, सिंह आदि के चित्रों से अलंकृत रहती थीं। मृदङ्ग, बांसुरी, मुरज, मृगश्रि, नगाड़े तथा शंखों के शब्दों से चैत्यों का वातावरण संगीतमय बनाया जाता था।^{४४७} चैत्य को चैत्यालय भी कहते थे।^{४४८} कृत्रिम चैत्य के अतिरिक्त भकृत्रिम^{४४९} चैत्यों का भी उल्लेख मिलता है।

विमान—विमान-रचना की दृष्टि से पद्मचरित में पुष्पक विमान का सर्व-श्रेष्ठ वर्णन उपलब्ध होता है। अष्टम पर्व के वर्णन के अनुसार पुष्पक विमान अत्यन्त सुन्दर था, शिखर युक्त था, शिखर में विभिन्न प्रकार के रत्न जड़े थे। वातायन (सरोखे) उसके नेत्र थे। उसमें मोतियों की झालर लगी हुई थी, झालर से निर्मल कान्ति का समूह निकलता था। उसका अगला भाग पद्मरागमणियों से बना था। कहीं-कहीं इन्द्रनीलमणियों की प्रभा उसपर आवरण कर रही थी। चैत्यालय, वन, मकानों के अग्रभाग, नाविका तथा महल आदि से युक्त होने के कारण वह किसी नगर के समान ऊँचा जान पड़ता था। वह बहुत ही ऊँचा था तथा देवभवन के समान जान पड़ता था।^{४५०}

४४२. पद्य० ४०।१२-१३ ।

४४४. वही, ६८।१६-१७ ।

४४६. वही, २३।१३ ।

४४८. वही, ३।४५ ।

४५०. अथ प्रवर्तितं तस्य मनोज्ञं ज्ञानदाधिपम् ।

प्रत्युप्तरत्नशिखरं वातायनविभोचनम् ॥ पद्य० ८।२५३ ।

मुक्ताजालप्रमुक्तोत्तं समूहेनामलखिषाम् ।

समुत्सृजद्विजालस्रमश्रु स्वासिर्वियोगतः ॥ पद्य० ८।२५४ ।

पद्मरागविनिर्मणिमग्नदेशं दधच्छुभा ।

ताडनादिव संप्राप्तं हृदयं रक्ततां पराम् ॥ पद्य० ८।२५५ ।

इन्द्रनीलप्रभाजालकृतप्रावरणं क्वचित् ।

शोकादिव परिप्राप्तं श्यामलत्वमुदारतः ॥ पद्य० ८।२५६ ।

४४३. पद्य० ६८।१३ ।

४४५. वही, २३।१५ ।

४४७. वही, ४०।३०-३१ ।

४४९. वही, ९८।५६ ।

नरयान^{४५१}—(शिविका^{४५२}, पालकी) नरयान का जो वर्णन पद्यचरित में उपलब्ध होता है उसके मूलद्रव्य (काष्ठ) तथा परिमाण आदि पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता, केवल उसके आलंकारिक स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। तदनुसार नरयान के ऊपर पताकायें फहराई जाती थीं।^{४५३} इनको रत्न और स्वर्ण से देदीप्यमान किया जाता था। छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फानूस तथा नाना प्रकार के चमरों से उन्हें सुन्दर बनाया जाता था। साथ ही साथ दिव्य कमल (सुन्दर कमल) तथा नाना प्रकार के बेलवूटों से उन्हें सुसज्जित किया जाता था तथा मालाओं से इनकी शोभा बढ़ाई जाती थी।^{४५४} वैराग्य होने पर भगवान् ऋषभदेव जिस शिविका पर आरुढ़ होकर वन को गये थे वह शिविका रत्नों की कामिनी से शिखाओं को आकर्षित करती थी। उसके दोनों ओर चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान चँवर डुलाये जा रहे थे। पूर्ण चन्द्रमा के समान उस पर दर्पण लगा हुआ था। वह बुदबुद के आकार के मणिमय गोलकों सहित थी। उसकी आकृति अर्द्धचन्द्राकार थी। पताकाओं के बत्तों से उसकी शोभा बढ़ रही थी। वह दिव्य मालाओं से सुगन्धित थी, मोतियों के हार से विराजमान थी, देखने में सुन्दर थी, विमान के समान जान पड़ती थी तथा छोटी-छोटी वस्तुयाँ उसमें क्षणभ्रम शब्द करती थीं।^{४५५}

सिंहासन^{४५६}—इसको सिंहचिह्न^{४५७} भी कहते थे। मानसार के अनुसार सिंहासन यथानाम उस आसन को कहेंगे जिसमें सिंह की प्रतिमा बनी हो। ऋषभदेव की माता ने स्वप्न में ऐसा ही सिंहासन देखा था जो बड़े-बड़े सिंहों से युक्त, अनेक प्रकार के रत्नों से उज्ज्वल, स्वर्णनिर्मित तथा बहुत ऊँचा था।^{४५८} सिंहासन सबके बैठने की वस्तु नहीं है, यह केवल राजाओं के लिए ही उचित है। सिंहासनों का विशेषकर राजाओं के अभिषेक के समय प्रयोग किया जाता

शैल्यकाननबाह्यालीवाप्यन्तर्भवनादिभिः ।

सहितं नगराकारं नानाशस्त्रकृतशतम् ॥ पद्य० ८।२५७ ।

भूत्यैस्वाहृतं तुङ्गसुरप्रासादसन्निभम् ।

विमानं पुष्पकं नाम विहायस्तलमण्डनम् ॥ पद्य० ८।२५८ ।

४५१. पद्य० ११३।१९ ।

४५२. पद्य० ३।२७८ ।

४५३. वही, ११३।२१ ।

४५४. वही, ११३।२०-२१ ।

४५५. वही, ३।२७५-२७८ ।

४५६. वही, २।१११, ३।४१ ।

४५७. वही, ३।१७७ ।

४५८. वही, ३।१३५ ।

१९४ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

था। अतएव राजोचित सिंहासन के कई उपवर्ण^{४५९} वर्णित हैं। जैसे—मंगल, वीर तथा विजय आदि।

शय्या^{४६०}—शय्या के लिए दूसरा शब्द शयन^{४६१} (या शयनीय) भी आया है। राम, लक्ष्मण, भरत तथा वासुधन के अम्भोजकांड नामक शय्यागृह में स्थित शय्या सुकोमल स्पर्श से युक्त तथा सिंह के समान पायों पर स्थित थी।^{४६२} रानी केकशी की शय्या विशाल, सुन्दर तथा क्षीरसमुद्र के समान थी। उसपर रत्नों के दीपकों का प्रकाश फैल रहा था, रेशमी वस्त्र बिछे हुए थे, यथेष्ट गद्दा (गल्लक) बिछा हुआ था तथा रंग-बिरंगी तकिया (उपधानक) रखी हुई थी। उसके समीप हाथी दाँत की बनी चौकी रखी थी।^{४६३}

यद्यपि पद्मचरित में स्थापत्य की अनेक श्रेष्ठ कलाकृतियों के वर्णन मिलते हैं, तथापि समृद्ध कविकल्पना में लिपटे होने के कारण उनसे यह पता नहीं चलता कि इन भवनों में कैसी निर्माणसामग्री प्रयुक्त होती थी। कवि सर्वत्र मणि जड़ित वातायनों, शिखरों, स्फटिक के फर्शों तथा स्वर्ण-रजत की दीवारों की प्रशंसा में बह गया है। वस्तुतः सोने-चाँदी का इतना प्रचुर उपयोग तब किया जाता था या नहीं, यह आज निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, पर पुरातत्त्वविषयक खुदाई से प्रमाणित होता है कि स्वर्णकार और नणिकार की कलाओं में प्राचीन भारतीयों ने बहुत उन्नति कर ली थी।

विविध कलायें

उत्तिकौशल कला—उक्तिवैचित्र्य वादविजय और मनोविनोद की कला है। भामह ने बताया है कि वक्रोक्ति ही समस्त अलंकारों का मूल है और वक्रोक्ति न हो तो काव्य हो ही नहीं सकता। भामह की पुस्तक पढ़ने से यही धारणा होती है कि वक्रोक्ति का अर्थ उन्होंने कहने के विशेष प्रकार के ढंग को ही समझा था। वे स्पष्ट रूप से ही कह गये हैं कि 'सूर्य अस्त हुआ, चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है, पक्षी अपने घोंसलों में जा रहे हैं' इत्यादि वाक्य काव्य नहीं हो सकते, क्योंकि इन कथनों में कहीं वक्र या भङ्गिमा नहीं है।^{४६४} पद्मचरित में केकया की उक्तिवैचित्र्य की कला में निपुण बतलाया है।^{४६५}

४५९. द्विजेश्वरनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० २०३।

४६०. पद्य० ८३।१०।

४६१. पद्य० ७।१७३, १।२२४।

४६२. वही, ६३।१०।

४६३. वही, ७।१७१-१७३।

४६४. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १२०।

४६५. पद्य० २४।३५।

उक्तिकौशल के भेद—उक्तिकौशल के अनेक भेद होते हैं। विशेष रूप से स्थान, स्वर, संस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थता और भाषा की अपेक्षा उक्तिकौशल के भेद किये गये हैं।^{४६१}

स्थान—उरस्थल, कण्ठ और मूर्धा के भेद से स्थान तीन प्रकार का होता है।^{४६२}

स्वर—पङ्कज, शृषभ, गांधार, माधुर्य, पञ्चम, वेदक और निषाद ये सात स्वर होते हैं।^{४६३}

संस्कार—लक्षण और उद्देश अथवा लक्षणा और अभिधा की अपेक्षा संस्कार दो प्रकार का होता है।^{४६४}

विन्यास—पद, वाक्य, महावाक्य आदि के विभागसहित जो कथन है वह विन्यास कहलाता है।^{४६५}

काकु—आपेक्षा तथा निरपेक्षा के भेद से काकु दो प्रकार की होती है।^{४६६}

समुदाय—गद्य, पद्य और मिश्र (चम्पू) के भेद से समुदाय तीन प्रकार का होता है।^{४६७}

विराम—किसी विषय का संक्षेप से उल्लेख करना विराम कहलाता है।^{४६८}

सामान्याभिहित—एकार्थक अथवा पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना सामान्याभिहित कहलाता है।^{४६९}

समानार्थता—एक शब्द के द्वारा बहुत अर्थ का प्रतिपादन करना समानार्थता है।^{४७०}

भाषा—आर्य, लक्षण और भ्रष्ट के भेद से भाषा तीन प्रकार की होती है।^{४७१}

लेख—पद्यरूप जो व्यवहार होता है उसे लेख कहते हैं।^{४७२}

४६६. पद्य० २४।२७-२८।

४६८. वही, २४।८, २४।२९।

४७०. वही, २४।३०।

४७२. वही, २४।३१।

४७४. वही, २४।३२।

४७६. वही, २४।३३।

४६७. पद्य० २४।२९।

४६९. वही, २४।३०।

४७१. वही, २४।३१।

४७३. वही, २४।३२।

४७५. वही, २४।३३।

४७७. वही, २४।३४।

जाति—लेखसहित उपर्युक्त भेदों (आर्य, लक्षण और म्लेच्छ) को जाति कहते हैं।^{४७८}

मातृकाएँ—साधारणतः बर्णों को पृथक्-पृथक् अथवा वर्णमाला को समुदित रूप में मातृका कहा जाता है।^{४७९} इन मातृकाओं और उपर्युक्त जातियों सहित जो भाषणचातुर्य है उसे उक्तिशौशल कहते हैं।^{४८०}

पुस्तकर्म

मिट्टी, लकड़ी आदि से खिलौना बनाने के कार्य को पुस्तकर्म कहते हैं। मय, उपचय और संक्रम के भेद से पुस्तकर्म तीन प्रकार का होता है।^{४८१}

क्षयजन्य पुस्तकर्म—लकड़ी आदि को छील-छालकर जो खिलौने आदि बनाये जाते हैं उसे क्षयजन्य पुस्तकर्म कहते हैं।^{४८२}

उपचयजन्य पुस्तकर्म—ऊपर से मिट्टी आदि लगाकर जो खिलौना आदि बनाये जाते हैं उसे उपचयजन्य पुस्तकर्म कहते हैं।^{४८३}

संक्रमजन्य पुस्तकर्म—जो प्रतिबिम्ब अर्थात् साँचे आदि ढालकर बनाये जाते हैं उसे संक्रमजन्य पुस्तकर्म कहते हैं।^{४८४}

पुस्तकर्म के एक अन्य प्रकार से चार भेद^{४८५} होते हैं—यन्त्र, निर्यन्त्र, सन्धिद्र तथा निश्चिद्र।

यन्त्र—वे खिलौने जो यन्त्रचालित होते हैं।

निर्यन्त्र—वे खिलौने जो बिना यन्त्र के होते हैं।

सन्धिद्र—वे खिलौने जो छिद्रसहित होते हैं।

निश्चिद्र—वे खिलौने जो छिद्ररहित होते हैं।

पत्रच्छेद-क्रिया

पत्तियों को काट-छाँटकर विभिन्न आकृतियाँ बनाने को पत्रच्छेद कहते हैं। ललितविस्तर में कलाओं की सूची में इसको भी स्थान दिया गया है।^{४८६}

पत्रच्छेद-क्रिया पत्र, वस्त्र तथा स्वर्णादि के ऊपर की जाती है। यह स्थिर और चंचल के भेद से दो प्रकार की होती है।^{४८७}

४७८. पद्म० २४।३४।

४७९. पद्म० २४।३४।

४८०. वही, २४।३५।

४८१. वही, २४।३८।

४८२. वही, २४।३८।

४८३. वही, २४।३९।

४८४. वही, २४।३९।

४८५. वही, २४।४०।

४८६. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १५७।

४८७. पद्म० २४।४३।

पत्रच्छेद के भेद—पत्रच्छेद तीन प्रकार^{४८८} का होता है। १. बुष्कम, २. छिन्न और ३. अछिन्न ।

बुष्कम—सुई अथवा दन्त आदि के द्वारा जो बनाया जाता है उसे बुष्कम कहते हैं ।^{४८९}

छिन्न—जो कैंची आदि से काटकर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवों के सम्बन्ध से युक्त होता है उसे छिन्न कहते हैं ।^{४९०}

अछिन्न—जो कैंची आदि से काटकर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवों के सम्बन्ध से रहित होता है उसे अछिन्न कहते हैं ।^{४९१}

मालानिर्माण की कला

मालानिर्माण की कला चार^{४९२} प्रकार की होती है—आर्द्र, शुष्क, तदुन्मुक्त और मिश्र ।

आर्द्र—गीले (ताजे) पुष्पादि से जो माला बनाई जाती है उसे आर्द्र कहते हैं ।^{४९३}

शुष्क—सूखे पत्र आदि से जो माला बनाई जाती है उसे शुष्क कहते हैं ।^{४९४}

तदुन्मुक्त—(तदुज्झित) चाबलों के सीप अथवा जवा आदि से जो माला बनाई जाती है उसे तदुज्झित कहते हैं ।^{४९५}

मिश्र—जो माला उपर्युक्त तीनों के मेल से बनाई जाती है उसे मिश्र कहते हैं ।^{४९६}

यह माल्यकर्म रणप्रबोधन, व्यूहसंयोग आदि भेदों सहित होता है ।

गन्धयोजना

सुगन्धित पदार्थ निर्माण रूप कला को गन्धयोजना कहते हैं ।^{४९७}

गन्धयोजना के अंग—धोनिद्रव्य, अधिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म, गुणदोषविज्ञान तथा कोशल ये गन्धयोजना के अंग^{४९८} हैं ।

४८८. पस० २४।४१ ।

४९०. वही, २४।४२ ।

४९२. वही, २४।४४ ।

४९४. वही, २४।४५ ।

४९६. वही, २४।४५ ।

४९८. वही, २४।४७ ।

४८९. पस० २४।४१ ।

४९१. वही, २४।४२ ।

४९३. वही, २४।४४ ।

४९५. वही, २४।४५ ।

४९७. वही, २४।४६ ।

१९८ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

योनिद्रव्य—जिनसे सुगन्धित पदार्थ का निर्माण होता है ऐसे तगर आदि योनिद्रव्य हैं ।^{४९९}

अधिष्ठान—जो धूप, बत्ती आदि का आश्रय है उसे अधिष्ठान कहते हैं ।^{५००}

रस—कषायला, मधुर, खरपरा, कड़ुआ और खट्टा यह पाँच प्रकार का रस होता है, जिसका सुगन्धित द्रव्य में विशेषकर निश्चय करना पड़ता है ।^{५०१}

वीर्य—पदार्थों की जो शीतता अथवा उष्णता है वह दो प्रकार का वीर्य है ।^{५०२}

कल्पना—अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थों का मिलाना कल्पना है ।^{५०३}

परिकर्म—तेल आदि पदार्थों का शोधन करना तथा धोना आदि परिकर्म कहलाता है ।^{५०४}

गुणदोषविज्ञान—गुण अथवा दोष का जानना गुणदोषविज्ञान है ।^{५०५}

कोशल—गरकीय तथा स्वकीय वस्तु की विशेषता जानना कोशल है ।^{५०६}

गन्धयोजना कला के भेद—गन्धयोजना कला के स्वतन्त्र और अनुगत दो भेद हैं ।^{५०७}

संवाहन-कला

बौद्धग्रन्थ ललितविस्तर में संवाहनकला (शरीर पर मालिश करने की कला) को 'संवाहितम्' कहकर कलाओं की गणना में उसे स्थान दिया है ।^{५०८} संवाहन-कला दो^{५०९} प्रकार की है—१. कर्मसंश्रया, २. शय्योपचारिका ।

कर्मसंश्रया के भेद—त्वचा, मांस, अस्थि और मन इन चार को सुख पहुँचाने के कारण कर्मसंश्रया के चार भेद हैं ।^{५१०}

मृदु अथवा सुकुमार—जिस संवाहन से केवल त्वचा को सुख होता है वह मृदु अथवा सुकुमार कहलाता है ।^{५११}

४९९. पद्म० २४।४८ ।

५०१. वही, २४।४९ ।

५०३. वही, २४।५० ।

५०५. वही, २४।५१ ।

५०७. वही, २४।५१ ।

५०८. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १५६ ।

५०९. पद्म० २४।७३ ।

५११. वही, २४।७६ ।

५००. पद्म० २४।४८ ।

५०२. वही, २४।५० ।

५०४. वही, २४।५१ ।

५०६. वही, २४।५० ।

५१०. पद्म० २४।७४ ।

मध्यम—जो त्वचा और मांस को सुख पहुँचाता है वह मध्यम कहलाता है ।^{५१२}

उत्कृष्ट (प्रकृष्ट)—जो त्वचा, मांस और हड्डी को सुख पहुँचाता है वह प्रकृष्ट कहलाता है ।^{५१३}

मनःसुखसंवाहन—त्वचा, मांस और हड्डी को सुख पहुँचाने के साथ जब कीमल संगीत होता है तब मनःसुखसंवाहन कहलाता है ।^{५१४}

इसके सिवा इसके संस्पृष्ट, गृहीत, मुक्षित, चलित, आहत, अङ्कित, विद्ध, पीडित और भिन्नपीडित ये भेद भी हैं ।^{५१५}

कर्मसंश्रया संवाहनकला के भेद—कर्मसंश्रया संवाहनकला के निम्न-लिखित^{५१६} भेद हैं—१. शरीर के रोमों का उद्धर्तन करना, २. जिस स्थान में मांस नहीं है वहाँ अधिक दबाना, ३. केशकर्षण, ४. अद्भुत, ५. सृष्टप्राप्त, ६. अमार्गप्रयात, ७. अतिभुक्त, ८. अदेषाहत, ९. अत्यर्थ, १०. अवसुप्त-प्रतीपक ।

शय्योपचारिका—जो संवाहन क्रिया के अनेक कारण अर्थात् आसनों से की जाती है वह चित्त को सुख देने वाली शय्योपचारिका नाम की क्रिया है ।^{५१७}

शोभास्पद संवाहन—जो संवाहन उपरिलिखित दोषों से रहित होता है । योग्य देश में प्रयुक्त है तथा अभिप्राय को जानकर किया जाता है ऐसा सुकुमार संवाहन अत्यन्त शोभास्पद होता है ।^{५१८}

वेश-कौशल कला

स्नान करना, शिर के बाल गुँथना तथा उन्हें सुगन्धित आदि करना यह शरीर के संस्कार वेश-कौशल नाम की कला है ।^{५१९}

लेप्य-कला

पद्मचरित में लेप्यकला के पर्याप्त विकास होने के भी प्रमाण मिलते हैं । एक बार प्राणों का संकट उपस्थित होने पर जब राजा दशरथ वेष बदलकर राज्य से अन्धत्र चले गये तब मन्त्री ने उनके शरीर का एक पुतला बनवाया । वह पुतला मूल शरीर से इतना मिलता-जुलता था कि केवल एक चेतना की अपेक्षा ही भिन्न प्रतीत होता था । उसके भीतर लाख आदि का रस भराकर

५१२. पद्य० २४।७६ ।

५१४. वही, २४।७६ ।

५१६. वही, २४।७७, ७८ ।

५१८. वही, २४।७९ ।

५१३. पद्य० २४।७६ ।

५१५. वही, २४।७४-७५ ।

५१७. वही, २४।८० ।

५१९. वही, २४।८२ ।

रुधिर की रचना की गई थी तथा मनुष्य के प्राणी के शरीर में जैसी कोमलता होती है वैसी ही कोमलता उस पुतले में रची गई थी । राजा वह पुतला पहले के समान ही समस्त परिकर के साथ महल के सातवें खण्ड में उत्तम आसन पर विराजमान किया गया था । वह मन्त्री तथा पुतला को बनाने वाला लेख्यकार ये दोनों ही राजा को कृत्रिम राजा समझते थे और बाकी सब लोग उसे यथार्थ रूप में राजा समझते थे । यही नहीं, उन दोनों को भी देखते हुए जब कभी भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती थी ।^{५२०}



५२०. गते राजन्यमात्येन लेख्यं दाशरथं वपुः ।

कारितं मुख्यवपुषो भिन्नं चेतनयैकया ॥ पद्म० २३।४१ ।

लाक्षादिरसयोगेन रुधिरं तत्र निर्मितम् ।

मार्दवं च कृतं तादृग्यादवसत्यासुधारिणा ॥ पद्म० २३।४२ ।

वरासननिविष्टं तं वैश्यनः सप्तमे तले ।

सुक्तं पुरैव सर्वेण परिवर्गेण बिम्बकम् ॥ पद्म० २३।४३ ।

स मन्त्री लेख्यकारवच कृत्रिमं जज्ञतुर्नृपम् ।

भ्रान्तिर्हि जायते तत्र पश्यतोऽभयोरपि ॥ पद्म० २३।४४ ।

राजनैतिक जीवन

मानव जीवन के आरम्भिक काल से लेकर अभी निकट भूतकाल तक संसार के सभी देशों में राजतन्त्रात्मक शासनव्यवस्था विद्यमान रही है। इस प्रकार की शासनव्यवस्था में साधारणतया तो राजपद वंशानुगत होता था, लेकिन कभी-कभी राजा का निर्वाचन भी किया जाता था। फ्रांसीसी विचारक बोस के अनुसार राजतन्त्र प्राचीनतम, सबसे अधिक प्रचलित, सर्वोत्तम तथा सबसे अधिक स्वाभाविक शासन का प्रकार है।^१ पश्चरित में हमें राजतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली के दर्शन होते हैं। इसका विस्तृत रूप से अध्ययन करने के लिए हमें पश्चरित के अनुसार राज्य की उत्पत्ति, राजा और उसका महत्त्व, राज्य के अंग, सेना और युद्ध, न्यायव्यवस्था, गुप्तचर-व्यवस्था और दूत-व्यवस्था आदि विभिन्न पहलुओं पर विचार करना होगा।

राज्य की उत्पत्ति—पश्चरित के अध्ययन से राज्य की उत्पत्ति के जिस सिद्धान्त को सर्वाधिक बल मिलता है, वह है सामाजिक समझौता सिद्धान्त। आधुनिक युग में इस सिद्धान्त को सबसे अधिक बल देने वाले, हब्स, रुसो और लॉक हैं। इनमें भी पश्चरित का राज्य की उत्पत्तिसम्बन्धी संकेत आधुनिक युग के रुसो और लॉक के सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य दैवीय न होकर एक मानवीय संस्था है जिसका निर्माण प्राकृतिक अवस्था में रहनेवाले व्यक्तियों द्वारा पारस्परिक समझौते के आधार पर किया गया है। इस सिद्धान्त के सभी प्रतिपादक अत्यन्त प्राचीनकाल में एक ऐसी प्राकृतिक अवस्था के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, जिसके अन्तर्गत जीवन को व्यवस्थित रखने के लिए राज्य या राज्य जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। सिद्धान्त के विभिन्न प्रतिपादकों में इस प्राकृतिक अवस्था के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ इसे पूर्व सामाजिक तो कुछ इसे पूर्व राजनैतिक अवस्था मानते हैं। इस प्राकृतिक अवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी इच्छानुसार प्राकृतिक नियमों को आधार मानकर अपना जीवन व्यतीत करते थे।^२ कुछ ने प्राकृतिक अवस्था को अत्यन्त कष्टप्रद और असहनीय माना है तो कुछ ने इस

१. पुस्तराज जैन : राजनीतिविज्ञान के सिद्धान्त, पृ० २६१।

२. वही, पृ० १००।

जात का प्रतिपादन किया है कि प्राकृतिक अवस्था में मानव जीवन सामान्यतया आनन्दपूर्ण था। पञ्चचरित में इसी दूसरी अवस्था को स्वीकार किया गया है।^३ प्राकृतिक अवस्था के स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद होते हुए भी यह सभी मानते हैं कि किसी न किसी कारण मनुष्य प्राकृतिक अवस्था को त्यागने को विवश हुए और उन्होंने समझीते द्वारा राजनैतिक समाज की स्थापना की।^४ पञ्चचरित के अनुसार इस अवस्था को त्यागने का कारण समयानुसार साधनों की कमी तथा प्रकृति में परिवर्तन होने से उत्पन्न हुआ भय^५ था। इन संकटों को दूर करने के लिए समय-समय पर विशेष व्यक्तियों का जन्म हुआ। इन व्यक्तियों को 'कुलकर' कहा गया।^६ राज्य की उत्पत्ति का मूल इन कुलकरों और इनके कार्यों को ही कहा जा सकता है।

राजा और उसका महत्त्व—राजतन्त्र में राजा ही सर्वोपरि होता है, इस कारण समस्त संसार की मर्यादायें राजा द्वारा ही सुरक्षित मानी गई हैं। राजा धर्मों की उत्पत्ति का कारण है।^७ राजा के बाहुबल की छाया का आश्रय लेकर प्रजा सुख से आत्मव्याप्त करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं।^८ जिस देश का आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उसकी रक्षा के कारण राजा तप का छठा भाग प्राप्त करता है।^९ पृथ्वीतल पर मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अधिकार है। वह राजाओं द्वारा सुरक्षित मनुष्यों को ही प्राप्त होता है।^{१०} राजा के होने पर जितने श्वाक आदि सत्पुरुष हैं वे भाग-पूर्वक पूजा करते हैं। वे अंकुर उत्पन्न होने की शक्ति से रहित पुराने धान्य

३. पद्य० ३।४९-६३।

४. पुष्कराज जैन : राजनीतिविज्ञान के सिद्धान्त, पृ० १०१।

५. पद्य० ३।७४।

६. पद्य० ३।८५।

७. वही, ३।८८।

८. भवता परिपाल्यन्ते मर्यादाः सर्वविष्टये।

धर्माणां प्रभवस्त्वं हि रत्नानामिव सागरः ॥ पद्य० ६६।१०।

९. नृपबाहुबलच्छायां समाश्रित्य सुखं प्रजाः।

ध्यायन्त्यात्मानमभ्यगास्तथैवाश्रमिणो ब्रूयाः ॥ पद्य० २७।२७।

१०. यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः।

षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥ पद्य० २७।२८।

११. धर्मार्थकाममोक्षानामधिकारा महीतले।

जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा कुतः ॥ पद्य० २७।२९।

आदि के द्वारा निधिपूर्वक यज्ञ करते हैं।^{१२} निर्ग्रन्थ मुनि क्षाम्ति आदि गुणों से युक्त होकर ध्यान में तत्पर रहते हैं तथा मोक्ष का साधनभूत उत्तम तप तपते हैं।^{१३} जिनमन्दिर आदि स्थलों में जिनन्द्र भगवान् को बड़ी-बड़ी पूजायें तथा अभिषेक होते हैं।^{१४} पृथ्वीतल पर जो कुछ भी सुन्दर, श्रेष्ठ और सुखदायक वस्तु है, राजा ही उसके योग्य है।^{१५} इस प्रकार राजा का महत्त्व दर्शाया गया है।

राजा के गुण—राजा को शूरवीर होना चाहिये। शूरवीरता के द्वारा वह समस्त लोगों की रक्षा करता है। इसके अतिरिक्त राजा को नीति से कार्य करना चाहिए।^{१६} जो राजा अहंकार से ग्रस्त नहीं होता,^{१७} शस्त्रविषयक व्यायाम से विमुक्त नहीं होता, आपत्ति के समय कभी व्यग्र नहीं होता, जो मनुष्य उसके समक्ष नम्रीभूत होते हैं उनका सम्मान करता है,^{१८} दोषरहित सत्तानों को ही रत्न समझता है,^{१९} जिसमें दान दिया जाता है ऐसी क्रियाओं को कार्यसिद्धि का श्रेष्ठ साधन समझता है,^{२०} समुद्र के समान गम्भीर होता है^{२१} तथा परमार्थ को जानता है,^{२२} ऐसा राजा श्रेष्ठ माना गया है। राजा को जिनशासन (धर्म) रहस्य को जानने वाला, शरणागत-वत्सल, परोपकार में तत्पर, दया से आर्द्रचित्त,^{२३} विद्वान्, विशुद्ध हृदय वाला, निन्द्य कार्यों से निवृत्तबुद्धि, पिता के समान रक्षक, प्राणिहित में तत्पर, दीन-हीन आदि का तथा विशेषकर मातृजाति का रक्षक,^{२४} शुद्ध कार्य करने वाला, शत्रुओं को नष्ट करने वाला,^{२५} शस्त्र और शास्त्र का अभ्यासी, शान्तिकार्य में पकावट से रहित, परस्त्री को अजगर सहित कूप के समान जानने वाला,^{२६} संसारपात के भय से धर्म में सदा आसक्त, सत्य-वादी और अच्छी तरह से इन्द्रियों को बश में करने वाला^{२७} होना चाहिये। जो राजा अतिशय बलिष्ठ तथा शूरवीरों की चेष्टा को धारण करने वाले होते हैं वे कभी भी भयभीत, ब्राह्मण, मुनि, निहत्ये, स्त्री, बालक, पशु और द्रुत पर प्रहार

१२. पद्य० २७।२०।

१४. वही, २७।२२।

१६. वही, २।५३।

१८. वही, २।५४।

२०. वही, २।५६।

२२. वही, ३७।४९।

२४. वही, ९८।२१।

२६. वही, ९८।२३।

१३. पद्य० २७।२१।

१५. वही, ७४।९२।

१७. वही, २।५३।

१९. वही, २।५५।

२१. वही, ३७।४९।

२३. वही, ९८।२०।

२५. वही, ९२।२२।

२७. वही, ९८।२४।

नहीं करते हैं।^{२८} बहुत बड़े कोष का स्वामी होकर जो राजा पृथ्वी की रक्षा करता है और परम्परा (०५५) के द्वारा अभिभूत होने पर भी विनाश को प्राप्त नहीं होता तथा हिंसा धर्म से रहित एवं यज्ञ आदि में दक्षिणा देने वाले लोगों की जो रक्षा करता है उस राजा को भोग पुनः प्राप्त होते हैं।^{२९} श्रेष्ठ राजा लोकतन्त्र को जानने वाला होता है।^{३०} राजा अस्थ, वाहन तथा कवच आदि देकर अन्य राजाओं का सम्मान करता है।^{३१} राजा सत्य बोलने वाला तथा जीवों का रक्षक होता है। जीवों की रक्षा करने के कारण राजा ऋषि कहलाने योग्य है, क्योंकि जो जीवों की रक्षा करने में तत्पर हैं वे ही ऋषि कहलाते हैं।^{३२}

दुराचारी राजा और उसके दुर्गुण—पद्मचरित में दुराचारी राजाओं का भी उल्लेख हुआ है। उदाहरण के लिए राजा सौदास जो कि नरमांस में अत्यधिक आसक्त होने के कारण प्रजा द्वारा नगर से निकाल दिया गया था।^{३३} राजा वज्रकर्ण को दुराचारी सिद्ध करने के लिए उसे अश्वत्थ क्रूर, इन्द्रियों का वशगामी, मूर्ख, सदाचार से विमुख, लोभ में आसक्त, सूक्ष्म तत्त्व के विचार से शून्य तथा भोगों से उत्पन्न महागर्व से दूषित कहा गया है।^{३४}

राज्य के अंग—कोटित्य अर्थशास्त्र में स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड (सेना) और मित्र में सात राज्य के अंग कहे गये हैं।^{३५} पहले राजा के जो गुण कहे गये हैं, उन्हें ही स्वामी के गुण कह सकते हैं।

अमात्य—अमात्य को पद्मचरित में सचिव^{३६} तथा मन्त्री^{३७} नाम से उल्लिखित किया गया है। यहाँ इन्हें मन्त्रकोविद^{३८} (मन्त्र करने में निपुण), महाबलवान्^{३९} (महाबलाः), नीति की यथार्थता को जानने वाले (तययाथात्म्य-

२८. पद्म० ६६।९०।

२९. वही, २७।२४, २५ यहाँ यज्ञ को संरक्षण देने पर विशेष बल देने का कारण यज्ञवाद का प्राबल्य दिखाई पड़ता है। इतना विशेष है कि हिंसक यज्ञों के स्थान पर अहिंसक यज्ञ को महत्त्व दिया जाने लगा था।

३०. पद्म० ७२।८८।

३१. पद्म० ५५।८९।

३२. वही, ११।५८।

३३. वही, २२।१३१-१४४।

३४. वही, ३३।८१-८२।

३५. कोटित्य अर्थशास्त्र, ८।१।

३६. पद्म० ११३।४।

३७. वही, ६२।२, ७३।२२, ८।१६, १५।२६, ८।४८७, ११।६५।

३८. वही, ८।१६।

३९. पद्म० ८।१७।

वेदिना),^{४०} सब कुछ जानने वाले (निखिलवेदिनः),^{४१} सद्भिप्राय से युक्त (वृत्तमानसः)^{४२} विद्वान्,^{४३} निर्भीक उपदेश देने वाले,^{४४} मित्र और पर की क्रियाओं को जानने वाले,^{४५} प्रेम से भरे,^{४६} (राजा के) परम अनुयायी^{४७} आदि विशेषणों से भूषित किया गया है। इन मन्त्रियों की संख्या अनेक होती थी। सामान्य मन्त्रियों के अतिरिक्त बहुत से मुख्यमन्त्री भी होते थे।^{४८} सभी मन्त्रियों को मिलाकर मन्त्रिमण्डल बनता था। मन्त्रिमण्डल को पद्मचरित में मन्त्रिवर्म^{४९} कहा गया है। किसी विशेष कारणवश आपत्ति के समय राजा विद्वस्त मन्त्री को राज्य सौंपकर कुछ समय के लिए राज्यकार्य से विरत हो जाते थे। प्राणों पर संकट आने पर एक समय दशरथ ने ऐसा ही किया था।^{५०}

मन्त्रिगण राजा के प्रत्येक कार्य में सलाह दिया करते थे। राजा 'मय' की पुत्री सन्तोदरी जब सारूप्यवती हो गई तब उसके योग्य वर की खोज के लिए राजा ने मन्त्रियों से सलाह ली।^{५१} मन्त्र करमे में निपुण मारीच आदि सभी प्रमुख मन्त्रियों ने बड़े हर्ष के साथ राजा को उचित सलाह दी।^{५२} राजा महेन्द्र की पुत्री अञ्जना जब विवाह के योग्य हुई उस समय महेन्द्र ने भी मन्त्रिजनों से योग्य वर बतलाने के लिए कहा^{५३} और विचार-विमर्श कर योग्य वर की तलाश की। यम नामक लोकपाल के द्वारा रावण को प्रसंसा किये जाने पर जब इन्द्र (इन्द्र नामक राजा) युद्ध के लिए उद्यत हुआ तब नीति को यथार्थता को जानने वाले मन्त्रियों ने उसे रोका।^{५४}

राजा जब विभिन्न प्रकार के वाद-विवादों का निर्णय करता था उस समय मन्त्रिगण भी वादस्थल में उपस्थित रहते थे।^{५५} मृगाश्रु आदि मन्त्रियों ने रावण को समझाया कि सीता को छोड़कर राम के साथ सन्धि करो।^{५६} नीति-

४०. पद्म० ८।४८७।

४२. वही, १५।३६।

४४. वही, ६६।३।

४६. वही,

४८. वही, ७३।२५।

५०. वही, २३।४०।

५२. वही, ८।१६।

५४. वही, ८।४८७।

५६. वही, ६६।८।

४१. पद्म० १५।२६।

४३. वही, १५।३१।

४५. वही,

४७. वही, १०३।६।

४९. वही, ८।४८७।

५१. वही, ८।१२।

५३. वही, १५।२६।

५५. वही, ११।६५।

युक्त बात कहने के कारण रावण उनकी बात टाल न सका और उसने सन्धि के लिए दूत भेजा, परन्तु दृष्टि के संकेत से रावण ने अपना दुरभिप्राय समझा दिया।^{१७} इसके बाद पुनः मन्दोदरी ने रावण को समझाने के लिए मन्त्रियों को प्रेरित किया तब मन्त्रियों ने स्पष्ट कह दिया कि दशानन का शासन यमराज के शासन के समान है। वे अश्वन्त मानी और अपने आप को ही प्रधान मानने वाले हैं।^{१८} मन्त्रियों के इस कथन से ही उनकी विजयता सूचित होती है।

मन्त्रिगण हृदय से राजा के प्रति प्रेम धारण करने वाले होते थे। जब हनुमान दीक्षा लेने का विचार व्यक्त करते हैं तो मन्त्री लोग शोक से व्याकुल हो जाते हैं और कहते हैं कि हे देव ! आप हम लोगों को अनाथ न करें।^{१९} राजा की अनुपस्थिति में या अन्य किसी आपात में मन्त्री लोग अन्तःपुर की यत्नपूर्वक रक्षा करते थे। जब साहयगति विद्याधर ने सुग्रीव का वेष धारण कर लोगों को वास्तविक सुग्रीव के विषय में भ्रम डाल दिया तब मन्त्रियों ने सलाह की कि निर्मल गोत्र पाकर ही बाँछाँद आभूषणों से विभूषित हुआ जाता है, इसलिए इस निर्मल अन्तःपुर की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।^{२०}

जनपद—आर्यों के वैदिक युग में किसी एक महान् पूर्वज से उत्पन्न हुई सन्तान और उसके वंशज विभिन्न परिवारों में रहते थे। इन्हीं परिवारों के समूह को 'जन' कहते थे। वैदिक युग के प्रारम्भ में ये जन एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते-फिरते थे। धीरे-धीरे ये जन स्थायी रूप से बस गये। अपने निवास के ग्रामों तथा पार्श्ववर्ती भूभाग पर इन्होंने अपनी सत्ता स्थापित कर ली। अब ये जनपद राज्य कहलाये।^{२१} पद्मचरित में छोटे-छोटे जनपदों के अस्तित्व का संकेत मिलता है। ये जनपद उस समय देश की सीमा के अन्तर्गत अनेक होते थे।^{२२} देश के अन्तर्गत पत्तन, ग्राम, संवाह, मटम्ब, पुटभेदन, घोष और द्रोणमुख आदि आते थे।^{२३} आदि शब्द से यहाँ देश की सीमा के अन्तर्गत खेत,^{२४} नगर,^{२५} कर्वट^{२६} को लिया जा सकता है। पद्मचरित में इनमें से अधिकांश का केवल नामोल्लेख किया गया है।

५७. पद्य० ६६।१३।

५८. पद्य० ७३।२५।

५९. वही, १०३।५।

६०. वही, ७४।६५।

६१. बी० एन० लूनिया : प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ० २४९।

६२. पद्य० ४१।५६।

६३. पद्य० ४१।५७।

६४. वही, ३२।२५।

६५. वही, ३२।२५।

६६. वही, ३१।१५।

नगर

भारतीय नगर एक ऐसा विशाल जनसमूह था जिसकी जीविका के प्रधान साधन उद्योग तथा व्यापार थे। पाणिनि ने ग्राम एवं नगर को विभिन्न जन-सन्निवेश माना है (प्राश्ना ग्रामनगराणां)।^{६७} मानसार में नगर वस्तुओं के क्रय-विक्रय करने वालों से परिपूर्ण (जैनः परिपूर्णं क्रयविक्रयादिभिः), विभिन्न जातियों का निवासस्थान (अनेकजातसंयुक्तम्) तथा कारीगरों का केन्द्र (कर्मकारैः समन्वितम्) कहा गया है।^{६८} पद्मचरित में नगरों की समृद्धि के बहुत से उल्लेख आये हैं। भरत के राज्य में नगर देवलोक के समान उत्कृष्ट सम्पदाओं से युक्त थे।^{६९} विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण धेनी की नगरियों का वर्णन करते हुए रवि-वेण कहते हैं—वहाँ की प्रत्येक नगरी एक से एक बढ़कर है, नाना देशों और ग्रामों से व्याप्त है, मटम्बों से संकीर्ण है तथा खेद और कर्बद के विस्तार से युक्त है।^{७०} वहाँ की भूमि भोगभूमि के समान है। वहाँ के घरने सदा मधु, दूध, घी आदि रसों को बहाते हैं।^{७१} वहाँ पर्वतों के समान अनाज की राशियाँ हैं, वहाँ की खस्तियों (अनाज रखने की खोड़ियों) का कभी क्षय नहीं होता। बापिकाओं और बगीचों से घिरे हुए वहाँ के महल बहुत भारी कान्ति को धारण करने वाले हैं।^{७२} वहाँ के मार्ग घूल और कण्टक से रहित सुख उपजाने वाले हैं। बड़े-बड़े वृक्षों के छाया से युक्त, सर्व प्रकार के रसोंसहित वहाँ प्याऊ है।^{७३}

नगर के चारों ओर विशाल कोट का निर्माण किया जाता था।^{७४} कोट के चारों ओर गहरी परिखा (खाई) खोदी जाती थी। इसकी गहराई की उपमा

६७. अष्टाध्यायी ७, २, १४।

६८. मानसार अध्याय ९ (गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४४८)।

६९. पद्य० ४१७९।

७०. देशग्राम सभाकीर्ण मटम्बाकारसंकुलम्।

सखेटकर्वटाटोपं तत्रैकैकं पुरोत्तमम् ॥ पद्य० ३१३१५।

७१. भोगभूमिसमं शश्वद् राजते यत्र भूतलम्।

मधुक्षीरघृतादीनि वहन्ते तत्र निर्भराः ॥ पद्य० ३१३१८।

७२. घान्यामां पर्वताकाराः पत्नीयाः क्षयवर्जिताः।

वाप्युद्यानपरिक्षिप्ताः प्रासादश्च महाप्रभाः ॥ पद्य० ३१३२४।

७३. रेणुकण्टकनिर्मुक्ता रथ्यामार्गाः सुखावहाः।

महातरुकुतच्छायाः प्रपाः सर्वसमान्विताः ॥ पद्य० ३१३२५।

७४. पद्य० ४३१६९।

पाताल की गहराई से दी गई है।^{७५}। नगर ऊँचे-ऊँचे गोपुरों से युक्त होता था।^{७६} बड़ी-बड़ी वापिकाओं, अट्टालिकाओं और तोरणों से नगर को अलंकृत किया जाता था।

नगरनिवासी गृह^{७७} (घर), आगार,^{७८} प्रासाद,^{७९} तथा सद्म^{८०} आदि स्थानों में रहते थे। आगार छोटे-छोटे महलों और प्रासाद तथा सद्म बड़े-बड़े तथा ऊँचे महलों को कहा जाता था। इन सबको छूने से पोता जाता था।^{८१} नगर में रंग-विरंगी वज्रायें लगाई जाती थीं।^{८२} केशर आदि मनोह्र वस्तुओं से मिश्रित जल से पृथ्वी को सींचा जाता था।^{८३} काले, पीले, नीले, लाल तथा हरे इस प्रकार पंचवर्णीय चूर्ण से निर्मित अनेक बेलबूटों से महलों को अलंकृत किया जाता था।^{८४} विभिन्न समारोहों के अवसर पर दरवाजों पर पूर्ण कलश रखे जाते थे, बन्दन मालायें बाँची जाती थीं तथा उत्तमोत्तम वस्त्र लटका कर शोभा की जाती थी।^{८५}

नगरनिवासी—नगर में प्रायः सभी प्रकार के लोग निवास करते थे। द्वितीय पर्व में राजगृह नगर में स्त्रियाँ, मुनिगण, वेश्यायें, लासक (नृत्य करने वाले), शत्रु, शस्त्रधारी, याचक, विद्यार्थी, बन्दिजन, धूर्त, संगीतशास्त्र के पार-गामी विद्वान् (गीतशास्त्रकलाकोविद), विज्ञान के ग्रहण करने में तत्पर मनुष्य (विज्ञानग्रहणोद्युक्त), साधु, वणिज (व्यापारी), शरणागत मनुष्य, वार्तिक (समाचारप्रेषक) विदग्ध जन (चतुर मनुष्य) विट, चारण, कामुक, सुखीजन तथा मातंग (चाण्डाल) रहते थे, ऐसा उल्लेख^{८६} आया है।

पत्तन^{८७}

प्राचीन ग्रन्थों में पत्तन शब्द समुद्री बन्दरगाह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मानसार के अनुसार उस नगर को पत्तन कहते हैं जो कि समुद्रतट पर स्थित होता है। (अन्धित्तरप्रदेशे) जिनमें विशेषतः बनिए रहते हैं (बणिग्जातिभिराकीर्णम्), जहाँ वस्तुयें खरीदी और बेची जाती हैं (क्रयविक्रयपूरितम्) तथा

७५. पद्य० ४३।१७०, २।४९।

७७. वही, ३।३१७।

७९. वही, २।३९।

८१. वही, २८।२०।

८३. वही, १२।३६६।

८५. वही, १२।३६७।

८७. वही, २।३९-४५।

७६. पद्य० ३।३१७, ४३।१७०।

७८. वही, २८।५।

८०. वही, ८।२६।

८२. वही, २।३७।

८४. वही, १२।३६६।

८६. वही, १२।३६८।

८८. वही, ४१।५७।

जो बाहरी देशों से (प्रोत्साहित) क्रय-विक्रय के विषये बाई गद्दे सामग्री से परिपूर्ण होता है ।^{८९}

ग्राम^{९०}

ग्राम को नगर का ही एक छोटा रूप कह सकते हैं । ये ग्राम ही व्यापारिकों के कारण जब बहुत अधिक विकसित हो जाते थे तो इन्हें नगर कहा जाता था । पद्मचरित में लम्बी-चौड़ी बापिकाओं तथा धान के हरे-भरे खेतों से घिरे ग्रामों का उल्लेख हुआ है ।^{९१} पद्मचरित के उत्तरवर्ती ग्रन्थ आदिपुराण में बतलाया गया है कि जिनमें बाड़ से घिरे गृह हों, किसानों और शूद्रों का निवास हो, बहुलता से बाटिका तथा तालाबों से युक्त हों वे ग्राम कहलाते हैं । जिस ग्राम में सौ घर हों अर्थात् सौ कुटुम्ब निवास करते हों वह छोटा ग्राम और जिसमें पाँच सौ घर हों वह बड़ा ग्राम कहलाता है ।^{९२} पद्मचरित में ग्रामों की समृद्धि का विश्लेषण हुआ है । भरत षष्ठवर्ती के राज्य में ग्राम विद्याधरों के नगरों के समान सुखों से सम्पन्न थे ।^{९३}

संवाह^{९४}

संवाह उस समृद्ध ग्राम को कहते हैं, जो नगर के तुल्य हों । बृहत्कथाकोष में इसे अद्रिरुद्रम् (पर्वत पर बसा हुआ ग्राम) कहा है ।^{९५}

मटम्ब^{९६}

मटम्ब को मडम्ब भी कहते हैं । आदिपुराण में उस बड़े नगर को मडम्ब कहा गया है जो पाँच सौ ग्रामों के मध्य व्यापार आदि का केन्द्र हो ।^{९७}

८९. मानसार अध्याय १० ।

९०. पद्य० ४१।५७ ।

९१. पद्य० ३३।५६ ।

९२. ग्रामा वृत्तिपरिक्षेपमात्राः स्युरुचिताश्रयाः ।

शूद्रकर्षकभूयिष्ठाः सारामाः सजलाशयाः ॥ आदिपुराण १६।१६४ ।

ग्रामाः कुलशतेनेष्टो निकृष्टः समधिष्ठितः ।

परस्तरपञ्चशतान्या स्यात् सुसमृद्धकृषीबलः ॥ आदिपुराण १६।१६५ ।

९३. पद्य० ४।७९ ।

९४. पद्य० ४१।५७ ।

९५. बृहत्कथाकोष ९४।१६ (नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ७९) ।

९६. पद्य० ४१।५७ ।

९७. आदिपुराण १६।१७२ ।

२१० : पञ्चरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

महम्ब वस्तुतः व्यापारप्रधान बड़े नगर को कहा गया है। इसमें एक बड़े नगर की सभी विशेषतायें वर्तमान रहती हैं।^{९८}

पुटभेदन^{९९}

बड़े-बड़े व्यापारिक केन्द्रों को पुटभेदन कहा जाता था। बड़े नगरों में थोक माल की गाठें आती थीं जो मुहरबन्द हुआ करती थीं। मुहर को तोड़कर गाँठ खोल दी जाती थीं और उसके उपरान्त उसमें भरा हुआ माल फुटकरियों के हाथ बेच दिया जाता था। मुहरों के इस प्रकार तोड़े जाने के कारण ही विशिष्ट व्यापारिक केन्द्र पुटभेदन कहलाने लगे।^{१००}

घोष^{१०१}

अहीरों (खालों) के छोटे से ग्राम को घोष कहते थे।

द्रोणमुख^{१०२}

मानसार में द्रोणमुख को द्रोणान्तर कहा गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार यह नगर समुद्र तट के पास नदी के मुहाने पर स्थित होता है (समुद्रतटिनीयुक्तम्) इसमें वणिक् तथा नाना जातियों के लोग रहते हैं (वणिग्भिः सह नानाभिर्जनैर्युक्तं जनास्पदम्) तथा वस्तुओं का क्रय-विक्रय अत्यधिक होता था।^{१०३} कौटिल्य अर्थशास्त्र में इसकी स्थिति चार सौ ग्रामों के मध्य कही गई है।^{१०४}

खेद^{१०५}

पाणिनि ने खेद को गहित नगर कहा है।^{१०६} इससे विदित होता है कि खेद बहुत साधारण प्रकार का सन्निवेश था तथा इसमें सम्य लोग नहीं रहते थे। मानसार के अनुसार इसमें बहुधा शूद्र ही रहते थे।^{१०७} आधुनिक खेड़ा

९८. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ७७।

९९. पद्म० ४१।५७।

१००. गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४११।

१०१. पद्म० ४१।५७।

१०२. वही, ४१।५७।

१०३. मानसार अध्याय १०।

१०४. 'चतुःशत ग्राम्या द्रोणमुखम्'

—कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, अधिकरण २, अध्याय १।

१०५. पद्म० ३२।२५।

१०६. 'खेद-खेद-कटुक-काण्डं गह्रियाम्' ६।२।१२६।

१०७. 'शूद्रालयसमन्वितं खेदमुक्तं पुरातनैः' ॥ मानसार अध्याय १०।

शब्द खेत से निकला है। आदिपुराण में नदी और पर्वत से घिरे हुए नगर को खेत कहा है।^{१०८}

खर्वट^{१०९}

इसे खर्वट भी कहते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार इसकी स्थिति दो सौ ग्रामों के बीच होती है। यहाँ इसे सार्वटिक कहा है।^{११०} आदिपुराण में इसे पर्वतीय प्रदेश से घेष्टित माना है।^{१११} मानसार के अनुसार खर्वट बहुधा पर्वत के सन्निकट स्थित होता है तथा इसमें सभी जाति के लोग रहते हैं।^{११२}

दुर्ग

परशक (शत्रु) के द्वारा आक्रान्त होने पर कभी-कभी राजा लोग दुर्ग का आश्रय लेते थे।^{११३} शत्रु पर आक्रमण करने के लिए भी दुर्ग का आश्रय लेना पड़ता था। राजा कुण्डलमण्डित दुर्गमगढ़ का अवलम्बन कर सदा राजा अनरक्ष्य की भूमि को उस तरह विराधित करता रहता था जैसे कुशील मनुष्य कुल की मर्यादा को विराधित करता है।^{११४}

कोश^{११५}

राज्य के सात अंगों में कोश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार यदि राज्यकोश स्वल्प हो चले अथवा अतकित भाव से सहसा अर्थ-संकट आ पड़े तो राजा अर्थसंचय का उपाय करके राज्यकोश बढ़ाए। यदि राज्य का कोई जनपद बड़ा हो, किन्तु उसके पास धन बहुत ही कम हो अथवा यदि उसकी खेती वर्षा के पानी पर निर्भर करती हो और उसमें प्रचुर अंश का उत्पादन होता हो तो राजा उस जनपद के निवासियों से तृतीयांश या चतुर्थांश भाग ले, किन्तु यदि कोई जनपद मध्यम तथा निम्न श्रेणी का हो तो वहाँ अन्नोत्पादन का परिमाण जाँचकर ग्राह्य अंश निर्धारित करे।^{११६}

१०८. सरिद्गिरिभ्यां संवद्धं खेतमाहुर्मनीषिणः । आदिपुराण १६।१७१ ।

१०९. पद्म० ३।११६ ।

११०. 'द्विशतग्राम्या सार्वटिकम्'—कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् २।१ ।

१११. 'केवलं गिरिसंवद्धं खर्वटं तत्प्रचक्षते ॥' आदिपुराण १६।१७१ ।

११२. 'परितः पर्वतैर्युक्तं नानाजातिगृह्वृतम् ।' मानसार अध्याय १० ।

११३. पद्म० ४३।२८ ।

११४. पद्म० २६।४० ।

११५. बहो, २३।४०, ३७।१० ।

११६. कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृद्ध्यः संगृहणीयात् । जनपदं महान्तमल्पप्रमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत । यथासारं मध्यमवरं वा ॥ —कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, पंचम अधिकरण, अध्याय २ ।

सेना

राजकार्य को चलाने के लिए दण्डव्यवस्था की आवश्यकता होती है। दण्ड-नीति अग्राण्य वस्तु को प्राप्त करा देती है, जो प्राप्त हो चुका है उसकी रक्षा करती है, यह रक्षित वस्तु को बढ़ाती है और बड़ी हुई वस्तु का उपयुक्त पात्र में उपयोग करती है। लोकयाना (सामयिक व्यवहार) इस दण्डनीति पर निर्भर है। अतएव जो राजा लोकयाना का निर्माण करने में तत्पर हो उसे चाहिए कि सदा दण्डनीति का उपयोग करने को उद्यत रहे।^{११७} दण्ड का भली-भाँति प्रयोग करने के लिए सेना की आवश्यकता होती है। पञ्चचरित में इसे बल कहा गया है। इस प्रकार के चतुरंग बल का यही उल्लेख हुआ है।^{११८} चतुरंग बल के अन्तर्गत निम्नलिखित सेनाएँ आती हैं—

१. हस्तिसेना ।
२. अश्वसेना ।
३. रथ सेना ।
४. पदातिसेना ।

गणना की दृष्टि से इसके आठ भेद^{११९} किये गये हैं—

१. पत्ति, २. सेना, ३. सेनामुख, ४. गुल्म, ५. वाहिनी, ६. पूतना, ७. समू तथा ८. अनीकिनी ।

पत्ति—जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच व्यादे और तीन घोड़े होते हैं यह पत्ति कहलाती है।^{१२०}

सेना—तीन पत्ति की एक सेना होती है।^{१२१}

सेनामुख—तीन सेनाओं का एक सेनामुख होता है।^{१२२}

गुल्म—तीन सेनामुखों का एक गुल्म होता है।^{१२३}

वाहिनी—तीन गुल्मों की एक वाहिनी होती है।^{१२४}

पूतना—तीन वाहिनियों की एक पूतना होती है।^{१२५}

११७. अलङ्काराभाषा लङ्घपरिरक्षिणी रक्षितविधिनी वृत्तस्य तीर्थेषु प्रति-
पादनी च । तस्यामायत्ता लोकयाना । तस्मात्लोकयानार्थो नित्यमुद्यतदण्डः
स्यात् ॥
कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, १।४ ।

११८. पद्य० २७।४७ ।

११९. पद्य० ५६।६ ।

१२०. वही, ५६।६ ।

१२१. वही, ५६।७ ।

१२२. वही, ५६।७ ।

१२३. वही, ५६।७ ।

१२४. वही, ५६।८ ।

१२५. वही, ५६।८ ।

चमू—तीन पृतनाओं की एक चमू होती है ।^{१२६}

अनीकिनी—तीन चमू की एक अनीकिनी होती है ।^{१२७}

अक्षौहिणी—अनीकिनी की गणना के अनुसार दस अनीकिनी की एक अक्षौहिणी होती है ।^{१२८} इस प्रकार अक्षौहिणी में रथ इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर, हाथी इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर, पदाति एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास, घोड़े पैंसठ हजार छह सौ चौदह होते हैं ।^{१२९}

इन सेनाओं के अतिरिक्त पद्मचरित में विद्याधर-सेना तथा पालकी-सेना (शिविका-सेना) के भी उल्लेख मिलते हैं ।

हस्तिसेना^{१३०}—कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार अपनी सेना के आगे चलना, नये मार्ग, निवासस्थान तथा घाटनिर्माण के कार्य में सहायता देना, बाहु की तरह आगे बढ़कर शत्रुसेना को खदेड़ना, नदी आदि के जल का पता लगाने, पार करने या उतारने, विषम स्थान (तृणों तथा झाड़ियों से ढँके स्थान और शत्रुसेना के जमबूट के संकटमय शिविर) में घुसना, शत्रुशिविर में आग लगाना और अपने शिविर में लगी आग बुझाना, केवल हस्तिसेना से ही विजय प्राप्त करना, छितराई हुई अपनी सेना का एकत्रीकरण, संघर्ष शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करना, अपने को विपत्ति से बचाना, शत्रुसेना का भर्दन, भीषण आकार दिखाकर शत्रु को भयभीत कर देना, सद्गारा का दर्शन कराकर ही शत्रु के हृदय में भय संचार करना, अपनी सेना का महत्त्व प्रदर्शन, शत्रुसेना को पकड़ना, अपनी सेना को शत्रु के हाथ से छुड़ाना, शत्रु के प्राकार, गोपुर, अट्टालक आदि का भंजन और शत्रु के कोश तथा बाहन का अपहरण ये सब काम हस्तिसेना से ही सम्पन्न होते हैं ।^{१३१}

अश्वसेना^{१३२}—पद्मचरित में घोड़ों की पीठ पर सवार, हाथों में तलवार, बरछी भाला लिये और कवच से आच्छादित वक्त्रस्थल वाले योद्धाओं का उल्लेख आता है ।^{१३३} घोड़ों की विशेषताओं में चपलता,^{१३४} चतुरता^{१३५} तथा वेग^{१३६} प्रमुख माने गई हैं ।

१२६. पद्म० ५६।८ ।

१२७. पद्म० ५६।८ ।

१२८. वही, ५६।९ ।

१२९. वही, ५६।१०-१२ ।

१३०. वही, ५७।६६ ।

१३१. कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् १०।४ ।

१३२. पद्म० ५७।६७ ।

१३३. पद्म० ७४।४२ ।

१३४. वही, ५०।२० ।

१३५. वही, ४५।९३ ।

१३६. वही, १०।१९५ ।

रथसेना—४२वें पर्व में स्वर्णमयी अनेक जेतूतों के सिंघात में सुन्दर, उत्तमोत्तम स्तम्भों, बेंदिका तथा गर्भगृह से युक्त, ऊँचे मोतियों की मालाओं से झरोखे वाले, छोटे-छोटे गोले, दर्पण, कमरूत (लम्बूत) तथा खण्डचन्द्र की सामग्री में अलंकृत, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गन्ध आदि से भरे, चार हाथी जिसमें जुते थे और जो विमान के समान था ऐसे रथ पर सीतासहित राम, लक्ष्मण के घूमने का उल्लेख मिलता है।^{१३७} रथ में गरुड़^{१३८}, अश्व^{१३९}, व्याघ्र^{१४०}, सिंह^{१४१}, हस्ति^{१४२} आदि वाहनों को जोता जाता था। बड़े-बड़े सामन्त^{१४३}, सेनापति^{१४४} तथा राजा^{१४५} लोग प्रामः युद्ध के लिए रथ का उपयोग करते थे। रथ पर बैठने के लिए तकिया के सहारे से युक्त आसन बनाया जाता था।^{१४६}

पदाति-सेना—पद्मचरित में पदाति सेना की वीरता का अनेक स्थलों पर उल्लेख आया है। उदाहरण के लिए बारहवें पर्व वाला युद्धवर्णन—बाणों से योद्धाओं का वक्षःस्थल तो क्षणिक हो गया, पर मन क्षणिक नहीं हुआ। इसी प्रकार योद्धाओं का सिर तो गिर गया, पर मान नहीं गिरा। उन्हें मृत्यु प्रिय थी, पर जीवन प्रिय नहीं था।^{१४७} कोई एक योद्धा मर तो रहा था, पर शत्रु को मारने की इच्छा से क्रोधयुक्त हो जब गिरने लगा तो शत्रु के शरीर पर आक्रमण कर गिरा।^{१४८}

विद्याधर-सेना—विद्यावल से भी युद्ध होता था। विद्यावल से युक्त लंका-सुन्दरी ने हनुमान के हिमालय के समान ऊँचे रथ पर वज्रदण्ड के समान बाण, परशु, कुन्त, चक्र, शतल्ली, भुसल तथा शिलायें उस प्रकार बरसाईं, जिस प्रकार कि उत्पात के समय उच्च मेघावली नाना प्रकार के जल बरसाती है।^{१४९} रावण जब बहुकपिणी विद्या में प्रवेश कर युद्ध करता था तब उसका सिर लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से बार-बार कट जाता था, फिर भी बार-बार देदीप्यमान

१३७. पद्य० ४२।२०५।

१३८. पद्य० ७४।३३।

१३९. वही, १०२।१९५।

१४०. वही, ५७।५२।

१४१. वही, ५७।४८।

१४२. वही, ७४।६।

१४३. वही, ५७।८।

१४४. वही, ९७।५४-५५।

१४५. वही, ४५।९३।

१४६. वही, ९७।८१।

१४७. अभिघात शरैर्वक्षो भटानां न तु मानसम्।

शिरः पपात नो मानः कान्तो मृत्युर्न जीवितम् ॥ पद्य० १२।२७६।

१४८. पद्य० १२।२७८।

१४९. पद्य० ५२।४०-४१।

कुण्डलों से सुशोभित हो उठता था। एक सिर कटता था तो दो सिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो चार हो जाते थे।^{१५०} लोग चीता^{१५१}, गधा^{१५२}, हंस^{१५३}, भेड़िया^{१५४}, शार्दूल^{१५५}, हाथी, सिंह, सूकर, कुष्णमृग, सामान्यमृग, सामर, नाना प्रकार के पक्षी, बिल, ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि जल थल में उत्पन्न हुए नाना प्रकार के वाहनों पर सवार होकर निकलते थे।^{१५६} इनमें से अधिकांश को विद्यानिर्मित होना चाहिए। विद्या के बिना पक्षी आदि की सवारी करना सम्भव नहीं मालूम पड़ता। एक स्थान पर रावण द्वारा ऐन्द्र नामक विद्यारथ से युद्ध करने का वर्णन मिलता है।^{१५७}

शिविका-सेना—पद्मचरित के एक उल्लेख से सिद्ध होता है कि शिविका (पालकी) सेना भी तैयार की जाती थी। शिविकाओं से निकलकर योद्धा युद्ध करते थे।^{१५८}

अस्त्र-शस्त्र—युद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। पद्मचरित में निम्नलिखित अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख मिलता है—

कुणी^{१५९}—तरकस।

चक्र^{१६०}—एक शस्त्र जिसका आकार यमराज के मुख के समान होता था और जिसकी धार तीक्ष्ण होती थी।

शिला^{१६१}—बड़े-बड़े पत्थर।

सायक^{१६२}—बाण।

सप्ति^{१६३}—तलवार।

कङ्कोट^{१६४}—धनुष।

सायकपुत्रिका^{१६५}—छुरी।

तामसास्त्र^{१६६}—ऐसा अस्त्र जिसका प्रयोग करने पर चारों ओर अन्धकार छा जाय।

१५०. पद्म० ७५।२२-२५।

१५२. वही, ७।४०।

१५४. वही, ७।४०।

१५६. वही, ५७।६६-६७।

१५८. वही, १०२।१५२।

१६०. वही, ५२।४०, ३०।

१६२. वही, ७४।३४, ८।१९६।

१६४. वही, १२।१८२।

१६६. वही, ८।१३५।

१५१. पद्म० ७।३९।

१५३. वही, ७।४०।

१५५. वही, ७।३९।

१५७. वही, ७४।५-६।

१५९. वही, ७४।३४।

१६१. वही, ५२।४०।

१६३. वही, १२।१८२।

१६५. वही, १२।१८३।

नागपाश^{११७}—किसी को बाँधने वाला विद्यानिर्मित अस्त्र ।

खड्ग^{११८}—तलवार ।

लोहमुद्गर^{११९}—लोहे का मुद्गर ।

ककच^{१२०}—अश्वन्त तीक्ष्ण धार वाली करोत ।

सूर्यावर्त^{१२१}—सूर्यावर्त नामका एक धनुष ।

लांगलरत्न^{१२२}—हल ।

सिद्धार्थ महास्त्र^{१२३}—विघ्नकारी अस्त्र को नष्ट करने वाला महास्त्र ।

उरगास्त्र^{१२४}—विषरूपी अग्नि के कर्णों से दुःसह अस्त्र ।

विघ्नविनायक^{१२५} अस्त्र—जिसका दूर करना अशक्य होता था ऐसा अस्त्र ।

बहुरूपा^{१२६}—एक विशेष प्रकार की विद्या, जिसके द्वारा अनेक रूप बनाये जा सकते थे ।

माहेन्द्रास्त्र^{१२७}—आकाश को व्याप्त करने वाला एक अस्त्र जो समीरास्त्र से नष्ट होता था ।

वारुणास्त्र^{१२८}—आग्नेय अस्त्र का निराकरण करने वाला अस्त्र । इससे दिशायें प्रकाशरहित हो जाती थीं ।^{१२९}

दन्द्शूक अस्त्र^{१३०}—विद्यानिर्मित ऐसा अस्त्र जिसमें फलों का समूह उठता था । इसे पन्नगास्त्र भी कहते थे ।^{१३१}

ताक्षर्य अस्त्र^{१३२}—गरुड़ बाण ।

वज्रावर्त^{१३३}—एक प्रकार का धनुष ।

लांगूल^{१३४}—विद्यानिर्मित एक प्रकार की पाश जिससे किसी को पकड़कर खींचा जा सके ।

१६७. पद्य० ८।१३५ ।

१६९. वही, ७२।७४ ।

१७१. वही, १०३।१२ ।

१७३. वही, ७५।१९ ।

१७५. वही, ७४।१११ ।

१७७. वही, ७४।१०० ।

१७९. वही, ६०।९३ ।

१८१. वही, ७४।१०९ ।

१८३. वही, ७५।५५ ।

१६८. पद्य० ७२।७३ ।

१७०. वही, ७२।७५ ।

१७२. वही, १०३।१३ ।

१७४. वही, ७४।११० ।

१७६. वही, ६७।६ ।

१७८. वही, ७४।१०३ ।

१८०. वही, ७४।१०८ ।

१८२. वही, ७४।१०९ ।

१८४. वही, ७५।५७, १९।५४ ।

शिलीमुख^{१८५}—बाण ।

समुद्रावर्त^{१८६}—एक धनुष रत्न ।

ज्वलनवक्त्र शर^{१८७}—अग्निमुखबाण ।

नाराच^{१८८}—बाण ।

पवनास्त्र^{१८९}—वारुण अस्त्र का निराकरण करने वाला अस्त्र ।

नागसायक^{१९०}—नागबाण । विषरूपी धूम का समूह छोड़ने वाले बाण ।

सैह्यानम्^{१९१}—सिंहवाहिनी विद्या ।

गारुडम्^{१९२}—गरुडवाहिनी विद्या ।

मरुत् अस्त्र^{१९३}—वायव्यास्त्र ।

मण्डलाग्र^{१९४}—तलवार ।

स्तम्भिनी विद्या^{१९५}—आकाश प्रदेश में विद्यावरों को रोक देने की विद्या ।

वेणुसायक^{१९६}—बाँस के बने बाण ।

इसके अतिरिक्त धनुष^{१९७}, परणु^{१९८}, कुन्त^{१९९}, शतघ्नी^{२००}, मुसल^{२०१}, शक्ति^{२०२}, वज्रदण्ड^{२०३}, प्रास^{२०४}, शूल^{२०५}, बाण^{२०६}, कृपाण^{२०७}, कनक^{२०८}, सोमर^{२०९}, चाप^{२१०}, गदा^{२११}, समीरास्त्र^{२१२}, आग्नेयास्त्र^{२१३}, धर्म अस्त्र^{२१४},

१८५. पृष्ठ ८३।१४, ५८।३४ ।

१८७. वही, ८९।३५ ।

१८९. वही, ६०।९० ।

१९१. वही, ६०।१३५ । ६६।४ ।

१९३. वही, ६०।१३८ ।

१९५. वही, ५२।६९ ।

१९७. वही, ७४।३४ ।

१९९. वही, ५२।४० ।

२०१. वही, ५२।४० ।

२०३. वही, ५२।४० ।

२०५. वही, ८९।९६ ।

२०७. वही, २७।८० ।

२०९. वही, २७।८२ ।

२११. वही, ७३।१६१ ।

२१३. वही, ७४।१०२ ।

१८६. पृष्ठ ८९।३५ ।

१८८. वही, १०५।१२३ ।

१९०. वही, ६०।१०२ ।

१९२. वही, ६०।१३५ ।

१९४. वही, ६३।३४ ।

१९६. वही, १२।२५८ ।

१९८. वही, ५२।४० ।

२००. वही, ५२।४० ।

२०२. वही, ५२।३९ ।

२०४. वही, १०६।१९ ।

२०६. वही, २७।७ ।

२०८. वही, २७।८२ ।

२१०. वही, २७।८३ ।

२१२. वही, ७४।१०१ ।

२१४. वही, ७४।१०४ ।

इन्धन अस्त्र^{२१५}, तामस बाण^{२१६}, सहस्रकिरण अस्त्र^{२१७}, हल^{२१८}, उल्का^{२१९}, मुद्गर^{२२०}, परिघ^{२२१}, कुठार^{२२२}, सुदर्शन चक्र^{२२३}, क्षुरिका^{२२४}, गद्गद^{२२५}, शर^{२२६}, संवर्तक^{२२७}, भिण्डिमाल^{२२८}, वज्र^{२२९}, पाश^{२३०}, मण्डित^{२३१}, घन^{२३२}, परिघ^{२३३}, बाण्डित^{२३४}, भुशुण्डी^{२३५}, त्रिशूल^{२३६}, शरासन^{२३७}, करवाली^{२३८}, अंलिप^{२३९}, श्राव^{२४०}, दण्ड^{२४१}, कोण^{२४२} इत्यादि शस्त्रों के नाम भी दिये गये हैं। शाल, वटवृक्ष तथा पहाड़ों के शिखर से भी युद्ध करने के संकेत मिलते हैं।^{२४३} ऐसा करना दिव्यमाया द्वारा सम्भव होता था और विद्या के प्रभाव से उसका निवारण होता था।^{२४४}

मित्र

राज्य के सात अंगों में मित्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजाओं की विजय और पराक्रम बहुत कुछ उसके मित्र राजाओं पर अवलम्बित रहती है। वरुण को पराजित करने के लिए रावण ने विजयार्द्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों में निवास करने वाले विद्याधरों को सहायता के लिए बुलाया।^{२४५} मित्र और शत्रु राजाओं की पहचान बड़ी मन्त्रणा और कसौटी के बाद तय की जाती थी। विभीषण जब राम की शरण में आया तब राम ने निकटस्थ मंत्रियों से सलाह की।^{२४६}

२१५. पद्य० ७४।१०५।

२१७. वही, ७४।१०८।

२१९. वही, ७५।५७।

२२१. वही, ७५।५८।

२२३. वही, ७६।७।

२२५. वही, ८३।१४।

२२७. वही, ५२।४५।

२२९. वही, ६०।९०।

२३१. वही, ६२।७।

२३३. वही, ६२।७।

२३५. वही, ५०।१३२।

२३७. वही, १२।१८८।

२३९. वही,

२४१. वही, १२।२५८।

२४३. वही, ५०।३२।

२४५. वही, १९।१।

२१६. पद्य० ७४।१०६।

२१८. वही, ७५।५५।

२२०. वही, ७५।५७।

२२२. वही, ७५।५८।

२२४. वही, ७७।१।

२२६. वही, १०३।१७।

२२८. वही, ५८।३४।

२३०. वही, ६२।७।

२३२. वही, ६२।७।

२३४. वही, ६२।४५।

२३६. वही, ८।२६२।

२३८. वही, १२।२५७।

२४०. वही, १२।२५८।

२४२. वही,

२४४. वही, ५०।३४।

२४६. वही, ५५।५१।

मतिकाम्त नामक मंत्री ने कहा कि संभवतः रावण ने छल से इसे भेजा है, क्योंकि राजाओं की घेष्टा बड़ी विचित्र होती है।^{२४७} परस्पर के विरोध से कलुषता को प्राप्त हुआ कुल जल की तरह फिर से स्वच्छता को प्राप्त हो जाता है।^{२४८} इसके बाद मतिसागर नामक मन्त्री ने कहा कि लोगों के मुँह से सुना है कि इन दोनों भाइयों में विरोध हो गया है। सुना जाता है कि विभीषण धर्म का पक्ष ग्रहण करने वाला है, महानोतिमान् है, शास्त्ररूपी जल से उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरन्तर उपकार करने में तत्पर रहता है। इसमें भाईपना कारण नहीं है, किन्तु कर्म के प्रभाव से ही संसार में यह विचित्रता है, इसलिए दूत भेजने वाले बुद्धिमान् विभीषण को बुलाया जाय। इसके विषय में योनि सम्बन्धी दृष्टान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनि से उत्पन्न होने के कारण जिस प्रकार राज्या दुष्ट है, उसी प्रकार विभीषण भी दुष्ट होना चाहिए, यह बात नहीं है।^{२४९} मतिसागर मन्त्री का कहना मानकर राम ने विभीषण को, जबकि वह निष्कलता को शपथ खा चुका था तब यथेष्ट आश्वासन देकर अपनी ओर मिलाया।^{२५०} एक स्थान पर कहा गया है कि दुष्ट मित्रों के लिए मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूरवीरता, दुष्ट स्वभाव और मन की दाह नहीं बतलाना चाहिये।^{२५१}

राजा का निर्वाचन—राजा के निर्वाचन का आधार प्रमुख रूप से पितृ पितामह या वंशानुक्रम था। फिर भी राजा को न्याय व धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करना होता था। राजा जब धर्म से श्रुत हो जाता था तो जनता उसे राजसिंहासन से हटाकर बाहर निकाल देती थी। नरमांसभक्षी राजा सोदास को जनता ने सिंहासन से उतारकर नगर से बाहर निकाल दिया था।^{२५२}

राज्याभिषेक—राजसिंहासन पर अविष्ठित होने से पहले राजाओं का राज्याभिषेक होता था। इस अवसर पर अनेक राजा उपस्थित रहते थे।^{२५३} अभिषेक के समय शंख, घुन्टुमि, ढलका, झालर, तूर्य तथा बांसुरी आदि बाजे बजाये जाते थे।^{२५४} उत्पन्नात् होने वाले राजा को अभिषेक के आसन पर आरुढ़ कर चाँदी, स्वर्ण तथा नाना प्रकार के कलशों से अभिषेक किया जाता

२४७. पद्य० ५५।५२।

२४८. पद्य० ५५।५३।

२४९. वही, ५५।५४-७०।

२५०. वही, ५५।७३।

२५१. मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम्।

दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न देदयेत्॥ पद्य० ४७।१५।

२५२. पद्य० २२।१४४।

२५३. पद्य० ८८।२०, २५।

२५४. वही, ८८।२६-२७।

था ।^{२५५} इसके बाद राजा को मुकुट, अंगद, केयूर, हार, कुण्डल आदि से विभूषित कर दिव्य मालाओं, वस्त्रों तथा उत्तमोत्तम विलेपनों से राजा को चर्चित किया जाता था ।^{२५६} राजा के जयजयकार की ध्वनि लगाई जाती थी ।^{२५७} राजा के अभिषेक के बाद उसकी पटरानी का भी अभिषेक होता था ।^{२५८}

प्रजापालन—प्रजापालन करते समय राजा सदाचार की ओर विशेष ध्यान देता था, क्योंकि राजा जैसा करता था, प्रजा भी उसीका अनुसरण करने लगती थी ।^{२५९} जिस समय प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा राजा को ज्ञात हुआ कि चारों ओर यह चर्चा है कि राजा दधरथ के पुत्र राम रावण द्वारा हरण की गई सीता को पुनः वापिस ले आये है,^{२६०} उस समय उन्हें महान् दुःख हुआ और कदाचित् प्रजा बुरे मार्ग पर न खलने लगे यह सोचकर उन्होंने सीता का परित्याग कर दिया । कुल की प्रतिष्ठा पर राजा लोग अत्यधिक ध्यान देते थे । सीता का परित्याग करते समय राम लक्ष्मण से कहते हैं कि हे भाई ! चन्द्रमा के समान निर्मल कुल मुझे पाकर अकीर्तिरूपी मेघ की रेखा से आवृत न हो जाय, इसीलिए मैं यत्न कर रहा हूँ ।^{२६१} मेरा यह महायोग्य, प्रकाशमान, अत्यन्त निर्मल एवं उज्ज्वल कुल जब तक कलंकित नहीं होता तब तक शीघ्र ही इसका उपाय करो । जनता के सुख के लिए जो अपने आपको अपित कर सकता है, ऐसा मैं निर्दोष एवं शील में सुशोभित सीता को छोड़ सकता हूँ, परन्तु कीर्ति को नष्ट नहीं होने दूँगा ।^{२६२} पिता के समान न्यायवत्सल हो प्रजा की अच्छी तरह रक्षा करना,^{२६३} विचारपूर्वक कार्य करना,^{२६४} द्रुष्ट मनुष्य को कुछ देकर वश में

२५५. पद्य० ८८।३० ।

२५६. पद्य० ८८।३१ ।

२५७. वही, ८८।३२ ।

२५८. वही, ८८।३३ ।

२५९. वही, ९६।५० ।

किं च यादृशमूर्खीशः कर्मयोगं निषेवते ।

स एव सहतेऽस्माकमपि नाथानुवर्तिनाम् ॥ पद्य० ९६।५० ।

२६०. पद्य० ९६।४८ ।

२६१. शशाङ्कविमलं गोश्रमकीर्तिघनलेखया ।

मा हृषेतप्राप्य मां भ्रातरित्यहं यत्नतत्परः ॥ पद्य० ९७।२१ ।

२६२. कुलं महार्हमेतन्मे प्रकाशममलोज्ज्वलम् ।

यावत्कलङ्कयते नाऽरं तावदोपायिकं कुरु ॥ पद्य० ९७।२३ ।

अपि त्यजामि वैदेहीं निर्दोषां शीलशालिनीम् ।

प्रसादयामि कीं कीर्तिं लोकसौख्यहृतात्मकः ॥ पद्य० ९७।२४ ।

२६३. पद्य० ९७।११८

२६४. पद्य० ९७।१२६ ।

करना, आत्मीय जनों को प्रेम दिखाकर अनुकूल रखना, शत्रु को उत्तम शील अर्थात् निर्दोष आचरण से वश में करना, मित्र को सद्भावपूर्वक की गई सेवाओं से अनुकूल रखना,^{२६५} क्षमा से क्रोध को, मार्दव से मान को, आर्जव से माया को और धैर्य से लोभ को वश करना,^{२६६} राजा का धर्म माना जाता था।

गुप्तचर तथा दूतव्यवस्था—प्रसिद्ध उक्ति है कि 'चारैः पश्यन्ति राजानः' राजा लोग चारों (गुप्तचरों) द्वारा देखते हैं। इस उक्ति से गुप्तचरों की महत्ता स्पष्ट होती है। पद्मचरित में भी इन्हें चार^{२६७} कहा गया है। राजा माली के विषय में कथन है कि उसे वेद्या, वाहन, विमान, कन्या, वस्त्र तथा आभूषण आदि जो श्रेष्ठ वस्तु गुप्तचरों से मालूम होती थी, उस सबको धीरवीर माली बलात् अपने यहाँ बुलवा लेता था, क्योंकि वह विद्या, बल, विभूति आदि से अपने आपको श्रेष्ठ मानता था।^{२६८} राजा मय ने गुप्तचरों द्वारा दशानन के महल का पता लगाया था।^{२६९} गुप्तचर के साथ-साथ दूतव्यवस्था भी उस समय पुरी-पुरी विकसित हो गई थी। माघ ने शिशुपालवध में चार को आँख और दूत को राजा का मुख बतलाया है।^{२७०} दूत को शास्त्रज्ञान में निपुण राज-कर्तव्य में कुशल, लोकव्यवहार का ज्ञाता, गुणों में स्नेह करने वाला,^{२७१} संकेत के अनुसार अभिप्राय को जानने वाला^{२७२} तथा स्वामी के कार्य में अनुरक्त बुद्धि होना चाहिए।^{२७३} महाभारत में निरभिमानता, अक्षीबता, निरालस्य, माधुर्य, दूसरे के बहुकावे में न आना, स्वस्थता और बातचीत करने का सुन्दर ढंग ये आठ दूत के गुण कहे गये हैं।^{२७४}

दूत का का कार्य बड़ा साहसपूर्ण था। स्वामी के अभिप्राय के अनुसार उसे शत्रुपक्ष के सामने निवेदन करना पड़ता था। इतना होते हुए भी दूत अवध्य था।^{२७५} रावण के घृष्ट अभिप्राय को व्यक्त करने वाले दूत पर ज्यों ही मायण्डल ने तलवार उठाई त्यों ही नीतिवान् लक्ष्मण ने उसे रोक लिया।^{२७६} यहाँ पर लक्ष्मण कहते हैं कि प्रतिष्थनियों पर, लकड़ी आदि के बने पुरुषाकार पुतलों

२६५. पद्म० ९७।१२८।

२६६. पद्म० ९७।१२९।

२६७. वही, ८।२२।

२६८. वही, ७।३५, ३६।

२६९. वही, ८।२२।

२७०. 'चारैः शणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पायिवः।' शिशुपालवध, २।८२।

२७१. पद्म० ३९।८५।

२७२. पद्म० ६६।१३।

२७३. वही, ३९।८७।

२७४. महाभारत ५।३७।२७।

२७५. पद्म० ६६।९०।

२७६. पद्म० ६६।४।

पर, सुआ आदि तिर्यञ्चों पर और यन्त्र से चलने वाली गुरुषाकार पुतलियों पर सस्पृश्यों का क्या क्रोध करना है ?^{२७७} ऐसे ही एक स्थल पर दूत के प्रति कहा गया है—‘जिसने अपना शरीर बेच दिया है और तोत के समान कहीं बात को दुहराता है, ऐसे इस पापी दीन-हीन भृत्य का अपराध क्या है ?’^{२७८} दूत जो बोलते हैं, पिशाच की तरह अपने हृदय में विश्रमान अपने स्वामी से ही प्रेरणा पाकर बोलते हैं । दूत यन्त्रमयी पुरुष के समान पराधीन है ।^{२७९} शत्रुपक्ष में इस तरह अपमान का सामना करते हुए भी सन्धि-विग्रहादि की भूमिका निर्धारित कराने में दूत का अपना एक विशेष स्थान था, जिसके कारण स्वपक्ष में उसे पर्याप्त सम्मान प्राप्त था ।

सामन्त—दीर्घ कार्य तथा विभिन्न युद्धों के प्रसंग में सामन्तों का उल्लेख पद्मचरित में आया है । एक बार जब रावण के मन्त्रियों ने रावण से राम के साथ सन्धि करने का आग्रह किया, तब रावण ने बचन दिया कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही करूँगा ।^{२८०} इसके बाद मन्त्र के जानने वाले मन्त्रियों ने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त शोभायमान एवं नीतिनिपुण सामन्त को सन्देश देकर शीघ्र ही दूत के रूप में भेजने का निश्चय किया ।^{२८१} उस सामन्त दूत का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह बुद्धि में शुक्राचार्य के समान था, महाभोजस्वी था, प्रतापी था, राजा लोग उसकी बात मानते थे तथा वह कर्णप्रिय भाषण करने में निपुण था । वह सामन्त सन्तुष्ट हो स्वामी की प्रणाम कर जाने के लिए उद्यत हुआ । अपनी बुद्धि के बल से वह समस्त लोक को गोष्पद के समान तुच्छ देखता था ।^{२८२} जब वह जाने लगा तब अनेक शस्त्रों से युक्त एक भयंकर सेना जो उसकी बुद्धि से ही मानो निर्मित थी, निर्भय हो गई ।^{२८३} दूत की तुरही का शब्द सुनकर दानव-पक्ष के सैनिक झुमित हो गए और रावण के आने की शंका करते हुए भयभीत हो आकाश की ओर देखने लगे ।^{२८४} राजा अतिवीर्य ने जिस

२७७. पद्म० ६६।५४ ।

२७८. पद्म० ८।१८७ ।

२७९. वही, ८।८८ ।

२८०. वही, ६६।११ ।

२८१. वही, ६६।१२ ।

२८२. अथ शुक्रसमो बुद्ध्या महोदस्कः प्रतापवान् ।

कृतवाक्यो नृपिभूयः श्रुतिपेशलभाषणः ॥ पद्म० ६६।१५ ।

प्रणम्य स्वाभिने तुष्टः सामन्तो गन्तुमुद्यतः ।

बुद्धयवष्टम्भतः पश्यन् लोकं गोष्पदसम्मितम् ॥ पद्म० ६६।१६ ।

२८३. पद्म० ६६।१७ ।

२८४. पद्म० ६६।१८ ।

समय भरत पर आक्रमण करने के लिए पृथ्वीधर राजा के पास सन्देश भेजा। अपनी तैयारी का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि इस पृथ्वी पर मेरे जो सामन्त हैं वे कोष और सेना के साथ मेरे पास हैं।^{२८५} इन सब उल्लेखों से सामन्त की महत्ता स्पष्ट होती है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में सामन्त शब्द पड़ोसी राज्य के राजा के लिए आया है।^{२८६} युक्रनीति के अनुसार जिसकी वार्षिक आय (भूमि से) एक लाख चाँदी के कार्षापण होती थी, वह सामन्त कहलाता था।^{२८७} वासुदेवधरण अग्रवाल ने सामन्त-संस्था का विकास ऐसे भव्यस्थ पवित्रास्थियों से बतलाने का प्रयास किया है जिन्हें छोटे-मोटे रजवाड़ों के समस्त अधिकार सौंपकर शाहानुशाह या महाराजाधिराज या बड़े सम्राट् शासन का प्रबन्ध चलाते थे।^{२८८} युद्ध के प्रसंग में रथ, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सांभर, नाना प्रकार के पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, भैंस आदि वाहनों^{२८९} पर सवार, सिंह,^{२९०} व्याघ्र,^{२९१} हाथियों,^{२९२} आदि से जुते रथों पर सवार तथा घोड़ों के वेग की तरह तीव्र गति वाले^{२९३} सामन्तों का उल्लेख पद्मचरित में हुआ है।

लेखवाह^{२९४} (पत्रवाहक)—एक स्थान से दूसरे स्थान पर सन्देश भेजने के लिए राजा लोग लेखवाह (पत्रवाहक) रखा करते थे। इन्हें उस समय की भाषा में लेखहारि^{२९५} भी कहा जाता था। ये लोग मस्तक पर लेख को धारण करते थे। इस कारण इन्हें मस्तक-लेखक भी कहा गया है।^{२९६}

लेखक—पत्र को लिखने, पढ़ने आदि के लिए लेखक भी नियुक्त किये जाते थे। राजा पृथ्वीधर के यहाँ सन्धि-विग्रह को अच्छी तरह जानने वाला^{२९७} (साधुसन्धिनिग्रहवेदने) एवं सब लिपियों को जानने में निपुण लेखक था।^{२९८}

युद्ध और उसके कारण—पद्मचरित में अनेक युद्धों का वर्णन है। इन युद्धों के मूल कारण चार थे—(१) श्रेष्ठता का प्रदर्शन, (२) कन्या, (३) साम्राज्य विस्तार, (४) स्वाभिमान की रक्षा।

२८५. पद्म० ३७।१०।

२८६. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१७।

२८७. वही, पृ० २१९।

२८८. वही, पृ० २१७।

२८९. पद्म० ५७।६६।

२९०. पद्म० ५७।४४।

२९१. वही, ५७।५२।

२९२. वही, ५७।५८।

२९३. वही, १०२।१९५।

२९४. वही, ३७।२।

२९५. वही, १९।१।

२९६. वही, १९।४।

२९७. वही, ३७।३।

२९८. वही, ३७।४।

प्राचीनकाल में वीरभोग्या वसुधरा का सिद्धान्त प्रचलित था। जो लोग शासन की व्यवहारा करते थे या आज्ञा नहीं मानते थे ऐसे राजाओं के विरुद्ध दूसरे राजा जो अपने को श्रेष्ठ मानते थे, युद्ध छेड़ दिया करते थे। राजा माली वेश्या, वाहन, विमान, कन्या, वस्त्र और आभूषण आदि जो श्रेष्ठ वस्तु गुप्तधरो से मालूम करता था उसे शीघ्र ही बलात् अपने यहाँ बुलवा लेता था। वह बल विद्या, विभूति आदि में अपने आपको श्रेष्ठ मानता था।^{२९९} इन्द्र का आश्रय पाकर जब विद्याधर राजा माली की आज्ञा भंग करने लगे तब वह भाई तथा किष्किन्ध के पुत्रों के साथ युद्ध करने के लिए विजयाश्रमगिरि की ओर चला।^{३००}

प्राचीन काल के अनेक युद्धों का कारण कन्या रही है। पद्मचरित में वर्णित राम-रावण का युद्ध इसका बड़ा उदाहरण है। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक उदाहरण यहाँ मिलते हैं। राजा शक्रधनु की कन्या जयचन्द्रा का विवाह जब हरिषेण के साथ हुआ तब इस कन्या ने हम लोगों को छोड़कर भूमिगोचरी पुरुष ग्रहण किया है ऐसा विचारकर कन्या के मामा के लड़के मंगधर और महीधर बहुत ही क्रुद्ध हुए।^{३०१} बाद में युद्ध हुआ जिसमें हरिषेण विजयी हुआ। इसी प्रकार केकया ने जब दशरथ के गले में वरमाला डाली तब अन्य राजाओं के साथ दशरथ का युद्ध हुआ।^{३०२}

साम्राज्य-विस्तार की अभिलाषा के कारण राजा लोग अनेक युद्ध लड़ा करते थे। लक्ष्मण ने समस्त पृथ्वी को वश में कर नारायण पद प्राप्त किया था।^{३०३} सगर शक्रवर्ती छह खंड का अधिपति था तथा समस्त राजा उसकी आज्ञा मानते थे।^{३०४} इस प्रकार साम्राज्य-विस्तार की प्रवृत्ति अधिकांश बलशाली राजाओं में दिखाई देती है। इसके कारण युद्ध अनिवार्य रूप से हुआ करते थे।

कभी-कभी स्वाभिमान की रक्षा के लिए भी युद्ध हुआ करते थे। चक्रवर्त्तन के अहंकार से चूर जब भरत ने बाहुबलि पर आक्रमण किया तब मैं और भरत एक ही पिता के दो पुत्र हैं इस स्वाभिमान के कारण उसने भरत के साथ युद्ध किया और दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध तथा जलयुद्ध में परास्त कर अन्त में विरहित के कारण दीक्षा ले ली।^{३०५}

गुणसिद्धान्त—पद्मचरित के अष्ट पर्व में राजा कुण्डलमण्डित को गुणारम्भ (गुणों से युक्त) कहकर उसकी विशेषता बतलाई गई है। यहाँ इन गुणों से

२९९. पद्म० ७।३५-३६।

३०१. वही, ८।३७४।

३०३. वही, ९४।१०।

३०५. वही, ४।६७-७४।

३००. पद्म० ३।३७।

३०२. वही, पर्व २४।

३०४. वही, ५।८४।

सात्पर्य क्या है, यह जान लेना आवश्यक है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये षाड्गुण्य अर्थात् छः गुण कहे गये हैं।^{३०१} किन्तु पदमचरित में सन्धि^{३०२} और विग्रह^{३०३} इन दो गुणों का ही जिक्र मिलता है। वातव्याधि ऋषि का कहना है कि सन्धि और विग्रह ये दो ही मुख्य गुण हैं, क्योंकि इन्हीं दोनों गुणों से अन्यान्य छहों गुण स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं।^{३०४} आसन और संश्रय का सन्धि में, यान का विग्रह में और द्वैधीभाव का सन्धि तथा विग्रह दोनों में अन्तर्भाव होता है।

सन्धि—दो राजाओं के बीच भूमि, कोश तथा दण्ड आदि प्रदान करने की शर्त पर किए गये पणवन्ध (समझौते) को सन्धि कहते हैं।^{३०५}

विग्रह—शत्रु के प्रति किये गये द्रोह या अपकार को विग्रह कहते हैं।^{३०६}

आसन—सन्धि आवि गुणों की उपेक्षा का नाम आसन है।^{३०७}

यान—शत्रु पर किये गये आक्रमण को यान कहते हैं।^{३०८}

संश्रय—किसी बलवान् राजा के पास आने को एवं अपनी स्त्री तथा पुत्र एवं धन धान्य आदि को समर्पण कर देने का नाम संश्रय है।^{३०९}

द्वैधीभाव—सन्धि तथा विग्रह के एक साथ प्रयोग को द्वैधीभाव कहते हैं।^{३१०}

युद्ध की प्रारम्भिक स्थिति—युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व शत्रु राजाओं के यहाँ दूता भेजा जाता था। दूत स्वामी का अभिप्राय निवेदन कर लौट आता था। यदि शत्रु राजा दूत द्वारा कही गई बातों की अवहेलना करता था या उनको दुकराता था तो युद्ध शुरू हो जाता था।^{३११} युद्ध करने से पूर्व बड़ों की सलाह

३०६. 'सन्धिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः'

—कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् ७।१।

३०७. पदप० ३७।३, ६६।८।

३०८. पदम० ३७।३।

३०९. 'द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः, सन्धिविग्रहाम्यां हि षाड्गुण्यं सम्पद्यत इति' ।।

—कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् ७।१।

३१०. 'तत्र पणवन्धः सन्धिः' । कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् ।

३११. 'अपकारो विग्रहः' वही, ७।१, पृ० ४२५।

३१२. 'उपेक्षणं आसनं' वही, ७।१।

३१३. 'अभ्युच्चयो यानं' वही, ७।१।

३१४. 'परापणं संश्रयः, वही, ७।१।

३१५. 'सन्धिविग्रहोपादानं द्वैधीभावः, वही, ७।१।

३१६. पदम० अष्टम पर्व—वैखण और सुमाली का युद्ध।

ली जाती थी।^{३१७} इसके बाद मन्त्रियों से सन्त्रणा की जाती थी।^{३१८} सोच विचार कर ही कार्य किया जाता था, क्योंकि बिना विचारे कार्य करने वालों का कार्य निष्फल हो जाता है।^{३१९} जोत हार के विषय में भाग्य और पुरुषार्थ दोनों को महत्ता दी जाती थी। केवल पुरुषार्थ ही कार्यसिद्धि का कारण नहीं है, क्योंकि बिना भाग्य के कार्य करने वाले पुरुषार्थी विफल का वर्ण के बिना क्या सिद्ध हो सकता है? अर्थात् कुछ भी नहीं। एक ही समान पुरुषार्थ करने वाले और एक ही समान भावर से पढ़ने वाले छात्रों में से कुछ तो सफल हो जाते हैं और कुछ कमों की विवशता से सफल नहीं हो पाते।^{३२०} पूर्व जन्म के पुण्य के उदय से प्राणियों के लिए पर्वतों को चूर्ण करने वाला वज्र भी फूल के समान कोमल हो जाता है। अग्नि भी चन्द्रमा के समान शीतल विशाल कमल बन हो जाती है और खड्गरूपी लता भी सुन्दर स्त्रियों की सुकोमल भुजलता बन जाती है।^{३२१}

अच्छी सेना के लिए आवश्यक समझा जाता था कि उस सेना में न तो कोई मनुष्य मलिन, न दीन, न भूखा, न प्यासा, न कुत्सित वस्त्र धारण करने वाला और न चिन्तातुर दिखाई पड़े। सैनिकों के उरसाह्वर्द्धन हेतु स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ जाती थीं।^{३२२} युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व, मध्य में और अन्त में बाजे बजाये जाते थे। सबसे पहले यन्त्र आदि के द्वारा कोट को अत्यन्त दुर्गम कर दिया जाता था तथा नाना प्रकार की विद्याओं के द्वारा नगर को गह्वरों एवं पाशों से युक्त कर दिया जाता था।^{३२३} सच्चे शूरवीर युद्ध में प्राण त्याग करना अच्छा समझते थे पर शत्रु के लिए नमस्कार करना अच्छा नहीं समझते थे।^{३२४}

वाद्यों का प्रयोग—पद्मचरित में अनेक वाद्यों के नाम आये हैं। ये युद्ध और विभिन्न माङ्गलिक समारोहों पर बजाये जाते थे। इनकी संख्या निम्न-लिखित है—

३१७. पद्य० १२।१६३।

३१८. पद्य० १२।१६४।

३१९. वही, १२।१६४।

३२०. भवत्यर्थस्य संसिद्धयै केवलं च न पीडम्।

कर्षकस्य विना वृष्ट्या का सिद्धिः कर्मयोगिनः॥ पद्य० १२।१६६।

समानमहिमानामां पठतां च समादरम्।

अर्थभाजो भवन्त्येके नापरे कर्मणां वशात्॥ पद्य० १२।१६७।

३२१. पद्य० १७।१०४-१०५।

३२२. पद्य० १०२।१०६-१०७।

३२३. वही, ४६।२३०।

३२४. वही, १२।१७७।

बोणा, ३२५ ब्रेणु, ३२६ (बौसुरी), शंख, ३२७ मूर्धन, ३२८ शरलर (शालर), ३२९
काहला, ३३० मर्दक, ३३१ दुन्दुभि, ३३२ भंभा, ३३३ लम्पाक, ३३४ घुन्धु, ३३५
मण्डुक, ३३६ शाला, ३३७ अमलातक, ३३८ हक्का, ३३९ हुंकार, ३४० दुन्दुकाणक, ३४१
सर्पार, ३४२ हेतुकगुञ्जा, ३४३ बर्दुर, ३४४ सूर्य, ३४५ वंशाः, ३४६ पटह (नगाड़ा)
लम्प, ३४८ गुञ्जा, ३४९ रटित, ३५० मन्दका, ३५१ हेका ३५२ तया पुर्व ३५३ ।

उपयुक्त वाच्यों से होने वाले शब्दों के अतिरिक्त हलाहला के शब्द, अट्टहास के शब्द, घोड़े, हाथी, सिंह और व्याघ्रादि के शब्द, ३५४ भाँकों के विद्याल शब्द, बन्दीजनों के विरदपाठ, ३५५ सूर्य के समान तेजस्वी रथों की मनोहर चीत्कार, पृथ्वी के कम्पन से उत्पन्न शब्द और इन सबकी करोड़ों प्रकार की ध्वनियों के शब्द ३५६ इस तरह विभिन्न प्रकार के शब्दों का जल्लेख मिलता है ।

युद्ध की विधि (नियम) — पद्मचरित के अनुसार युद्ध की यह विधि (नियम) है कि दोनों पक्षों के खेदक्षिन्न तथा महाप्यास से पीड़ित मनुष्यों के लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है । ३५७ भूख से दुःखी मनुष्य के लिए अमृत तुल्य अच्छा भोजन दिया जाता है । पसीना से युक्त मनुष्यों के लिए

३२५. पद्य० ६।३७९ ।	३२६. पद्य० ६।३७९ ।
३२७. वही, ६।३७९ ।	३२८. वही, ६।३७९ ।
३२९. वही, ६।३७९ ।	३३०. वही, ६।३७९ ।
३३१. वही, ६।३७९ ।	३३२. वही, ४९।४३ ।
३३३. वही, ५८।२७ ।	३३४. वही,
३३५. वही,	३३६. वही,
३३७. वही,	३३८. वही,
३३९. वही,	३४०. वही,
३४१. वही,	३४२. वही, ५८।२८ ।
३४३. वही, ५८।२८ ।	३४४. वही, ५८।२८ ।
३४५. वही, ४३।३ ।	३४६. वही, ११०।३५ ।
३४७. वही, ८२।३० ।	३४८. वही, ८२।३० ।
३४९. वही, ८२।३१ ।	३५०. वही, ८२।३१ ।
३५१. वही, ८०।५५ ।	३५२. वही, ८०।५५ ।
३५३. वही, ८०।५५ ।	३५४. वही, ८०।३२ ।
३५५. वही, ८२।३३ ।	३५६. वही, ८२।३४ ।
३५७. खिन्नाभ्यां दीयते स्वादु जलं ताभ्यां सुशीतलम् ।	

महातर्षाभिभूताभ्यामयं हि समरे विधिः ॥ पद्य० ७५।१ ।

आह्लाद का कारण गोशीर्ष चन्दन दिया जाता है।^{३५८} पंखे आदि से हवा की जाती है। बर्फ के जल के छींटें दिये जाते हैं तथा इनके सिवाय जो कार्य आवश्यक हों उनकी पूर्ति समीप में रहने वाले मनुष्य तत्परता के साथ करते हैं।^{३५९} युद्ध की यह विधि (नियम) जिस प्रकार अपने पक्ष के लोगों के लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्ष के लिए भी है। युद्ध में निज और पर का भेद नहीं होता। ऐसा करने से ही कर्तव्य की सिद्धि होती है।^{३६०} जो राजा अतिशय बलिष्ठ शूरवीरों की चेष्टा को धारण करने वाले हैं वे न भयभीत पर, न ब्राह्मण पर, न मुनि पर, न निहत्थे पर, न स्त्री पर, न बालक पर, न पशु पर और न दूत पर प्रहार करते हैं।^{३६१} भयभीत शरणागत तथा शस्त्र डाल देने वाले पर भी प्रहार नहीं किया जाता। पृ० ३५२

सैनिक उत्साह—युद्ध के लिए जाते समय सैनिकों में अटूट उत्साह भर दिया जाता था। इसके मूल में स्त्रियाँ, सेनापति, राजा, तरहू-तरहू के बाजे आदि अनेक होते थे। पद्मचरित का उर्बा पर्व सैनिक उत्साह के वर्णन से भरा पड़ा है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

‘जिसने महायुद्ध में अनेक बड़े-बड़े योद्धाओं का वर्णन सुन रखा था ऐसी किसी वीर पत्नी ने पति का आलिङ्गन कर इस प्रकार कहा—’ हे नाथ ! यदि संग्राम में धायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्र से ही मैं प्राण छोड़ दूंगी। क्योंकि ऐसा होने पर वीर किङ्करोں की गर्वीली परिनयाँ मुझे विककार देंगी। इससे बढ़कर कष्ट की बात और क्या होगी जिनके

३५८. अमृतोपममन्नं च अधाग्लपनमीयुषोः ।

गोशीर्षचन्दनं स्वेदसंगिनो ह्लादिकारणम् ॥ पद्य० ७५।२ ।

३५९. तालवृन्तादिवातश्च हिमवारिकणो रणे ।

क्रियते तत्परैः कार्यं तथान्यदपि पार्श्वगैः ॥ पद्य० ७५।३ ।

३६०. तथास्तथाऽन्येषामपि स्वपरवर्गतः ।

इति कर्तव्यता सिद्धिः सकला प्रतिपद्यते ॥ पद्य० ७५।४ ।

३६१. नरेश्वराः ऊर्जितशीर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु ।

न ब्राह्मणं न श्रमणं न शून्यं स्त्रियं न बालं न पशुं न दूतम् ॥

—पद्य० ६६।२० ।

यहाँ पर ब्राह्मणों के लिए विशेष संरक्षण से यह ध्वनित होता है कि उस समय लोक में ब्राह्मणों की अधिक प्रतिष्ठा थी।

३६२. पद्य० ५७।२४ ।

वस्त्रःस्थल में धाव आभूषण के समान सुशोभित हैं, जिनका कवच टूट गया है, प्राप्त हुई विजय से योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गम्भीरता के कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्ध से लौटा हुआ देखेंगी तो स्वर्णमय कमलों से जिनेन्द्रदेव की पूजा करेंगी।^{३६३} महा-योद्धाओं का सम्मुखगत मृत्यु की प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुखा हो धिक्कार शब्द से मलिन जीवन बिताना अच्छा नहीं है।^{३६४} कोई बोला— हे प्रिये ! वे मनुष्य प्रशंसनीय हैं जो रणायुध में जाकर शत्रुओं के सम्मुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुयश प्राप्त करते हैं।^{३६५} किसी योद्धा ने नया मजबूत कवच पहिना था परन्तु हर्षित होने के कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवच के समान जान पड़ने लगा।^{३६६}

जब शत्रुधन ने मधु पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया तब मन्त्रि-समूह ने इस बात की चर्चा की कि जो विद्याधरों के द्वारा दुःसाध्य था ऐसा महा-शक्तिशाली मान्वाता जिसके द्वारा पहले युद्ध में जीता गया था वह मधु इस बालक के द्वारा कैसे जीता जा सकेगा।^{३६७} कृतान्तबन्धन सेनापति ने कहा कि जिसके मद की चारा शर रही हो ऐसा बलवान् हाथी यद्यपि अपनी सूँड़ से वृक्ष

३६३. वीरपत्नी प्रियं काञ्चिदालिख्यैवमभाषत ।

श्रुतानेकमहायोधपरमाह्वविभ्रमा ॥ पद्य० ५७।३ ।

सङ्ग्रामे विक्षतः पृष्ठे यदि नाथागमिष्यति ।

दुर्यशस्तदहं प्राणान् मोक्ष्यामि श्रुतिमाश्रितः ॥ पद्य० ५७।४ ।

किङ्कुराणामतः पत्न्यो वीराणामतिगविताः ।

धिक्षाब्धं मे प्रदास्यन्ति किं नु कष्टमतः परम् ॥ पद्य० ५७।५ ।

रणप्रत्यागतं धीरमुरोन्नमिभूषणम् ।

विशीर्णकवचं प्राप्तजयं लब्धभटस्तवम् ॥ पद्य० ५७।६ ।

द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं भवन्तमविकल्पनम् ।

जिनेन्द्रानर्चयिष्यामि ततो जाम्बूनदाम्बुजैः ॥ पद्य० ५७।७ ।

३६४. अभिमुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः ।

पराङ्मुखाः न जीवन्ती धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥ पद्य० ५७।८ ।

३६५. नरास्ते दयिते श्याव्या ये गता रणमस्तकम् ।

त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥ पद्य० ५७।९ ।

३६६. दिनद्वं कस्यचिद्वर्मं सुदृढं तोषहारिणः ।

वर्द्धमानं ततः शीर्णं पुराणं ककटायितम् ॥ पद्य० ५७।१० ।

३६७. पद्य० ८९।४१ ।

को गिरा देता है, तथापि यह सिंह के द्वारा मारा जाता है। शत्रुघ्न लक्ष्मी और प्रताप से सहित है, धैर्यवान् है, बलवान् है, बुद्धिमान् है और उत्तम सहायकों से युक्त है इसलिए अवश्य ही शत्रु को नष्ट करने वाला होगा।^{३६०} रानी सुप्रजा ने पुत्र (शत्रुघ्न) को देखकर उसका मस्तक संधा और उसके बाद कहा कि हे पुत्र ! तू तीक्ष्ण बाणों के द्वारा शत्रुसमूह को जीते।^{३६१} वीरप्रसविनी माता ने पुत्र को अर्घासन पर बैठाकर पुनः कहा कि हे वीर ! तुझे मुख में पीठ नहीं दिखाना चाहिये।^{३६२} हे पुत्र ! तुझे तुझ से विजयी हो मेटा देखकर मैं स्वर्ण के कमलों से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करूँगी।^{३६३}

युद्ध वर्णन—पद्मचरित में अनेक युद्धों का वर्णन हुआ है। इन युद्ध-वर्णनों को पढ़कर पढ़ने वाले के मन में वीर रस का संचार हो उठता है। उदाहरण के लिये द्वादश पर्व के कुछ उद्धरण ही पर्याप्त होंगे—

युद्ध में घोड़ा घोड़े को मार रहा था, हाथी हाथी को मार रहा था, घुड़-सवार घुड़सवार को, हाथी सवार हाथी के सवार को और रथ रथ को नष्ट कर रहा था।^{३६४} जो जिसके सामने आया उसी को चीरने में तत्पर रहने वाला पैदल सिपाहियों का झुण्ड पैदल सिपाहियों के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत था।^{३६५} कोई एक योद्धा शिर कट जाने से यद्यपि कबन्ध दशा को प्राप्त हुआ था तथापि उसने शत्रु की दिशा में वेग से उछलते हुए शिर के द्वारा ही छधिर की वर्षा कर शत्रु को मार डाला था।^{३६६} जिसका चित्त गर्व से भर रहा था ऐसे किसी योद्धा का शिर यद्यपि कट गया था तो भी वह ओठों को डसता रहा और हुंकार से मुश्तर होता हुआ चिरकाल बाद नीचे गिरा था।^{३६७} कोई एक

३६८. पद्म० ८९।४६-४७।

३६९. समीक्ष्य तनयं देवी स्नेहादाघ्राय मस्तके।

जगाद जय वरस स्वं शरैः शत्रुगणं शितैः ॥ पद्म० ८९।२०।

३७०. वत्समद्वसिने कृत्वा वीरसूरगदत् पुनः।

वीर दशयित्थं ते पृष्ठं संयति न त्रिषाम् ॥ पद्म० ८९।२१।

३७१. प्रत्यागतं कृतार्थं त्वां वीक्ष्य जातक संयुगात्।

पूजां परां करिष्यामि जिनानां हेमपङ्कजैः ॥ पद्म० ८९।२२।

३७२. पद्म० १२।१६४।

३७३. पद्म० १२।२६५।

३७४. कश्चित्कबन्धतां प्राप्तः शिरसा स्फुटरहसा।

मुञ्चस्वस्तदिदं किं लालं प्रतिपक्षमताडयत् ॥ पद्म० १२।२९२।

३७५. कृत्वाऽपि कस्यचिन्मूर्ध्ना गर्वनिर्भरचेतसः।

दण्डदन्तच्छदोऽप्यतद्धुक्कारमुत्तरविचरम् ॥ पद्म० १२।२९३।

मर्गकर योद्धा अपनी निकलती हुई आँतों को भायें हाथ से पकड़कर तथा दाहिने हाथ से तलवार उठा बड़े बेग से शत्रु के सामने जा रहा था।^{३७६} जो ओठ चाब रहा था तथा जिसके नेत्रों की पूर्ण पुत्तलियाँ दिख रही थीं ऐसा कोई योद्धा अपनी आँतों से कमर को मजबूत कसकर शत्रु की ओर जा रहा था।^{३७७}

सैनिकों का विश्राम—किसी कारण जब युद्ध बन्द हो जाता था तब किङ्कर शिररहित घड़ आदि को हटाकर उस युद्धभूमि को शुद्ध करते थे और वहाँ कपड़े के ऊँचे-ऊँचे ढेरे, कनातें तथा मण्डप आदि खड़े कर दिए जाते थे।^{३७८} उस भूमि को गोहिन्दों से शुद्ध किया जाता था, दल्लों में आवागमन बन्द कर दिया जाता था और कवच तथा धनुष को धारण करने वाले योद्धा बाहर खड़े रहकर उनकी रक्षा करते थे।^{३७९} लक्ष्मण की शक्ति लगने पर जब युद्ध विश्राम हो गया तब इसी प्रकार की व्यवस्था के बाद पहले गोपुर पर धनुष हाथ में लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुर में गदा हाथ में धारण करने वाला मेघतुल्य नल खड़ा हुआ, तीसरे गोपुर में हाथ में शूल धारण करने वाला उदारचेता विभीषण खड़ा हुआ। वहाँ जिसकी मालाओं में लगे नाना प्रकार के रत्नों की किरणें सब ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण ऐशानेन्द्र के समान सुशोभित हो रहा था।^{३८०} कवच और तरकस को धारण करने वाला कुमुद चौथे गोपुर पर खड़ा हुआ। पाँचवें गोपुर में माला हाथ में लिए प्रतापी सुषेण खड़ा हुआ।^{३८१} जिसकी भुजायें अत्यन्त स्थूल थीं और भिण्डिमाल नामक शस्त्र से इन्द्र के समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुग्रीव स्वयं छठे गोपुर में सुशोभित हो रहा था तथा सातवें गोपुर में बड़े-बड़े शत्रु राजाओं की सेना को मौत के घाट उतारने वाला भा-मण्डल स्वयं तलवार खींचकर खड़ा था।^{३८२} पूर्व द्वार के मार्ग में शरभ चिह्न से चिह्नित ध्वजा को धारण करने वाला धरम पहरा दे रहा था। पश्चिम द्वार में जाम्बव कुमार सुशोभित हो रहा था। मन्त्रि समूह से युक्त उत्तर द्वार को घेरकर अन्नरश्मि नाम का बालि का महाबलवान् पुत्र खड़ा हुआ था।^{३८३} युद्ध

३७६. कश्चित्करणे संख्य वामेनान्त्राणि सद्भटः ।

तरसा खड्गमुद्यम्य ययो प्रत्यरि भीषणः ॥ पद्म० १२।२८५ ।

३७७. कश्चिन्निजैः पुरीतद्भिर्बद्ध्वा परिकरं दृढम् ।

दृष्टौष्ठोऽभिययो शत्रुं दृष्टौष्ठोऽभिययोः ॥ पद्म० १२।२८६ ।

३७८. पद्म० ६३।२८ ।

३७९. पद्म० ६३।२९ ।

३८०. वही, ६३।३०-३१ ।

३८१. वही, ६३।३२ ।

३८२. वही, ६३।३३-३४ ।

३८३. वही, ६३।३५-३६ ।

२३२ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

से नहीं लौटने वाले जो अन्ध वानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशा को व्याप्त कर खड़े हो गये । ३८४

युद्ध का फल—युद्ध के पश्चात् शान्ति स्थापित हो जाती थी । यही उसका फल था ।



धर्म और दर्शन

धर्म का लक्षण—जो वारण करे सो धर्म है । 'धरतीति धर्मः' यह उसका निरुक्त्यर्थ है ।^१ अच्छी तरह से आचरण किया हुआ धर्म दुर्गति में पड़ते हुए जीवों को धारण कर लेता है, बचा लेता है, इसलिए वह धर्म कहलाता है ।^२ क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय (कषाय—जो आत्मा को दुःख दे) महाशय हैं, इन्हीं के द्वारा जोव संसार में परिभ्रमण करता है ।^३ क्षमा से क्रोध का, मृदुता से मान का, सरलता से माया का और सन्तोष से लोभ का निग्रह करना चाहिए ।^४ स्पर्शन, रसना (जीभ), घ्राण (नासिका), चक्षु और कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ प्रसिद्ध हैं, इनका जोतना धर्म कहलाता है ।^५ त्याग भी विशेष धर्म कहा गया है ।

धर्म का माहात्म्य—धर्म के माहात्म्य का वर्णन पद्मचरित में विस्तार से किया गया है । इन सबके अध्ययन से ऐसा विदित होता है कि धर्म के फलस्वरूप अत्यधिक सांसारिक भोगों की प्राप्ति को बहुत अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया गया है ।^६ जैसे—धर्म से युक्त जीव को अत्यधिक गाय, भैंस आदि पशु, हाथी, घोड़े, रथ, पयादे, देश, ग्राम, महल, नौकरों के समूह, विशाल लक्ष्मी और सिंहासन प्राप्त होते हैं ।^७ जो जीव धर्मपूर्वक भरण करते हैं वे ज्योतिष्यक को उत्लब्धन कर गुणों के निवासभूत सौधमण्डिक स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं,^८ धर्म का अर्जन कर कितने ही सामानिक देव होते हैं । कितने ही इन्द्र होते हैं, कितने ही अहमिन्द्र बनते हैं । धर्म के प्रभाव से उन महलों में उत्पन्न होते हैं जो कि स्वर्ण, स्फटिक और वैडूर्य मणिमय, खम्भे के समूह से निर्मित होते हैं, जिसकी सुवर्णनिर्मित दीवालें सदा देदीप्यमान रहती हैं, जो अत्यन्त ऊँचे और अनेक

१. धारणार्थो धृतो धर्मशब्दो वाचि परिस्थितः—पद्य० १४।१०३ ।

२. पद्य० १४।१०४ ।

३. पद्य० १४।११० ।

४. वही, १४।१११ ।

५. वही, १४।११३ ।

६. वही, १४।३१३, १४।३११, ३१२, ८५।२२, ७४।५६-५८, १४।३२७, १४।३१५-३१८, १४।१२६-१२८, १४।१२३-१२४, १४।१२०-१२२, ६०।१४२-१४३, ३५।८७-८९, ३०।१७०-१७१ आदि ।

७. वही, १४।३१५ ।

८. वही, १४।३१६ ।

भूमियों (खण्डों) से युक्त होते हैं,^१ आदि । धर्म के माहात्म्य को हम रूप में रखने का कारण यही जान पड़ता है कि लोग इन सांसारिक अस्म्युद्यों से आकृष्ट होकर धर्म के प्रति आस्था रखें । धर्म का वास्तविक उद्देश्य तो मोक्ष ही है । इसी को स्पष्ट करते हुए रविणे ने कहा है कि जिस प्रकार नगर की ओर जाने वाले पुरुष को खेद निवारण करने वाला जो वृक्षमूल आदि का संगम प्राप्त होता है वह अनायास ही प्राप्त होता है उसी प्रकार जिनवासन रूपी मोक्ष की ओर प्रस्थान करने वाले पुरुष को जो वेच और विद्याघर आदि की लक्ष्मी प्राप्त होती है वह अनुषङ्ग से ही प्राप्त होती है, उसके लिए मनुष्य को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है ।^{१०}

उत्कृष्ट धर्म—चूँकि रविणे जैनधर्म के अनुयायी थे । जैन धर्म के सिद्धान्तों का उन्होंने अन्तःपरीक्षण करके उसे श्रेष्ठ पाया था इसलिये उन्होंने कहा—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कथित वाक्य ही उत्तम वाक्य है, जिनेन्द्र निरूपित तप ही उत्तम तप है, जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा प्रोक्त धर्म ही परमधर्म है और जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उपदिष्ट मत ही परममत है ।^{११} आज तक जितने सिद्ध (मुक्त पुरुष) हुए हैं, जो वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं और जो अनेककाल तक सिद्ध होंगे वे जिनेन्द्र देव द्वारा देखे हुए धर्म के द्वारा ही होंगे अन्य प्रकार से नहीं ।^{१२}

धर्म के भेद—आचरण की अपेक्षा धर्म के दो भेद हैं^{१३}—१. सागारधर्म (गृहस्थ धर्म), २. अनगार धर्म (मुनि धर्म) । इन दो प्रकार के धर्मों को मनुष्यों के दो आश्रम भी कहा गया है ।^{१४} महाव्रत और अणुव्रत के भेद से भी धर्म दो प्रकार का कहा गया है । इनमें से पहला अर्थात् महाव्रत गृहस्थांगी मुनियों के होता है और दूसरा अर्थात् अणुव्रत संसारवर्ती गृहस्थों के होता है ।^{१५}

गृहस्थ धर्म—गृहस्थों का धर्म मुनिधर्म का छोटा भाई है ।^{१६} गृहस्थ धर्म के द्वारा यह मनुष्य उत्तमोत्तम भोगों का भोग करता है ।^{१७} बाद में मुनिदीक्षा धारण कर मोक्ष प्राप्त करता है ।^{१८} गृहस्थाश्रमवासी लोगों को पंच अणुव्रत, चार शिखाव्रत, तीन गुणव्रत—इस प्रकार बारह व्रतों का पालन करना पड़ता है । इसके अतिरिक्त यथाशक्ति हजारों नियम धारण करने पड़ते हैं ।^{१९}

९. पद्य० १४।१२६-१२८ ।

११. वही, ६।३०० ।

१३. वही, ३३।१२१ ।

१५. वही, १४।१६४ ।

१७. वही, ९।२९६ ।

१९. वही, १४।१८२-१८३ ।

१०. पद्य० ६।३०१-३०२ ।

१२. वही, ३१।१९ ।

१४. वही, ५।१९६ ।

१६. वही, २२।१४६ ।

१८. वही, ६।२९८ ।

पाँच अणुसत्त

१. स्थूल हिंसा का त्याग करना—धर्म का मूल दया है और दया का मूल अहिंसा रूप भाव है।^{२०} संसार में समस्त वस्तुओं से प्यारा जीवन है, उसी के लिए यत्न सब प्रमाण है।^{२१} गृहरक्ष को ऐसा जानकर कि जिस प्रकार मुझे अपना शरीर इष्ट है उसी प्रकार समस्त प्राणियों को भी अपना शरीर इष्ट होता है, सब प्राणियों पर दया करनी चाहिए।^{२२} जो मनुष्य मांस भक्षण से दूर रहता है, भले ही वह उपवासादि से रहित तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथ रहती है।^{२३} इस प्रकार अहिंसा धर्म का प्रतिपादन और मांसभक्षण का निषेध पञ्चचरित में बहुत विस्तार से किया गया है।^{२४}

स्थूल झूठ का त्याग^{२५}—जो वचन दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में निमित्त है वह असत्य कहा गया है क्योंकि सत्य इससे विपरीत होता है।^{२६} सत्यव्रतधारी के वचन सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्ति से वह समस्त ससार को व्याप्त करता है।^{२७}

स्थूल परद्रव्यापहरण का त्याग^{२८}—की गई चोरी इस जन्म में बंध, बन्धन आदि कराती है और मरने के बाद कुयोनिषों में नाना प्रकार के दुःख देती है। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि चोरी का सर्व प्रकार से त्याग करें। जो कार्य तीनों लोकों में विरोध का कारण है वह किया ही कैसे जा सकता है।^{२९}

परस्त्री का त्याग—चाहे विधवा हो चाहे सधवा, चाहे कुलवती हो चाहे रूप से युक्त वेश्या हो, परस्त्रीमात्र का प्रयत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए। परस्त्री संसर्ग इस लोक तथा परलोक दोनों जगहों में विरुद्ध है।^{३०} लोगों को, जिस प्रकार अपनी स्त्री को कोई दूसरा मनुष्य छेड़ता है तो इससे अपने आपको

२०. पद्म० ६।२८६।

२१. पद्म० ३८।६९।

२२. वही, १४।१८६।

२३. वही, २६।९८।

२४. वही, ३५।१६३, १६४, २६।६५, २६।६४, २६।६६, ६९, ७४, ७१, १००-१०२, १०६, १०८, ३९।२२६, ५९।३०, ५।३२६-३२८, ५।३४१-३४२, ६।२८६-२८९, ११।७४, २७०, २७१, ११।२७२-२७३, ८५।२४-२५, ३२।१४९।

२५. वही, १४।१८४।

२६. वही, १४।१८८।

२७. वही, ३२।१५०।

२८. वही, १४।१८४।

२९. वही, १४।१८९-१९०।

३०. वही, १२४-१२६।

दुःख होता है उसी प्रकार दूसरे को भी दुःख होता होगा, ऐसा विचार करना चाहिए ।^{३१}

अनन्त दुष्ण का त्याग—अपनी इच्छा का सदा परिमाण करना चाहिए क्योंकि इच्छा पर यदि अंकुश नहीं लगाया गया तो वह महादुःख देती है ।^{३२} परिग्रही मनुष्य के चित्त में विशुद्धता नहीं होती, जिसमें चित्त की विशुद्धता मूल कारण है ऐसे धर्म की स्थिति परिग्रही मनुष्यों से नहीं हो सकती है ।^{३३}

चार शिक्षाव्रत—अत्यन्तपूर्वक सामायिक करना, प्रोषधोपवास धारण करना, अतिथिसंविभाग और आयु का क्षय उपस्थित होने पर सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत हैं ।^{३४}

सामायिक—मन, वचन, काय और कृत (करना), कारित (कराना), अनुमोदना (करने की प्रशंसा करना), से पाँचों पापों का त्याग करना सामायिक है ।^{३५}

प्रोषधोपवास—पहले और आगे के दिनों में एकासन के साथ अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उपवास आदि करना प्रोषधोपवास है ।^{३६}

अतिथि संविभाग—जिसने अपने आगमन के विषय में किसी तिथि का संकेत नहीं दिया है, जो परिग्रह से रहित है और सम्यग्दर्शनादि गुणों से युक्त होकर घर आता है, ऐसा मुनि अतिथि कहलाता है । ऐसे अतिथि के लिए वैभव के अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित हो भिक्षा तथा उपकरण आदि देना चाहिए यही अतिथि संविभाग है ।^{३७} यज्ञ का अन्तर्भाव इसी के अन्तर्गत होता है ।^{३८}

सल्लेखना—इस लोक अथवा परलोक सम्बन्धी किसी प्रयोजन की अपेक्षा न करके शरीर और कषाय के कृषा करने को सल्लेखना कहते हैं ।^{३९}

३१. पद्य० १४।१९२ ।

३२. पद्य० १४।१९४ ।

३३. वही, २।१८० ।

३४. वही, १४।१९९ ।

३५. पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र, पृ० १३१ (हिन्दी टीका) ।

३६. वही, पृ० १३१ ।

३७. पद्य० १४।२०१, २०० ।

३८. पद्य० ११।४० ।

३९. तत्त्वार्थसूत्रकार (सत्त्वा० ७।२१) ने चार शिक्षाव्रत के अन्तर्गत अन्य भेदों के साथ भोगोपभोग परिमाणव्रत को गिनाया । सल्लेखना का कथन यहाँ चार शिक्षाव्रतों के अतिरिक्त, अलग से किया गया है । पद्मचरित में सल्लेखना को अलग से न कहकर भोगोपभोग परिमाणव्रत के स्थान पर सल्लेखना को कहा है ।

तीन गुणव्रत—अनर्थदण्डों का त्याग करना, दिशाओं और विदिशाओं में आवागमन की सीमा निर्धारित करना और भोगोपभोग का परिमाण करना ये तीन गुणव्रत हैं।^{४०} प्रयोजन रहित पापवर्धक क्रियाओं का त्याग करना अनर्थ-दण्डव्रत है। अनर्थ दण्ड के पाँच भेद^{४१} हैं—

१. पापोपदेश (हिंसा आदि पाप के कार्यों का उपदेश देना)।
२. हिंसादान (तलवार आदि हिंसा के उपकरण देना)।
३. अपध्यान—दूसरे का बुरा विचारना।
४. दुश्रुति—रागद्वेष को बढ़ाने वाले छोटे वाक्यों का सुनना।
५. प्रमादचर्या—बिना प्रयोजन यहाँ वहाँ घूमना तथा पृथ्वी आदि का खोदना।

भोगोपभोग—जो एक बार भोगने में आवे उसे भोग और जो बार-बार भोगने में आवे उसे उपभोग कहते हैं।^{४२}

व्रत और उसकी भावनायें—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशोल और परिग्रह इन पाँच पापों से विरक्त होने को व्रत कहते हैं।^{४३} ये व्रत भावनाओं से युक्त हैं। तत्त्वार्थसूत्र में व्रतों की स्थिरता के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनायें बतलाई हैं।^{४४}

४०. पृष्ठ० १४।१९८। तत्त्वार्थसूत्रकारने गुणव्रतों के अन्तर्गत दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत ये तीन व्रत गिनाये हैं। पञ्चचरित में देशव्रत को अलग से न गिनाकर उसके स्थान पर भोगोपभोग का परिमाण करना गिनाया है। इसका मूल कारण यही मालूम पड़ता है कि दिग्व्रत और देशव्रत में समय की अपेक्षा अन्तर होता है। जीवनपर्यन्त के लिए दिग्व्रत में भी संकोच करके घड़ी, घण्टा, दिन, माह आदि तक किसी गृह, मुहल्ले आदि तक जाना-जाना रखना देशव्रत है।

४१. पं० पन्नालाल साहिब्याचार्य की हिन्दी टीका सहित : मोक्षशास्त्र, पृ० १३१।

४२. वही, पृ० १३१।

४३. हिंसाया अनृतात् स्तेयात् स्मरसङ्गात् परिग्रहात्।

विरतिर्नृत्तमुद्दिष्टं भावनाभिः समन्वितम् ॥ पृष्ठ० ११।३८।

हिंसानृत्तस्तेयाङ्गापरिग्रहेभ्यो विरतिर्नृत्तम्। तत्त्वार्थसूत्र ७।१।

४४. तत्त्वार्थसूत्र ७।३। तत्सर्वार्थं भावनाः पञ्च पञ्च।

अहिंसा व्रत की पाँच भावनायें

वाग्गुप्ति—वचन को रोकना ।

मनोगुप्ति—मन की प्रवृत्ति को रोकना ।

ईर्यासमिति—चार हाथ जमीन देखकर चलना ।

आदान निक्षेपण समिति—भूमि को जीवरहित देखकर सावधानी से किसी वस्तु को उठाना, रखना ।

आलोकितपानभोजन—देख शोधकर भोजनपान ग्रहण करना, ये पाँच^{४५} अहिंसाव्रत की भावनायें हैं ।

सत्यव्रत की भावनायें

क्रोधप्रत्याख्यान—क्रोध का त्याग करना ।

लोभप्रत्याख्यान—लोभ का त्याग करना ।

भोक्त्वप्रत्याख्यान—भय का त्याग करना ।

हास्यप्रत्याख्यान—हास्य का त्याग करना ।

अनुवीचिभाषण—शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोषवचन बोलना ।

ये पाँच^{४६} सत्यव्रत की भावनायें हैं ।

अचौर्यव्रत की भावनायें

शून्यागारवास—पर्वतों की गुफा, वृक्ष को कोटर आदि निर्जन स्थानों में रहना ।

विमोचितावास—राजा वगैरह के द्वारा छुड़ाए हुए दूसरे के स्थान में निवास करना ।

परोपरोधाकरण—अपने स्थान पर ठहरे हुए दूसरे को नहीं रोकना ।

भैक्ष्यशुद्धि—शास्त्र के अनुसार भिक्षा की शुद्धि रखना ।

सधर्माविसंवाद—सहधर्मी भाइयों से यह हमारा है, वह आपका है इत्यादि कलह नहीं करना ।

ये पाँच अचौर्यव्रत की भावनायें हैं ।^{४७}

४५. तत्त्वार्थसूत्र ७।४ ।

४६. 'क्रोधलोभभोक्त्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च । वही, ७।५

४७. 'शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च' तत्त्वार्थसूत्र ७।६

ब्रह्मचर्यव्रत की भावनायें

स्त्रीराग कथा श्रवणत्याग—स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग करना ।

तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण त्याग—स्त्रियों के मनोहर अंगों के देखने का त्याग करना ।

पूर्वरतानुस्मरण त्याग—अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग ।

वृष्येष्टरस त्याग—कामवर्धक गरिष्ठ रसों का त्याग करना ।

स्वशरीर संस्कार त्याग—अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना ।

ये पाँच^{४८} ब्रह्मचर्य व्रत की भावनायें हैं ।

परिग्रह त्यागव्रत की भावनायें—स्पर्श आदि पाँच इन्द्रियों के दृष्ट अनिष्ट विषयों में क्रम से रागद्वेष का त्याग करना । ये पाँच परिग्रहत्यागव्रत की भावनायें हैं ।^{४९}

नियम

गृहस्थ मधु, मद्य, मांस, जुआ, रात्रिभोजन और वेद्यासमागम से जो विरक्ति होती है उसे नियम कहते हैं ।^{५०} एक स्थान पर कहा गया है कि जो मनुष्य मधु मांस और मदिरा आदि का उपयोग नहीं करते हैं वे गृहस्थों के आभूषण पद पर स्थित हैं ।^{५१} पञ्चपरित के चौदहवें पर्व में रविषेण ने करीब ५० श्लोको में रात्रि भोजन करने वालों की निन्दा तथा न करने वालों की प्रशंसा की है ।^{५२} जिनके नेत्र अन्धकार के पटल से आच्छादित हैं और बुद्धि पाप से लिप्त है ऐसे प्राणी रात के समय मक्खी, कीड़े तथा बाल आदि हानिकारक पदार्थ खा जाते हैं । जो रात्रि भोजन करता है वह डाकिनी प्रेत भूत आदि नीच प्राणियों के साथ भोजन करता है । जो रात्रि भोजन करता है वह कुत्ते, चूहे, बिल्ली आदि मांसाहारी जीवों के साथ भोजन करता है । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि जो रात में भोजन करता है वह सब अपवित्र पदार्थ खाता है ।^{५३} सूर्य के अस्त हो जाने पर जो भोजन करते हैं उन्हें विद्वानों ने मनुष्यता से दूरे पशु कहा है । रात में अमृत

४८. 'स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर-संस्कारत्यागाः पञ्च'—सत्त्वार्थसूत्र ७।७

४९. मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरोगद्वेषवर्जनानि पञ्च ७।८ ।

५०. पञ्च १४।२०२ ।

५१. वही, १४।२१६ ।

५२. वही, १४।२६७-३१८ ।

५३. वही, १४।२७१-२७३ ।

पीना भी उचित नहीं है, फिर पानी की तो बात ही क्या है ?^{५४} जब नेत्र अपना व्यापार छोड़ देते हैं, जो पाप की प्रवृत्ति होने से अत्यन्त दास्य है, जो नहीं दिखने वाले सूक्ष्म जन्तुओं से सहित है तथा सूर्य का अभाव हो जाता है ऐसे समय भोजन नहीं करना चाहिए ।^{५५}

अनगार धर्म (मुनि धर्म) — जब सब प्रकार के कारम्म का त्याग किया जाता है तभी मुनियों का धर्म प्राप्त होता है ।^{५६}* यह धर्म ब्राह्म वस्तुओं की अपेक्षा से रहित है ।^{५७} अर्थात् अन्तर्मुखी है । आकाशरूपी वस्त्र धारण करने वाले अर्थात् नग्न दिगम्बर मुनियों के ही होता है ।^{५८} मुनि लोग यमी, वीतराग, निर्मुक्त शरीर, निरम्बर, योगी, ध्यानी, ज्ञानी, निस्पृह और बुध हैं अतः ये ही वन्दना करने योग्य हैं ।^{५९} चूँकि वे निर्वाण को सिद्ध करते हैं, इसलिए साधु कहलाते हैं, उत्तम वाचार् का स्वयं आचरण करते हैं तथा दूसरों को भी आचरण कराते हैं इसलिए आचार्य कहे जाते हैं । ये गृहत्यागी के गुणों से सहित हैं तथा शुद्ध भिक्षा से भोजन करते हैं, इसलिए भिक्षुक कहलाते हैं और उज्ज्वल कार्य करने वाले हैं अथवा कर्मों को नष्ट करने वाले तथा परम निर्दोष धर्म में वर्तमान हैं इसलिए श्रमण कहे जाते हैं ।^{६०}

मुनि तथा मुनिधर्म के गुण — पद्मचरित में मुनि तथा मुनिधर्म के बहुत से गुणों का निर्देश किया गया है जो निम्नलिखित हैं —

१. मुनियों का धर्म शूरीरों का धर्म है ।^{६१}
२. मुनिधर्म शान्त दशा रूप है ।^{६२}
३. मुनिधर्म सिद्ध है ।^{६३}
४. मुनिधर्म साररूप है ।^{६४}
५. मुनिधर्म क्षुद्रजनों को भय उत्पन्न करने वाला है ।^{६५}
६. मुनि लोग अपने शरीर में राग नहीं करते हैं ।^{६६}
७. मुनिजन पाप उपार्जन करने वाले बालाश्रमात्र परिग्रह से रहित होते हैं ।^{६७}

५४. पद्य० १४।२७४ ।

५५* वही, ६।२९३ ।

५७. वही,

५९. वही, १०९।८९-९० ।

६१. वही, ३०।८३ ।

६३. वही,

६५. वही, १४।१७१ ।

५५. पद्य० १०६।३२, ३३ ।

५६. वही, ३३।१२१ ।

५८. वही, १०९।८८ ।

६०. वही, ३०।६३ ।

६२. वही,

६४. वही,

६६. वही, १४।१७२ ।

८. मुनिजन अत्यन्त धीरवीर और सिंह के समान पराक्रमी होते हैं ।^{१७}

९. मुनि लोग केशों का लोच करते हैं ।^{१८}

१०. मुनिजन आत्मा के अर्थ में तत्पर रहते हैं ।^{१९}

११. चाग्नि का भार धारण करते हैं ।^{२०}

१२. मुनिजन उत्तम बुद्धि को धर्म में लगाकर मनुष्यों का जैसा शुभोदय से सम्पन्न परम श्रेय हित करते हैं वैसा हित, न माता करती है न पिता करता है, न मित्र करता है न सगा भाई ही करता है ।^{२१}

१३. मुनिजन षण्मस के समान गौण और दिवाकर (सूर्य) के समान देदीप्यमान होते हैं ।^{२२}

१४. ये समुद्र के समान गम्भीर, समूह के समान धीरवीर और भयभीत कछुए के समान समस्त इन्द्रियों के समूह को अत्यन्त गुप्त रखने वाले होते हैं ।^{२३}

१५. ये क्षमा धर्म को धारण करते हैं । कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) के उद्रेक से रहित और चौरासी लाख गुणों से सहित हैं ।^{२४}

१६. मुनि लोग सरल भावों को धारण करते हैं ।^{२५}

१७. गाँव में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि तक हो ठहरते हैं ।^{२६}

१८. पर्वत की गुफाओं, नदियों के तट अथवा बाग बगीचों में ही उनका निवास होता है ।^{२७}

१९. अन्याय करने वाले का कुछ भी प्रतिकार नहीं करते हैं ।^{२८} उपसर्ग (विघ्न-बाधा) को सहन करते हैं ।^{२९}

२०. यह भावना रखते हैं कि ज्ञानदर्शन ही मेरी आत्मा है । दूसरे पदार्थ के संयोग से होने वाले अन्य भाव पर पदार्थ हैं ।^{३०}

२१. मरण समय समाधि धारण करते हैं और सोचते हैं कि समाधिभरण के लिए न तृण ही संघारा (आसन) है, न उत्तम भूमि ही संघारा है किन्तु कलुषित बुद्धि से रहित आत्मा ही संघारा है ।^{३१}

६७. पृष्ठ १४।१७२ ।

६९. वही, ३७।१६३ ।

७१. वही, ६१।२१ ।

७३. वही, १४।१७५ ।

७५. वही, १०९।८५ ।

७७. वही, १०६।११८ ।

७९. वही, ४१।६५ ।

८१. वही, ८९।११० ।

६८. पृष्ठ ३७।१६१ ।

७०. वही, ३७।१६४ ।

७२. वही, १४।१७४ ।

७४. वही, १४।१७६ ।

७६. वही, १०६।११७ ।

७८. वही, ४१।७० ।

८०. वही, ८९।१०९ ।

२४२ : पञ्चरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

२२. तत्त्वविचार में लीन रहते हैं।^{८२}

२३. अधिकांश समय सद्बुध्यान में लीन रहते हैं।^{८३}

२४. मुनिधर्म का सर्वोत्कृष्ट गुण यह है कि उस धर्म से मोक्ष की प्राप्ति होती है।^{८४}

मुनि के आवश्यक धर्म—पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुणियों का धारण करना,^{८५} परिषहों को सहन करना,^{८६} अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करना,^{८७} सात भयों से रहित होना,^{८८} आठ भेदों को नष्ट करना,^{८९} चारित्र्य, धर्म और अनुप्रेक्षा से युक्त होना ये सब मुनि के आवश्यक धर्म हैं।^{९०}

पाँच महाव्रत—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच पापों के पूरी तरह से (सर्वदेह) त्याग करने को पञ्च महाव्रत कहते हैं।^{९१}

पाँच समिति—ईर्ष्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं।^{९२}

ईर्ष्यासमिति—नेत्रगोचर जीवों के समूह से घबकर गमन करने वाले मुनि के प्रथम ईर्ष्यासमिति होती है। यह अंतों में शुद्धता उत्पन्न करती है।^{९३}

भाषासमिति—सदा कर्कश और कठोर वचन छोड़कर यत्नपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले वृत्ति का धर्म कार्यों में बोलना भाषा समिति है।^{९४}

एषणासमिति—शरीर की स्थिरता के लिए विषड् शुद्धि पूर्वक मुनि का आहार ग्रहण करना एषणा समिति है।^{९५}

आदाननिक्षेपण समिति—देखकर योग्य वस्तु का रखना और उठाना आदान निक्षेपण समिति है।^{९६}

उत्सर्ग समिति—इसे प्रतिष्ठापन समिति भी कहते हैं। प्रासुक (स्वच्छ—जीव-जन्तु से रहित) भूमि पर शरीर के भीतर का मल छोड़ना उत्सर्ग समिति है।^{९७}

८२. पद्य० ८९।१०८।

८४. वही, ६।२९५।

८६. वही, १०६।११४।

८८. वही, १०६।११३।

९०. वही, ९।२१९।

९२. वही, १४।१०८।

९४. वही, २।१२३।

९६. वही, २।१२५।

८३. पद्य० ३९।३३।

८५. वही, २०।१४९।

८७. वही, ३७।१६५।

८९. वही, १०९।३०।

९१. वही, १४।३९।

९३. वही हरिवंशपुराण २।१२२।

९५. हरिवंशपुराण २।१२४।

९७. वही, २।१२६।

गुप्ति—वचन, मन और काय (शरीर) की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव हो जाना अथवा उसमें कोमलता का आ जाना गुप्ति है।^{१०८} अज्ञानी जीव जिस कर्म को करोड़ों भवों में क्षीण कर पाता है उसे तीन गुप्तियों का धारक ज्ञानी मनुष्य एक मूर्हत में क्षय कर देता है।^{१०९}

परिषद् जय^{१००}—संवर के मार्ग से व्युत्पन्न होने के लिए और कर्मों का क्षय करने के लिए जो सहन करने योग्य हों वे परिषद् हैं।^{१०१} ये बाईस हैं।^{१०२}

अट्ठाईस मूलगुण^{१०३}

मुनिराज पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, समता, संदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान ये छः आवश्यक, स्नान त्याग, दन्तधावन त्याग, भूमिगमन, केशलोच, नग्नता धारण करना, स्वदे होकर जानार लेना, दिन में एक बार भोजन लेना, ये सात व्रत इस तरह अट्ठाईस मूल गुणों का पालन करते हैं।^{१०४}

सात भय^{१०५}

इहलोक भय, परलोक भय, सरण भय वेदना भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय और आकस्मिक भय से सात भय हैं।^{१०६}* मुनि इन सात भयों का त्याग करते हैं।

आठ सर्वों का त्याग^{१०७}

ज्ञान, पूजा (प्रतिष्ठा), कुल, जाति, शक्ति, ऋद्धि (धन सम्पत्ति), तप और

९८. पद्य० १४।१००।

९९. वही, १०५।२०५।

१००. वही, ८७।१२।

१०१. 'मार्गाव्यवननिर्जरायं परिसोढव्याः परिषदाः'। तत्त्वार्थसूत्र ९।८।

१०२. 'क्षुत्पिपासाकीतोष्णदंशभक्षकमाग्न्यारतिस्त्रीचर्यातिषद्याक्रोशवधयाचना-
लाभरोगतृणस्पर्शसलसहकारपुरस्कारप्रज्ञा ज्ञानी दर्शनानि।'।

—तत्त्वार्थसूत्र ९।९।

१०३. पद्य० ३७।१६५।

१०४. आचार्य कुन्धुसागर : मुनिधर्मप्रदीप, पृ० ४।

१०५. पद्य० १०६।११३।

१०५.* पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र (हिन्दी टीका), पृ० १३२।

१०६. पद्य० ११९।३०।

२४४ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

शरीर इन आठ पदार्थों का आश्रय करके जो गर्व करना है वह मद कहलाता है ।^{१०७} मुनि इन आठ मदों के त्यागी होते हैं ।

चारित्र्य^{१०८}

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात यह पाँच आठों का चारित्र्य है ।^{१०९}

सामायिक—भेदरहित सम्पूर्ण पापों को त्याग करने को सामायिक चारित्र्य कहते हैं ।^{११०}

छेदोपस्थापना—प्रसाद के बश से चारित्र्य में कोई दोष आ जाने पर प्रायश्चित्त के द्वारा उसको दूर कर पुनः निर्दोष चारित्र्य स्वीकार करना ।^{१११}

परिहारविशुद्धि—जिस चारित्र्य में जीवों की हिंसा का त्याग हो जाने से विशेष शुद्धि हो जाती है उसको परिहारविशुद्धि चारित्र्य कहते हैं ।^{११२}

सूक्ष्मसांपराय—अत्यन्त सूक्ष्म लोभ कषाय का उदय होने पर जो चारित्र्य होता है उसे सूक्ष्म साम्पराय चारित्र्य कहते हैं ।^{११३}

यथाख्यात—सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के क्षय अथवा उपशम से आत्मा के शुद्धस्वरूप में स्थिर होने को यथाख्यात चारित्र्य कहते हैं ।^{११४}

धर्म^{११५}

उपवास, अवमोदर्य (भूख से कम भोजन करना), वृत्तिपरिसंख्यान (भिक्षा को आते समय गली आदि का नियम लेना) रस परित्याग (द्रव्यादि रसों का त्याग), विविक्त शय्यासन (एकान्त स्थान में सोना बैठना), कायक्लेश (शरीर से मोह न रखकर योग आदि धारण करना) ये छह बाह्य तप हैं ।^{११६} प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य (शरीर तथा अन्य वस्तुओं से मुनियों की सेवा), स्वाध्याय,

१०७. 'ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः ।

अष्टावाञ्छित्यमानित्वं स्मयमाहर्गतस्मयाः' ॥

—रत्नकरणश्रावकाचार, २५ ।

१०८. पञ्च० १।२१९ ।

१०९. 'सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति-
चारित्र्यं ।'

—तत्त्वार्थ० १।१८ ।

११०. मोक्षशास्त्र, पृ० १८२ (पं० पन्नालाल जी) ।

१११. वही, पृ० १८२ ।

११२. वही, पृ० १८२ ।

११३. वही, पृ० १८२ ।

११४. वही, पृ० १८३ ।

११५. पञ्च० १।२१९ ।

११६. वही, १४।११४, ११५ ।

व्युत्सर्ग (बाह्य और आन्तरिक परिग्रह का त्याग), और ध्यान^{११७} ये छह आम्पन्तर तप हैं । यह समस्त तप धर्म कहलाता है ।

अनुप्रेक्षा

शरीरादि अनित्य है, कोई किसी का शरण नहीं है, शरीर अपवित्र है, शरीर रूपी पिजड़े से आत्मा पृथक् है, यह अकेला ही सुख दुःख भोगता है । संसार के स्वरूप का चिन्तन करना, लोक की विचित्रता का विचार करना, आस्रवों (कर्मों का आना) के पुर्णों का ध्यान करना, संवर (आस्रव का निरोध) की महिमा का चिन्तन, पूर्ववद्ध कर्मों की निजरा का उपाय सोचना, बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र्य की दुर्लभता का विचार करना और धर्म का माहात्म्य सोचना ये बारह अनुप्रेक्षार्य (भावनायें) हैं ।^{११८} इन्हें हृदय में धारण करना चाहिए ।

मोक्ष प्राप्ति का उपाय

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र्य इनकी एकता को मोक्षमार्ग (मोक्ष प्राप्ति का उपाय) कहते हैं ।^{११९}

सम्यग्दर्शन—तत्त्व का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ।^{१२०} एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित है वही उसी प्रकार श्रद्धान करना परमसुख है और मिथ्या कल्पित पदार्थों का ग्रहण करना अत्यधिक दुःख है ।^{१२१} इसका तात्पर्य यह है कि रविणेण सम्यग्दर्शन और सुख में अपेक्षया कोई भेद नहीं मानते थे ।

सम्यग्ज्ञान—जो वस्तु के स्वल्प को न्यूनता रहित, अधिकता रहित और विपरीतता रहित जैसा का सैसा सन्देहरहित जानता है उस ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं ।^{१२२}

सम्यक्चारित्र्य—सर्वज्ञ के शासन में कही हुई विधि के अनुसार सम्यग्ज्ञान पूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्य के द्वारा जो आचरण किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र्य कहते हैं ।^{१२३} जिसमें इन्द्रियों का वशीकरण और वचन तथा मन का नियंत्रण

११७. पद्म० १४।११६, ११७ ।

११८. पद्म० १४।२३७, २३९ ।

११९. वही, १०५।२१० ।

१२०. वही, १०५।२११ ।

१२१. वही, ४३।३० ।

१२२. 'अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।

निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः' ।।

—रत्नकरण्डभाषकाचार, ४२ ।

१२३. पद्म० १०५।२१५ ।

होता है, ^{१२३} न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले वस स्थावर जीवों की अहिंसा की जाती है, ^{१२४} मन और वानों को आनन्दित करने वाले स्नेहपूर्ण, मधुर सार्वक और कल्याणकारी वचन कहे जाते हैं, ^{१२५} अदत्त वस्तु के ग्रहण में मन, वचन, काय से निवृत्ति की जाती है तथा न्यायपूर्ण ही हुई वस्तु ग्रहण की जाती है, ^{१२६} जहाँ देवों के भी पूज्य और महापुरुषों के भी कठिनता से धारण करने योग्य शुभ ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है, ^{१२७} जिसमें, मोक्षमार्ग में महाविघ्नकारी मूर्च्छा के त्यागपूर्वक परिग्रह का त्याग किया जाता है, ^{१२८} मुनियों के लिए पर-पीड़ा से रहित शयन आदि गुणों से अति धन दिया जाता है। ^{१२९} विनय, नियमशील धारण किया जाता है। उसे सम्यक् चारित्र्य कहते हैं। ^{१३०}

सम्यग्दर्शन की महिमा—पद्मचरित में सम्यग्दर्शन की यत्र-तत्र बहुत अधिक प्रशंसा तथा उसके विपरीत मिथ्यादर्शनादि (मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र्य) की निन्दा की गई है। ^{१३१} एक स्थान पर कहा है—जो अक्लृष्ट है, नित्य है, आनन्दरूप है, उत्तम है, मूढ मनुष्यों के लिए मानों रहस्यपूर्ण है, जगत्त्रय में प्रसिद्ध है, कर्मों को नष्ट करने वाला है, शुद्ध है, पवित्र है, परमार्थ का देने वाला है, जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ है और यदि प्राप्त हुआ भी है तो प्रमादी मनुष्य जिसकी सुरक्षा नहीं रख सके है, जो अभय जीवों के लिए अजेय है और दीर्घ संसार को भय उत्पन्न करने वाला है ऐसा सम्यग्दर्शन ही आत्मा का सबसे बड़ा कल्याण है। ^{१३२} लक्ष्मण ने वनमाला के आग्रह पर पुनः वापिस आने के लिए जब बार-बार शपथें माई और किसी प्रकार वनमाला को विश्वास नहीं हुआ तब अन्त में लक्ष्मण ने यह कहा—‘यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सम्यग्दर्शन से हीन मनुष्य जिस गति को प्राप्त होते हैं, उसी गति को प्राप्त होऊँ।’ ^{१३३} सम्यग्दृष्टि मनुष्य सात आठ भवों में मनुष्य और देवपर्याय में परिभ्रमण से उत्पन्न हुए सुख को भोगता हुआ अन्त में मुनि-

१२३. पद्य० १०५।११६।

१२४. पद्य० १०५।२१७।

१२५. वही, १०५।२१८।

१२६. वही, १०५।२१९।

१२७. वही, १०५।२२०।

१२८. वही, १०५।२२१।

१२९. वही, १०५।२२२।

१३०. वही, १०५।२२३।

१३१. वही, ४।४४, १०५।२४२, २४०, २४३, ९९।४३, ४४, १४।३३४-३३६, १४।२२९, १४।२०६, ६।३३४, २।१८७, ५९।२९, २६।१०३, ११४।४३-४४, ८०।१२९, १३०, १०५।२२५-२२७।

१३२. वही, १२३।४३-४५।

१३३. वही, ३८।३८।

दीक्षा धारण कर मुक्त हो जाता है ।^{१३४}

सम्यग्दर्शन के भेद—सम्यग्दर्शन दो प्रकार से होता है ।

१. स्वभाव से २. परोपदेश से । इसी अपेक्षा से इसके निसर्गज और अधि-
गमज दो भेद किये हैं ।^{१३५}

सम्यग्दर्शन के पाँच अतीचार—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि
प्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यों में दोष लगाना सम्यग्दर्शन के पाँच अती-
चार (दोष) हैं ।^{१३६}

शंका—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए सूक्ष्म पदार्थों में सन्देह करना ।

कांक्षा—सांसारिक सुखों की इच्छा करना ।

विचिकित्सा—दुःखी, दरिद्री अथवा रत्नत्रय से पवित्र पर बाह्य में मलिन
मुनियों के शरीर को देखकर रत्नानि करना ।

अन्यदृष्टि प्रशंसा—मिथ्यादृष्टियों की प्रशंसा करना ।

पाँचवाँ अतीचार रविषेण ने प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यों में दोष लगाना कहा
है जबकि तत्त्वार्थसूत्र में अन्यदृष्टिसंस्तव (मिथ्यादृष्टियों की स्तुति करना) कहा
है ।^{१३७}

जिनपूजा

पञ्चचरित में जिनपूजा के माहात्म्य और उसके प्रकारों का विस्तृत वर्णन
उपलब्ध होता है । जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चिन्तन करता है वह
थेला (दो उपवास) का, जो उद्यम का अभिलाषी होता है वह तेंला (तीन उप-
वास) का, जो जाने का आरम्भ करता है वह चोला (चार उपवास) का, जो
जाने लगता है वह पाँच उपवास का, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उप-
वास का, जो बीच में पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवास का, जो मन्दिर के दर्शन
करता है वह मासोपवास का, जो मन्दिर के आंगन में प्रवेश करता है, वह छह
मास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह वर्षोपवास का, जो प्रद-
क्षिणा देता है वह सौ वर्ष के उपवास का, जो जिनेन्द्रदेव के मुख का दर्शन
करता है वह हजार वर्ष के उपवास का और जो स्वभाव से स्तुति करता है वह
अनन्त उपवास के फल को प्राप्त करता है । यद्यर्थ में जिनभक्ति से बहुकर

१३४. पद्य० १०५।१४४ ।

१३५. तन्निसर्गविधिगमाद्वा ॥ तत्त्वार्थसूत्र १।३ ।

१३६. पद्य० १०५।२१३ ।

१३७. तत्त्वार्थसूत्र ७।२३, पद्य० १०५।२१३ ।

उत्तम पुण्य नहीं है।^{१४८} जो उत्तम वस्त्र का धारक है, जिसके शरीर से सुगन्धि निकल रही है, जिसका दर्शन सबको प्रिय लगता है, नगर की स्त्रियाँ जिसकी अपांसा कर रही हैं, जो पुष्पों को देखता हुआ चलता है, जिसने सब विकार छोड़ दिए हैं, जो उत्तम भावना से युक्त है और अच्छे कार्यों के करने में तत्पर है, ऐसा होता हुआ जो जिनेन्द्रदेव की वन्दना के लिए जाता है उसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है।^{१४९} तीनों कालों और तीनों लोकों में व्रत, ज्ञान, तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्य संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमा के बनवाने से उत्पन्न हुए पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते।^{१४०} इत्यादि।^{१४०*}

जिनेन्द्र पूजा की विधियाँ—पञ्चचरित में जिनेन्द्र पूजा की निम्नलिखित विधियाँ उपलब्ध होती हैं—

१. सुगन्धित जल से जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करना।^{१४१}
२. ह्व की धारा से जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करना।^{१४२}
३. दही के कलशों से जिनेन्द्र का अभिषेक करना।^{१४३}
४. वी से जिनदेव का अभिषेक करना।^{१४४}
५. भक्तिपूर्वक जिनमन्दिर में रङ्गावलि आदि का उपहार चढ़ाना।^{१४५}
६. जिनमन्दिर में गीत, नृत्य, वाद्यों से महोत्सव करना।^{१४६}
७. तीनों कालों में जिनेन्द्र देव की वन्दना करना।^{१४७}
८. परिग्रह की सीमा नियत कर जिनेन्द्र भगवान् की अर्चा करना।^{१४८}
९. रत्न तथा पुष्पों से पूजा करना।^{१४९}
१०. भावरूपी फूलों से जिनेन्द्र पूजा करना।^{१५०}
११. चन्दन तथा कालागुरु आदि से उत्पन्न धूप चढ़ाना।^{१५१}
१२. शुभभाष से दीपदान करना।^{१५२}

१३८. पद्य० ३२।१७८-१८२।

१३९. पद्य० १४।२१९, २२०।

१४०. वही, ३२।१७४।

१४०*. वही, १४।२०९, २१०, ३४४-३४६, २१२-२१४।

१४१. वही, ३२।१६५।

१४२. वही, ३२।१६६।

१४३. वही, ३२।१६७।

१४४. वही, ३२।१६८।

१४५. वही, ३२।१७१।

१४६. वही, ३२।१७१।

१४७. वही, ३२।१५८।

१४८. वही, ३२।१५३।

१४९. वही, ४५।१०१, ३२।१५९।

१५०. वही, ३२।१६०।

१५१. वही, ३२।१६१।

१५२. वही, ३२।१६२।

१३. छत्र, चमर, फन्नुस, पताका, दर्पण आदि से जिनमन्दिर सजाना ।^{१५३}

१४. गन्ध से जिनेन्द्र भगवान् का लेपन करना ।^{१५४}

१५. तोरण, पताका, घंटा, लम्बूक, गोले, अर्धचन्द्र, चैंदोबा, अत्यन्त मनो-हर वस्त्र तथा अत्यन्त सुन्दर अन्यान्य समस्त उपकरणों के द्वारा पूजा करना ।^{१५५}

१६. नैवेद्य के उपहारों और उत्तम वर्ण के विलेपनों से पूजा करना ।^{१५६}

दान

दान चार प्रकार के होते हैं—१. आहारदान,^{१५७} अमयदान,^{१५८} औषधि-दान^{१५९} तथा ज्ञानदान ।^{१६०}

पात्र और उसके गुण—पात्र की विशेषता से अनेकरूपता को प्राप्त हुए जीव दान के प्रभाव से भोगभूमियों में भोगों को प्राप्त करते हैं ।^{१६१} जो प्राणि-हिंसा से विरत, परिग्रह से रहित और रागद्वेष से शून्य हैं उन्हें उत्तम पात्र कहते हैं । जो तप से रहित होकर भी सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं ऐसा पात्र प्रशंसनीय है, क्योंकि उसके मिथ्यादृष्टि दाता के शरीर की शुद्धि होती है ।^{१६२} जो आप-त्तियों से रक्षा करे वह पात्र कहलाता है । 'पात्रीति पात्रम्' इस प्रकार पात्र शब्द का निरुक्तार्थ है । चूंकि मुनि सम्यग्दर्शन की सामर्थ्य से लोगों की रक्षा करते हैं अतः वे पात्र हैं । जो निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य से सहित होता है वह उत्तम पात्र कहलाता है । जो मान, अपमान, सुख-दुःख और तृण कांचन में समान दृष्टि रखता है ऐसा साधु पात्र कहलाता है ।^{१६३} जो सब प्रकार के परिग्रह से रहित है, महातपस्वरण में लीन है और तत्त्वों के ध्यान में सदा तत्पर है ऐसे श्रमण मुनि उत्तम पात्र कहलाते हैं ।^{१६४}

प्रशंसनीय दान—जिस प्रकार उत्तम श्रेष्ठ में बोया हुआ बीज अत्यधिक सम्पदा प्रदान करता है उसी प्रकार उत्तम पात्र के लिए शुद्ध हृदय से दिया हुआ दान अत्यधिक सम्पदा प्रदान करता है ।^{१६५} जिस प्रकार एक ही तालाब में गाय ने

१५३. पञ्च० ३२।१६३ ।

१५५. वही, ९५।३२, ३३ ।

१५७. वही, ३२।१५४ ।

१५९. वही, १४।७६ ।

१६१. वही, १४।५२ ।

१६३. वही, १४।५५-५७ ।

१६५. वही, १४।६० ।

१५४. पञ्च० ३२।१६४ ।

१५६. वही, ६९।५ ।

१५८. वही, ३२।१५५ ।

१६०. वही, ३२।१५६ ।

१६२. वही, १४।५३, ५४ ।

१६४. वही, १४।५८ ।

पानी पिया और साँप ने भी । गाय के द्वारा पिया पानी दूध हो जाता है और साँप के द्वारा पिया पानी विष हो जाता है । उसी प्रकार एक ही मृहस्थ से उत्तम पात्र ने दान लिया और नीच ने भी । जो दान उत्तम पात्र को प्राप्त होता है उसका फल उत्तम होता है और जो नीच पात्र को प्राप्त होता है उसका फल नीचा होता है ।^{१९१} कोई पात्र मिथ्यादर्शन से युक्त होने पर भी सम्यग्दर्शन की भावना से युक्त होते हैं ऐसे पात्रों के लिए भाव से जो दान दिया जाता है उसका फल शुभ-अशुभ अर्थात् मिश्रित प्रकार का होता है ।^{१९२} दीन तथा अन्धे आदि मनुष्यों के लिए कर्मणाशन कहा गया है और उसमें यद्यपि फल की प्राप्ति होती है पर वह फल उत्तम फल नहीं कहा जाता ।^{१९३} जो दान निन्दित बताया है वह भी पात्र के भेद से प्रशंसनीय हो जाता है । जिस प्रकार शक्ति के द्वारा पिया पानी मोती हो जाता है ।^{१९४} भूमि का दान यद्यपि निन्दित है फिर भी यदि जिन-प्रतिमा आदि को उद्देश्य कर दिया जाता है तो वह दीर्घकाल तक स्थिर रहने वाले भोग प्रदान करता है ।^{१९५} एक स्थान पर कहा गया है कि सामर्थ्य के अनुसार भक्तिपूर्वक सम्यग्दृष्टि लोगों के लिए जो दान देता है, उसी का एक दान है बाकी तो चोरों को छुटाना है ।^{१९६}

निन्दनीय दान—जिस प्रकार ऊसर जमीन में बीज बोया जाय तो उसमें कुछ भी उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार मिथ्यादर्शन से सहित पापी पात्र के लिए दान दिया जाय तो उनसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता ।^{१९७} जो रागद्वेष आदि दोषों से युक्त है वह पात्र नहीं है और न वह इच्छित फल देता है ।^{१९८} लोभ के वशीभूत दुष्ट अभिप्राय से युक्त तथा हाथी, घोड़ा, गाय आदि जीवों का दान भी बतलाया है पर तत्त्व के जानकार लोगों ने उसकी निन्दा की है ।^{१९९} उसका कारण यह है कि जीव दान में जो जीव दिया जाता है उसे मोझा होना पड़ता है । तुकुली, बरी आदि से उसके शरीर को काँका जाता है तथा लाठी आदि से उसे पीटा जाता है इन कारणों से उसे महा दुःख होता है और उसके निमित्त से अन्य जीवों को बहुत दुःख उठाना पड़ता है ।^{२००} यहाँ पर भूमिदान की भी निन्दा की गई है क्योंकि उससे भूमि में रहने वाले जीवों को पीड़ा होती है ।^{२०१}

१९६. पद्य० १४।६४ ।

१९८. वही, १४।६६ ।

१९०. वही, १४।७८ ।

१९२. वही, १४।६१ ।

१९४. वही, १४।७३ ।

१९६. वही, १४।७५ ।

१९७. पद्य० १४।६५ ।

१९९. वही, १४।७७ ।

२०१. वही, १४।९५ ।

२०३. वही, १४।६३ ।

२०५. वही, १४।७४ ।

दान का फल—दान से भोग प्राप्ति,^{१७७} उपद्रव से रहित होना,^{१७८} विशाल सुखों का पात्र होना,^{१७९} उत्तम गति,^{१८०} विशाल सुख,^{१८१} आदि सुफल प्राप्त होते हैं।

तीर्थकरत्व की प्राप्ति—श्रीशं की नाना दशाओं का निरूपण करते हुए रविषेण ने कहा है कि कितने हो धैर्यवान मनुष्य षोडश कारण भावनाओं का चिन्तन कर तीन लोक में क्षोभ उत्पन्न करने वाले तीर्थकर पद प्राप्त करते हैं।^{१८२} षोडश कारण भावनाएँ ये हैं—

१. दर्शनविशुद्धि—जिनोपदिष्ट निर्गन्ध नोक्षमार्ग में दृष्टि दर्शन विशुद्धि है।^{१८३}

२. विनयसम्पन्नता—सम्यग्ज्ञान आदि मोक्ष के साधनों में तथा ज्ञान के निमित्त गुह आदि में योग्य रीति से सत्कार आदर आदि करना तथा कृपाय की निवृत्ति करना विनयसम्पन्नता है।^{१८४}

३. शीलव्रतेश्वनतिचार—अहिंसा आदि व्रत तथा उनके परिपालन के लिए क्रोधवर्जन आदि शीलों में काय, वचन और मन की निर्दोष प्रवृत्ति शीलव्रतेश्वन-तिचार है।^{१८५}

४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग—जीवादि पदार्थों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जानने वाले मति आदि पाँच ज्ञान हैं। अज्ञाननिवृत्ति इनका साक्षात्फल है तथा हित प्राप्ति, अहितपरिहार और उपेक्षा व्यवहित फल है। इस ज्ञान को भावना में सदा तत्पर रहना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है।^{१८६}

५. संवेग—शरीर मानस आदि अनेक प्रकार के प्रियवियोग, अप्रियसंयोग, इष्ट का अलाभ आदि रूप सांसारिक दुःखों से नित्यभीरुता संवेग है।^{१८७}

६. त्याग—पर की प्रीति के लिए अपनी वस्तु देना त्याग है।^{१८८}

७. तप—अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर मार्गाधिरोधी कामक्लेश आदि करना तप है।^{१८९}

८. साधुसमाधि—जैसे भण्डार में आग लगने पर वह प्रयत्नपूर्वक शान्त

१७७. पद्य० ३२।१५४, १४।९४-९५। १७८. पद्य० ३२।१५५।

१७९. वही, ३२।१५६।

१८०. वही, १४।५२।

१८१. वही, ३२।१५६।

१८२. वही, २।१९२।

१८३. तत्त्वार्थवार्तिक ६।२४ की व्याख्या वार्तिक नं० १।

१८४. वही, वार्तिक, २।

१८५. वही, वार्तिक, ३।

१८६. वही, वार्तिक, ४।

१८७. वही, वार्तिक, ५।

१८८. वही, वार्तिक, ६।

१८९. वही, वार्तिक, ७।

की जाती है उसी तरह अनेक द्रव शीलों से समृद्ध मुनिगण के तप आदि में यदि कोई विघ्न उपस्थित हो जाय तो उसका निवारण करना साधु समाधि है ।^{१९०}

९. वैयावृत्य—गुणवान् साधुओं पर आवे हुए कष्ट रोग आदि को निर्वोष विधि से हटा देना, उनकी सेवा आदि करना बहु उपकारी वैयावृत्य है ।^{१९१}

१०, ११, १२, १३ अर्हताचार्यबहुभुतप्रवचनभक्ति—केवलज्ञान श्रुत-ज्ञान आदि दिव्यनेत्रधारो परहितप्रवण और स्वसमयविस्तारनिश्चयज्ञ अर्हन्त आचार्य और बहुभुतों में तथा श्रुतदेवता के प्रसाद से कठिनता से प्राप्त होने वाले मोक्षमहल की सीढ़ी रूप प्रवचन में भावविशुद्धिपूर्वक अनुराग रखना अर्हद्-भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुभुतभक्ति और प्रवचन भक्ति है ।^{१९२}

१४. आवश्यकपरिहाणि—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रति-क्रमण, प्रत्याख्यान और कार्योत्सर्ग इन छह आवश्यक क्रियाओं को यथाकाल बिना नागा किए स्वाभाविक क्रम में करने रहना आवश्यकपरिहाणि है । सर्व सावध योगों का त्याग करना, चित्त को एकग्ररूप से ज्ञान में लगाना सामायिक है । तीर्थङ्करों के गुणों का स्तवन चतुर्विंशतिस्तव है । मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक खड्गासन या पद्मासन से चार बार शिरोन्नति और आवर्त पूर्वक वन्दना होती है । कृत दोषों की निवृत्ति प्रतिक्रमण है । भविष्य में दोष न होने देने के लिए सन्तुष्ट होना प्रत्याख्यान है । अमुक समय तक शरीर से भस्म का त्याग करना कार्योत्सर्ग है ।^{१९३}

१५. मार्गप्रभावना—महोपवास आदि सम्यक् तपों से तथा सूर्य प्रभा के समान जिनपूजा से सङ्गम का प्रकाश करना मार्गप्रभावना है ।^{१९४}

१६. प्रवचन वस्सलस्व—जैसे गाय अपने बछड़े से अकृत्रिम स्नेह रखती है उसी तरह धार्मिक जन को देखकर स्नेह से ओतप्रोत हो जाना प्रवचन वस्सलस्व है ।^{१९५}

तीर्थकरस्व की प्राप्ति से युक्त जीव बहुत अधिक प्रभावशाली हो जाता है । पद्मचरित में कहा गया है कि जिनेन्द्रदेव के आसनस्थ होने पर देव तिर्यच और मनुष्यों से रोचित एक योजन की पृथ्वी स्वर्णमयी हो जाती है । भगवान् के आठ प्रातिहार्य और चौबीस महातिशय प्रकट होते हैं तथा उनका रूप हजार सूर्यों के समान दीदीप्यमान एवं नेत्रों को सुख देने वाला होता है ।^{१९६} सुरेन्द्र असुरेन्द्र,

१९०. तत्त्वार्थवार्तिक ६।२४ की व्याख्या वार्तिक नं० ८ ।

१९१. वही, वार्तिक, ९ ।

१९२. वही, वार्तिक, १० ।

१९३. वही, वार्तिक, ११ ।

१९४. वही, वार्तिक, १२ ।

१९५. वही, वार्तिक, १३ ।

१९६. पद्य० १४।२६१, २६२ ।

अमरेन्द्र तथा चक्रवर्ती उनकी कीर्ति का गान करते हैं। वे शुद्धशील के धारक देदीप्यमान, गर्वरहित और समस्त संसार रूपी सघन ज्ञेय को गोषाद के समान दृष्ट कराने वाले तेज से सहित, क्लेश रूपी कठिन बन्धन को तोड़ने वाले, मोक्ष रूपी स्वार्थ से सहित अनुपम निर्विघ्न मुख स्वरूप वाले होते हैं।^{१९७} उनके जन्म लेते ही संसार में सर्वत्र ऐसी शान्ति छा जाती है कि सब रोगों का नाश करती है तथा दारिद्र्य को बढ़ाती है। उत्तम विभूति से युक्त, हर्ष से भरे हुए इन्द्र, जिनका कि आसन कम्पायमान होता है, आकर मेघ के शिखर पर भगवान् का अभिषेक करते हैं। राज्य अवस्था में वे बाह्य चक्र के द्वारा बाह्य शत्रुओं को तथा मुनि होने पर ध्यान रूपी चक्र के द्वारा अन्तरंग शत्रु को जीसते हैं।^{१९८}

आठ प्रातिहार्य—तीर्थङ्कर भगवान् के आठ प्रातिहार्य, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, ये हैं^{१९९}

१. अशोकवृक्ष का होना जिसके देखने से शोक नष्ट हो जाय।
२. रत्नमय सिंहासन।
३. भगवान् के सिर पर तीन छत्र फिरना।
४. भगवान् के पीछे भामण्डल का होना।
५. भगवान् के मुख से निरक्षरी दिव्यध्वनि का होना।
६. देवों द्वारा पुष्पवृष्टि होना।
७. यक्ष देवों द्वारा चौंसठ चैवरों का ढोला जाना।
८. दुन्दुभि बाजों का बजना।

चौंतीस अतिशय—आठ प्रातिहार्यों के अतिरिक्त ३४ अतिशयों के होने का भी उल्लेख ऊपर आया है। चौंतीस अतिशय निम्नलिखित हैं। इनमें से १० अतिशय जन्म से होते हैं, १० केवलज्ञान होने पर होते हैं और १४ देवकृत होते हैं।

जन्म के १० अतिशय^{२००}—१. अत्यन्त सुन्दर शरीर, २. अतिसुगन्धमय शरीर, ३. पसेवरहित शरीर, ४. मल सूत्र रहित शरीर, ५. हित भित प्रिय वचन बोलना, ६. अतुल्य बल, ७. दुग्ध के समान सफेद रुधिर, ८. शरीर में १००८ लक्षण, ९. समच्चतुस्रसंस्थान शरीर अर्थात् शरीर के अंगों की बनावट स्थिति चारों तरफ से ठीक होना, १०. वज्रवृषभनाराचसंहनन।

केवलज्ञान के १० अतिशय^{२०१}—१. एक सौ योजन तक सुभिक्ष अर्थात्

१९७. पद्य० ८०।१३१-१३३।

१९८. पद्य० ८०।१४-१६।

१९९. बाबू ज्ञानचन्द्र जैन (लाहौर) : जैन बाल गुटका, प्रथम भाग, पृ० ६८।

२००. वही, पृ० ६५, ६६।

२०१. वही, पृ० ६६, ६८।

जहाँ केवली भगवान् रहते हैं उससे चारों ओर सौ-सौ योजन तक सुभिन्न होता है । २. आकाश में गमन, ३. चार मुखों का दिखाई पड़ना । ४. अथवा का अभाव, ५. उपसर्ग का अभाव, ६. कवल (घास) अहार का न होना, ७. समस्त विद्याओं का स्वागोपना, ८. केशों और नाखूनों का न बढ़ना, ९. नेत्रों की पलक नहीं टिमकाना, १०. छाया रहित शरीर ।

देवकृत १४ अतिशय^{२०५}—

१. भगवान् की शर्त मागधी भाषा का होना ।
२. समस्त जीवों में परस्पर मित्रता होना ।
३. दिशा का निर्मल होना ।
४. आकाश का निर्मल होना ।
५. सब ऋतु के फल-फूल धान्यादि का एक ही समय फलना ।
६. एक योजन तक की पृथ्वी का दर्पणवत् निर्मल होना ।
७. चले समय भगवान् के चरण कमल के तले स्वर्ण कमल का होना ।
८. आकाश में जय-जय ध्वनि का होना ।
९. मन्द सुगन्ध पवन का चलना ।
१०. सुगन्धमय जल की वृष्टि होना ।
११. पवनकुमार देवों द्वारा भूमि का कण्टक रहित करना ।
१२. समस्त जीवों का आनन्दमय होना ।
१३. भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना ।
१४. छद्म, क्षमर, ध्वजा, घण्टादि अष्ट मंगल द्रव्यों का साथ रहना ।

द्रव्य निरूपण

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल के भेद में द्रव्य छह प्रकार^{२०३} के हैं ।

धर्म—गमन में परिणत पुद्गल और जीवों को गमन में सहकारी धर्मद्रव्य है—जैसे मल्लियों के गमन में जल सहकारी है । गमन न करते हुए पुद्गल व जीवों को धर्मद्रव्य गमन नहीं कराता ।^{२०४}

अधर्म—छहरे हुए पुद्गल और जीवों को ठहरने में सहकारी कारण अधर्म-

२०२. बाबू ज्ञानचन्द्र जैन : बाल गुटका, प्रथम भाग, पृ० ६७ ।

२०३. पृ० १०५।१४२ ।

२०४. गडपरिणयान धम्मो पुग्गलजीवाण गमण सहयारी ।

तोयं जह मच्छाणं अच्छंता नेव सो नेई ॥१७॥—द्रव्यसंग्रह ।

द्रव्य है। जैसे—छाया यावियों को ठहरने में सहकारी है। गमन करते हुए जीव तथा पुद्गलों को अधर्म द्रव्य नहीं ठहराता।^{२०५}

आकाश—जो जीव आदि द्रव्यों को अवकाश देता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।^{२०६} लोकाकाश और अलोकाकाश इन दो भेदों से आकाश दो प्रकार का है। धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव जितने आकाश में हैं वह लोकाकाश है और आकाश से बाहर अलोकाकाश है।^{२०७}

लोक रचना—यह लोक अलोकाकाश के मध्य में स्थित दो मृदंगों के समान है, नीचे बीच में तथा ऊपर की ओर स्थित है। इस तरह तीन प्रकार से स्थित होने के कारण इस लोक को त्रिलोक अथवा त्रिविध कहते हैं।

अधोलोक—मेरु पर्वत के नीचे मात भूमियाँ हैं। उनमें पहली भूमि रत्न-प्रभा है, जिसके अम्बहुल भाग को छोड़कर (नीचे के भाग को छोड़कर) ऊपर के दो भागों में भवनवासी तथा व्यन्तरदेव रहते हैं। उस रत्नप्रभा के नीचे महभय उत्पन्न करने वाली शर्करा प्रभा, बालुका प्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमः प्रभा और महातमः प्रभा नाम की छह भूमियाँ हैं जो अत्यन्त तीव्र दुःख देने वाली हैं तथा निरन्तर धोर अन्धकार से व्याप्त रहती हैं।^{२०८} इन नारकियों का तथा उनके दुःख का वर्णन पद्मचरित में अति विस्तार से किया गया है।

मध्यलोक—मध्यलोक में जम्बूद्वीप को आदि लेकर शुभ नाम वाले असंख्यात द्वीप और लवण समुद्र को आदि लेकर असंख्यात समुद्र कहे गए हैं।^{२०९} ये द्वीप समुद्र पूर्व के द्वीप समुद्र से दूने विस्तार वाले हैं, पूर्व-पूर्व को घेरे हुए हैं

२०५. ठाणजुक्षण अधम्मो पुग्गलजोवाणठाण सहघारी ।

छाया जह पहियाणं अण्छंता णेव सो धरई ॥ द्रव्यसंग्रह । गाथा १८

२०६. अवगासदाण जोरमं जीवादीणं वियाण आयासं ।

जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ द्रव्यसंग्रह गाथा, १९ ।

२०७. धम्मभावम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिधे ।

आयासे सो लोको ततो परदो अलोगुत्ति ॥ द्रव्यसंग्रह गाथा, २० ।

२०८. पद्म० १०९।११२, २६।७७-७६ ।

२०९. वही, २६।७८-९४, १४।२७-३३, ६।३०८-३१०, १०५।११३-१३८ ।

२१०. जम्बूद्वीप भुज्जा द्वीपा लवणाद्याश्च सागरोः । प्रकीर्तिताः शुभानाम
संख्यात परिवर्जिताः पद्म० १०५।१५४ ।

जम्बूद्वीप लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप समुद्राः ॥ तत्त्वार्थसूत्र ३।७ ।

तथा बलय के आकार हैं । सबके बीच में जम्बूद्वीप है ।^{२११} जम्बूद्वीप मेरुपर्वत रूपी ताम्रि से सहित है, गोलाकार है तथा एक लाख योजन विस्तार वाला है, इसकी परिधि त्रिगुनी से कुछ अधिक कही गई है ।^{२१२}

उस जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, श्वमी और शिखरी ये छह कुलाचल हैं । ये सभी समुद्र के जल से मिले हैं तथा इन्हीं के द्वारा जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्रों का विभाग हुआ है ।^{२१३} यह भरतभोज है इसके आगे हैमवत्, इसके आगे हरि, इसके आगे विदेह, इसके आगे रम्यक, इसके आगे हैरण्यवत और इसके आगे अहिरावत ये सात क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं । इसी जम्बूद्वीप में गंगा आदि नदियाँ हैं । घातकीखण्ड तथा पुष्करार्थ में जम्बूद्वीप से द्वीप-द्वीपी रचना है ।^{२१४} भरत और ऐरावत ये दोनों क्षेत्र वृद्धि और हानि से सहित हैं । अन्य क्षेत्रों की भूमियाँ व्यवस्थित हैं अर्थात् उनमें कालचक्र

२११. पूर्वदि द्विगुणविष्कम्भाः पूर्वविक्षेपवर्तिनः ।

—बलमाकृत योर्मध्ये जम्बूद्वीपः प्रकीर्तितः पद्य० १०५।१५५ ।

द्विद्विष्वक्कम्भाः पूर्व-पूर्व परिक्षेपिणो बलमाकृतयः ॥ तत्त्वार्थसूत्र ३।८ ।

२१२. मेरुनाभिरसौवृत्तो लक्षयोजनमानमृत् । त्रिगुणं तत्परिक्षेपादधिकं परिकीर्तितम् ।

—पद्य० १०५।१५६ ।

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।

तत्त्वार्थसूत्र ३।९ ।

२१३. पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेयाः कुलपर्वताः ।

हिमवांश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च ॥

श्वमी च शिखरी चेति समुद्रजलसंगताः ।

वास्यान्धेभिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च । —पद्य० १०५।१५७-१५८ ।

‘तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलश्वमिशिखरिणो वर्षावर पर्वताः’ तत्त्वार्थसूत्र ३।११ ।

२१४. भरताख्यमिदं क्षेत्रं ततो हैमवतं हरिः ।

विदेहो रम्यकाख्यं च हैरण्यवतमेव च

ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगाः ।

प्रोक्तं द्विधातिकोश्लेषे पुष्कराख्यं च पूर्वकम्, पद्य० १०५।१५९-१६० ।

‘भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावत वर्षाः क्षेत्राणि ॥

—तत्त्वार्थसूत्र ३।१०

गङ्गासिधुरोहिद्वोहितास्याहरिद्वरिकान्ताभीताग्रीतोदानारोमरकान्ता

‘सुवणरूपकुलारक्तारकतादाः सरितस्तन्मध्यगाः’ तत्त्वार्थसूत्र, ३।२०

द्विधातिकोश्लेषे ३।२३ ।

का परिवर्तन नहीं होता।^{२१४*} मनुष्य मातृपोतर पर्वत के इसी ओर रहते हैं, इनके आर्य और म्लेच्छ की अपेक्षा मूल में दो भेद हैं तथा इनके उत्तर भेद असंख्यात हैं। देवकुल, उत्तरकुल रहित विदेहक्षेत्र तथा भरत और ऐरावत इन तीन क्षेत्रों में कर्मभूमि है और देवकुल, उत्तरकुल तथा अन्य क्षेत्र भोगभूमि के हैं। मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य की और जलन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। तिर्यचों की उत्कृष्ट तथा जलन्य स्थिति मनुष्यों के समान तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त की है।^{२१५}

ऊर्ध्वलोक—ज्योतिषी, भवनवासी, व्यन्तर और कल्पवासी के भेद से देव चार प्रकार के होते हैं। संसार के प्रत्येक प्राणी इनमें जन्म लेते हैं।^{२१६} व्यन्तर देवों के किन्नर आदि आठ भेद हैं।^{२१७} व्यन्तर और ज्योतिषी देवों का निवास ऊपर मध्यलोक में है। इनमें ज्योतिषी देवों का चक्र देवोप्यमान कान्ति का धारक है, मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देता हुआ निरन्तर चलता रहता है तथा सूर्य

२१४.* भरतैरावतक्षेत्रे वृद्धिहानिसमन्विते । शेषास्तु भूमयः प्रोक्तास्तुल्य-
कालव्यवस्थिताः,—पद्म० ३।४७ 'भरतैरावतयोर्वृद्धिहानौ षट्समया-
म्याभूत्सपिण्यवसर्पिणीम्याम् ।'—तत्त्वार्थसूत्र ३।२७ ।

२१५. विदेहकर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा देवोत्तरकुलभोगक्षेत्रे शेषाश्च भूमयः
—पद्म० ५।१६२ । आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतो पराः । विज्ञेया-
स्तत्प्रभेदाश्च संख्यातपरिवर्जिताः ॥—पद्म० १०५।१६१ ।

त्रिपल्यान्तर्मुहूर्तं तु स्थितौ नृणां परावरे । मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमु-
पेयुषाम्,—पद्म० ५।१६३ ।

'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ।'—तत्त्वार्थसूत्र ३।३५ ।

आर्या म्लेच्छाश्च ३।३६ त० सूत्र ।

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्रदेवकुलउत्तरकुलभ्यः—त० सूत्र ३।३७,
'नृस्थितौ परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते' ३।३८, त० सूत्र । तिर्यग्योनिजानां
च ३।३९ त० सूत्र ।

२१६. ज्योतिषा भावना कल्पा व्यन्तराश्च चतुर्विधाः ।

देवा भवन्ति योग्येन कर्मणा जन्तवो भवे ॥

—पद्म० ३।८२, देवाश्चतुर्णिकायाः ४।१, तत्त्वार्थसूत्र ।

२१७. 'व्यन्तराः किन्नरकिपुरुषमहोरगयन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः' ।

—तत्त्वार्थसूत्र ४।११ ।

'अष्टभेदजुषो वेद्या व्यन्तराः किन्नरादयः' ॥

—पद्म० १०५।१६४ ।

२५८ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

और चन्द्रमा उसके राजा हैं ।^{२१८} ज्योतिष्चक्र के ऊपर संख्यात हजार योजन व्यतीत कर कल्पवासी देवों का महालोक शुरू होता है यही ऊर्ध्वलोक कहलाता है ।^{२१९} ऊर्ध्वलोक में सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मा, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत और आरण अच्युत ये जाठ युगलों में १६ स्वर्ग हैं । उनके ऊपर ग्रंथेयक कहे गये हैं जिनमें अहमिन्द्ररूप से उत्कृष्ट देव स्थित हैं । (नव ग्रंथेयक के आगे नव अनुदिश हैं और उनके ऊपर) विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि में पाँच अनुत्तर विमान हैं ।^{२२०}

सिद्धक्षेत्र—इस लोकत्रय के ऊपर उत्तम देवीयमान तथा महाआश्चर्य से युक्त सिद्धक्षेत्र है जो कर्म बन्धन से रहित जीवों का स्थान है । ऊपर ईशप्राम्दार नाम की यह शुभ पृथ्वी है जो ऊपर की ओर किए हुए धवलछत्र के आकार है, शुभरूप है, जिसके ऊपर पुनर्भव से रहित, महासुख सम्पन्न तथा स्वात्मपणित से मुक्त सिद्ध परमेश्वरी विराजमान हैं ।^{२२१}

२१८. पद्म० १०५।१६५। मेरुप्रदक्षिणाः नित्यगतयो नृलोके, ४।१३ तत्त्वार्थसूत्र ।

२१९. पद्म० १०५।१६६, वैमानिकाः ॥ तत्त्वार्थसूत्र ४।१६ ।

२२०. सौधर्मस्थित्यैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्तितः ।

ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसंज्ञकः ॥

ब्रह्मा ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्तितः ।

कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा ॥

शतारोऽथ सहस्रारः कल्पश्चानतशब्दितः ।

प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणाच्युतो ॥

नवग्रंथेयकास्ताम्यामुपरिष्ठात्प्रकीर्तिताः ।

अहमिन्द्रतया येषु परमास्त्रिदशाः स्थिताः ॥

विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽथापराजितः ।

सर्वार्थनिद्धिनामा च पंचैतेऽनुत्तराः स्मृताः ॥

—पद्म० १०५।१६७-१७१ ।

उपर्युपरि—तत्त्वार्थसूत्र ४।१८ ।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारैश्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो नवसु ग्रंथेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च—तत्त्वार्थसूत्र ४।१९ ।

२२१. पद्म० १०५।१७३-१७४ ।

काल—जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों के ढेर समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं वे कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं।^{२२१*} इन्द्रियों के द्वारा उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता फिर भी महात्माओं ने बुद्धि में दृष्टान्त की कल्पना कर उसका निरूपण किया है। कल्पना करो कि एक योजन प्रमाण आकाश सब ओर से दीवारों से वेष्टित है तथा तत्काल उत्पन्न हुए भेद के बालों के अप्रभाय से भरा हुआ है। यह गर्त किसने खोदा किसने भरा एक-एक रोम-खण्ड निकाला जाय, जितने समय में खाली हो जाय उतना समय एक पल्य कहलाता है। दश कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है और दश कोड़ाकोड़ी सागरों की एक अवसर्पिणी होती है। उतने ही समय की उत्सर्पिणी भी होती है। जिस प्रकार गुलपत्र और कुष्णपत्र निरन्तर बदलते रहते हैं उसी प्रकार काल द्रव्य के स्वभाव से अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल निरन्तर बदलते रहते हैं। इन दोनों में से प्रत्येक के छह-छह भेद होते हैं। संसर्ग में आने वाली वस्तुओं के कौर्य आदि में भेद होने से इन छह-छह भेदों की विशेषता सिद्ध होती है। अवसर्पिणी का पहला भेद सुषमा-सुषमा काल कहलाता है। इसका चार कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। तीसरा भेद सुषमा-दुषमा कहा जाता है। इसका दो कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। चौथा भेद दुःखमा सुखमा कहलाता है। इसका प्रमाण ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। पाँचवा भेद दुःखमा और छठवाँ भेद दुःखमा-दुःखमा कहलाता है। इसका प्रत्येक का प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष है।^{२२२}

जीव—जैव और द्रव्य स्वभावों में जीव का जो अपनी शक्ति से परिणमन होता है वह उपयोग कहलाता है, उपयोग ही जीव का स्वरूप है।^{२२३} आत्मा के चैतन्यगुण में सम्बन्ध रखने वाले परिणाम को उपयोग कहते हैं। उपयोग जीव का तद्भुत लक्षण^{२२४} है। उपयोग ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का है।^{२२५} यह जीवराशि अनन्त है। इसका ध्य नहीं होता है। जिस प्रकार बालू के कणों का अन्त नहीं है, आकाश का अन्त नहीं है और चन्द्रमा तथा सूर्य की किरणों का अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशि का भी अन्त नहीं है।^{२२६}

२२१*. लोवायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हू इक्किक्का ।

रयणाण रासी इवते कालाणू असंखदब्बाणि ॥ द्रव्यसंग्रह-गाथा २२ ।

२२२. पृष्ठ० २०।७३-८२ ।

२२३. वही, १०५।१४७ ।

२२४. पृ० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र, पृ० ३४ ।

२२५. पृष्ठ० १०५।१४७ ।

२२६. वही, ३१।१६ ।

ज्ञानोपयोग—ज्ञानोपयोग के मति श्रुत अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान तथा कुपति, कृश्रुत और कुअवधि ये आठ भेद हैं।^{२२७}

दर्शनोपयोग—चक्षुदर्शन, अक्षुदर्शन, अर्वाक्ष दर्शन, केवलदर्शन ये चार भेद दर्शनोपयोग के हैं।

जीव के भेद—जीव के संसारी और मुक्त की अपेक्षा दो भेद हैं।^{२२८} संसारी जीव के संज्ञी (मन सहित) और असंज्ञी (मनरहित) भेद से दो प्रकार हैं।^{२२९} जीव शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म और बादर (स्थूल) के भेद से दो प्रकार के हैं।^{२३०} इन्हीं जीवों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक (आहारादि की अपूर्णता) की अपेक्षा भी दो भेद हैं।^{२३१} गति, काय, योग, वेद, लेश्या, कषाय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुणस्थान, निसर्गज एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन, नामादि निक्षेप और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगों की अपेक्षा जीव तत्त्व के अनेक भेद होते हैं।^{२३२}

गति—गतिनामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय को अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। उसके चार भेद हैं—नरक गति, निर्यगति, मनुष्यगति, देवगति।^{२३३} पञ्चचरित में इन गतियों के दुःखों का निरूपण किया गया है।^{२३४}

इन्द्रिय—इन्द्रियों की अपेक्षा जीव के पाँच भेद हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय।^{२३५}

काय—जाति नाम कर्म के अविनाभावो (जाति नाम कर्म के होने पर होने वाले और न होने पर न होने वाले) त्रस और स्यावरनाम कर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय (अवस्था) को काय कहा है।^{२३६} पृथ्वी, अल, अग्नि, वायु

२२७. पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र, पृ० ३४।

२२८. संसारिणो विमुक्ताश्च—पद्मचरित १०५।१४८, 'संसारिणो मुक्ताश्च',
—तत्त्वा० २।१०।

२२९. सचित्तविचेतसः—पद्य० १०५।१४८।

२३०. सूक्ष्मबादरभेदेन जेमास्ते च शरीरतः—पद्य० १०५।१४५।

२३१. पर्याप्ता हतरे चैव पुनस्ते परिकीर्तिताः—पद्म० १०५।१४५।

२३२. पद्म० २।१५९-१६०।

२३३. गोम्मटसार जीवकांड, पृ० ५९।

२३४. पद्म० २।१६५, १६६, १४।३५, २।१६४, २६।७८-९४।

२३५. पद्य० १४।३७।

२३६. गोम्मटसार जीवकांड गाथा, १८०।

और वनस्पति ये पाँच स्थावर कहलाते हैं, शेष प्रस कहलाते हैं । इन छहों को मिलाकर जीव के छह निकायें हैं ।^{२३७}

योग—काय, वचन और मन की क्रिया योग है ।^{२३८} पातञ्जल योगदर्शन में चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा गया है । (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) जैन ग्रन्थों में भी इसका यह अर्थ कहीं-कहीं देखने को मिलता है । लेकिन यहाँ इसका अर्थ यही है जो ऊपर दिया गया है ।

वेद—पुरुष, स्त्री और नपुंसक वेद कर्म के उदय से भाव पुरुष, भावस्त्री, भाव नपुंसक होता है । और नामकर्म के उदय से द्रव्य पुरुष, द्रव्य स्त्री और द्रव्य नपुंसक होता है । यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होता है, परन्तु कहीं-कहीं विषम भी होता है ।^{२३९}

लेश्या—जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे उसको लेश्या कहते हैं ।^{२४०} तत्त्वार्थवातिक में कषाय के उदय से अनुरक्त योगप्रवृत्ति को लेश्या कहा है ।^{२४१} यह कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल के भेद से ६ प्रकार की होती है ।

कषाय—जो आत्मा को कर्ष अर्थात् चारों गतियों में भटकाकर दुःख दे ।^{२४२} क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं ।^{२४३}

ज्ञान—जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक (भूत, भविष्यत् और वर्तमान) समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा पर्यायों (अवस्थाओं) को जाने उसे ज्ञान कहते हैं ।^{२४४} यह गति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल के भेद से पाँच प्रकार का है । इनमें आदि के दो परोक्षज्ञान हैं शेष तीन प्रत्यक्ष ।^{२४५}

दर्शन—सामान्य विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश का ग्रहण न करके केवल

२३७. पद्य० १०५।१४९, १०५।१४१ ।

२३८. 'कायवाङ्मनःकर्म योगः'—तत्त्वार्थसूत्र ६।१ ।

२३९. मोक्षशास्त्र—पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, (पृ० १०६) ।

२४०. गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा, ४८८ ।

२४१. तत्त्वार्थवातिक २।६ वाँ सूत्र, वातिक नं० ८ ।

गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा, ४८९ ।

२४२. पं० पन्नालाल जी : मोक्षशास्त्र पृ० १६ ।

२४३. पद्य० १४।११० ।

२४४. गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा, २९८ ।

२४५. मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्,—तत्त्वार्थसूत्र, १।९ तत्प्रमाणे, वही, १।१०, 'आद्ये परोक्षम् प्रत्यक्षमन्यत्' १।११ (तत्त्वार्थसूत्र) ।

सामान्य अंश का जो निर्विकल्प रूप से ग्रहण होता है, उसे दर्शन^{२४३} कहते हैं।

चारित्र्य—चारित्र्य का विवेचन इसी अध्याय में मुनि धर्म के प्रकरण में किया जा चुका है।

गुणस्थान—गुणों के स्थानों को अर्थात् विक्रम की क्रमिक अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। जैनशास्त्र में गुणस्थान इस पारिभाषिक शब्द का अर्थ आत्मिक शक्तियों के आविर्भाव की उनके शुद्ध कार्यरूप में परिणत होते रहने की सरलतम भावापन्न अवस्थाओं से है।^{२४४} मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यग्दर्शित, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्त विरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्म साम्प्रदाय, उपशान्तमोह, शीघ्रमोह, सयोग कैवलजिन तथा अयोगकेवलो इस प्रकार १४ गुणस्थान हैं।^{२४५}

निसर्गज एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन—सम्यग्दर्शन के प्रकरण में इसी अध्याय में इनका विश्लेषण किया गया है।

नामादि न्यास—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार न्यास (निक्षेप) कहे गये हैं।^{२४६} इनके द्वारा जीवतत्त्व के अनेक भेद होते हैं।^{२४७} प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित हुए लोकव्यवहार को निक्षेप कहते हैं।^{२४८}

नाम निक्षेप—गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया की अपेक्षा के बिना ही इच्छा-नुसार नाम रखने को नाम निक्षेप कहते हैं। जैसे किसी का नाम जिनदत्त है। यद्यपि वह जिनदेव के द्वारा नहीं दिया गया है तथापि लोकव्यवहार चलाने के लिए उनका नाम जिनदत्त रख लिया गया है।^{२४९}

स्थापना निक्षेप—वायु, काष्ठ, पाषाण आदि की प्रतिमा में यह वह है इस प्रकार की कल्पना करना स्थापना निक्षेप है। जैसे पार्श्वनाथ की प्रतिमा में पार्श्व-नाथ की कल्पना करना या सत्तरंज की गोटों में बादशाह आदि की कल्पना करना।^{२५०}

द्रव्य निक्षेप—भूत, भविष्यत् पदार्थ की मुख्यता लेकर वर्तमान में कहना

२४६. गोम्मटसार जीवकांड गाथा, ४८१।

२४७. पं० सुखलाल जी : दर्शन और चिन्तन, पृ० २६३।

२४८. गोम्मटसार जीवकांड गाथा, ९।१०।

२४९. 'नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्यासः', तत्त्वार्थसूत्र १।५।

२५०. पद्य० २।१६०।

२५१. मोक्षशास्त्र, पृ० ५ (टीकाकार पं० पन्नालाल जी माहित्याचार्य)।

२५२. वही, पृ० ५।

२५३. वही, पृ० ५।

द्रव्य निक्षेप है। जैसे कभी पूजा करने वाले पुरुष को वर्तमान में पुजारी कहना और सविष्यत् में राजा होने वाले राजपुत्र को राजा कहना।^{२५४}

भावनिक्षेप—केवल वर्तमान पर्याय की मुख्यता से अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप कहना भावनिक्षेप है। जैसे काष्ठ को काष्ठ अवस्था में काष्ठ, आग होने पर आग और कोयला हो जाने पर कोयला कहना।^{२५५}

अनुयोग—आगम में सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्प-बहुत्व^{२५६} इन आठ अनुयोगों का उपाय सामान्य है या सुगन्धान और अर्गभाजों की अपेक्षा किया जाता है। यहाँ उनका सामान्य निर्देश किया जाता है—

सत्—वस्तु के अस्तित्व को सत् कहते हैं।

संख्या—वस्तु के परिणामों की गिनती को संख्या कहते हैं।

क्षेत्र—वस्तु के वर्तमान काल के निवास को क्षेत्र कहते हैं।

स्पर्शन—वस्तु के तीनों काल सम्बन्धी निवास को स्पर्शन कहते हैं।

काल—वस्तु के ठहरने की मर्यादा को काल कहते हैं।

अन्तर—वस्तु के विरहकाल को अन्तर कहते हैं।

भाव—औपशमिक क्षाणिक आदि परिणामों को भाव कहते हैं।

अल्पबहुत्व—अन्य पदार्थ की अपेक्षा किसी वस्तु को हीनाधिकता वर्णन करने को अल्पबहुत्व कहते हैं।

भव्य और अभव्य जीव—जीवों के भव्य और अभव्य इस प्रकार दो भेद और भी हैं। जिस प्रकार सड़क आदि अनाज में कुछ तो ऐसे होते हैं जो पक जाते हैं—सीस जाते हैं और कुछ तो ऐसे होते हैं कि प्रयत्न करने पर भी नहीं पकते हैं—नहीं सीसते हैं। उसी प्रकार जीवों में भी कुछ जीव तो ऐसे होते हैं जो कर्म नष्ट कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो प्रयत्न करने पर भी सिद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते। जो सिद्ध हो सकते हैं वे भव्य कहलाते हैं और जो सिद्ध नहीं हो सकते वे अभव्य कहलाते हैं। इस तरह भव्य और अभव्य की अपेक्षा जीव के दो भेद हैं।^{२५७} भव्य की सामर्थ्य और अभव्य की असामर्थ्य का पञ्चचरित में विस्तार से उल्लेख किया गया है।^{२५८}

२५४. पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र, पृ० ६।

२५५. वही, पृ० ६।

२५६. सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्लक्ष्यवृत्तेश्च ।—तत्त्वार्थसूत्र १।८।

सदाश्चक्षुःश्रोत्राद्युपयोगेऽपि भिद्यते चेतना पुनः ।—पद्य० २।१६०।

मोक्षशास्त्र (टीका० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य) पृ० ८।

२५७. पद्य० २।१५६, १५७, १०५।२०३।

२५८. पद्य० १०५।२६०, २६१, १०५।२००-२०२; ३१।१३, १४, ७।३१७।

जीव की दशा उत्तम, मध्यम और जघन्य की अपेक्षा तीन प्रकार की कही गई है। अमध्य जीव की दशा जघन्य है, भव्य की मध्यम है और सिद्धों की उत्तम है।^{२५९} मध्यम भव्य प्राणी शीघ्र ही महान् आनन्द अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं पर जो असमर्थ हैं, किन्तु मार्ग को जानते हैं वे कुछ विश्राम करने के बाद महाआनन्द प्राप्त कर पाते हैं। जो मनुष्य मार्ग को न जानकर दिन में सौ-सौ योजन तक गमन करता है वह भटकता हो रहता है तथा चिरकाल तक इष्ट स्थान को प्राप्त नहीं कर सकता।^{२६०}

सिद्ध जीव—पञ्चचरित में सिद्ध जीव तथा उनके गुणों का बहुत विस्तार दे रखा गया है। वे हैं : अनन्त दर्शक, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख यह चतुष्टय आत्मा का निज स्वरूप है और वह सिद्धों में विद्यमान है। ये तीन लोक के शिखर पर स्वयं विराजमान हैं, पुनर्जन्म से रहित हैं,^{२६१} संसार सागर से पार हो चुके हैं, परमकल्याण से युक्त हैं, मोक्षसुख के आधार हैं, जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं,^{२६२} जो अवगाहन गुण से युक्त हैं, अमृतिक हैं, सूक्ष्म-त्वगुण से रहित हैं, गुरुता और लघुता से रहित हैं तथा असंख्यात प्रदेशी हैं।^{२६३} अनन्त गुणों के आधार हैं, क्रमादि से रहित हैं, आत्मस्वरूप की अपेक्षा समान हैं, आत्म प्रयोजन को अन्तिम सीमा को प्राप्त कर चुके हैं (कृतकृत्य^{२६४} हैं) जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं, गमनागमन से विमुक्त^{२६५} हैं, जिनके समस्त क्लेश नष्ट हो चुके हैं,^{२६६} जो सब प्रकार की सिद्धियों का धारण करने वाले हैं,^{२६७} जिन्होंने उपमा रहित नित्य शुद्ध, आत्माश्रय, उत्कृष्ट और अत्यन्त दुरासद् निर्वाण का साम्राज्य प्राप्त कर लिया है।^{२६८} ऐसे सिद्ध जीव होते हैं। सिद्ध भगवान् का जो सुख है वह नित्य है, उत्कृष्ट है, आबाधा से रहित है, अनुपम है और आत्मस्वभाव से उत्पन्न है।^{२६९} चक्रवर्ती सहित समस्त मनुष्य और इन्द्र सहित समस्त देव अनन्तकाल से जिस सांसारिक सुख का उपभोग करते हैं वह कर्मरहित सिद्ध भगवान् के अनन्तवें सुख की भी सदृशता को प्राप्त नहीं होता, ऐसा सिद्धों का सुख है।^{२७०}

२५९. पद्य०, ३१।११।

२६१. वही, ४८।२००, २०१।

२६२. वही, ४८।२०३।

२६५. वही, ४८।२०५।

२६७. वही, ४२।२०७।

२६९. वही, १०५।१८१ तत्त्वार्थसूत्र, २।३३।

२७०. वही, १०५।१८६-१८७।

२६०. वही, १४।२२५, २२६।

२६२. वही, ४८।२०२।

२६४. वही, ४८।२०४।

२६६. वही, १०५।१९४।

२६८. वही, ८०।१८।

संसारी जीवों का जन्म—संसारी जीवों का जन्म तीन प्रकार का होता है—

१. गर्भजन्म, २. उपपाद जन्म, ३. सम्मूर्च्छन जन्म ।

गर्भजन्म—पोतज, अण्डज तथा जरायुज के गर्भजन्म होता है ।^{२७१}

जरायुज—जाल के समान मांस और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली से लिपटे हुए जो जीव पैदा होते हैं उन्हें जरायुज कहते हैं । जैसे—गाय, भैंस, मनुष्य आदि ।^{२७२}

अण्डज—जो जीव अण्डे से उत्पन्न हों उन्हें अण्डज कहते हैं जैसे—बील, कबूतर आदि ।^{२७३}

पोत—पैदा होते समय जिन जीवों पर किसी प्रकार का आवरण नहीं हो और जो पैदा होते ही चलने फिरने लग जायें उन्हें पोत कहते हैं जैसे—हरिण, सिंह आदि ।^{२७४}

उपपाद जन्म—देवों और नारकीयों के उपपाद जन्म होता है ।^{२७५}

सम्मूर्च्छन जन्म—गर्भ और उपपाद जन्म वालों से बाकी बचे हुए जीवों के सम्मूर्च्छन जन्म होता है ।^{२७६}

शरीर—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तीजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं ।^{२७७} जो शीर्ण हों वे शरीर हैं । यद्यपि पद्मादि पदार्थ भी विघटनशील हैं परन्तु उनमें नाम कर्मोदय निमित्त नहीं है, अतः उन्हें शरीर नहीं कह सकते । जिस प्रकार गच्छतीति गौः यह विग्रह रुढ़ शब्दों में भी किया जाता है उसी तरह शरीर का भी विग्रह समझना चाहिए ।^{२७८}

औदारिक—उदार अर्थात् स्थूल प्रयोजन वाला या स्थूल जो शरीर वह औदारिक है ।^{२७९}

वैक्रियिक—अणिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्य के कारण अनेक प्रकार के छोटे बड़े रूप जिसका प्रयोजन है वह वैक्रियिक है ।^{२८०} पञ्चचरित में भी

२७१. पद्म० १०५।१५० ।

२७२. मोक्षशास्त्र, पृ० ४५ (टीकाकार प० पन्नालाल जो साहित्याचार्य) ।

२७३. वही, पृ० ४५ ।

२७४. वही, पृ० ४५ ।

२७५. पद्म० १०५।१५० 'देवनारकाणामुपपादः'—तत्त्वार्थसूत्र २।३४ ।

२७६. पद्म० १०५।१५१ 'शेषाणं सम्मूर्च्छनम्'—तत्त्वार्थसूत्र २।३५ ।

२७७. वही, १०५।१५२ (पद्म०) ।

२७८. औदारिकवैक्रियिकाहारकर्तृजसकार्मणानि शरीराणि—तत्त्वार्थसूत्र २।३६,

तत्त्वार्थवार्तिक, २।३६ की व्याख्या, वार्तिक १, २, ३ ।

२७९. वही, वार्तिक ५ ।

२८०. वही, वार्तिक ६ ।

सोभमादि स्वर्ग के देवों के अणिमा आदि बाढ सिद्धियों की प्राप्ति का संकेत किया गया है ।^{२८१}

आहारक—प्रमत्तसंयत मुनि के द्वारा सूक्ष्म तत्त्वज्ञान और असंयम के परिहार के लिए जिसकी रचना की जाती है वह आहारक है ।^{२८२}

तैजस—जो दीप्ति का कारण होता है, वह तैजस है ।^{२८३}

कार्मण—कर्मों के समूह को या कार्य को कार्मण कहते हैं ।^{२८४}

ये पाँचों शरीर आगे-आगे सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं ।^{२८५} औदारिक, वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित हैं ।^{२८६} तैजस और कार्मण ये दो शरीर उत्तरोत्तर अनन्त गुणित हैं ।^{२८७} तैजस और कार्मण ये दो शरीर अनादि सम्बन्ध से युक्त हैं अर्थात् जीव के साथ अनादि काल से लगे हैं ।^{२८८} उपयुक्त पाँचों शरीरों में से एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं ।^{२८९}

मनुष्य गति और उसकी सार्थकता

जीवों को मनुष्य पद प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है,^{२९०} इससे भी अधिक दुर्लभ सुन्दर रूप का पाना है, इससे अधिक दुर्लभ धन समृद्धि का पाना है, उससे अधिक दुर्लभ आर्थकुल में उत्पन्न होना है, उससे अधिक दुर्लभ विद्या का समागम है, उससे अधिक दुर्लभ हेयोपादेय पदार्थ को जानना है और उससे अधिक दुर्लभ धर्म का समागम होता है ।^{२९१} जो मनुष्य भव पाकर भी धर्म नहीं करते हैं मानो उनकी हथेली पर आया अमृत नष्ट हो जाता है ।^{२९२} जो मनुष्य संयम उत्पत्ति के योग्य समय में भी उनका मनोमार्ग वास्तव में वैसा

२८१. पद्य० १४।२८६ ।

२८२. तत्त्वार्थवातिक २।३६ की व्याख्या वातिक ७ ।

२८३. तत्त्वार्थवातिक ८ ।

२८४. वही, वातिक ९ ।

२८५. पद्य० १०५।१५२ । परं परं सूक्ष्मम्—तत्त्वार्थसूत्र २।३७ ।

२८६. वही, १०५।१५३ । प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्—तत्त्वार्थसूत्र २।३८ ।

२८७. वही, १०५।१५३ । अनन्तगुणे परे—तत्त्वार्थसूत्र २।३९ ।

२८८. वही, १०५।१५३ । अनादिसम्बन्धे च २।४१ तत्त्वार्थसूत्र,

२८९. वही, १०५।१५३ । तदादीनिभाज्यानि युगपदेकस्याचतुर्भ्यः ।

तत्त्वार्थसूत्र २।४३ ।

२९०. वही, १४।१५९, ६।२१६ ।

२९१. वही, ५।३३३-३३४ ।

२९२. वही, २।१६७ ।

ही रहा आता है, क्योंकि मनुष्य का अपना चरित्र ही उसे आत्मकार्य में प्रेरित करता है।^{२९३} यह मनुष्यक्षेत्र भयंकर संसार सागर में मानों रत्नद्वीप है। इसकी प्राप्ति बड़े दुःख से होती है। इस रत्नद्वीप में आकर बुद्धिमान् मनुष्य को अवश्य ही नियम रूपी रत्न ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वर्तमान शरीर को छोड़कर पर्यायान्तर में अवश्य जाना होगा। इस संसार में जो विषयों के लिए धर्मरूपी रत्नों का चूर्ण करता है वह वैसा ही है जैसा कि कोई मूल प्राप्त करने के लिए मणियों का दूर्ण करता है।^{२९४} गुण और व्रत से समृद्ध तथा नियमों का पालन करने वाले प्राणी को यदि यह संसार से पार होने की इच्छा करता है तो उसे प्रमाद रहित होना चाहिए। जो बुद्धि के दरिद्र मनुष्य छोटे कार्य नहीं छोड़ते हैं वे जन्मान्ध मनुष्य के समान संसार में भटकते रहते हैं।^{२९५} अनेक प्रकार के व्यापारों से जिनका हृदय आकुल हो रहा है तथा इसी के कारण जो प्रतिदिन दुःख का अनुभव करता रहता है ऐसे प्राणी को आयु हथेली पर रखे रत्न के समान नष्ट हो जाती है।^{२९६}

मैं यह कर चुका, यह करता हूँ और यह आगे करूँगा, इस प्रकार मनुष्य निश्चय कर लेता है पर कभी सलैंग भी इस बात का कोई विचार नहीं करता है। मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि प्राणी कौन काम कर चूके और कौन काम नहीं कर पाये। वह तो जिस प्रकार सिंह मृग पर आक्रमण करता है उसी प्रकार असमय में आक्रमण कर बैठती है।^{२९७} सूखे ईंधन से अग्नि की तुष्टि जिस प्रकार नहीं हो सकती, नदियों के जल से समुद्र तृप्त नहीं होता उसी प्रकार विषयों के आस्वाद से प्राणी तृप्त नहीं हो सकता।^{२९८} जल में डूबते हुए त्विन्न मनुष्य के समान विषय रूपी आमिष से मोहित हुआ चतुर मनुष्य भी मोहान्धीकृत होकर मन्दता को प्राप्त हो जाता है।^{२९९} जिस प्रकार निर्धन मनुष्य किसी तरह दुर्लभ खजाना पाकर यदि प्रमाद करता है तो उसका खजाना व्यर्थ बला जाता है। इसी प्रकार यह प्राणी किसी तरह दुर्लभ मनुष्य भव पाकर विषय स्वाद के लोभ में पड़ यदि प्रमाद करता है तो उसकी मनुष्य पर्याय व्यर्थ चली जाती है।^{३००} तात्पर्य यह कि मनुष्य गति पाकर धर्म में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

चारों गतियों में परिभ्रमण—जीवों के जीवन की नष्ट कर प्राणी कर्मों

२९३. पद्य० ५६।३६।

२९५. वही, १४।३५१-३५२।

२९७. वही, १०५।२५३-२५४।

२९९. वही, १०६।१००।

२९४. वही, १४।२३४, २३५, २३६।

२९६. पद्य० १११।२१।

२९८. वही, १०६।९९।

३००. वही, १०६।९८।

के भार से इतने भारी हो जाते हैं कि वे पानी में लौहपिण्ड के समान सीधे नरक में परिभ्रमण करते हैं।^{३०१} जो वचन से तो मानो मधु झराते हैं पर हृदय में विष के समान दासण हैं। जो इन्द्रियों के बश में स्थित हैं और बाहर से जिनका मन त्रैकालिक सन्ध्याओं में निमग्न रहता है^{३०२}, जो योग्य आचार से रहित हैं और इच्छानुसार मनचाही प्रवृत्ति करते हैं, ऐसे दुष्ट जीव तिर्यच योनि में भटकते^{३०३} हैं। कितने ही लोग धर्म करके उसके प्रभाव से स्वर्ग में देवियों आदि के परिवार से मानसिक सुख प्राप्त करते हैं।^{३०४} वही से च्युत होकर विष्ठा तथा मूत्र से लिप्त विलंबिलाते कीड़ों से युक्त दुर्गन्धित एवं अत्यन्त दुःमह गर्भ-गृह को प्राप्त होते हैं।^{३०५} गर्भ में यह प्राणी घमड़े के जाल से आच्छादित रहते हैं, पित्त, श्लेष्मा आदि के बीच में स्थित रहते हैं और मालद्वार से च्युत माता द्वारा उपभुक्त आहार के द्रव का आस्वादन करते हैं।^{३०६} वही उनके समस्त अंग संकुचित रहते हैं और दुःख के भार से पीड़ित रहते हैं, वहाँ रहने के बाद मनुष्य पर्याय प्राप्त करते हैं।^{३०७} यदि कोई प्राणी मृदुता और सरलता से सहित होते हैं तथा स्वभाव से ही सन्तोष प्राप्त करते हैं तो वे मनुष्य होते हैं।^{३०८} मनुष्य में भी मोही जीव परम सुख के कारणभूत कल्याणमार्ग को छोड़कर क्षाणिक सुख के लिए पाप करते हैं।^{३०९} कोई अपने पूर्व उपाजित कर्म के अनुसार आर्य होते हैं, कोई श्लेष्म होते हैं, कोई धनाढ्य होते हैं और कोई अत्यन्त दरिद्र होते हैं।^{३१०} इस प्रकार मनुष्यगति में होने वाले दुःखों का पद्मचरित में विस्तार से वर्णन किया गया है।^{३११} कुछ ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो षोडश कारण भावनाओं का चिन्तन कर तीनों लोकों में मोक्ष उत्पन्न करने वाले तीर्थङ्कर पद प्राप्त करते हैं और कितने ही लोग निरन्तराय होकर सम्मयदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की आराधना में तत्पर रहते हुए दो तीन भवों में ही अष्ट कर्म रूपी कलंक से मुक्त हो जाते हैं।^{३१२} वे फिर सुप्त जीवों के उत्कृष्ट एवं निरुपम स्थान को पाकर अनन्तकाल तक निर्वाण उत्तम सुख का उपभोग करते हैं।^{३१३}

३०१. पद्म० ५।३३० ।

३०३. वही, ५।३३२ ।

३०५. वही, ५।३३६ ।

३०७. वही, ५।३३८ ।

३०९. वही, १४।४० ।

३११. वही, २।१६९-१९१ ।

३१३. वही, २।१९४ ।

३०२. वही, ५।३३१ ।

३०४. वही, ५।३३५ ।

३०६. वही, ५।३३७ ।

३०८. वही, १४।३९ ।

३१०. वही, १४।४१ ।

३१२. वही, २।१९२, १९३ ।

पुद्गल—जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और वर्ण पाया जाय वह पुद्गल द्रव्य है।

धर्म सिद्धांत—अन्तरादि २४ ऐतरेय द्रव्य आठ कर्तों से जिसकी आत्मीय शक्ति छिप गई है ऐसा यह प्राणी निरन्तर भ्रमण कर रहा है।^{३१४} अनेक लक्ष योनियों में नाना इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले सुख दुःख का सब अनुभव करता रहता है।^{३१५} कर्मों का जब जैसा तीव्र मन्द या मध्यम उदय जाता है वैसा रागी द्वेषी अथवा मोही होता हुआ कुम्हार के चक्र के समान चतुर्गति में घूमता रहता है।^{३१६} इस प्रकार चारों गतियों में घूमने का वर्णन पद्मचरित के चौदहवें अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है।^{३१७} यह जीव अशुभ संकल्प से दुःख पाता है, शुभ संकल्प से सुख पाता है और अष्ट कर्मों के क्षय से मोक्ष प्राप्त करता है।^{३१८} इस प्रकार इस प्राणी का बन्धु अथवा शत्रु उसका कर्म ही है।^{३१९} इसलिए जिनके साथ अवश्य ही वियोग होता है ऐसे भोगों का त्याग कर देना चाहिए।^{३२०} मैं दीक्षा लेकर पृथ्वी पर कब विहार करूँगा और कब कर्मों को नष्ट कर सिद्धालय में पहुँचूँगा, जो निर्मल चित्त का धारी मनुष्य प्रतिदिन ऐसा विचार करता है, कर्म भयभीत होकर हो मानो उसकी संगति नहीं करते हैं। कोई-कोई गृहस्थ प्राणी सात आठ भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और उसम हृदय को धारण करने वाले कितने ही मनुष्य तीक्ष्ण तप कर दो तीन भव में ही मुक्त हो जाते हैं।^{३२१}

अष्टकर्म—ऊपर अष्टकर्मों का निर्देश हुआ है,^{३२२} ये अष्टकर्म निम्नलिखित हैं^{३२३}—१. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. भोग, ८. अंतराय।

ज्ञानावरण—जो ज्ञान को आवृत करे या जिसके द्वारा ज्ञान का आवरण किया जाय वह ज्ञानावरण है।

दर्शनावरण—जो आत्मा के दर्शन गुण को आवृत करे या जिसके द्वारा दर्शन गुण का आवरण किया जाय वह दर्शनावरण है।

३१४. पथ० १४।१८।

३१५. वही, १४।१९।

३१६. वही, १४।२०।

३१७. वही, १४।२१-५०।

३१८. वही, १४।५१।

यहाँ कई स्थानों पर तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार वर्णन है।

३१९. पद्म० ११२।९०।

३२०. पद्म० ११२।९१।

३२१. वही, ४।२२२-२२४।

३२२. वही, १४।१८।

३२३. तत्त्वार्थसूत्र, ८।४, व्याख्या तत्त्वार्थवार्तिक ८।४।२।

वेदनीय—जो अनुभव किया जाय वह वेदनीय है अर्थात् जिसके द्वारा सुख दुःख का अनुभव हो वह वेदनीय है ।

मोहनीय—जो मोहन करे या जिसके द्वारा मोह हो वह मोहनीय है ।

आयु—जिससे नरकादि पर्यायों (अवस्थाओं) को प्राप्त हो वह आयु है ।

नाम—जो आत्मा का नरकादि रूप से नामकरण करे या जिसके द्वारा नामकरण हो वह नाम है ।

गोत्र—उच्च और नीच रूप शब्द व्यवहार जिससे हो वह गोत्र है ।

अन्तराय—जिसके द्वारा दाता और पात्र आदि के बीच में विघ्न आवे वह अन्तराय है अथवा जिसके रहने पर दाता आदि दानादि क्रियाएँ न कर सकें, दानादि को दृष्टि से पराङ्मुख हो जायें वह अन्तराय है ।

घाति तथा अघाति कर्म—त्रैलोक्य आगम में घाति तथा अघाति कर्मों का वर्णन आता है । पद्मचरित में भी इनका निर्देश किया गया है ।^{३२४} ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घाती (जीव के अतीत की सद्भाव रूप गुणों के घातक) हैं और दोष चार कर्म अघातिया (प्रतिजीवी-अभाव रूप गुणों के घातक) हैं । घातिकर्म का नाश कर केवलज्ञान और अघाति कर्म का नाश कर मोक्ष होता है ।^{३२५}

प्रमाण और नय

प्रमाण—पदार्थ के समस्त विरोधी धर्मों का एक साथ वर्णन करना प्रमाण है ।^{३२६}

नय—पदार्थ के किसी एक धर्म का सिद्ध करना नय है ।^{३२७} इसी अभिप्राय का खुलासा करते हुए कहा है कि प्रमाण से जाने हुए पदार्थ के एकदेश को ग्रहण करने वाले ज्ञाता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं ।^{३२८} इस अभिप्राय के द्वारा ज्ञाता जानी हुई वस्तु के एकदेश को स्पर्श करता है । वस्तु अनन्त धर्म वाली है । प्रमाणज्ञान उसे समग्रभाव से ग्रहण करता है, उसमें अंशविभाजन करने की ओर उसका लक्ष्य नहीं होता । जैसे यह घड़ा है इस ज्ञान में प्रमाण घड़े की अखण्डभाव से उसके रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि अनन्त गुण धर्मों का

३२४. पद्म० २१।४५, २२२।७१ ।

३२५. पद्म० १२२।६९-७१, २१।४५ ।

३२६. 'प्रमाण' सकलविधो, पद्म० १०५।१४३ ।

३२७. नयोऽवयवसाधनम्, पद्म० १०५।१४३ ।

३२८. 'प्रमाणगृहीतार्थैकदेशग्राहो प्रमातुरभिप्रायविशेषो नयः ।'

'नयो ज्ञातुरभिप्रायः' (लघीयस्त्रयाविसंग्रह का० ५२)

विभाजन करके पूर्ण रूप में जानता है, जबकि कोई भी नय उसका विभाजन करके रूपवान् घटः रसवान् घटः आदि रूप में उसे अपने अपने अभिप्राय के अनुसार जानता है। प्रमाण और नय ज्ञान की ही वृत्तियाँ हैं, दोनों ज्ञानात्मक पर्यायें हैं। जब ज्ञाता की सकल के ग्रहण की दृष्टि होती है तब उसका ज्ञान प्रमाण होता है और जब उसी प्रमाण से गृहीत वस्तु को खंडशः ग्रहण करने का अभिप्राय होता है तब वह अंशग्राही अभिप्राय नय कहलाता है। प्रमाण ज्ञान नय के लिए भूमि तैयार करता है।^{३२९}

अनेकान्त

जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति में पद्मचरित के नवें सर्ग में कहा गया है कि आत्मा रागादि विकारों से शून्य है ऐसा उपदेश आपने सबके लिए दिया है। आत्मा है, परलोक है इत्यादि आस्तिक्यवाद का भी उपदेश आपने दिया है, संसार के समस्त पदार्थ क्षणिक हैं इस पक्ष का निरूपण जहाँ आपने किया है वहाँ (द्रव्याधिक नय से) समस्त पदार्थों को नित्य भी आपने दिखाया है।^{३३०} हमारी आत्मा समस्त पर पदार्थों से पृथक् अखण्ड एक द्रव्य है ऐसा कथन आपने किया है, आप सबके समक्ष अनेकान्त धर्म का प्रतिपादन करने वाले हैं।^{३३१} यहाँ अनेकान्त शब्द विशेष महत्त्व का है। जैन दर्शन में वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक (अनेक धर्मात्मक) निर्णय किया गया है। इसलिए जैनदर्शन का मुख्य सिद्धान्त अनेकान्तवाद है। अनेकान्त का अर्थ है परस्पर विरोधी दो तत्त्वों का एकत्र समन्वय। तात्पर्य यह कि जहाँ दूसरे दर्शनों में वस्तु को केवल सत् या असत्, सामान्य या विशेष, नित्य या अनित्य, एक या अनेक और भिन्न या अभिन्न स्वीकार किया गया है वहाँ जैनदर्शन में वस्तु को सत् और असत्, सामान्य और विशेष, नित्य और अनित्य, एक और अनेक तथा भिन्न और अभिन्न स्वीकार किया गया है और जैनदर्शन की यह मान्यता परस्पर विरोधी दो तत्त्वों के एकत्र समन्वय को सूचित करती है।^{३३२}

सप्तभङ्गी

सप्तभङ्गी पदार्थ के निरूपण करने का एक मार्ग है। रवियेण ने इसे प्रशस्त मार्ग कहा है।^{३३३} ऊपर नय का विवेचन किया गया है। ये नय द्रव्याधिक और पर्यायाधिक दो प्रकार के होते हैं। उनमें द्रव्याधिक नय प्रमाण के विषय-भूत द्रव्यपर्यायात्मक तथा एकानेकात्मक अर्थ का विभाग करके पर्यायाधिक नय

३२९. पं० महेंद्रकुमार न्यायाचार्य, जैनदर्शन, पृ० ४४१।

३३०. पद्य० ९।१८३।

३३१. पद्य० ९।१८४।

३३२. न्यायदीपिका, पृ० ३ (प्राक्कथन)।

३३३. पद्य० १०५।१४३।

के विषयभूत भेद को गौण करता हुआ उसकी स्थिति मात्र को स्वीकार कर अपने विषय द्रव्य को अभेद रूप व्यवहार करता है। अन्य नय के विषय का निषेध नहीं करता। इसीलिए दूसरे नय के विषय को अपेक्षा करने वाले नय को सत् नय, सम्यक् नय अथवा सामान्य नय कहा है। जैसे यह कहना कि सोना लाओ। यहाँ द्रव्याधिक के अभिप्राय से सोना लाओ कहने पर लाने वाला कड़ा, कुण्डल, कैमूर इनमें से किसी को भी ले आने से कुतार्थ हो जाता है, क्योंकि सोने रूप से कड़ा आदि में कोई भेद नहीं है पर जब पर्यायाधिक नय की विवक्षा होती है तब द्रव्याधिक नय को गौण करके प्रवृत्त होने वाले पर्यायाधिक नय की अपेक्षा से कुण्डल लाओ यह कहने पर लाने वाला कड़ा आदि के लाने में प्रवृत्त नहीं होता, क्योंकि कड़ा आदि पर्याय से कुण्डल पर्याय भिन्न है। अतः द्रव्याधिक नय की विवक्षा से सोना कथंचित् एक रूप ही है, पर्यायाधिक नय के अभिप्राय से कथंचित् अनेक रूप ही है और क्रम से दोनों नयों के अभिप्राय से कथंचित् एक और अनेक रूप है। एक साथ दोनों के अभिप्राय से कथंचित् अवक्तव्य स्वरूप है, क्योंकि एक साथ प्राप्त हुए दो नयों से विभिन्न स्वरूप वाले एकत्व अथवा अनेकत्व का विचार अथवा कथन नहीं हो सकता है। जिस प्रकार कि एक साथ प्राप्त हुए दो शब्दों के द्वारा घट के भिन्न स्वरूप वाले रूप और रस इन दो धर्मों का प्रतिपादन नहीं हो सकता अतः एक साथ प्राप्त द्रव्याधिक और पर्यायाधिक दोनों नयों के अभिप्राय से सोना कथंचित् अवक्तव्य स्वरूप है। इस अवक्तव्य स्वरूप को द्रव्याधिक, पर्यायाधिक और द्रव्याधिक पर्यायाधिक इन तीन नयों के अभिप्राय से प्राप्त हुए एकत्वादिक के मिला देने पर सोना कथंचित् एक और अवक्तव्य है, कथंचित् अनेक और अवक्तव्य है तथा कथंचित् एक, अनेक और अवक्तव्य है, इस तरह तीन मयाभिप्राय और हो जाते हैं जिनके द्वारा भी सोने का निरूपण किया जाता है। नयों के कथन करने की इस शैली को ही सप्तभंगी कहते हैं। यहाँ भंग शब्द वस्तु के स्वरूप विशेष का प्रतिपादक है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक वस्तु में नियत सात स्वरूप विशेषों का प्रतिपादन करने वाला शब्द समूल सप्तभंगी है।^{११४}

सर्वज्ञसिद्धि

राजा मछवान् के संवर्त नामक याज्ञक और नारद के बीच हुए वाद-विवाद में नारद द्वारा सर्वज्ञ की सिद्धि अनेक युक्तियों द्वारा की गई है। पूर्वपक्षी के रूप में संवर्त कहता है कि नारद का मत है कि कोई पुरुष सर्वज्ञ बीतराग है किन्तु वह सर्वज्ञ ब्रह्मा आदि होने से दूसरे पुरुष के समान सर्वज्ञ बीतराग सिद्ध

नहीं होता। क्योंकि जो सर्वज्ञ वीतराग है वह वक्ता नहीं हो सकता और जो वक्ता है वह सर्वज्ञ वीतराग नहीं हो^{३३५} सकता। अणुद्ध अर्थात् रागी द्वेषी मनुष्यों के द्वारा कहे हुए वचन मलिन होते हैं और इनसे विलक्षण कोई सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि उसका साधक कोई प्रमाण नहीं पाया जाता।^{३३६}

इसके उत्तर में नारद कहता है कि संवत्स के मत के अनुसार यदि सर्व प्रकार के सर्वज्ञ का अभाव है तो शब्दसर्वज्ञ, अर्थसर्वज्ञ और बुद्धिसर्वज्ञ इस प्रकार सर्वज्ञ के तीन अंग संवत्स में स्वयं अपने-आपमें मिलते हैं।^{३३७} शब्दसर्वज्ञ है वह बाधित होता है।^{३३८} यदि शब्दसर्वज्ञ और बुद्धिसर्वज्ञ तो है पर अर्थसर्वज्ञ कोई नहीं है तो यह कहना नहीं बनता क्योंकि शो आदि^{३३९} समस्त पदार्थों में शब्द अर्थ और बुद्धि तीनों साथ ही साथ देखे जाते हैं।^{३४०} यदि पदार्थ का बिल्कुल अभाव है तो उसके बिना बुद्धि और शब्द कहाँ टिकेंगे। इस प्रकार का अर्थ बुद्धि और वचन के व्यतिक्रम को प्राप्त हो जायगा।^{३४१} बुद्धि में जो सर्वज्ञ का व्यवहार होता है वह गौण है और गौण व्यवहार सदा मुख्य की अपेक्षा करके प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार चित्र के लिए सिंह कहना मुख्य सिंह की अपेक्षा रखता है उसी प्रकार बुद्धिसर्वज्ञ वास्तविक सर्वज्ञ की अपेक्षा रखता है।^{३४२} इस अनुमान से सर्वज्ञ नहीं है इस प्रतिज्ञा में विरोध आता है।^{३४३}

हमारे मत में सर्वज्ञ का सर्वथा अभाव नहीं माना गया है।^{३४४} पृथ्वी में जिसकी महिमा व्याप्त है ऐसा यह सर्वदर्शी सर्वज्ञ कहाँ रहता है इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि दिव्य ब्रह्मपुर में आकाश के समान निर्मल आत्मा सुप्रतिष्ठित है।^{३४५} तुम्हारे इस आगम से भी प्रतिज्ञावाक्य विरोध को प्राप्त होता है। यदि सर्वथा सर्वज्ञ का अभाव होता तो तुम्हारे आगम में उसके स्थान आदि की चर्चा क्यों की जाती? और इस प्रकार साध्य अर्थ के अनेकान्त हो जाने पर अर्थात् कथंचित् सिद्ध हो जाने पर वह हमारे लिए सिद्ध साधन है क्योंकि हम भी तो यही कहते हैं।^{३४६}

सर्वज्ञ के अभाव में जो वक्तृत्व हेतु दिया गया है वह वक्तृत्व तीन प्रकार का होता है—सर्वथा अयुक्त वक्तृत्व, युक्त वक्तृत्व और सामान्य वक्तृत्व।

३३५. पद्य० ११।१६५।

३३७. पद्य० ११।१७२।

३३९. पद्य० ११।१७४।

३४१. वही, ११।१७६।

३४३. वही, ११।१७७।

३३६. पद्य० ११।१६६।

३३८. वही, ११।१७३।

३४०. वही, ११।१७५।

३४२. वही, ११।१७६।

३४४. वही, ११।१७८।

उनमें से सर्वथा अयुक्त वक्तृत्व तो बनता नहीं है क्योंकि प्रतिवादी के प्रति वह सिद्ध नहीं है। यदि स्याद्वाद सम्मत वक्तृत्व लेते हो तो तुम्हारा हेतु असिद्ध हो हो जाता है क्योंकि इससे निर्दोष वक्ता की सिद्धि हो जाती है। आपके (जैमिनि आदि के) वेदार्थ वक्ता हम लोगों को भी दृष्ट नहीं है। वक्तृत्व हेतु से देवदत्त के समान वे भी सदोष वक्ता सिद्ध होते हैं, इसलिए आपका यह वक्तृत्व हेतु विरुद्ध अर्थ को सिद्ध करने वाला होने से विरुद्ध हो जाता^{३४५} है। प्रजापति आदि के द्वारा दिया गया यह उपदेश प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि वे देव-दत्तादि के समान रागी द्वेषी ही हैं और ऐसे रागी द्वेषी पुरुषों से जो आगम कहा जायेगा वह भी सदोष ही होगा। अतः निर्दोष आगम का तुम्हारे यहाँ अभाव सिद्ध होता है।^{३४६} एक को जिसने जान लिया उसने सद्रूप से अखिल पदार्थ जान लिए। अतः सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि में तुमने दूसरे पुरुष का दृष्टान्त दिया है, उसे तुमने ही साध्यविकल कह दिया है, क्योंकि वह चूँकि एक को जानता है, इसलिए वह सबको जानता है, इसकी सिद्धि हो जाती है।^{३४७} दूसरे तुम्हारे मत से सर्वथा युक्त वचन बोलने वाला पुरुष दृष्टान्त रूप से है नहीं अतः आपको दृष्टान्त में साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखलाना चाहिए।^{३४८} अर्थात् जिस प्रकार आप अन्वय दृष्टान्त में अन्वय व्याप्ति करके घटित बतलाते हैं उसी प्रकार व्यतिरेक व्याप्ति भी घटित करके बतलानी चाहिए तब साध्य की सिद्धि हो सकती है, अन्यथा नहीं। आपके यहाँ सुनकर अदृष्ट वस्तु के विषय में वेद में प्रमाणता आती है, अतः वक्तृत्व हेतु के बल से सर्वज्ञ के विषय में दूषण उपस्थित करने में इसका आश्रय करना उचित नहीं है।^{३४९} अर्थात् वेदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने से उसके बल से सर्वज्ञ की सिद्धि नहीं की जा सकती। सर्वज्ञता के साथ वक्तृत्व का विरोध क्या है? सर्वज्ञता का सुयोग मिलने पर यह पुरुष वक्ता अपने आप हो जाता^{३५०} है। जो बेचारा स्वयं नहीं जानता वह बुद्धि का दरिद्र दूसरों के लिए क्या कह सकता है? इस प्रकार व्यतिरेक और अविनाभाव का अभाव होने से वह साधक नहीं हो सकता।^{३५१}

हमारा पक्ष तो यह है कि जिस प्रकार सुवर्णादि धातुओं का मल बिलकुल क्षीण हो जाता है उसी प्रकार यह अविद्या और रागादिक मल कारण पाकर किसी पुरुष में अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं जिसमें क्षीण हो जाते हैं वही सर्वज्ञ कहलाने

३४५. पद्य० ११।१७९-१८०।

३४७. वही, ११।१८२।

३४९. वही, ११।१८४।

३५१. वही, ११।१८६।

३४६. वही, ११।१८१।

३४८. वही, ११।१८३।

२५०. वही, ११।१८५।

लगता है ।^{३५२} हमारे सिद्धांत से पदार्थों के जो धर्म अर्थात् विशेषण हैं वे अपने से विरुद्ध धर्म की अपेक्षा अवश्य रखते हैं । जिस प्रकार कि उत्पल आदि के लिए जो नील विशेषण दिया जाता है उससे यह सिद्ध होता है कि कोई उत्पल ऐसा भी होता है कि जो नील नहीं है ।^{३५३} इसी प्रकार पुरुष के लिए जो आपके यहाँ असर्वज्ञ विशेषण दिया है वह सिद्ध करता है कि कोई पुरुष ऐसा भी है जो असर्वज्ञ नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ है ।

सृष्टि कर्तृत्वनिषेध

पञ्चवर्ष के एकादश वर्ष में कहा गया है कि ब्रह्मा (स्वयम्भू) के द्वारा लोक की सृष्टि हुई यह कथन विचार करने पर जीर्ण तृण के समान निःसार जान पड़ता है ।^{३५४} सृष्टि कर्तृत्व के विरोध में यहाँ निम्नलिखित युक्तियाँ दी गई हैं—

यदि स्रष्टा कृतकृत्य है तो उसे सृष्टि की रचना करने से क्या प्रयोजन है ? यदि कहो कि क्रीड़ावश वह सृष्टि की रचना करता है तो कृतकृत्य कहाँ रहा ? जिस प्रकार क्रीड़ा का अभिलाषी बालक अकृतकृत्य है उसी प्रकार क्रीड़ा का अभिलाषी स्रष्टा भी अकृतकृत्य कहलायेगा ।^{३५५} स्रष्टा अन्य पदार्थों के बिना स्वयं ही रति को क्यों नहीं प्राप्त हो जाता जिससे सृष्टि निर्माण की कल्पना करनी पड़ी ।^{३५६}

दूसरा प्रश्न यह है कि जब स्रष्टा सृष्टि की रचना करता है तो इसके सहायक करण अधिकरण आदि कौन से पदार्थ हैं ।^{३५७} तीसरी युक्ति यह है कि संसार में सब लोग एक सद्गुण नहीं हैं, कोई सुखी देखे जाते हैं और कोई दुःखी देखे जाते हैं । इससे यह मानना पड़ेगा कि कोई तो स्रष्टा के उपकारी है उन्हें यह सुखी करता है और कोई अपकारी है, उन्हें यह दुःखी करता है ।^{३५८} यदि कहो कि ईश्वर कृतकृत्य नहीं है तो वह कर्मों से परतन्त्र होने के कारण ईश्वर नहीं कहलाएगा । जिस प्रकार कि आप कर्मों के परतन्त्र होने के कारण ईश्वर नहीं हैं ।^{३५९}

३५२. पञ्च० ११।१८७ । दोषावरणयोर्हानिः निःशेषास्त्यतिशायनात् ।

क्वचिद्वथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥

—आचार्य समस्तभद्र : आप्तमीमांसा

३५३. वही, ११।१८८ ।

३५४. वही, ११।२१७ ।

३५५. वही, ११।२१८ ।

३५६. वही, ११।२१९ ।

३५७. वही, ११।२१९ ।

३५८. वही, ११।२२० ।

३५९. वही, ११।२२१ ।

जिस प्रकार रथ, भकान आदि पदार्थ विशिष्ट आकार से सहित होने के कारण किसी बुद्धिमान् मनुष्य के प्रयत्न से रचित होना चाहिए । जिसकी बुद्धि से इन सबकी रचना होती है वही ईश्वर है । इस अनुमान से सृष्टिकर्ता ईश्वर की सिद्धि होती है, यह कहना ठीक नहीं क्योंकि एकान्तवादी का उक्त अनुमान समीचीनता को प्राप्त नहीं है ।^{३६०} विचार करने पर ज्ञान पड़ता है कि रथ आदि जितने पदार्थ हैं वे एकान्त से बुद्धिमान् मनुष्य के प्रयत्न से ही उत्पन्न होते हैं, ऐसी बात नहीं है क्योंकि रथ आदि वस्तुओं में जो लकड़ी आदि पदार्थ अवस्थित हैं वही रथादि रूप उत्पन्न होता है ।^{३६१} जिस प्रकार रथ आदि के बनाने में बड़ई को क्लेश उठाना पड़ता है उसी प्रकार ईश्वर को भी क्लेश उठाना पड़ता होगा । इस प्रकार उसके सुखी होने में बाधा प्रतीत होती है । यथार्थ में तुम जिसे ईश्वर कहते हो वह नामकर्म है ।^{३६२}

ईश्वर सशरीर है या अशरीर ? यदि अशरीर है तो उससे मूर्त पदार्थों का निर्माण सम्भव नहीं है । यदि सशरीर है तो उसका वह विशिष्टाकार बाला शरीर किसके द्वारा रचा गया है ? यदि स्वयं रचा गया है तो फिर दूसरे पदार्थ स्वयं क्यों नहीं रचे जाते ? यदि यह माना जाय कि वह दूसरे ईश्वर के यत्न से रचा गया है तो फिर यह प्रश्न उपस्थित होगा कि उस दूसरे ईश्वर का शरीर किसने रचा ? इस तरह अनवस्था दोष उत्पन्न होगा । इस विसंवाद से बचने के लिए यदि माना जाय कि ईश्वर के शरीर है ही नहीं तो फिर अमूर्तिक होने से वह सृष्टि का रचयिता कैसे होगा ? जिस प्रकार अमूर्त होने से आकाश सृष्टि का कर्त्ता नहीं है उसी प्रकार अमूर्त होने से ईश्वर भी सृष्टि का कर्त्ता नहीं हो सकता । यदि बड़ई के समान ईश्वर को कर्त्ता माना जाय तो वह सशरीर होगा न कि अशरीर ।^{३६३}

यज्ञ का प्रचलन—रावण की दिग्विजय का वर्णन करते हुए पञ्चचरित में कहा गया है कि जब रावण ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया तब उसने सुना कि राजपुर का राजा बड़ा बलवान् है । वह अहंकारी, दुष्टचित्त, लौकिक मिथ्या मार्ग से मोहित और प्राणियों का विध्वंस कराने वाले यज्ञ दीक्षा नामक महापाप को प्राप्त है ।^{३६४} इससे स्पष्ट है कि रावण के समय हिंसामय यज्ञ होते

३६०. पद्य० ११।२२२-२२३ ।

३६१. वही, ११।२२४ ।

३६२. वही, ११।२२५ ।

३६३. वही, ११।२२६-२२८ ।

३६४. वही, ११।८, ९ । रावण ने उत्तर की ओर जाते हुए जो राजपुर के प्रबल नरेश के क्रूर हिंसात्मक यज्ञ की बात सुनी उसका अभिप्राय यौधेय (पंजाब) की राजधानी राजपुर के उसी मारिदत्त नामक राजा से होना चाहिए

थे। जैन परम्परा के अनुसार रावण मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में हुआ था। अतः यज्ञ भी कम-से-कम उतना ही प्राचीन होना चाहिए, क्योंकि उपर्युक्त वर्णन रावण के समय का ही है।

यज्ञ की उत्पत्ति—यज्ञ की उत्पत्ति के विषय में ११वें पर्व (पञ्चचरित) में एक कथा दी गई है जो इस प्रकार है—

अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकुकुल में एक ययाति नामक राजा हुआ। उसके सुरकान्ता नामक स्त्री से वसु नाम का पुत्र हुआ। उसने क्षीरकदम्बक नामक गुरु से शिक्षा पाई।^{३६५} नारद और पर्वत नाम के उसके दो शिष्य और दो भ्राता थे। एक दिन चारण मुनियों के द्वारा प्रबोध को प्राप्त हुआ क्षीरकदम्बक मुनि हो गया।^{३६६} ययाति भी यह समाचार जानकर भ्रमण (जैन-मुनि) हो गया। बाद में वसु सिंहासन पर बैठा।^{३६७} उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आकाश स्फटिक की लम्बी चौड़ी शिला पर उसका सिंहासन स्थित था। अतः तीनों लोकों में ऐसी प्रसिद्धि हुई कि सत्य के बल पर वसु आकाश में निरावार स्थित है।^{३६८} एक दिन नारद और पर्वत के बीच में धर्मचर्चा में 'अजेर्यष्टम्यम्' इस वाक्य पर विवाद छिड़ गया। नारद ने कहा कि इसका अर्थ यह है कि अब उस पुराने धान्य को कहते हैं जिसमें कारण मिलने पर भी अंकुर उत्पन्न नहीं होते। ऐसे धान से ही यज्ञ करना चाहिए।^{३६९} पर्वत ने कहा कि अब नाम पशु का है अतः उनकी हिंसा करनी चाहिए। यही यज्ञ कहलाता है।^{३७०} अपने पक्ष की प्रबलता सिद्ध करने के लिए नारद ने कहा कि हम दोनों कल राजा वसु के पास चलें, वहाँ जो पराजित होगा उसका जीभ काट ली जावे।^{३७१} पर्वत ने जब अपनी माता को यह हाल सुनाया तो उसने कहा कि तूने मिथ्या बात कही है। अनेकों बार व्याख्या करते हुए तेरे पिता से मैंने सुना है कि अब उस धान्य को कहते हैं जिससे अंकुर नहीं होते। तू देशान्तर में जाकर मांस खाने लगा है अतः तूने मिथ्या अहंकार वश यह बात कही है।^{३७२} देशान्तर में जाकर मांस खाने वाली बात से इस बात की पुष्टि होती है उस समय इस देश में मांस नहीं खाया जाता था, अन्य देशों में ही इसका प्रचलन था। यद्यपि अभिप्राय जानती हुई भी पर्वत को

जिसके नरबलि विधान का मार्मिक विवरण सोमदेवकृत यशस्तिलकचम्पू व पुष्पदन्तकृत जसहूरचरित आदि अनेक काव्यों में पाया जाता है।

३६५. पद्य० ११।१३-१४।

३६६. वही, ११।१५, १६, २६।

३६७. वही, ११।३४।

३६८. वही, ११।३५, ३६।

३६९. वही, ११।४२।

३७०. वही, ११।४३।

३७१. वही, ११।४५।

३७२. वही, ११।४८-४९।

३७८ : पञ्चरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

भाता ने गुरु-दक्षिणा के दान का स्मरण दिलाकर वसु को इस बात के लिए राजी कर लिया कि पर्वत के पक्ष में निर्णय देना है।^{३७३} बाद में जब शास्त्रार्थ हुआ तो वसु ने पर्वत के पक्ष में निर्णय दिया जिससे उसका स्फटिक सिंहासन पृथ्वी पर गिर पड़ा।^{३७४} नारद द्वारा समझाए जाने पर भी उसने अपनी कही हुई बात की ही पृष्टि की। अतः वह शीघ्र ही सिंहासन के साथ पृथ्वी में धँस गया।^{३७५} पर्वत लोक में धिक्कार लगी दण्ड प्राप्त कर कुतप करने लगा। इसके बाद वह मर कर प्रबल पराक्रम का धारक राक्षस हुआ।^{३७६} अपने पूर्व जन्म के पराभव का स्मरण करते हुए उसने बदला लेने के लिए कष्टपूर्ण शास्त्र रचकर ऐसा कार्य करने का निश्चय किया जिसमें आसक्त हुए मनुष्य तिर्यच अथवा नरक गति में जावे।^{३७७}

इसके बाद उस राक्षस ने मनुष्य का वेष रखा, बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत पहिना और हाथ में कमण्डलु तथा अक्षमाला आदि लपकरण लिए।^{३७८} भविष्य में जिन्हें दुःख प्राप्त होने वाला था ऐसे मूर्ख प्राणों उसके पक्ष में इस प्रकार पड़ने लगे जिस प्रकार अग्नि में पतंगे पड़ते हैं।^{३७९} वह उन लोगों से कहता था कि मैं वह ब्रह्मा हूँ जिसने चराचर विश्व की रचना की है। यज्ञ की प्रवृत्ति चलाने के लिए मैं स्वयं इस लोक में आया हूँ।^{३८०} मैंने वड़े आदर से स्वयं ही यज्ञ के लिए पशुओं की रचना की है। यथार्थ में यज्ञ स्वर्ग की विभूति प्राप्त कराने वाला है इसलिए यज्ञ में जो हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है।^{३८१} सोमामणि नामक यज्ञ में मदिरा पीना दोषपूर्ण नहीं है और गोसव नामक यज्ञ में अगम्या अर्थात् परस्त्री का भी सेवन किया जा सकता है।^{३८२} मातृमेष यज्ञ में माता का और पितृमेष यज्ञ में पिता का वध वेदों के मध्य में करना चाहिए इसमें दोष नहीं है।^{३८३} कछुए की पीठ पर अग्नि रखकर जुह्वक नामक देव को बड़े प्रयत्न से स्वाहा शब्द का उच्चारण करते हुए साकल्य से संतुष्ट करना चाहिए।^{३८४} यदि इस कार्य के लिए कछुआ न मिले तो एक गज के सिर वाले पीले रंग के शुद्ध ब्राह्मण को पवित्र जल में मुख प्रमाण नीचे उतारे अर्थात् उसका शरीर मुख तक पानी में डूबा रहे ऊपर केवल कछुआ के आकार मस्तक निकला

३७३. पद्य० ११।६२।

३७५. वही, ११।७१।

३७७. वही, ११।७७-७८।

३७९. वही, ११।८२।

३८१. वही, ११।८४।

३८३. वही, ११।८६।

३७४. वही, ११।६८।

३७६. वही, ११।७५-७६।

३७८. वही, ११।७९।

३८०. वही, ११।८३।

३८२. वही, ११।८५।

३८४. वही, ११।८७।

रहे उस मस्तक पर प्रबल अग्नि जलाकर आहुति देना चाहिए।^{३८५} जो कुछ हो चुका है अथवा जो आगे होगा, जो अमृतरस का स्वामी है और जो अन्नजीवी है वह सब पुरुष ही है।^{३८६} इस प्रकार सर्वत्र जब एक ही पुरुष है तब किसके द्वारा कौन मारा जाता है इसलिए यज्ञ में इच्छानुसार प्राणियों की हिंसा करो।^{३८७} यज्ञ में यज्ञ करने वाले को उन जीवों का भांस खाना चाहिए क्योंकि देवता के उद्देश्य से निमित्त होने के कारण वह मांस पवित्र माना जाता है।^{३८८}

यज्ञ की पुष्टि में शास्त्र प्रमाण—नारद और संवर्त के यज्ञविषयक वाद-विवाद में संवर्त कहता है कि अकर्तृक वेद ही तीनों वर्णों के लिए अतीन्द्रिय पदार्थ के विषय में प्रमाण है। उसी में यज्ञ कर्म का कथन किया गया है।^{३८९} यज्ञ के द्वारा अपूर्व नामक ध्रुवधर्म प्रकट होता है जो जीव को स्वर्ग में इष्ट विषयों से उत्पन्न फल प्रदान करता है।^{३९०} वेदों के मध्य पशुओं का जो बध होता है वह पाप का कारण नहीं है क्योंकि उसका निरूपण शास्त्र में किया गया है इसलिए निर्विघ्न होकर यज्ञ आदि करना चाहिए।^{३९१} ब्रह्मा ने पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए ही की है। इसलिए जो जिस कार्य के लिए रचे गये हैं उस कार्य के लिए उनका विधात करने में दोष^{३९२} नहीं है।

वेद के अपौरुषेयत्व का निषेध—ऊपर वेद को जो अकर्तृक कहा गया है उसका खण्डन करते हुए नारद कहता है कि वेद का कोई कर्ता नहीं है, यह बात युक्ति के अभाव में सिद्ध नहीं होती है जबकि वेद का कर्ता है इस विषय में अनेक हेतु सम्भव हैं। जिस प्रकार वृक्षमान घट पटादि पदार्थ सहेतुक होते हैं उसी प्रकार वेद सकर्ता है इस विषय में भी अनेक हेतु सम्भव हैं।^{३९३} चूँकि वेद पद और वाक्यादि रूप हैं तथा विषेय और प्रतिषेध्य अर्थ से युक्त हैं अतः

३८५. वही, ११।८८-८९।

३८६. सर्वं पुरुष एवेवं यद्भूतं यदभविष्यति।

ईशानो योऽमृतरसस्य यदग्नेनातिरोहति, पश० ११।९०।

पुरुष एवेवं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

उतामृतरसमेशानो यदग्नेनातिरोहति ॥ पुरुष सूक्त—ऋग्वेद।

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।

यज्ञस्य भूरयं सर्वस्य तस्माद् यज्ञे बधोऽवस्रः ॥ मनुस्मृति, ५।३९।

३८७. पश० ११।९१।

३८८. वही, ११।९२।

३८९. वही, ११।९६७।

३९०. वही, ११।९६८।

३९१. वही, ११।९६९।

३९२. वही, ११।९७०।

३९३. वही, ११।९८९।

कर्तृमान् हैं।^{३९४} लोक में यह सुना जाता है कि वेद की उत्पत्ति ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि पुरुषों से हुई है अतः इस प्रसिद्धि का दूर किया जाना शक्य नहीं^{३९५} है। यदि तुम्हारा यह विचार हो कि ब्रह्मा आदि वेद के कर्ता नहीं हैं किन्तु प्रवक्ता अर्थात् प्रवचन करने वाले हैं तो वे प्रवचनकर्ता आपके मत से रागद्वेषादि से युक्त ही ठहरेंगे।^{३९६} यदि सर्वज्ञ हैं तो वे अन्यथा उपदेश कैसे देंगे, अन्यथा व्याख्यान कैसे करेंगे, क्योंकि सर्वज्ञ होने से उनका मत प्रमाण है। इस प्रकार सर्वज्ञ की सिद्धि^{३९७} होती है।

वेद शास्त्र नहीं है—संवत् द्वारा यज्ञ के विषय में शास्त्र प्रमाण देने पर भारद्वाज कहता है कि वेदों के मध्य में पशुओं का जो बध होता है वह पाप का कारण नहीं है, यह कहना अयुक्त है उसका कारण सुनो।^{३९८} सर्वप्रथम तो वेद शास्त्र है यही बात शिष्ट। क्योंकि शास्त्र वह कहलाता है जो माता के समान समस्त संसार के लिए हित का उपदेश^{३९९} दे। जो कार्य निर्दोष होता है उसमें प्रायश्चित्त का निरूपण करना उचित नहीं है परन्तु इस याज्ञिक हिंसा में प्रायश्चित्त कहा गया है इसलिए वह सद्योष है। उस प्रायश्चित्त का कुछ वर्णन^{४००} यह है—

जो सोमयज्ञ में सोम अर्थात् चन्द्रमा के प्रतीक रूप सोमलता से यज्ञ करता है उसका तात्पर्य यह होता है कि वह देवों के वीर सोम राजा का हनन करता है, उसके इस यज्ञ की दक्षिणा एक सौ बारह गौ हैं।^{४०१} (गवां शतं द्वादशं वा

३९४. पद्म० ११।१९०।

३९५. पद्म० ११।१९१।

३९६. वही, ११।१९२।

३९७. वही, ११।१९३।

३९८. वही, ११।२०८।

३९९. वही, ११।२०९।

४००. वही, ११।२१०।

४०१. वही, ११।२११।

सोमयज्ञ—सोमरस की आहुति देने से यह सोमयाग कहलाता है। सोमयाग ही आर्यों का प्रसिद्ध याग है। पारसी लोगों में यह प्रचलित था। यह बहुत ही विस्तृत दीर्घकालीन तथा बहुसाधनव्यापी व्यापार है। इसके प्रधानतः कालगणना की दृष्टि से तीन प्रकार हैं—

(१) एकग्रह—एक दिन में साध्य याग।

(२) अहीन—दो दिन से लेकर १२ दिन तक चलने वाला याग।

(३) सत्र—१३ दिनों से प्रारम्भ कर पूरे वर्ष तथा एक हजार वर्षों तक चलने वाला याग। द्वादशाह दोनों प्रकार का होता है—अहीन तथा सत्र। इसके अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्गम इस प्रकार ७ भेद हैं। इनका विशेष विवरण आचार्य

अतिक्रामति'—कात्यायन श्रौतसूत्र १०।२।१० 'अथारम्भं द्वादश द्वादशोभ्यः षड् षड् द्वितीयेभ्यश्चतसश्चतसश्चतसस्तृतीयेभ्यस्तिलस्तिस् इतरेभ्यः' कात्यायन श्रौतसूत्र १०।२।२४) इन एक सौ बारह दक्षिणाओं में से सौ दक्षिणायें देवी के वीर सोम का शोधन करती हैं, दस दक्षिणायें प्राणों का तर्पण करती हैं, ग्यारहवीं दक्षिणा आत्मा के लिए है^{४०२} और जो बारहवीं दक्षिणा है वह केवल दक्षिणा ही है। अन्य दक्षिणाओं का व्यापार तो दोषों के निवारण में होता है।^{४०३} पशुयज्ञ में यदि पशु यज्ञ के समय शब्द करे या अपने अगले दोनों पैरों से छाती पीटे तो हे अनल ! तুম मुझे इससे होने वाले समस्त दोष से मुक्त करो।^{४०४} इत्यादि रूप दोषों के बहुत से प्रायश्चित्त कहे गए हैं इनके विषय में अन्य आगम से प्रकृत में विरोध दिखाई देता है।^{४०५}

अपूर्व धर्म का निषेध—यज्ञ से अपूर्व धर्म व्यक्त होता है, यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि अपूर्व धर्म तो आकाश के समान नित्य है वह कैसे व्यक्त होगा ? और यदि व्यक्त होता ही है तो फिर वह नित्य न रहकर घटादि के समान अनित्य होगा।^{४०६} जिस प्रकार दीपक के व्यक्त होने के बाद रूप का ज्ञान उसका फल होता है उसी प्रकार स्वर्गादि की प्राप्ति रूपी फल भी अपूर्व धर्म के व्यक्त होने के बाद ही होना चाहिए पर ऐसा नहीं है।^{४०७}

यज्ञ सम्बन्धी विविध युक्तियों का खण्डन—ब्रह्मा ने यदि पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए की है तो फिर पशुओं से बोझा होना आदि काम क्यों लिया जाता है ? इसमें विरोध आता है। विरोध ही नहीं, यह तो खोरी कहलावेगी।^{४०८} यदि प्राणियों का वध स्वर्ग प्राप्ति का कारण होता तो थोड़े ही दिनों में यह संसार शून्य हो जाता।^{४०९} उस स्वर्ग के प्राप्त होने से भी क्या लाभ है जिससे फिर ध्युत होना पड़ता^{४१०} है। यदि प्राणियों का वध करने से मनुष्य स्वर्ग

बलदेव उपाध्याय द्वारा 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' नामक ग्रन्थ से जान लेना चाहिए।

४०२. पदम० ११।२१२।

४०३. पदम० ११।२१३।

४०४. पदम० ११।२१५।

४०५. तथा च यत्पशुमयिमकृतोरोदनवाहमा (?) पाषाण्यमेजनसस्तस्माद्विष्व-
स्मान् मुञ्चे त्वनलः ११।२१४ यत्पशुमयिमकृतोरोवा पदिभराहते ।
अग्निमतिस्मोदनसो विश्वस्मात् मुञ्चत्व एनसः (कात्यायन श्रौतसूत्र
२५।९) १३।५।

४०६. पदम० ११।२०६।

४०७. पदम० ११।२०७।

४०८. वही, ११।२२९।

४०९. वही, ११।२३५।

४१०. वही, ११।२३६।

में जाते हैं तो फिर प्राणिबध की अनुमति मात्र से वसु नरक क्यों गया ?^{४११} वसु नरक गया, इसमें प्रमाण यह है कि ब्राह्मण अपने पक्ष के समर्थन में आज भी हे वसो ! उठो स्वर्ग जाओ इस प्रकार जोर-जोर से चिल्लाते हुए अग्नि में आहुति डालते हैं । यदि वसु नरक नहीं गया होता तो उक्त मन्त्र द्वारा आहुति देने की क्या आवश्यकता थी ?^{४१२} चूर्ण के द्वारा पशु बनाकर उसका घात करने वाले लोग भी नरक गए हैं । फिर अशुभ संकल्प से साक्षात् अन्य पशु के बध करने वाले लोगों की तो क्या ही क्या है ।^{४१३}

यज्ञ से देवों को तृप्ति होती है, यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि देवों को तो मनचाहा दिव्य अन्न उपलब्ध होता है । जिन्हें स्पर्श, रस, गन्ध और रूप की अपेक्षा मनोहर आहार प्राप्त होता है उन्हें इस मांसादि घृणित वस्तु से क्या प्रयोजन है ? जो रज और धीर्य से उत्पन्न है, अपवित्र है, कीड़ों का उत्पत्ति स्थान है तथा जिसकी गन्ध और रूप अरयन्त कुत्सित है ऐसे मांस को देव लोग किस प्रकार खाते हैं ?^{४१४, ४१५}

यदि भूखे देव होम किए गए पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त होते हैं तो वे स्वयं ही क्यों नहीं तृप्ति को प्राप्त हो जाते, मनुष्यों के होम को माध्यम क्यों बनाते हैं ?^{४१६} जो देव ब्रह्मलोक से आकर योनि से उत्पन्न होने वाले दुर्गन्ध युक्त शरीर को खाता है उसको यहाँ कौए, भृगाल और कुत्ते के समान कहा गया है ।^{४१७}

आज, सर्पण आदि के द्वारा मृत व्यक्ति की तृप्ति मानना भी ठीक नहीं । ब्राह्मण लोग लार से भीगे हुए अपने मुख में जो अन्न रखते हैं वह मल से भरे पेट में जाकर पहुँचता है । ऐसा अन्न स्वर्गवासियों को किस प्रकार तृप्त करता होगा ।^{४१८}

जिस प्रकार व्याध के द्वारा किया हुआ बध दुःख का कारण होने से पाप-बन्ध का निमित्त होता है उसी प्रकार वेदी के मध्य में पशु का जो बध होता है वह भी दुःख का कारण होने से पापबन्ध का निमित्त है ।^{४१९}

मनुष्य देवों की मान्यता का निषेध—शतपथ ब्राह्मण में दो प्रकार के

४११. पशु० ११।२३७ ।

४१३. वही, ११।२४० ।

४१५. वही, ११।२४७ ।

४१७. वही, ११।२५० ।

४१९. वही, ११।२१६ ।

४१२. वही, ११।२३८-२३९ ।

४१४. पशु० ११।२४५-२४६ ।

४१६. वही, ११।२४९ ।

४१८. वही, ११।२५१ ।

देव माने गये हैं—अग्नि आदि हविर्भोजी तथा मनुष्यदेव (ब्राह्मण) । दोनों के लिए यज्ञ का दो विभाग किया गया है । आहुति देवों के लिए और वक्षिणा मनुष्य-देवों के लिए होती है ।^{४२०} हविर्भोजी देवों द्वारा मांस भक्षण न किए जाने की पुष्टि करने के बाद मनुष्य देवों के विषय में पञ्चचरित में कहा गया है कि लोक में जो मनुष्य देव के रूप में प्रसिद्ध हैं वे साधारणजन के समान ही भोजन के पात्र हैं, अर्थात् भोजन करते हैं, कषाय से युक्त हैं और अवसर पर आंशिक कामादि का सेवन करते हैं । ऐसे देव दान के पात्र कैसे हो सकते हैं । कितनी ही बातों में वे अपने ही भक्त जनों से गये गुजरे अथवा उनके समान हैं तब उन्हें उत्तम फल कैसे दे सकते हैं ।^{४२१} यद्यपि वर्तमान में उनके शुभ कर्मों का उदय देखा जाता है तो भी उनसे अन्य दुःखी मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? ऐसे कुदेवों से मोक्ष की इच्छा करना बालू से तेल प्राप्त करने की इच्छा के समान है । अथवा अग्नि की सेवा से प्यास नष्ट करने की इच्छा के समान है । यदि एक लँगड़ा दूसरे मनुष्य को वेशान्तर में ले जा सकता है तो इन देवों से दूसरे दुःखी जीवों को भी फल की प्राप्ति हो सकती है ।^{४२२}

विविध धार्मिक मान्यतायें

उपपुनर्त मान्यताओं के अतिरिक्त अन्य धार्मिक मान्यतायें भी उस समय थीं, जिसका उल्लेख उनका निषेध करने की दृष्टि से ही यद्यपि पञ्चचरित में हुआ है फिर भी उनसे तत्कालीन मान्यताओं पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है । इन मान्यताओं से युक्त व्यक्तियों या वर्गों को हम निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं—

१. तापस^{४२३(१)}—ये आश्रम में रहते थे । जटायों धारण करते थे । शरीर पर बल्कल धारण करते थे । स्वादिष्ट फलों को खाते थे । इनके अपने मठ भी थे । इन मठों में वे तोता, मैना, हरिण, गाय आदि पालते थे । इनके यहाँ जटाधारी बालक पढ़ने के लिए आया करते थे । कुछ तापस सूखे पत्तों खाकर तथा वायु का पान कर जीवन व्यतीत करते थे । यह अतिथि सत्कार में निपुण थे । अपने आप उत्पन्न होने वाले धान्य इनका आहार था ।^{४२३(२)} बल्कलों की धारण करने के कारण इन्हें बल्कलतापसाः भी कहा गया है । इनकी उत्पत्ति बतलाते हुए कहा गया है कि स्त्री को देखकर उनका चित्त दूषित हो जाता था और जननेन्द्रिय में विकार दिखने लगता था इसलिए उन्होंने

४२०. वैदिक साहित्य और संस्कृति (सृ० सं०), पृ० २०८ ।

४२१. पद्म० १४।८३-८४ ।

४२२. पद्म० १४।८५-८६ ।

४२३(१). वही, ४१।११९ ।

४२३(२). वही, ३३।११२ ।

जननेन्द्रिय को लँगोट से बाँधछादित कर लिया । ये यज्ञोपवीत धारण^{४२४} करते थे । भृगु, अंगिरस, बृहस्पति, कपिल, अत्रि तथा विश्व आदि अनेक ऐसे तापसों का यही नाम आया है ।^{४२५}

२. पृथ्वी पर सोने^{४२६} वाले—ऐसे व्यक्ति जो पृथ्वी पर सोने में धर्म मानते थे ।

३. भोजन त्यागी^{४२७}—जो चिरकाल तक भोजन का त्याग रखते थे ।

४. पानी में डूबे रहने वाले—ऐसे व्यक्ति जो रात दिन पानी में डूबे रहते थे । पद्मचरित में धर्म मानकर ऐसा करने वालों को दुर्गति का पात्र बतलाया है ।^{४२८}

५. भृगुपाती—पहाड़ की चोटी से गिरने वाले ।^{४२९} जो इसी में धर्म मानते थे ।

६. शरीरशोषिणी क्रिया करने वाले—कुछ व्यक्ति ऐसे थे जो शरीर सुखाने वाली क्रियाएँ करते थे, जिनसे मरण भी हो सकता था ।^{४३०} यह भी कुछ लोगों के धर्म साधन का एक प्रकार था । पद्मचरित में इन सबका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि भले ही इस प्रकार की क्रियाएँ करे, लेकिन पुण्य-रहित अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकता ।^{४३१}

७. तीर्थ क्षेत्र में स्नान करने वाले, दान देने वाले तथा उपवास करने वाले—ऐसे व्यक्तियों के विषय में कहा गया है कि यदि ये मांस भोजन करते हैं तो उनके उपर्युक्त कार्य नरक से बचाने में समर्थ नहीं हैं ।^{४३२}

८. शिर मुंडाना (शिरसो मुण्डन), स्नान तथा नाना प्रकार के वेष धारण करना (विलिङ्ग ग्रहण)—इन कार्यों से भी मांसभोजी मनुष्य की रक्षा नहीं हो सकती ।^{४३३}

९. अग्नि प्रवेश करने वाले^{४३४}—पद्मचरित में ऐसे लोगों के विषय में कहा गया है कि जो इस प्रकार के पाप करते हैं वे आत्महित के मार्ग में मूढ़ हैं और दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।^{४३५}

४२४. पद्म० ४।१२७-१२८ ।

४२६. वही, ७।३१९ ।

४२८. वही, ७।३१९ ।

४३०. वही, ७।३१९ ।

४३२. वही, ७।३२० ।

४३४. वही, २६।६८ ।

४३६. वही, १०५।२३८ ।

४२५. पद्म० ४।१२६ ।

४२७. वही, ७।३१९ ।

४२९. वही, १०५।२३८ ।

४३१. वही, ७।३२० ।

४३३. वही, २६।६८ ।

४३५. वही, १०५।२३८ ।

१०. कुर्लिगी—जो गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात रहता है, निरन्तर ऊपर की ओर भुजा उठाये रहता है, माँह में एक बार भोजन करता है, मृगों के साथ जंगल में शयन करता है, भृगुपात करता है, मौन से रहता है और परिग्रह का त्याग करता है वह मिथ्यादर्शन (विपरीत श्रद्धा) से दूषित होने के कारण कुर्लिगी है। ऐसे जीव पैरों से चलकर अगम्य स्थान (मोक्ष) नहीं प्राप्त कर सकते।^{४३७}

११. मस्करी^{४३८}—

१२. कृतान्त, विधि, देव तथा ईश्वर को मानने वाले—ऐसे लोगों के मत के विषय में कहा गया है कि पूर्व पर्याय में जो अच्छा या बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, देव अथवा ईश्वर कहलाता है। मैं पृथक् रहने वाले कृतान्त के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त कराया गया है ऐसा जो मनुष्य का निरूपण करना है वह अज्ञानमूलक है।^{४३९}

१३. इसके अतिरिक्त काल, कर्म, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति को मानने वाले लोगों के अस्तित्व का पता भी पच्यवरित से चलता है।^{४४०}

अधार्मिक क्रियायें—दया, दम, क्षमा, संवर, (कर्मों का आगमन रोकना) का ज्ञान तथा परित्याग का न होना,^{४४१} हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का आश्रय करना,^{४४२} दीक्षा लेकर पाप में प्रवृत्ति करना,^{४४३} धर्म के बहाने सुख प्राप्त करने के लिए छह काय (पृथ्वी, अप, तेज, वायु, तथा वनस्पति काय या अस) के जीवों को पीड़ा पहुँचाना,^{४४४} मारना, ताड़ना, बाँधना, आँकना, तथा दोहना आदि कार्य करना तथा दीक्षा लेकर भी ग्राम, क्षेत्र आदि में आसक्त होना,^{४४५} वस्तुओं के खरीदने बेचने में आसक्त होना, स्वयं भोजनादि पकाना, दूसरे से याचना करना, स्वर्णादि परिग्रह साथ रखना,^{४४६} मर्दन, स्नान, संस्कार, माला, धूप, जिलेपन, आदि का सेवन करना,^{४४७} हिंसा को निर्दोष कहते हुए शास्त्र वेष तथा चरित्र में दोष लगाना।^{४४८} ये सब अधार्मिक क्रियायें कही गई हैं।

कुकृत-सुकृत—अत्यधिक क्रोध करना, परपीडा में प्रीति रखना और रुक्ष (कठोर, रुखे) वचन बोलना यह कुकृत है। विनय, श्रुत, क्षील, दयासहित वचन,

४३७. पद्य० १०५।२३५-२३७।

४३८. पद्य० ४१।६१।

४३९. वही, ९६।९, १०।

४४०. वही, ३१।२१३।

४४१. वही, १०५।२२७।

४४२. पद्य० १०५।२२८।

४४३. वही, १०५।२२९।

४४४. पद्य० १०५।२३०।

४४५. वही, १०५।२३१।

४४५. वही, १०५।२३२।

४४७. वही, १०५।२३३।

४४८. वही, १०५।२३४।

२८६ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

अमात्म्य और क्षमा में सुकृत हैं ।^{४४९} सुकृत के फल से यह जीव उच्च पद तथा उत्तम सम्पत्तियों का भण्डार प्राप्त करता है और पाप के फल से कुशांत सम्बन्धी दुःख को पाता है ।^{४५०}

मुक्ति का साधन—मुक्ति के लिए राग छोड़ना आवश्यक है क्योंकि वैराग्य में आरुढ़ मनुष्य को मुक्ति होती है और रागी मनुष्य का संसार में डूबना होता है । जिस प्रकार कण्ठ में शिला बाँधकर नदी नहीं तैरी जा सकती उसी प्रकार रागादि से संसार नहीं तिरा जा सकता । जिसका चित्त निरन्तर ज्ञान में लीन रहता है तथा जो गुह्यजनों के कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है ऐसा मनुष्य ही ज्ञान, शील आदि गुणों की आसक्ति से संसार को तैर सकता है ।^{४५१}



पञ्चचरित का सांस्कृतिक महत्त्व

पञ्चचरित में उत्कृष्ट काव्य गुणों के अतिरिक्त सांस्कृतिक सामग्री विपुल रूप में पाई जाती है। यह एक महत्त्वपूर्ण मानवीय समाजशास्त्र है। मनुष्य अपनी प्रारम्भिक प्राकृतिक अवस्था में किस प्रकार रहता था इसका सजीव वर्णन उपस्थित करने के साथ-साथ यह तत्कालीन युग की सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक स्थिति पर प्रकाश डालता है। उस समय के लोगों का भोजन-पान क्या था? उनकी वेषभूषा कैसी होती थी? लोग अपना मनोरंजन कैसे करते थे? उनका रहन-सहन किस प्रकार का था? कौन-कौन से कला-कौशल समाज में विकसित थे? नगर-निर्माण, शासन-व्यवस्था, युद्ध-संचालन, अस्त्र-शस्त्र, यातायात के साधन इत्यादि कैसे थे? सामाजिक-पारिवारिक सम्बन्ध किस प्रकार के थे? विवाह और प्रेम का आदर्श क्या था? समाज में नारियों का क्या स्थान था? शिक्षा कहाँ तक विकसित हुई थी? जीवन के प्रति लोगों का क्या दृष्टि-कोण था? उनकी लौकिक एवं पारलौकिक महत्वाकांक्षाएँ क्या थीं? इन प्रश्नों का उत्तर इनमें सम्पक् रूप से मिलता है। इस ग्रन्थ में जीवन का सभी दृष्टि-कोणों से विवेचन किया गया। नगर, ग्राम, नदी, पर्वत, वन प्रदेश, विभिन्न प्रकार की वनस्पति, जीव-जन्तु, राजा, मंत्री, सेनाध्यक्ष, सैनिक, गृहस्थ, मुनि आदि का इसमें पर्याप्त विवेचन उपलब्ध होता है। अतः सांस्कृतिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है।

भारतीय कथा साहित्य में पञ्चचरित का स्थान

भारतीय कथा साहित्य बहुत विशाल है। प्राकृत, पालि, वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में इस प्रकार का साहित्य विपुल रूप से लिखा गया। कथा साहित्य का उदय भारतवर्ष में हुआ और इसने संसार के सामने इस साहित्यिक साधन की उपयोगिता सर्वप्रथम प्रदर्शित की।^१ भारत में कथायें केवल कौतुकमयी प्रवृत्ति को चरितार्थ करने के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षण के लिए भी प्रयुक्त की जाती थीं और यही कारण है कि ब्राह्मणों ने, जैनियों ने तथा बौद्धों ने समान भाव से साहित्य के इस अंग का परिवर्धन और उपवृद्धि किया है। बौद्धों के जातकों का साहित्य के इतिहास

१. अश्वमेध उपाध्याय—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४२४।

में तथा कला के संवर्धन में विशेष महत्त्व रहा है। कहानी लिखने में जैनियों को शायद ही कोई पराजित कर सके। भारतीय कथा साहित्य में राम-कथा का अस्तित्व बहुत प्राचीन है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् प्रभृति जितने भी भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं उन सबमें सर्वत्र रामकथा की व्यापकता वर्तमान है।^{१२} बौद्ध और जैन साहित्य में भी रामकथा को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। जैन कवि विमलसूरि रचित पद्म चरित प्राकृत भाषा का रामकथा सम्बन्धी आद्यग्रन्थ है। विमलसूरि के बाद संस्कृत में रविचरण ने पद्म-चरित की रचना की। पद्मचरित संस्कृत में जैन रामकथा का आद्यग्रन्थ होने के साथ-साथ संस्कृत जैन कथा साहित्य का भी आद्यग्रन्थ है। भारतीय कथा साहित्य को उपदेशात्मक, मनोरंजक और शिक्षाप्रद इस प्रकार तीन भागों^{१३} में विभक्त किया गया है। इनमें से उपदेश प्रधान कथाओं का यह श्रेष्ठ-भांडार है। उपदेश के साथ-साथ इसमें शिक्षा और मनोरंजन के भी तत्त्व विद्यमान हैं। प्रधानता उपदेश की ही है।

राम, लक्ष्मण और रावण को जैन परम्परा में त्रैलोक्यपालाका पुरुषों (महा-पुरुष, विशिष्ट पुरुष) में स्थान दिया गया है। त्रैलोक्यपालाका पुरुषों के अन्तर्गत २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ नारायण और ९ प्रतिनारायण का समावेश होता है। इनका उल्लेख पद्मचरित में किया गया है।^{१४} राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें बलदेव^{१५}, नारायण^{१६} और प्रतिनारायण^{१७} माने गये हैं। यही यह भी ज्ञात होता है कि नारायण बलदेव के साथ मिलकर प्रति-नारायण का वध करते हैं।^{१८} इसके अतिरिक्त इसमें (पद्मचरित की रामकथा में) निम्नलिखित अन्य विशेषतायें मिलती हैं—

यहाँ हनुमान्, सुग्रीव आदि वानर नहीं किन्तु विद्याधर थे। उनके छत्र आदि में वानर का चिह्न होने के कारण वे वानर कहलाने लगे।^{१९}

राक्षसों के विषय में कहा गया है कि राक्षसवंशी विद्याधर राक्षस जातीय देवों के द्वीप की रक्षा करते थे इसलिए वह द्वीप राक्षस (द्वीप) के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उस द्वीप के रक्षक विद्याधर राक्षस कहलाने लगे।^{२०} इस उल्लेख

२. वाचस्पति मेरोला—संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १५५।

३. वही, पृ० ८८२।

४. पद्य० पर्व २०।

५. पद्य० २१।१।

६. वही, ३५।४४, १०३।४०।

७. वही, ७३।९९-१०२।

८. वही, ७३।९९-१०२, ७३।११८-१२२ एवं रामकथा, पृ० ६६।

९. पद्य० ६।२१४।

१०. पद्य० ५।३८३, ४३।३८, ३९, ४०।

से रावण आदि राक्षस योनि वाले न होकर राक्षसवंशी विद्याधर राजा ठहरते हैं। पद्मचरित के पाँचम पर्व में राक्षस वंश की कथा दी गई है। तदनुसार मनो-वेग नामक राक्षस के राक्षस नाम का ऐसा प्रभावशाली पुत्र हुआ कि उसके नाम से उसका वंश ही राक्षस वंश कहलाने लगा।^{११}

असुर, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि इन्द्र नामक विद्याधर ने इन्द्र के समान विभूति की रचना की। तदनुसार विद्याधर के असुर^{१२} नामक नगर में जो विद्याधर रहते थे वे पृथ्वी पर असुर^{१३} नाम से प्रसिद्ध हुए। यक्षगीत नगर के विद्याधर यक्ष^{१४} कहलाए। किन्नर नामक नगर के निवासी किन्नर^{१५} कहलाए और गन्धर्व नगर के रहने वाले विद्याधर गन्धर्व^{१६} नाम से प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार अश्विनो कुमार, विश्वावसु और वैश्वानर आदि विद्याधर से समन्वित (विद्याधर) थे। ये देवों के समान क्रीड़ा करते थे।^{१७}

रावण का प्रारम्भिक नाम दशानन था। हजार नागकुमार द्वारा रक्षित एक हार को रत्नश्रवा के केकसी से उत्पन्न प्रथम पुत्र ने खींच लिया। उस हार में बड़े-बड़े स्वच्छ रत्न लगे हुए थे। उसमें असली मुख के सिवाय नौ मुख और भी प्रतिबिम्बित हो रहे थे इसलिए उस बालक का नाम दशानन नाम रखा गया।^{१८} रावण नाम उसका बाद में पड़ा जब कि बालि मुनिराज के प्रभाव से वह कैलास पर्वत नहीं उठा सका। पर्वत के बोझ से वह दबने लगा। उस समय चूँकि उसने सर्वप्रयत्न से चिल्ला कर समस्त संसार को जगद्विषयमान कर दिया था इसलिए वह पोछे चलकर रावण इस नाम को प्राप्त हुआ।^{१९}

डॉ० हीरालाल ने पद्मचरित की कतिपय^{२०} विशेषताओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार पद्मचरित पद्मचरित का ही परललित अनुवाद है अतः पद्मचरित को उन विशेषताओं को पद्मचरित का भी विशेषतायें कहा जा सकता है। पद्मचरित को देखने पर इन विशेषताओं की पुष्टि भी होती है। ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

११. पद्य० ५।३७८।	१२. वही, ७।११७।
१३. वही, ७।११८।	१४. वही, ७।११८।
१५. वही, ७।११८।	१६. वही, ७।११९।
१७. वही, ७।२१३, २१४, २२२।	

१८. खं च सर्वं यत्नेन कृत्वा रावितवान् जगत्।

यतस्ततो गतः पश्चाद्रावणाख्यां समस्तगाम् ॥ पद्य० ९।१५३।

१९. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान (डॉ० हीरालाल), पृ० १३२।

सीता यथार्थ में जनक की ही औरस कन्या थी, उसका एक भाई भामरेश भी था।^{२०} राम ने श्लेष्मों द्वारा किए गए आक्रमण के समय जनक की सहायता की, उसी के उपलक्ष्य में जनक ने सीता का विवाह राम के साथ करने का निश्चय किया।^{२१} सीता के भ्राता भामरेश को उसके बचपन में ही एक विद्या-घर हर ले गया था।^{२२} युवक होने पर तथा अपने माता-पिता से अपरिचित होने के कारण उसे सीता का चित्रपट देखकर उसपर मोह उत्पन्न हो गया था, वह उसी से अपना विवाह करना चाहता था। इसी विरोध के परिहार के लिए धनुष परीक्षा का आयोजन किया गया जिसमें राम की विजय हुई।^{२३} दशरथ ने जब वृद्धावस्था आयी जान राज्य भार से मुक्त हो वैराग्य धारण करने का विचार किया, तभी गम्भीर स्वभाव वाले भरत को भी वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। इस प्रकार अपने पिता और पुत्र दोनों के साथ वियोग की आशंका से भयभीत होकर कैकया ने अपने पुत्र को गृहस्थी में बाँधने की भावना से उसे ही राज्य पद देने के लिए दशरथ से एकमात्र वर माँगा और राम दशरथ की आज्ञा से नहीं, किन्तु स्वेच्छा से वन को गए।^{२४} इस प्रकार कैकयी (कैकया) को किसी दुर्भागिना के कलंक से बचाया गया है। रावण के आधिपत्य को स्वीकार करने के प्रस्ताव को ठुकराकर बाळि स्वयं अपने लघु भ्राता सुभोव को राज्य देकर दिगम्बर मुनि हो गया था, राम ने उसे नहीं मारा।^{२५} रावण को यहाँ जानी और ब्रती चित्रित किया गया है। वह सीता का अपहरण तो कर ले गया, किन्तु उसने उसकी इच्छा के प्रतिकूल बलात्कार करने का कभी विचार या प्रयत्न नहीं किया और प्रेम की पीड़ा से घुलता रहा। जब मन्दोदरी ने रावण के सुधार का कोई दूसरा उपाय न देख सच्ची पत्नी के नाते उसे बलपूर्वक अपनी इच्छा पूर्ण कर लेने का सुझाव दिया तब उसने यह कहकर उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि मैंने अनन्तदीर्घ कैकली के समीप किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध कभी संभोग न करने का व्रत ले लिया है, जिसे मैं कभी भंग न करूँगा।^{२६} रावण के स्वयं अपने मुख से इस व्रत के उल्लेख द्वारा कवि ने न केवल उसके चरित्र को उठाया है, किन्तु सीता के अखंड पातिव्रत का प्रमाण उगस्थित कर दिया है। रावण को मृत्यु यहाँ राम के हाथ से नहीं अपितु श्लेष्मण के हाथ से कही गई है।^{२७} राम के पुत्रों के नाम यहाँ अनङ्गलवण

२०. पृष्ठ ० २६।१२१।

२१. वही, २७।१२।

२२. वही, २६।१२१।

२३. वही, २८।१६९-१७१, २४१-२४३।

२४. वही, पर्व २१।

२५. वही, १।५०-९०।

२६. वही, ४६।५०-५३, ५५, ६५-६९। २७. वही, ७६।२८-३४।

और मदनमोहक कहें गए हैं।^{२८} इसके अतिरिक्त अन्य कथात्मक विशेषताओं भी पद्मचरित में मिलती हैं जिनमें से अधिकांश विशेषताओं की ओर संकेत डॉ० रेवरेंड फादर कामिल ब्रुल्ले ने अपने ग्रन्थ रामकथा (उत्पत्ति और विकास) में पद्मचरित के प्रसंग से कर दिया है। इस ग्रन्थ में पद्मचरित और पद्मचरित की जिन मान्यताओं में वैशिष्ट्य है, उन्हें भी कह दिया गया है, अतः उनको यहाँ दुहराना विष्टपेय ही होगा। जैन रामकथा ने ब्राह्मण रामकथाओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया। उनमें से कतिपय प्रसंगों की ओर ब्रुल्ले साहब ने संकेत किया है। ये प्रसंग निम्नलिखित^{२९} हैं जो पद्मचरित में भी आए हैं—

सीता स्वयंवर के अवसर पर अन्य राजाओं की उपस्थिति में राम द्वारा धनुर्भङ्ग।^{३०} कैकेयी का पश्चात्ताप।^{३१}

लंका में विभीषण से हनुमान् की भेंट—^{३२} अवधीन रामकथाओं में विभीषण को रागभक्त के रूप में चित्रित किया गया है। आनन्द रामायण में लिखा है कि रावण की लंका में सीता की खोज करते हुए हनुमान् ने विभीषण को कीर्तन संलग्न पाया था। रामचरित मानस, पुजरासी रामायणसार आदि रचनाओं में भी हनुमान् तथा विभीषण की भेंट का वर्णन किया गया है। वास्तव में जैन रामायणों में पहले-पहल इस भेंट का उल्लेख मिलता है। पद्मचरित तथा पद्मचरित के अनुसार विभीषण ने लंका में हनुमान् का स्वागत किया था तथा सीता की लौटाने के लिए रावण से आग्रह करने की प्रतिज्ञा की थी।^{३३}

लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा (चन्द्रनखा) के पुत्र का वध—^{३४} वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में जो शम्भूक वध का वृत्तान्त मिलता है, इसके अनुसार नारद से यह जानकर कि शूद्र की तपस्या के कारण किसी ब्राह्मण पुत्र की अवाल मृत्यु हुई, राम पृथ्वी पर चढ़कर शूद्र का पता लगाते हैं तथा उसका वध भी करते हैं।^{३५} पद्मचरित (पद्मचरित में भी) इस कथा को एक दूसरा रूप दिया गया है—खरवृषण तथा चन्द्रनखा का पुत्र शम्भूक सूर्यहास नामक खड्ग प्राप्त करने के उद्देश्य से साधना करता है। १२ वर्ष की तपस्या के पश्चात् यह खड्ग प्रकट

२८. पद्य० १००।२१।

२९. वही, रामकथा, पृ० ७३५।

३०. वही, पर्व २८।

३१. वही, ३२।१०४-११०।

३२. वही, ५३।१-१२।

३३. वही, ५३।१-१२, सन्मति सन्देश, पृ० ११ वर्ष १५ अंक ३।

३४. वही, पर्व ४३।

३५. सन्मति सन्देश, पृ० १३ वर्ष १५ अंक ३ (मार्च १९७०)।

होता है। संयोग से लक्ष्मण वही पहुँचकर उसे देखते हैं तथा उसे हाथ में लेकर बाँस की काटसे समय शम्बूक का सिर भी काट लेते हैं। चन्द्रनखा अपने पुत्र से मिलने आती है तथा उसे मृत देखकर विलाप करने-करते वन में घूमने लगती है। अन्त में वह राम लक्ष्मण के पास पहुँचकर वन पर आसक्त हो जाती है। दोनों के अस्वीकार करने पर वह अपने पति स्वरूपण तथा अपने भाई रावण को शम्बूक वध की सूचना देती है। इस प्रकार लक्ष्मण द्वारा शम्बूक वध सीता हरण तथा राम रावण युद्ध का कारण बन जाता है।^{३६}

उत्प्रेक्षित वृत्तान्त न्यूनाधिक परिचर्या के साथ जनेक रामायणों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ—आनन्दरामायण, तेलगू द्विपद रामायण, कन्नड़ी तीरवे रामायण, जावा का सेरत काण्ड, मल्लय का सेरीराम, श्याम की रामकीर्ति।^{३७}

युद्ध से पूर्व राक्षस-राक्षसियों के संभोग भृंगार का वर्णन।^{३८}

राम सेना से लवकुश का युद्ध^{३९}—वाल्मीकि रामायण में राम के अश्वमेध की यज्ञ भूमि में कुश और लव रामायण का मान करते हैं और इस तरह राम अपने पुत्रों का परिचय प्राप्त करते हैं।^{४०} बहुत सी परवर्ती रामकथाओं में कुश और लव का राम सेना तथा राम से भी युद्ध का वर्णन किया गया है। उस युद्ध के भिन्न-भिन्न कारण बतलाए जाते हैं, किन्तु सबसे प्रचलित कारण यह है कि कुश लव ने राम के अश्वमेध का घोड़ा बाँध लिया था। कुश लव का युद्ध वर्णन कथासरित्सार, उत्तररामचरित, जैमिनीय अश्वमेध, पद्मपुराण का पाताल खण्ड, रामलिङ्गामृत का कृत्तिवास रामायण, रामचन्द्रिका, गुजराती रामायणसार, काश्मीरी रामायण, कम्बोडिया की रामकीर्ति तथा श्याम की रामकीर्ति आदि में मिलता है।^{४१} विमलमूरि प्राचीनतम रचना है, जिसमें सीता के पुत्रों के युद्ध का वर्णन है। पद्मचरित में भी यह वर्णन इसी रूप में मिलता है। इसके अनुसार लवण (अनङ्गलवण) और अंकुश (मदनाङ्कुश) अपनी माता के साथ पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजंघ के यहाँ रहते हैं। उनके विवाह के बाद नारद उनके पास आकर उन्हें उनकी माता के परिचय की कथा सुनाते हैं। इस पर दोनों सेना लेकर अयोध्या पर आक्रमण करते हैं। अन्त में लवण राम

३६. पद्य० पर्व ४३, ४४, सन्मति सन्देश पृ० १३ वर्ष १५ अंक ३।

३७. सन्मति सन्देश, पृ० १३ वर्ष १५ अंक ३।

३८. पद्य० पर्व ७३।

३९. वही, पर्व १०२-१०३।

४०. सन्मति सन्देश, पृ० १३, वर्ष १५ अंक ३।

४१. वही, पृ० १३।

से युद्ध करते हैं तथा अंकुश लक्ष्मण से युद्ध करते हैं। युद्ध अन्तिवित होने पर सिद्धार्थ लवण और अंकुश का परिचय देता है। इस पर राम अपने पुत्रों से मिलकर दोनों को अपने पास रखते हैं।^{४२}

रावण के चरित्र में अन्तर—रामभक्ति के पल्लवित होने के पश्चात् रावण के चरित्र चित्रण में अन्तर आ गया है और यह कहा गया है कि रावण ने मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से सीता का हरण किया था। राक्षस होने के कारण वह राम-भक्ति का अधिकारी नहीं था, किन्तु वह राम के द्वारा मारे जाने पर ही परमपद प्राप्त कर सकता था। अर्वाचीन रामकथाओं के अनुसार रावण ने इसी उद्देश्य से सीता का अपहरण किया था। अध्यात्म रामायण में इसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया गया है कि रावण ने सीता का माता के समान पालन किया था।^{४३} उन रचनाओं के शताब्दियों पूर्व ही विमलसूरि और रचिषेण ने रावण का चरित्र ऊपर उठाने का प्रयास किया था। इन दोनों ग्रन्थों के अनुसार रावण में केवल एक दुर्बलता है। वह सीता के प्रति आसक्ति है। वह एक भक्तिमय जैनधर्मावलम्बी है जो नलकूबर की पत्नी तपरम्भा का प्रेम प्रस्ताव अस्वीकार करता है और किसी केवली का उपदेश सुनकर यह धर्म-प्रतिज्ञा करता है कि मैं किरक्त परनारी का स्पर्श नहीं करूँगा।^{४४} अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह सीता का राम के प्रति प्रेम देखकर सीता हरण पर हार्दिक पश्चात्ताप करता है।^{४५}

उपर्युक्त वर्णन से यह नहीं समझना चाहिए कि पद्मचरित में केवल रामकथा ही कही गई है। रामकथा तो एक आधार है। उसके माध्यम से इसमें भगवान् महावीर, राजा श्रेणिक, कुलकर, ऋषभदेव, राजा श्रेयास और सोम, भरत चक्रवर्ती, बाहुबली, अजितनाथ भगवान्, सगर चक्रवर्ती, भावन वणिक्, सहस्र-नयन तथा पूर्णघन, आशलि तथा चन्द्र, रम्भ, भीम, सुमीम, मेघवाहन, सगर के पुत्र, महारथ विद्याधर, राजा श्रेकण्ठ, विद्युत्केश, किष्किन्व और अन्ध्रकल्बि, माली-सुमाली, राजा सहस्रार, इन्द्र विद्याधर, शैश्रवण, दशानन, भानुकर्ण, विभी-षण, मन्शेदरी, सूरसुन्दर, इन्द्रजित्, हरिषेण चक्रवर्ती, बाली, खरदूषण, विरा-धित, सुग्रीव, साहसगति विद्याधर, सहस्ररश्मि, राजा वसु, नारद-पर्वत, नारद,

४२. पद्य० पर्व १०२, १०३।

४३. सन्मति सन्देश, वर्ष १५, अंक ३, पृ० १२।

४४. वही, पद्य० १२।९७-१५२, १४।३७१, सन्मति सन्देश, पृ० १२ वर्ष १५ अंक ३।

४५. पद्य० ७२।४९-६९, सन्मति सन्देश पृ० १२ वर्ष १५ अंक ३।

२९४ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

मरुत्व, हरिवाहन, सुमित्र और प्रभव, राजा मधु, नलकूबर, कुलकान्ता, अनन्त-बल मुनिराज, उपवन्ता कन्या, सहस्रभट पुरुष, राजा महेंद्र, अंजना-पवनजय, हनुमान्, वरुण, चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, शान्ति, कुन्धु, अर चक्रवर्ती, सनत्कुमार चक्रवर्ती, सुभूम चक्रवर्ती, महापद्म चक्रवर्ती, जयसेन चक्रवर्ती, ब्रह्मादत्त चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, आठवें बलभद्र राम, मुनि-सुव्रत भगवान्, वज्रबाहु, कीर्तिधर मुनि, सुकोशल मुनि, हिरण्यगर्भ, मांसभक्षी सुदास, वशरथ, जनक, कंकया, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, एर ब्राह्मण, विह्वल ब्राह्मण, कुण्डलभण्डित, भामण्डल, सीता, श्लेच्छों का आगमन, चन्द्रगति विद्याधर, सुप्रभा रानी, अतिभूति, उपासित गृहाय, वृषाकर्ण, मिहोदर, नागिनित्य, कन्यासखा, कपिल ब्राह्मण, वनमाला, अतिवीर्य, जितपथा, देशभूषण-कुलभूषण मुनि, उदित और मुदित, अग्निप्रभदेव, जटायु, शम्बूक, चन्द्रनखा, रत्नजटी विद्याधर, पक्षदत्त, विनयदत्त, क्षुद्र, आत्मश्रेय, चन्द्रलेखा, विशुत्प्रभा और तरङ्गमाला, लंकासुन्दरी, गिरि और गोभूति, कुम्भविन्दा और उसके पुत्र अहिदेव महीदेव, हस्त प्रहस्त, नल नील, अंगद, चन्द्रप्रतिभ, विशल्या, इन्द्रजित और भेषवाहन के पूर्व भव, मन्दोदरी के पूर्वभव, अभिमाना, श्रीवर्धित तथा उसके परिवार के पूर्वभव, त्रिलोकमण्डन हाथी, सूर्योदय और चन्द्रोदय, कृतान्तवक्त्र सेनापति, अचल, अर्हदत्त सेठ, मनोरमा, सीता के जनापवाद, अज्जजंघ, अनङ्गलवण और मदन-कुश, कनकमाला के विवाह, राम लक्ष्मण तथा सीता और रावण के पूर्वभव, प्रियङ्कर और हितङ्कर, विद्युद्वक्त्रा और सर्वभूषण, सीता जी की अग्नि परीक्षा, मधु कैटभ, मधु चन्द्राभा, लक्ष्मण के पुत्र, वज्रमाली, सीतेन्द्र द्वारा रावण और लक्ष्मण के जीव को संशोधन, रावण और लक्ष्मण के आगामी भव तथा सीता के आगामी भव की कथाएँ कहो गई हैं। ये सभी कथाएँ संस्कृत जैन कथा साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। इनसे प्रेरणा प्राप्त कर मनुष्य ऐहिक और पार-लौकिक अभ्युदयों की सिद्धि कर सकता है।

पद्मचरित और हरिवंश पुराण

आचार्य जिनसेन ने शक सं० ७०५ (विक्रम सं० ८४०) में^{४६} हरिवंश पुराण की रचना की थी। इस रचना में उन्होंने अन्य आचार्यों के साथ रविवेण की भी प्रशंसा की है। उनकी कविता के विषय में वे लिखते हैं—रविवेणाचार्य की काव्यमयी मूर्ति सूर्य की मूर्ति के समान लोक में अत्यन्त प्रिय है क्योंकि जिस प्रकार सूर्य की मूर्ति 'कृतपद्मोदयोद्योता' है अर्थात् कमलों का विकास और उद्योत (प्रकाश) करने वाली है उसी प्रकार रविवेण की काव्यमयी मूर्ति भी 'कृतपद्मो-

दयोद्योता' अर्थात् श्री राम के अम्युद्यम का प्रकाश करने वाली है और सूर्य की मूर्ति जिस प्रकार प्रतिदिन परिवर्तित होती रहती है उसी प्रकार रविषेणाचार्य की काव्यमयी मूर्ति भी प्रतिदिन परिवर्तित (अम्यस्त) होती रहती है।^{४७} इससे स्पष्ट है कि जिनसेन अवश्य ही रविषेण की काव्यात्मकता से प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त जिनसेन के पुराण की वर्णन शैली रविषेण के पद्मचरित की वर्णन-शैली से अत्यधिक प्रभावित है। उदाहरणतः—

पद्मचरित के प्रथम पर्व में मङ्गलाचरण (तीर्थङ्करादि की स्तुति) सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निन्दा, पूर्वाचार्यों की परम्परा, ग्रन्थ का अवतरण, ग्रन्थ के वर्णनीय अधिकार तथा निरूप्यमाण विषयों का सूत्र रूप में संकलन है। हरिवंश पुराण के प्रथम सर्ग में मङ्गलाचरण (तीर्थङ्करादि की स्तुति), पूर्वाचार्यों का स्मरण सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निन्दा, ग्रन्थकर्तृ प्रतिज्ञा, ग्रन्थ के वर्णनीय अधिकारों तथा निरूप्यमाण विषयों का सूत्र रूप में संकलन है।

पद्मचरित में भगवान् महावीर का राजगृह के समीप विपुलाचल पर्वत पर आगमन होता है। राजा श्रेणिक भगवान् के दर्शन के लिए जाता है। वहाँ जाकर दूसरे दिन गौतम स्वामी (भगवान् महावीर के प्रमुख गणधर) से रामकथा श्रवण की इच्छा प्रकट करता है। गौतम स्वामी इसके उत्तर में रामकथा कहने हैं।^{४८} हरिवंश पुराण में भगवान् महावीर विहार करते हुए विपुलाचल पर आते हैं। राजा श्रेणिक चतुरंग सेना के साथ भगवान् के समवसरण में पहुँचता है। वहाँ वह गौतम गणधर से तीर्थङ्करों, चक्रवर्तियों, बलभद्रों, नारायणों तथा प्रतिनारायणों के चरित, वंशों की उत्पत्ति तथा लोकालोक के विभाग के निरूपण के लिए प्रार्थना करता है।^{४९} अन्तर केवल यही है कि पद्मचरित में भगवान् महावीर और उनके जीवन, माहात्म्य आदि का संक्षिप्त वर्णन ही दिया गया है, जबकि हरिवंश पुराण में भगवान् महावीर के जन्म से लेकर विपुलाचल पर्वत तक पहुँचने की घटनाओं का वर्णन विस्तार से किया गया है।^{५०}

पद्मचरित में लोक-रचना का अत्यन्त संक्षिप्त रूप से विशेषकर तीसरे पर्व में वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण में लोक रचना का विस्तृत रूप से चतुर्थ से सप्तम सर्ग तक वर्णन किया गया है।

४७. कृतपद्मोद्योद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता । मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥—हरिवंशपुराण १।३४ ।

४८. पद्म० पर्व २, ३ ।

४९. हरिवंश पुराण सर्ग २, ३ ।

५०. पद्म० पर्व २, ३, हरिवंश पुराण सर्ग २, ३ ।

पद्मचरित में क्षेत्र-काल निरूपण के पश्चात् भोगभूमि, चौदह कुलकर, अंतिम कुलकर नाभिराय तथा उनके यहाँ प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म, भगवान् के भक्त बाहुबली आदि पुरुषों का वर्णन, भरत की दिग्विजय, भगवान् की दीक्षा लेना तथा निर्वाण प्राप्त करना आदि का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया गया है।^{५१} हरिवंश पुराण में क्षेत्र-काल निरूपण के पश्चात् भोगभूमि, चौदह कुलकर, अंतिम कुलकर नाभिराय तथा उनके यहाँ प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म, भगवान् के भक्त बाहुबली आदि पुरुषों का वर्णन, भरत की दिग्विजय, भगवान् का दीक्षा लेना तथा निर्वाण प्राप्त करना आदि का विस्तृत^{५२} रूप से वर्णन किया गया है। पद्मचरित के पञ्चम पर्व में चार महावंशों का वर्णन कर अजितनाथ भगवान् तथा मगर चक्रवर्ती का वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण के त्रयोदश सर्ग में मूर्यवंश और चन्द्रवंश के अनेक राजाओं का समुल्लेख, अजितनाथ भगवान् तथा मगर चक्रवर्ती का वर्णन किया गया है।

पद्मचरित के छठीसवें पर्व में भगवान् मुनिसुव्रतनाथ का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया गया है। हरिवंश पुराण के षोडश सर्ग में भगवान् मुनिसुव्रतनाथ का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है।

पद्मचरित के एकादश पर्व में यज्ञ की उत्पत्ति का आरम्भिक इतिहास बतलाते हुए अयोध्या के क्षीरकदम्बक गुह, स्वस्तिमती नामक उनकी स्त्री, राजा वसु तथा नारद और पर्वत का अजैर्यष्टय्य शब्द के अर्थ को लेकर विवाद, वसु द्वारा मिथ्या निर्णय तथा उसका पतन निरूपित किया गया है। हरिवंश पुराण के सत्रहवें सर्ग में भी राजा वसु, क्षीरकदम्बक के पुत्र और नारद का 'अजैर्यष्टय्य' वाक्य के अर्थ को लेकर विवाद, वसु द्वारा मिथ्या पक्ष का समर्थन, वसु का पतन और नरक गमन का निरूपण किया गया है।

पद्मचरित के बाईसवें पर्व में नरमांसभक्षी सोदास की कथा कही गई है। हरिवंश पुराण के चौबीसवें सर्ग में भी मनुष्यभक्षी सोदास की कथा है, लेकिन इन दोनों ग्रन्थों की कथाओं में कुछ भेद है। पद्मचरित में सुदास को राजा नवुष^{५३} का पुत्र तथा हरिवंश पुराण में इसे काञ्चनपुर के राजा जितशत्रु का^{५४} पुत्र कहा गया है। पद्मचरित में अंत में वह किसी सा १ से अणुव्रत का^{५५} घारी हो अंत में महावैराग्य से युक्त हो तपोवन को^{५६} चला जाता है। हरिवंश पुराण में उसकी मृत्यु वसुदेव के हाथों से होती है।^{५७}

५१. पद्म० पर्व ३, ४।

५२. पद्म० २२।१३९।

५३. पद्म० २२।१४८।

५४. हरिवंश पुराण सर्ग २४।

५२. हरिवंश पुराण सर्ग ७-१३।

५४. हरिवंश पुराण २४।११-१३।

५६. वही, २२।१५२।

५७. वही, २२।१५२।

पद्मचरित में विशेषकर आठवें बलभद्र राम और आठवें नारायण लक्ष्मण तथा प्रतिपक्षियों के जीवन तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण में नवें बलभद्र और नवें नारायण तथा उनके प्रतिपक्षियों से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन किया गया है।

पद्मचरित में राम उदरध के पिता दशरथ का राज्यभार मन्त्रियों को सौंपकर इधर-उधर परिभ्रमण, उनका अनेक राजाओं से युद्ध तथा कैकया नामक कन्या की प्राप्ति का वर्णन है। हरिवंश पुराण में कृष्ण, बलदेव के पिता वसुदेव अपने बड़े भाई समुद्रविजय द्वारा महल के बाहर न घूमने की पाबन्दी के कारण छल से नगर के बाहर निकलकर अनेक देशों में भ्रमण कर वीरोचित कार्य करते हुए अनेक सुन्दर राजकुमारियों के साथ विवाह करते हैं। हरिवंशपुराण के १९ से ३१ तक १३ सर्गों में वसुदेव की इसी प्रकार की चेष्टाओं तथा तत्सम्बन्धी अन्य कथाओं का उल्लेख किया गया है जबकि पद्मचरित में केवल २३वें और २४वें पर्व में ही राजा दशरथ की उपर्युक्त चेष्टाओं का वर्णन है। अन्त में जिस प्रकार दशरथ कैकयी के स्वयंवर के बाद घर पर आ जाते हैं उसी प्रकार वसुदेव भी रोहिणी के स्वयंवर के बाद घर पर आ जाते हैं। पद्मचरित के २६ वें पर्व में राजा जनक के नवजात शिशु भामण्डल को पूर्व भव के वैर के कारण महाकाल नाम का असुर हरकर ले जाता है। बाद में दयार्द्र होकर उसे आकाश से नीचे गिरा देता है। हरिवंशपुराण के ४३ वें सर्ग में श्रीकृष्ण के पुत्र, प्रद्युम्न को पूर्वभव का वैरी धूमकेतु नाम का असुर हरकर ले जाता है और खदिराटकी में यक्षशिला के नीचे दबा आता है। बाद में पुण्य योग से दोनों को विद्यावर राजा अपने यहाँ ले जाते हैं। पद्मचरित में भामण्डल अपनी बहिन सीता के चित्रपट को देख अज्ञानवश उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। अन्त में इसी आकर्षण के कारण यथार्थ स्थिति जान वह अपने माता-पिता आदि से मिलता है।^{५८} हरिवंश पुराण में कालसंवर की स्त्री कनकमाला, जिसने कि पुत्रवत् प्रद्युम्न का पालन किया था, पूर्वजन्म के मोहवश उसपर आसक्त हो जाती है। इसी आधार पर प्रद्युम्न यथार्थ का पता लगाकर अपने माता पिता आदि से मिलता है।^{५९}

पद्मचरित के १०९ वें पर्व में प्रद्युम्न तथा उसके भाई शाम्भ के पूर्वभवों का वर्णन है। हरिवंश पुराण के ४३ वें सर्ग में प्रद्युम्न तथा शाम्भ की कथा का निरूपण इसी प्रकार किया गया है।

पद्मचरित के अट्ठाईसवें पर्व में नारद सीता के महल में जाते हैं। सीता

उस समय दर्पण में अपना मुख देख रही थी। नारद की प्रतिकृति दर्पण में देख वह नयनीत हो उठी। इस पर क्रुद्ध हो नारद ने भामण्डल को सीता प्राप्ति के लिए उकसाया। हरिवंश पुराण के ५४ वें सर्ग में नारद द्रौपदी के घर जाते हैं। द्रौपदी उस समय आभूषण धारण करने में व्यस्त थी इसलिए नारद ने कब प्रवेश किया और कब निकल गये यह वह नहीं जान सकी। इसपर नारद ने पूर्वधातकी खण्ड के भरत क्षेत्र के एक राजा पद्मनाभ के पास जाकर द्रौपदी के सौंदर्य का वर्णन किया, जिससे उसने द्रौपदी का हरण कर लिया।

पद्मचरित के बीसवें पर्व में तीर्थङ्कर तथा अन्य शलाकापुरुषों का वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण के ६०वें सर्ग में त्रैलोक्य शलाकापुरुषों का वर्णन किया गया है, जो पद्मचरित से मिलता जुलता है तथा विस्तार में पद्मचरित से कुछ अधिक है। इसके अतिरिक्त यहाँ भविष्यत्कालीन त्रैलोक्य शलाकापुरुषों की नामावली भी दी गई है। पद्मचरित में राम लक्ष्मण का राम के पुत्रों लव और कुश के साथ युद्ध होता है। युद्ध में राम लक्ष्मण उनको जीतने में असमर्थ रहते हैं तब नारद की सम्मति से सिद्धार्थ नाम का क्षुल्लक उनका परिचय दे कर मिलन कराता है।^{६०} हरिवंश पुराण में भी प्रद्युम्न का कृष्ण बलदेव के साथ युद्ध होता है। कृष्ण बलदेव उसको जीतने में असमर्थ रहते हैं, उसी समय रुक्मिणी के द्वारा प्रेरित नारद आकर पिता पुत्र का सम्बन्ध बतला दोनों का मिलन कराता है।^{६१}

पद्मचरित में राम कृतान्तवक्त्र सेनापति के दीक्षा लेने के समय उससे कहते हैं कि यदि तुम अगले जन्म में देख होओ तो मोह में पड़े हुए मुझे सम्बोधित करना न भूलना।^{६२} हरिवंश पुराण में बलदेव सिद्धार्थ नामक सारथि से जो उनका भाई था, उसके दीक्षा लेते समय कहते हैं कि कदाचित् मैं मोहजन्य व्यसन को प्राप्त होऊँ तो मुझे सम्बोधित करना।^{६३} बाद में कहे अनुसार दोनों ने मोह के समय दोनों (राम और बलदेव) की सहायता की।^{६४} यहाँ पर राम और बलदेव की चेष्टाओं में बहुत कुछ समानता है।

धर्म की निरूपण की पद्धति दोनों ग्रन्थों में एक सी है। इतना विशेष है कि पद्मचरित में यह संक्षेप रूप में और हरिवंश पुराण में विस्तृत रूप से मिलती है।

६०. पद्म० पर्व १०२, १०३।

६१. हरिवंश पुराण ४७।१२६-१३२।

६२. पद्म० १०७।१४-१५।

६३. हरिवंश पुराण ६१।४१।

६४. पद्म० पर्व ११८, हरिवंश पुराण सर्ग ६३।

पद्मचरित के प्रत्येक पर्व के अन्तिम श्लोक में रवि शब्द आता है । हरिवंश पुराण के प्रत्येक सर्ग के अन्त में जिन शब्द आता है ।

पद्मचरित और पञ्चमचरित

कवि स्वयम्भू ने पञ्चमचरित की रचना की । डा० देवेन्द्रकुमार ने इनका काल आठवीं शताब्दी का प्रथम चरण^{१५} निर्धारित किया है । कवि की उक्त रचना का आधार आचार्य रविवेण कृत पद्मचरित है । पञ्चमचरित की पद्मो संधि (प्रथम संधि) में कवि ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है । पूर्वचार्यों की परम्परा भी कवि ने वही दी है जो रविवेण ने अपने पद्मचरित में दी है । इतना विशेष है कि उसमें रविवेण का नाम जोड़कर ताद में अपने नाम का निर्देश किया है । तदनुसार भगवान् महावीर के मुख पर्वत से निकलकर क्रम में बहती हुई^{१६} रामकथा रूपी नदी में क्रमशः आचार्य इन्द्रभूति, गुणों से अलंकृत सुषर्मा, संसार से विरक्तप्रभव, कीर्तिधर, उत्तरचार्मी, रविवेण और स्वयम्भू को राम-कथा रूपी नदी में अवगाहन करने का अवसर मिला^{१७} यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि रविवेण को उत्तरचार्मी मुनि के साक्षात् मुख से रामकथा प्राप्त न होकर उनके द्वारा लिखी हुई रामकथा प्राप्त हुई थी । यह परम्परा उत्तरचार्मी के बहुत बाद की है, जो इस प्रकार प्राप्त होती है—इन्द्रगुरु के शिष्य दिवाकरयति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और लक्ष्मणसेन के शिष्य रविवेण थे ।^{१८} (अ) कथानक के लिए तो स्वयम्भू ने पूरी तरह से पद्मचरित का अनुसरण किया ही

६५. पञ्चमचरित—भाग १ (महाकवि स्वयम्भू) सम्पादक अनु० डा० देवेन्द्रकुमार जैन, (ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९५७) ।

६६. वक्षमाण मूढ कुहर विणिग्गय । रामकहागणइ एह कमणय ॥

—पञ्चमचरित १।२।१ ।

६७. एह रामकह सरि सोहन्ती । गणहर देवेहि दिट्ठ वहन्ती ॥

पण्डइ इन्दभूइ आयरिएं । पुणु धम्मणे गुणालंकरिएं ॥

पुणु पहवें संसाराराएं । किस्तिहरेण अपुत्तरवाएं ॥

पुणु रविवेणायरिय-पसाएं । बुद्धिए अवगाहिय कहाराएं ॥

—पञ्चमचरित १।२।६-९ ।

वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम् ।

इन्द्रभूति परिप्राप्तः सुधर्मधारणीभवम् ।

प्रभवं क्रमतः कीर्तिं ततोऽनु (नु) उत्तरचार्मिनम् ।

लिखितं तस्य संप्राप्य रवेर्यत्नो यमुद्गतः ॥—पद्म० १।४१-४२ ।

६७ (अ). आसीदिन्द्रपुरोदिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनिः ।

तस्माल्लक्ष्मणसेनतन्मुनिरवःशिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥

है जो दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है। साथ ही रविवेण की अनेक काव्यात्मक कल्पनाओं आदि में अपनी कल्पना का पुट देकर इसे विशिष्टता प्रदान की है। रविवेण के दाय की स्वयम्भू ने कितने अधिक का में ग्रहण किया, यह तो दोनों के ग्रन्थों (पद्मचरित और पद्मचरित) के स्वतन्त्र रूप से तुलनात्मक अध्ययन का विषय है। यहाँ उदाहरण के लिए पद्मचरित और पद्मचरित के प्रास्ताविक भाग के कुछ अंशों की तुलना ही पर्याप्त होगी—

पद्मचरित के प्रथम पर्व के आदि में मंगलाचरण स्वरूप तीर्थङ्करों की स्तुति की गई है। पद्मचरित में भी तीर्थङ्करों की स्तुति की गई है।

तीर्थङ्करों की स्तुति के बाद पद्मचरित में परमेश्वर की प्रणामाकर रविवेण ने अपनी आचार्य परम्परा दी है। पद्मचरित में मंगलाचरण के बाद सीधे आचार्य परम्परा का उल्लेख किया गया है।

पद्मचरित का दूसरा पर्व मगध देश के वर्णन से प्रारम्भ किया गया है। पद्मचरित की प्रथम सन्धि में ही पद्मचरित की भाँति संक्षिप्त कथावस्तु का निर्देशन करके मगध देश का वर्णन किया गया है। मगध देश का वर्णन करते हुए रविवेण कहते हैं—'जहाँ कि भूमि अत्यन्त उपजाऊ है, जो धान के अच्छे खेतों से अलङ्कृत है और जिसके भूभाग मूँग और मोठ की फलियों से पीले-पीले हो रहे हैं।' ^{६८} स्वयम्भू मगध देश के पके हुए धान्य का सीधे रूप में वर्णन न करके इस रूप में कहते हैं कि जहाँ पके हुए धान्य पर बैठी लक्ष्मी (शोभा) साक्ष्य न पाने वाली खिन्न वृद्धा के समान दिखाई देती है। ^{६९}

मगध देश के पौड़ों और ईखों के वनों का वर्णन करते हुए पद्मचरित में कहा गया है—'जो दूध के सिंचन से ही मानों उत्पन्न हुए थे और मन्द-मन्द वायु से जिनके पत्ते हिल रहे थे, ऐसे पौड़ों और ईखों के वनों के समूह से जिस देश का निकटवर्ती भूभाग सदा व्याप्त रहता है।' ^{७०} पद्मचरित में इसी को सीधे रूप में इस ढंग से व्यक्त किया गया है—जहाँ पवन से हिलते झुलते ईख के खेत पौड़ों के भय से काँपते हुए से आन पड़ते थे। ^{७१}

६८. उर्वरायां वरीयोभिः यः शालेयैरलङ्कृतः ।

मुद्गकौशोपुटेर्यस्मिन्नुद्देशाः कविलक्षिणः ॥—पद्म० २।७ ।

६९. जहि पवक कलमे कमलणिणिसण्णा ।

अलहन्त तरणि घेर वविसण्णा ॥—पद्म० १।४।२ ।

७०. क्षीरसेकादिवोद्भूतमन्दानिलचलहलैः ।

पुण्ड्रेधुवाटसन्तानव्याप्तितातन्तरमूलतः ॥—पद्म० २।४ ।

७१. जहि उच्छु वणइ पवणाहयाई ।

कम्पन्ति च पीलण-भय गयाई ॥—पद्म० १।४।४ ।

अनार के बगीचों के विषय में पद्मचरित में कहा गया है—जिनके फूल तोताओं की चोंचों के अग्रभाग तथा अनारों के मुखों का संशय उत्पन्न करने वाले हैं ऐसे अनार के बगीचों से वह देश मुक्त है ।^{७२} पद्मचरित में इसी को इस रूप में व्यक्त किया गया है—(जिस देश में) खुले हुए अनारों के मुख कपि के मुख की तरह जान पड़ते हैं ।^{७३}

केतकी की धूलि से युक्त प्रदेशों का वर्णन करते हुए रविषेण कहते हैं—'जिस देश के ऊँचे-ऊँचे प्रदेश केतकी की धूलि से सफेद-सफेद हो रहे हैं और ऐसे जान पड़ते हैं मानों मनुष्यों से सेवित गंगा के पुलिन ही हों ।'^{७४} इसी के विषय में स्वयम्भु कहते हैं—जहाँ सुन्दर भौरों की पंक्तियाँ केतकी के रजकणों से घूसरित हो रही हैं ।^{७५}

पद्मचरित में फलों के द्वारा श्रेष्ठ वृक्षों के समान गृहस्थों ने पथिकों के समूह सन्तुष्ट होते हैं ।^{७६} पद्मचरित में हिलते-डुलते दाखों के लतागृह पथिकों को रमणीय जल पिलाते हैं ।^{७७} इससे पथिक सन्तुष्ट होते हैं ।

पद्मचरित में मगध देश के सब ओर से सुन्दर तथा फूलों की सुगन्धि से सनीहर राजगृह नगर के विषय में कहा गया है कि मानों वह संसार का यौवन ही हो ।^{७८} पद्मचरित में एक कदम और आगे चलकर कवि कहता है—'उस मगध देश में धन-धान्य और स्वर्ण से समृद्ध राजगृह नाम का नगर था, जो

७२. कोटिभिः शुक्लचञ्चूनां तथा पाषाणमृगाननैः ।

संदिग्धकुसुमैर्युक्तः पृथुभिर्दाडिमीवनैः ॥—पद्म० २।१६ ।

७३. जर्हि फाडिम-वयण्डं दाडिभइ ।

णजन्ति ताई णंकई मुहाई ॥—पद्मचरित १।४।६ ।

७४. केतकीधूलिधवला यस्य देशाः समुन्नताः ।

गङ्गापुलिनसङ्काशा विभान्ति जनसेविताः ॥—पद्म० २।१४ ।

७५. जर्हि महुर पन्तिउ सुन्दराउ ।

केयइ केसर रय घूसराउ ॥—पद्मचरित १।४।७ ।

७६. तपिताञ्जवसंघातैः फलैर्वरतरूपमैः ।

महाकुटुम्भिर्भित्त्यैः प्राप्तोऽभिगमनीयताम् ॥—पद्म० २।३० ।

७७. जर्हि दक्खा मण्डव परियलन्ति ।

पुणु पन्थिय रस सल्लिई पिपन्ति ॥—पद्म० १।४।८ ।

७८. तत्रास्ति सर्वतः कान्तं नाम्ना राजगृहं पुरम् ।

कुसुमामोदमुभयं भुवनरूपेव यौवनम् ॥—पद्म० २।३३ ।

धरती रूपी नवयुवती के सिर पर बंधे हुए मुकुट के समान सुसोभित होता था ।^{१७९}

राजगृह नगर के वर्णन के बाद पद्मचरित में राजा श्रेणिक का वर्णन किया गया है ।^{१८०} पञ्चमचरित में भी राजगृह वर्णन के बाद राजा श्रेणिक का वर्णन किया गया है ।^{१८१} श्रेणिक वर्णन के बाद एक श्लोक में उसकी पत्नी चेलना का वर्णन करने के पश्चात् विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर के आने का तथा उनकी महिमा का वर्णन किया गया है ।^{१८२} पञ्चमचरित में श्रेणिक वर्णन के बाद भगवान् महावीर का इसी प्रकार वर्णन किया गया है ।^{१८३}

पद्मचरित में समवसरण का विस्तार से, पञ्चमचरित में अपेक्षाकृत कम विस्तार से भगवान् महावीर के समवसरण का वर्णन किया गया है ।^{१८४}

पद्मचरित में शंकायुक्त हो राजा श्रेणिक गौतम गणधर से रामकथा सुनने की प्रार्थना करता है । पञ्चमचरित में भी ऐसा ही निरूपण है ।^{१८५} श्रेणिक द्वारा प्रश्न किए जाने पर गौतम गणधर पहले श्रेष्ठ, काल के विषय में निरूपण कर बाद में कुलकरों का निरूपण करते हैं । पञ्चमचरित में भी ऐसा ही किया गया है ।^{१८६}

कुलकरों के वर्णन के बाद अन्तिम कुलकर नामिराय की पत्नी मरुदेवी तथा उनके सालह स्वप्नों व फलों का निरूपण है, पञ्चमचरित में भी ऐसा ही विवेचन है ।^{१८७}

इस प्रकार पूरा पञ्चमचरित पद्मचरित के प्रभाव से ओतप्रोत है । अन्तर यही है कि पद्मचरित में विस्तार और पञ्चमचरित में संक्षेप पाया जाता है साथ ही स्वयम्भू ने निजी काव्यात्मक प्रतिभा का भी पञ्चमचरित में उपयोग किया है ।



७९. तर्हि तं पट्टणु रायगिह वण-कणय समिद्धउ ।

णो पिह्विण्ण णव जोव्वणए सेहक आइद्धउ ॥-पञ्चमचरित ४।४।९ ।

८०. पद्म० २।३३-७० ।

८१. पञ्चमचरित १।४, ५, ६ ।

८२. पद्म० २।७१-१३४ ।

८३. पञ्चमचरित ४।६, ७ ।

८४. पद्म० २।१३५-१५४, पञ्चमचरित १।८ ।

८५. पद्म० २।२३०-२४९, ३।२३, १६-२२, पञ्चमचरित १।९, १० ।

८६. पद्म० ३।२४-९०, पञ्चमचरित १।११, १२, १३ ।

८७. पद्म० ३।९१-१५३, पञ्चमचरित १।१३, १४-१६ ।

सहायक ग्रन्थों की सूची

संस्कृत ग्रन्थ

१. पद्मपुराण (पद्मचरितम्)—भाग १ आचार्य रविशेष, अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम आवृत्ति (जुलाई १९५८) ।
२. पद्मपुराण (पद्मचरितम्)—भाग २ आचार्य रविशेष, अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम आवृत्ति (फरवरी, १९५९) ।
३. पद्मपुराण (पद्मचरितम्)—भाग ३ आचार्य रविशेष, अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम आवृत्ति (नवम्बर, १९५९) ।
४. कामसूत्रम् वात्स्यायन, व्या० देवदत्त शास्त्री चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, (१९६४ ई०) ।
५. चन्द्रप्रभ चरित कीरनन्दी, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी ।
६. मनुस्मृति मनु, भाष्य० स्व० पं० तुलसीराम स्वामी, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, (१९५४ ई०) ।
अमरसिंह ।
७. अमरकोश कालिदास (मल्लिनाथ टीका)
(सूरत, १९५०) ।
८. रघुवंश (सूरत, १९५०) ।
९. ऋग्वेद (काशी वि० सं० १९९४) ।
१०. अथर्ववेद संहिता विश्वनाथ, व्या० डा० सत्यव्रत सिंह चौखम्भा विद्याभवन, चौक, वाराणसी (१९५७) ।
११. शतपथ ब्राह्मण
१२. साहित्य दर्पण

३०४ : पद्यचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

१३. हरिवंश पुराण
जिनसेन, अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन (प्र० सं०) ।
१४. तत्त्वार्थसूत्र—(मोक्षशास्त्र)
उमास्वामी, टीका० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रका० मूलचन्द्र किशन-दास कापड़िया, सूरत, वीर सं० २४८२ ।
१५. रत्नकरण्ड आवकाचार
आचार्य समन्तभद्र, जैनप्रेस, ललितपुर ।
१६. तत्त्वार्थवार्तिक
अकलंकदेव, सं० पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी) (प्र० सं०)
१७. लघुयस्त्रयादि संग्रह
अकलंकदेव, सं० पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी), प्र० सं० ।
१८. न्यायदीपिका
अभिनव धर्मभूषणयति, अनू० डा० दरबारीलाल कीठिया, प्रका० वीरसेवा मन्दिर, देहली, द्वि० आवृत्ति ।
१९. कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्
कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, रामतेज शास्त्री, पं० पुस्तकालय, काशी सं० २००० ।
२०. अष्टाध्यायी
आचार्य पाणिनि ।
२१. शिशुपाल वध
महाकाव्य मात्र ।
२२. महाभारत
चित्रशाला प्रेस, पूना ।
२३. नाट्यशास्त्र
भरतमुनि, सम्बर्द्ध सं० ।
२४. संगीतरत्नाकर
आचार्य राज्ञदेव, अडयार सं० ।
२५. अभिनव भारती
बङ्गोदा सं०, तृतीय खंड ।
२६. आदिपुराण
जिनसेन, अनु० पं० पन्नालाल साहि-
त्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।
२७. मुनिधर्मप्रदीप
आचार्य कुंभुसागर, कुंभुसागर ग्रन्थ-
माला, पुष्प नं० ३०, सन् १९४१ ।
- प्राकृत ग्रन्थ**
२८. जाधारांग
२९. नायाधम्मकहाओ

३०. निशीथ
 ३१. अंतगडदसाजी
 ३२. सूर्यगडग
 ३३. द्रव्यसंग्रह
 ३४. गोम्मटसार (जीवकांड)
पालिग्रन्थ
 ३५. दीघनिकाय
 ३६. केवट्टसुत्त
अपभ्रंश ग्रन्थ
 ३७. पंचमचरित—(भाग—१, २, ३)
हिन्दी ग्रन्थ
 ३८. जैन साहित्य और इतिहास
 ३९. संस्कृत साहित्य का इतिहास
 ४०. रामकथा (उत्पत्ति और विकास)
 ४१. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा
 ४२. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
 ४३. कालिदास और उसकी काव्यकला
 ४४. संस्कृत साहित्य का इतिहास
 ४५. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान
- नेमिचन्द्राचार्य, गणेशधर्मा दि० जैन ग्रन्थमाला, खरखरो, बनबाद, बिहार, (१९५८) ।
 नेमिचन्द्राचार्य, रायचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर ।
 (बम्बई सं० १९४३) ।
 (बम्बई सं० १९४३) ।
 कवि स्वयम्भू, अनु० डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, एम० ए० साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (प्र० सं०) ।
 नाथूराम प्रेमी (द्वि० सं०) ।
 कीष, प्र० मोतीलाल बनारसीदास, काशी ।
 डॉ० रेवरण्ड फादर कामिल बुल्के हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्ववि० ।
 चन्द्रशेखर पांडेय तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास, साहित्य निकेतन, कानपुर (१९६४) ।
 वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, काशी (१९६०) ।
 वागीश्वर विद्यालंकार, प्र० मोतीलाल बनारसीदास ।
 बलदेव उपाध्याय, वारदा प्रकाशन, वाराणसी (सप्तम सं०) ।
 डॉ० हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल (१९६२) ।

३०६ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

४६. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत
डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी (प्र० सं० १९६८) ।
४७. भारतीय संस्कृति का इतिहास
नरेन्द्रदेव सिंह शास्त्री, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ (द्वि० सं०) ।
४८. संस्कृत काव्य में शकुन
दीपचन्द्र शर्मा, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ (प्र० सं०) ।
४९. कादम्बरी: एक सांस्कृतिक अध्ययन
वासुदेवशरण अग्रवाल, चौखम्भा विद्या-मवन, वाराणसी (१९५८) ।
५०. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद
हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई (सितम्बर, १९५२) ।
५१. वर्ण जाति और धर्म
पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (प्र० सं०, १९६३) ।
५२. प्राचीन भारतीय वेशभूषा
डा० मोतीचन्द्र, सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली, सं० २००७ ।
५३. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन
वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, १९५३ ।
५४. रामायणकालीन संस्कृति
धान्ति कुमार नानू राम व्यास, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्र० सं० १९५८ ।
५५. प्राचीन भारतीय साहित्य की
सांस्कृतिक भूमिका
रामजी उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (मार्च १९६६) ।
५६. वैदिक साहित्य और संस्कृति
बलदेव उपाध्याय (तृ० सं० १९६७) ।
५७. जैन बाल गुटका (प्र० भाग)
बाबू ज्ञानचन्द्र जैनी, लाहौर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय अनारकली, जैन गली, लाहौर ।
५८. जैन दर्शन
पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला प्रकाशन (द्वि० सं०) ।

५९. राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त पुस्तकालय जैन, प्रका० साहित्य भवन
आगरा-३ (सन् १९७०) ।
६०. प्राचीन भारतीय संस्कृति श्री० एन० लूनिया, प्र० लक्ष्मी-
नारायण अग्रवाल, शिक्षा साहित्य के
प्रकाशक, आगरा (प्र० सं० जनवरी
१९६६) ।
६१. गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ प्रका० अखिल भारतीय संस्कृत परि-
षद्, लखनऊ (७ सितम्बर, १९६७) ।
६२. कला और संस्कृति डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य
भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
(दि० सं० १९९८) ।
६३. प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति राजकिशोर सिंह यादव, उषा यादव,
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, विनोद पुस्तक
भंडार, आगरा (प्र० सं० १९६८) ।
६४. संगीत शास्त्र के० वासुदेव शास्त्री, सूचना विभाग,
उ० प्र०, (सन् १९५८) ।
६५. भरत का संगीत सिद्धान्त कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति, प्रकाशन
शाखा, सूचना विभाग, उ० प्र०
(सन् १९५९) ।
६६. बरैया स्मृति ग्रंथ दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्, सन्
१९६७ ।
६७. भारतीय मूर्तिकला रायकृष्ण दास, नागरी प्रचारिणी
सभा, काशी, सं० २००९ ।
६८. भारतीय स्थापत्य द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, हिन्दी समिति,
सूचना विभाग, उ० प्र० (प्र० सं०
१९६८) ।
६९. सार्वदाह डॉ० मोतीचन्द्र, बिहार राष्ट्रभाषा
परिषद्, पटना, १९५३ ।
७०. Introduction to Prakrit.
७१. New standard dictionary of the English Language vol,
III Funk & wagnal,
७२. The century dictionary vol, V,

३०८ : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

७३. Encyclopdedia of religion and ethics.

पत्र-पत्रिकायें

७४. मार्टन रिव्यू

७५. महावीर जयन्ती स्मारिका

प्रका० राजस्थान जैन सभा, जयपुर
(१९६४) ।

७६. सन्मति सन्देश

प्रका० प्रकाश हितैषी शास्त्री, ५३५,
गांधीनगर, दिल्ली (वर्ष १५ अंक, ३)।



शब्दानुक्रमणिका

[अ]

अकृष्टपञ्चमसूत्र ८३
अजितनाथ ९८
अञ्जनगिरि हाथी १०५
अञ्जना १०५
अग्नि ३४
अग्निभूत ५१
अक्षुष ९
अङ्गद १८०
अङ्गकलिका १७४
अङ्गहाराश्रय १५२
अच्छिन्न १९७
अजितनाथ ५
अजितजय ११
अट्टालक १६७, १६९, १७०
अट्टालिका १७९, २०८
अणुव्रत २३४
अतिमुक्तक १९९
अतिमुक्तक १३२
अतिमुक्तक लता १३१
अतिवीर्य ७
अतीन्द्रिय २७९
अत्यर्थ १९९
अथर्ववेद १८४
अद्भुत १९९
अदेशाहत १९९
अधिष्ठात १६३, १९८
अध्यात्म रामायण २९३

अन्तर २६०
अनगार घर्म २३४
अनङ्गलवण ९, २९०
अनन्त २५९
अनन्तनाथ ९९, १००
अनिवृत्तिकरण २६२
अनीकिनो २१३
अनुत्तरवाग्मी १, ४
अनुमती (देवी) ५६
अपध्यात २३७
अपभ्रंश २८, २९, ३०
अपर्याप्तक २६०
अपूर्वकरण २६२
अभिनन्दन ९९
अभिनन्दननाथ १००
अभितयाश्रय १५२
अभिलाषार्थ चिन्तामणि १५७
अभिषेक १३३
अमरकोष १८३, १८४
अमात्य २०४
अमार्गप्रयात १९९
अमितगति २९
अम्भोजकाण्ड ८७, १९४
अम्लातक २२७
अयोगकेवली २६२
अयोध्या ११, ८७, १००, २७७, २९२
अजितनाथ ९९
अरनाथ ९९, १००

३१० : पञ्चरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

अर्थसर्वज्ञ २७३

अर्थशास्त्र २१०

अर्थि ६८

अर्द्धवर्षदेश १०१

अर्हद्युति १

अरिष्टपुर ९९

अरी २५०

अरुचि ५७

अरुणग्राम ९८

अलंकारपुर ९८

अल्पबहुत्व २६०

अवगाहनगुण २६४

अवधि २६१

अवसर्पिणी २५९

अवसुप्तप्रतीपक १९९

अविद्ध चित्र १५७

अविनाभाव २७४

अचिरतसम्बद्घृष्टि २६२

असुर २८९

असुरनगर ९८

असुरसंगीतनगर ९८

अशोकमालिनी (बापी) ११९

अशोकदृष्ट १३०, १८९

अश्वघोष १४

अश्वपरीक्षक ६०

अश्वमेध १५६, २९२

अदिबनीकुमार २८९

अश्वसेना २१२

अश्वशाला १७२

अष्टापद ९२

अष्टाध्यायी १८२

अष्टशाल १७३

अहमिन्द्र २३३

अक्षमाला २७८

अक्षोहिणी २१३

अत्रि ३४

[अ]

आकाशगामिनी विद्या ११

आक्सफोर्ड १६३

आख्यात ४९

आचार्य ४८, २४०

आठ अनुयोग २६०

आठ प्रातिहार्य १५९

आतोद्यशाला १७२

(डॉ०) आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ५

आदिपुराण २०९, २११

आधुनिक भारतीय भाषा ६८

आनन्द रामायण २९१, २९२

आवाषा २६४

आयुधशाला १७५

(छः) आवश्यक २४३

आर्द्रचित्र १५७

आर्द्र (माला निर्माण कला) १९७

आर्य २५७

आरण्यक २८८

आरण्यक शास्त्र ४९

आस्तिक्यवाद २७१

आस्थानमण्डप १७४

आस्थानी १७४

आष्टाह्निक पर्व ६, ८

आहत १९९

आहवनीयाग्नि ३३

आहारमण्डप १७४

आक्षेपणी १२३

[इ]

इन्द्र ५, ३२, २२४
 इन्द्रगृह १, २९९
 इन्द्रजित् ८, १०१
 इन्द्रनीलमणि १६१, १८०, १९२
 इन्द्रभूति १, २, २९९
 इन्द्रसभा १८५
 इन्द्रसेन १
 इन्द्राणी ३३
 इक्षु ८३
 इक्ष्वाकु ६
 इक्ष्वाकुकुल २७७
 इक्षुरस ४४

[ई]

ईषत्प्राग्भारनामकी पृथ्वी २५८
 ईश्वर २८५

[उ]

उत्तरकुश २५७
 उत्तरपुराण १२
 उत्तररामचरित २९२
 उत्तरवान्मो २, २९९
 उत्सर्पिणी २५९
 उद्दालक पुष्पभञ्जिका १८२
 उद्यान १७१
 उद्योतनसूरि ३
 उपनिषद् २८८
 उपयोग २५९
 उपरब्ध्या १६५
 उपरम्भा २९३
 उपसर्ग ७, ४९
 उपशान्तमोह ४८, ७१
 उरगारुध २१६

उरोघात ५७

[ऊ]

ऊर्जयन्त ९३

[ए, ऐ]

ऐरावत हाथी १२८

[अं]

अंकुश २९२, २९३
 अंगिशिरस ३४
 अंजनगिरि १६१, १७९
 अंजनक्षोणीघर ९३
 अंजना ५, ५०
 अंजना पवनञ्जय २०

[आ]

आश्रम ५
 आश्रमदेव ५, ४४, ६२, ६३, ६५,
 ६६, ९८, १००, १०७, १२७,
 १७१, २९६
 आशि ३४
 आक्षराज १०९

[क]

कच्छोट २१५
 कणिकार १३२, १९२
 कपिल ३४
 ककच २१६
 कर्णरत्नानदी ९२
 कुषक ८४
 कुत्रिमसूरपत्र १३६
 कञ्चुकी ७१
 कृतान्तवक्त्र ९, ६६, २२९
 कृतिदास रामायण २९२
 कृत्रिमसुप्रोष ७

११२ : पञ्चरत्न और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

कृत्रिम उद्यान १६७	कामसूत्र २१
कदली गृह १३१	कामुक ६९
कमण्डलु २७८	काम्पिल्यनगर ४९, ८२
कम्पनद्वया १२	कालिदास २१, १८६
कम्बोडिया की रामकीर्ति २९२	कापसीरी रामायण २९२
कवच २२९	काहल १३३
कवि परमेश्वर १२	किष्किन्ध २२४
कर्कट २०६	किष्किन्धपुर ९८
(८६ पुरुष) कलायें १३८	क्रीडागृह १९१
(७१) कलायें १३९	कीडापर्वत ११८
(६४ सुनारों की) कलायें १३८	काञ्चनपुर २९६
६४ कलायें (वेद्याओं की) १३	कार्यालय १७६
६४ कलायें १३८	कांस्यघातु १५६
कायस्थों की कलायें १३८	काल २६०
कथासरित्सार २९२	काष्ठमयस्तम्भ १७५
कदम्ब १३२, १९२	काहली २२७
कनकमाला ९	कामदेव १३०
कपाटजीवि ७२	किन्नर १८९
कपाटयुगल १७३	किन्नर नामक नगर २८९
कम्प १७३	किमिच्छक दान ५७
कर्मसंश्रया १९८	किसान २२६
कला विलास १३८	किष्कुपुर ९८, १२१, १२३, १७७
कला भवन २१	कीर्तिघर ६, २९९
कल्पना १९८	क्रीडाञ्चल ८७
कल्पवासी १५८, २५७	कुण्डलमण्डित २११, २२४
करुणवृक्ष ३५, ६२, १७०, १७१, १७६	कुन्धु १००
कर्कट १६२	कुन्थुनाथ ९९
कवि परमेश्वर १३	कुन्दमण्डप १७४
काकु १९५	कुवेर ९८
काञ्चनपुर ९८	कुवेर सभा १८५
कालाणु २५९	कुम्भकरण ८, १३
कात्यायन श्रौतसूत्र २८१	कुम्हार २६९
	कुमुद २३१

कुर्वलयमाला ३

कुलकर ५, ३५, २०२, २९६, ३०२

कुलभूषण ८

कुश ३७

कुशाग्रगिरि ९२

कुशाग्रनगर ९८

कुशीलव १४

कुषाणकाल १५९

कूचिभट्टारक १३

कूप १६७

कैकया ६, २२४

कैकेयी १०, १२, ३६, २९१

कैवलज्ञान ५

कैलाश पर्वत ५, ५६, १६०

कैम्ब्रिज १६३

कैवर्त ७०

कैवल्य ५

कोट्ट १६३

कोश २०४, २११

कोटिशिला ७

कोशल १९८

कोशल्य ८

कोशाम्बी ९९

कोशाम्बी १२०

कोटिल्य १६८, १६९, २२१, २२३, २२५

[ख]

खड्ग २१६

खत्तिमा २०७

खदिराटवी २९७

खरवृषण ७

खलधाम ८४

खर्वट २१०

खान ८५

खेट १६२, २०६, २०७, २१०

[ग]

गजशाला १७२

गणिका १३६

गणित शास्त्र ४९

गन्धर्व ३७, २८९

गन्धर्वनगर २८९

गन्धमाला ३३

गन्धोदक १३३

गर्भालय १८१

गख १७२

गखवाहिनी ७

गारुडम् २१७

गृहीत १९९

ग्राम १४०, २०६

गलगण्ड २३

गीत १३९

गीत शास्त्रकौशलकोविद ६८

गुजराती रामायणसार २९१

गुञ्जा २२७

गुणदोषविज्ञान १९८

गुणभद्र १०, १२, १३

गुणवत् २३४

गुह्य १६३

गुल्म २१२

गोप ७०

गोपाल ६८

गोपुर १६९, १७०, १७४

गोसव नामक यज्ञ २७८

गोष्ठी १२१

गोशाला १७२

गोतम ५

गङ्गा ९१

३१४ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

गङ्गाधर २२४

[घ]

घटीयन्त्र ८३

घोष ६९, २०६, २१०

घंटा १३१

[छ]

चक्र ११, २१५

चक्रपुर ४

चक्ररत्न ८

चक्रवर्ती ८५

चतुरङ्गदल २१२

चतुःशाल ८६, १७२, १७३, १७६

चन्द्रतगिरि ९३

चन्द्रप्रभ ९९

चन्द्रप्रभचरित ५३

चन्द्रसागर २९

चलित १९९

चाण्डाल ६४

चतुरङ्गिणी सेना १६५

चमू २१३

चम्पा ९९

चम्पक १३२, १९२

चमरेन्द्र ८

चन्द्रवंश २९६

चन्द्रकीर्ति २९

चन्द्रतखा ८, २९१

चन्द्ररश्मि २३१

चन्द्रशाला १७२

चपलवेग १०

च्यवनमहर्षि १४

चित्रपट १९०, २९०

[छ]

छदि ५७

छावनी १७५

छान्दोग्य उपनिषद् १८४

छात्रावास १६३

छिन्न १९७

[ज]

जठराग्नि ३३

जनक ६

जनपद २०४, २०६

जम्बूद्वीप ४९, १०१

जम्बूस्वामी २

जनानन्द (वन) ११८

जन्मोत्सव १२७

जयमित्र १६१

जयवान् १६१

जलक्रीड़ा ५, २७

जातक २८७

जाति १४०, १९६

जाम्बव २३१

जाल्हीवी ९१

जयचन्द्रा २२४

ज्योतिषी २५७

ज्योतिषी देव १२८

जलयुद्ध २२४

ज्वलनवक्त्रधार २१७

जितपक्षा ७, १८५

जिनचैत्य १६०

जितदत्त २६२

जिनदास २८

जिनकूट १८८

जिनमूर्ति १६०

जिनरत्नकोष २९

जितवाणी १५

जिनवेश्म १९१

जिनसेन १३, २९४
जिनालय १३०
जिनेन्द्रदेव २४८
जिनेन्द्रालय १८९
जुह्वकदेव २७८
जैमिनी २७४
जैमिनीय अश्वमेध २९२

[ञ]

झम्झा २२७
झर्झर २२७
झल्लर २२७

[ढ]

ढक्का २२७

[त]

तत्त्वार्थवातिक २६१
तत्त्वार्थसूत्र २३७
तदुन्मुक्त १९७
तक्ष ७०
तापस ६९
ताम्बूल ४३
ताम्बूलिक ७२
तामसास्त्र २१५
ताम्रपत्र १३३
ताल १४०
तिलक (उद्यान) १०१
तिलोत्तमा १७
तीर्थकर १३०, २६८
तीर्थकर प्रतिमा १५९
तीर्थस्थान १८४
तुम्बुर १२९
तुरही १३३
तुलसीदास २९, ३०

तूर्य २२७
सूणीगति ९३
तेला २४७
तैत्तिरीय संहिता १८४
तोरण १३१, १९१, २०८
तोरणशालभञ्जिका १८२
तोरवे रामायण २९२

[थ]

थण्ड २०४
थण्डनीति २१२
थण्डव्यवस्था २१२
थण्डकवस ७
थुंर २२७
थ्रिमुल्ल ४४
थरण ११५, १९१
थूत १२०
थ्रव्याधिकनय १७२
थ्रुष्टियुद्ध २२४
थ्रुशाल १७३
थ्रुक्षा ८३
थ्रुार १६७
थ्रुारपाल १८१
थ्रुिजेन्द्रनाथ शुक्ल १८८
थ्रुिपद रामायण २९२
थ्रुशरथ ६, १०, १२, ११२, २२४
थ्रुशानन ५, १०, १०७, २०६, २८९
थ्रुश्रिणाग्नि ३३
थ्रुासी ७१
थ्रुिध्यास्त्र ७
थ्रुर्ग १६३
थ्रुेवकुरु २५७
थ्रुेवनर्तकिथी ११५

३१६ : पञ्चमखरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

देशभूषण-कुलभूषण ७
 दुन्दुकाणक २२७
 दुन्दुभि २२७
 दुर्ग २०४
 दीनार ८२
 द्राम् ७२
 दिक्कुमारियाँ १२७
 दिगम्बर परम्परा ४
 दिवाकरमति १, २९९
 दो० ब० केशवराव ध्रुव ३
 दीक्षाकल्याणक ५
 द्रुत १४४
 द्रुता १४०
 दुःश्रुति २३७
 देवमन्दिर १८३
 देवायतन १८४
 देशविरति २६२
 देशभूषण ८
 द्रोणमुख १६२, २०६
 द्रौपदी २९८
 दौलतराम २८

[घ]

घनुर्वेद ४९
 घनुषपरीक्षा २९०
 धर्मकीर्ति २९
 धर्मनाथ ९९, १००
 धर्मपरीक्षा २९
 धातकीखण्ड ९८
 धानुष्क ६७, ८५
 धार्मिक ६७
 धात्री ७१
 धीरोदात्त २५
 धुम्धु २२७

धूर्त ६८
 धूर्तपत्तन ९८
 धूर्तस्त्रियान २९
 धूलिचित्र १५७, १५८
 [न]

नगाड़े १३३
 नर १३६
 नधुष २९६
 नमिनाथ ९९
 नर्मदा ९२
 नृत्य १३६, १३९
 नृत्यकार ८५
 नट ७०
 नन्द्यावर्त ८६, १७६
 नमिनाथ १००
 नर्मदा १८
 नय २७०
 नल ५, ७, २३१
 नलकूबर २९३
 नवशाल १७३
 नन्दीश्वर द्वीप १३२
 नागकुमार १५८, २८९
 नागपाश २१६
 नागपुर ९९
 नागसायक २१७
 नाट्य १३९
 नाट्यशाला १३२, १३९
 नाथूराम प्रेमी १, ३, १२
 नाभिराय ५५, १७१, १८३
 नाम ४९
 नायिका १८
 नारद ६, ११, ४९, १५८, २७७,
 २९२
 नाराच २१७

निकुञ्जगिरि ९३
निधिज्ञान ६२
निबोध (उद्यान) ११९
नियम २३९
निर्वेदनी १२३
निर्व्यूह १८५
निर्ग्रन्थ ८
निगात ४९
निषाद ७२
निर्वाण १०
निषध ९३
निक्षेपणी १२३
नील ५, ७, ९३, २३१
नीलाञ्जना ६६, १०१
नुकुली २५०
नेमिनाथ ९९, १००
नेमिष १०१
नौ निधियाँ ८५

[प]

पताका १३१
पट्टशाला १३२
पत्तन २०६
पत्ति २१२
प्रति सन्ख्या १२०
पृथ्वीसुन्दर ११
प्रभव १
प्रसन्न संयत २६६
प्रमाण २७०
पडमचरित ४
पडमचरिय २, ३, ४, १२, २९१
पटह २२७
पदाति सेना २१२
पथ्यबीची १६५

पथ ९१
पथदेवविजयगणि २८
पथनाथ २९
पथकनगर ४९
पथचरित १३२, १३९, १६४, १६६,
१६८, २०९, २८९, २९२ आदि
पथपुराण २९२
पथप्रभ ९९
पथप्रभ जितेन्द्र का मन्दिर १८१
पथमुनि २
पथराग १७६
पथरागमणि १९२
पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ५
परिकर्म १९८
परित्या ३४
पर्याप्तिक २६०
पर्यंक १६२
पर्यायार्थिकनय २७२
पत्य २५७
पवनञ्जय ५, ६
पर्वत २७७
पर्वनाम्न २१७
पर्सनिलिटी १३८
पञ्चछेद्य १९६
पुतना २१२
प्रजाग १०१
प्रयाग १६३
प्रजापति २८०
प्रतीन्द्र ९
प्रतीहारी १३०
प्रतोली १६९
पृथुला १४८
पृथ्वीघर २२३

३१८ : पदमचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

प्रच्युत २९७, २९८
 प्रभव २९९
 प्रमदधन ११९
 प्रमत्त विरत २६२
 प्रमादचर्या २३७
 प्रसूतिका गृह १२९
 प्रसवागार १७९
 प्रहस्त ७
 पाकशाला १७२
 पाठशाला १७२
 पाणिनि २०७
 पतिः दर्म की जिन प्रतिमाये १६०
 पाण्डुकवन १८८
 पाण्डुकशिला १२९
 पाणिनि २१०
 प्राकार १६७
 प्राकृत २८
 प्राग्ग्रह ७२
 पाताल लंका ९८
 पातञ्जल योगदर्शन २६१
 पानीयशाला ११९, १२०
 पापोपदेश २३७
 पार्श्वनाथ ९, १००, २६२
 पारिजात १९२
 पारिजातक १३२
 प्रासाद १७१
 प्रासादकूट ८६, १७६, १८८
 प्रेक्षागृह १३९, १७६
 प्रेक्षाकशाला १३१, १३९, १७२
 पालक ६८
 पालनी ११
 पिण्ड खर्जूर ८३
 पिशाच २२२

पीठमर्द ७०
 पीडित १९९
 पुण्डरीकिणी ९८, ९९
 पुतला १९९
 पुण्ड्र ८६
 पुरुषार्थचतुष्टय २५
 पुरोहित ६९
 पुलस्त्य १०
 पुलिन्द ६९, ८५
 पुष्पक ११
 पुष्पदन्त ९९
 पुष्कर धाम १७६
 पूर्वधातकी खण्ड २९८
 पोत ८२
 पंचशाल १७३

[फ]

फानूस ११५
 फौयद २१

[ब]

बड़ई २७६
 बनारस १२
 ब्रह्म सभा १८५
 ब्रह्मा ६५, २७५, २८०, २८१
 बृहत्कथाकोश २०९
 बृहस्पति ५०
 बलदेव २९८
 बलभद्र ८७
 बहुरूपा २१६
 बहुरूपिणी विद्या १२५
 बालपयंक १६२
 बालमीकि १४
 बाल्मीकि रामायण १३, २९, २९१

बालविल्य ६
बालि ५, ११
ब्राह्मयोग ५०
ब्राह्मण ५, ६४, २८८
बुद्धचरित १४
बुद्धिसर्वज्ञ २७३
बुध ५०
(बौ०) बुलनर ३
बुधिम १९७

[भ]

भङ्गित १९९
भद्र (नामक पुद्गल) ८२
भगवान् महावीर २९३
भुगु १४, ३४
भरत ६, ८, १०, ८४, १२६, २०९,
२९६
भरत क्षेत्र ३५, १०१, १०९, १६०,
१७०, २९८
भरत बाहुबली युद्ध ५
भरहुत १८२
भृष्टप्राप्त १९९
भवनवासी (देव) १२८, २५७
भविष्यवक्ता १०
भाण्डागारिक ७१
भानुकूट १८८
भामण्डल ६, ९, २९०, २९७
भार्गवच्यवन १४
भारवि २१
भावतपुंसक २६१
भावपुरुष २६१
भावस्त्री २६१
भाषा १९५

भिन्नपीडित १९९
भिण्डिगाल २३१
भिषक् ७२
भिक्षु १६३
भेषजकला १३८
भूत १५८
भूतिकर्म ६२
भूमि का दान २५०
भूमिगृह १८१
भंभा २२७

[म]

मकर १७१
मगध ८४, ९८, ३००
मगरमच्छ १८
मगर २०६, २०७
मङ्गल १७५
मङ्गवा १७५
मण्डुक २२७
मण्डलाग्र २१७
मणिजालक १८७
मणिमय कानूस १९१
मणिमती १०
मति २६१
मतिकान्त २११
मतिसागर २१९
मथुरा ८, १८२
मदनाकुश ९, २९१
मदनोत्सव १३४
मदनोत्सवा १३४
मधु ८
मधुपर्वत ९८
मन्त्री २०४

३२० : पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

मन्त्रकोविद २०४	म्लेच्छ २५७
मन्त्रिमण्डल २०५	मल्ल युद्ध २२४
मधुपान २७	मल्लिनाथ १००
मन्दार १९२	मृदुमति १२०
मन्दोदरी ८, १०, १०७, २०६, २६१, २९०	महादाह ज्वर ५७
मनोयोग २८९	महादेव ३२
मय ८	महाभारत १३, १४, १६५
मरुदेवी १२७	महादेव १९
महापद्म ९१	महारक्ष ११८
महामेरु ९२	महाभ्रत ६६, २३४
मंजूषा १०	महाहिमवान् ९३
मध्य १४४	महेन्द्र ७, १०९
मध्यमा १४०	मागधी १४८
मनोरमा ९	माघ २१, २२१
मनोवैज्ञानिक २१	मातङ्ग ६९, २०८
मन्दार १३२	मातृकार्ये १९६
मन्दिर १७४	मातृमेघ यज्ञ २७८
मन्त्रशाला १७२	मानसार १६२, १९३, २०७
मय २२१	मानुष पर्वत ९३
मर्दक २२७	मानुषोत्तर पर्वत २५७
मृदङ्ग २२७	मान्धाता २२९
मरुत् अरुत्र २१७	मायामय कोट १६८
मल्लिनाथ ९९	मारीचि ११
मस्तक लेखक २२३	मार्कण्डेय मृत्ति १५७
महाराजाधिराज २२३	माली २२४
महीधर २२४	माहण ४
मृगाङ्ग २०५	माहिष्मती ११६
मृच्छकटिक १३६	माहेन्द्रास्त्र २१६
मुग्धमय स्तम्भ १७५	मिश्र २०४
मृदङ्ग १३३	मिथ्यादर्शन २८५
मरुदेवी १५, ३७	मिथ्यात्व २६२
म्लेच्छ ६, ८२	मिश्र (गुणस्थान) २६२
	मिश्र (माला निर्माण कला) १९७

मीन ५०
 मेघ ५०
 मुक्त जीव १५
 मुक्तिक १९९
 मुनि ४८
 मुनिगण २०८
 मुनिराज ५१
 मुनिसुव्रत २५
 मुनिसुव्रतनाथ ६, ९८, ९९, १६०
 मुक्ताफल १७
 मूर्खगोष्ठी १२२
 मूर्च्छना १४०
 मूलगुण २४३
 मेघस्थनीय २७०
 मेघरवतीर्थ १०१
 मेघवाहन ८, १०१
 मेह पर्वत १०१
 मोक्ष २३४
 मौखिक (गाना) १३९
 मङ्गल ५०

[य]

यति ४८
 यथार्थ गुणीव ७
 यमपत्तन ९८
 यमराज ३२, ९८, २०६
 यमी २४०
 यपाति २७७
 यक्षगीतनगर २८९
 यज्ञ ११
 यज्ञशाला १७२
 यज्ञोपवीत ३३, २८४
 यज्ञ १३०, १५९
 यक्षिणियां १५९
 मानपत्र ८२

युद्धकोड़ा १२५
 योगशास्त्र २८
 योनिद्वय १९८

[र]

रजक ६९, ८५
 रटित २२७
 रत्नजटी ७, १०९
 रत्नस्तम्भ १७४
 रत्नसंघयपुरी ९९
 रत्नश्रवा १०९, २८९
 रथ ३३, १६२, १७६
 रथ्या १६५, १६६
 रथसेना २१२
 रम्भा ४९
 रथनूपुर ९८, १०६, ११२, १३४,
 १६४, १७१
 रविषेण १, १०, १८, २९, ६४, ६५,
 २९३, २९५, २९९
 रवीन्द्रनाथ टैगोर १३८
 रस १९८
 रसचित्र १५७
 राजगृह ३१, ४९, ८७, ९८, १६८,
 १७९, १८४, २०८, २९५,
 ३०१
 राजपुर २७६
 राजसिंहासन २१९
 राजहर्म्य १६५
 राजा चक्रध्वज ४६
 राज्याभिषेक ८
 राजा श्रेयांस ४४
 राम ७, ८, ९, २८, २१२, २१८
 रामकथा २९१
 रामकीर्ति २९२

३२२ : पद्यचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

रामचन्द्रिका २९२
 रामचरित २८, ३०
 रामचरितमानस ३०, २९१
 रामचरित्र २९
 रामदेवपुराण २८
 रामपुरी ६, ९८
 राम-लक्ष्मण ६, ७, ८, ९, १०९,
 १२६
 रामलिंगामृत २९२
 रामायण १७२
 रामायण कथानकम् २९
 (डॉ०) रायकृष्णदास १५८
 रावण ७, ८, १०
 राहुल २९, ३०
 राक्षस द्वीप २८८
 रोहिणी २९७
 (डॉ०) रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्के
 २८, २९१
 रुक्मी ९३
 रुक्मिणी २९८
 रुसो २०१

[ल]

लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित २८,
 २९
 लतामण्डप १७४
 लम्प २७७
 लम्पाक २२७
 लम्बूष १३१
 लय १४०, १४४
 लव ३७
 लव-कुश १२
 लवण २९३
 लक्ष्मण ६, ७, ८९, १००, ११२,
 २२१

लक्ष्मणसेन १
 लोक २०१
 लोमूळ नाम २९६
 (डॉ०) लाममन ३
 लासक ६८
 लेखवाह ७०
 लुब्धक ६९, ८५
 लेख १९५
 लेप्यकला १२९
 लोक यात्रा २१२
 लोह मुद्रार २१६
 लौहपिण्ड २६८
 लंका ७, ११
 लंकानगरी १६८
 लंका सुन्दरी ७

[व]

वज्रकर्ण ६, १०८, ११२, १३६
 वज्रजंघ ९
 वज्रावर्त ६, ३९, १०६, २१६
 वज्रोदर १३६
 वणिग्विधि ६२
 वणिज ८२
 वत्सनगरी ९९
 वर्द्धमान १, २, १००
 वर्द्धमानक (प्रेक्षागृह) ८६, १७६
 वन्दि ६९
 वनमाला ६
 वप्र १६७, १६८
 वराहमिहिर ५२
 वल्कल ३४
 व्यन्तर २५७
 व्याकरण २१, ४९
 वरुण ५, ६, २१८

वरुण सभा १८५
 वनक्रीड़ा ११८
 व्यन्तर १०८
 व्याघ्र ७२
 वसन्तोत्सव १३०
 वसु २७७, २९६
 वसुदेव २९६, २९७
 वक्षारगिरि ९२
 वात्स्यायन २१, १२१, १३८
 वातायन १७८
 वातव्याधि २२५
 वानरखज राजा २३२
 वापिका १८५, २०८
 वार्तिक २०८
 वादनशाला १३१
 वानरवंश ५
 वापिका १३२
 वार्तिक ६८
 वामुभूत ५१
 वाराणसी १०, ११, १६३
 वारुणास्त्र २१६
 वास्तु विश्वकोश १६२
 वास्तु शास्त्र १७३
 वादित्र १३९
 (डॉ०) वामुदेवशरण अग्रवाल १८२
 वाहिनी २१२
 वापी १६७, १७१
 वासुपूज्य ९९
 व्यायामिक १५२
 वृत्ति १४०
 विघ्नविनायक २१६
 विजयगणिवर २८

विजयार्द्ध ९२, ९८, १००, १०१,
 १६४, २०७, २१८
 विजयावती १०१
 विट ६८
 विदग्ध ६८
 विद्यार्थी ६८
 विद्यावर २८९
 विद्यालय १७९
 विद्वानों की ओळख १२६
 विदेह ९८
 विदेहा ६
 विद्व १५७, १९९
 डॉ० विन्टरनिस्ज ३
 विन्ध्यवन १०१
 विनमि १०
 विनय १६१
 विन्यास १९५
 विपुल ९२
 विपुलावल ५, २९५
 विभीषण ७, ९, ११, २१८, २१९,
 २३१, २९१
 विमल ३
 विमलसूरि २, १२, २९, २८८, २९२
 विराधित ७
 विराम १९५
 विलम्बित १४४
 विलम्बिता १४०
 विलासिनी १३६
 विमलनाथ ९९, १००
 विश्वानल १२०
 विश्वावसु १२९, २८९
 विश्वकर्मा का मन्दिर १८४
 विश्वनाथ २४

३२४ : पञ्चचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति

विशल्या ८	स्पृष्टि २६०
विष्णु ३२	सप्तशाल १७३
विष्णुधर्मोत्तरपुराण १५६	सप्तशि ९
विष्णुपुराण १२	सभा १६५
विज्ञानमहणोद्युक्त ६८	समामण्डप १७४
वीणा २२७	समराङ्गणसूत्रधार १७२
वीतशोका ९९	सम्मवनाथ ९८
वीरपुरुष की गोष्ठी १२१	सरोवर १६७
वीर्य १९८	स्वर १४०, १९५
वेणु २२७	स्वर्ग २५८
वेणुसावक २१७	सन्तानुवे २९
वेद २८८	सम्प्रेदशिक्षर ९२
वेदियाँ १८४	सम्यक्चारित्र २४५
वेद्या ६८, ११५, १३६, २०८	सम्यग्दर्शन २४५
वैजयन्तपुर १२२	सम्यग्ज्ञान २४५
वैजयन्ती ८६	समवसरण ५, ६३, १३०, ३०२
वैवस्वत ४९	स्वयम्भू ४, २९९
वैश्य ६३, ६४	सल्लेखना ९
वंशगिरि पर्वत १६०	समानार्थता १९५
वंश पर्वत ९२	समुच्चय ११९
वंशस्थ पर्वत १५८	समुदाय १९५
वंशस्थलपुर ७, ११४	समुद्रलंघन २९
वंशाग्रि ९३	समुद्रविजय २९७
	समुद्रावर्त २१७
[स]	स्वर्णमृग ११, १२
सगर चक्रवर्ती २२४, २९६	सर्वशूल ५७
सचिव २०४	स्वामी २०४
सत् २६०	सहस्ररविम ५, ४९, ११६
स्तम्भ १७४	सिंहवाहिनी ७
स्तम्भिनी बिद्या २१७	सहकार १३२, १९२
सत्जन ६८	सहस्रार १५१
स्नानगृह १२०	साकेता ९९
सन्नाहमण्डप १७४, १७५	सागरावर्त (धनुष) १०६
सप्ति २१५	

सागारधर्म २३४
 सातस्वर १४०
 साहसगति २०६
 सांची १८२
 सार्धवाह ८२
 सामन्त २२३
 सामान्याभिहित १९५
 सायक २१५
 सायकपुत्रिका २१५
 सासादन २६२
 साहसगति ३३
 साहित्यदर्पण २४
 सिद्ध परमेष्ठी २५८
 सिद्धालय २६९
 सिद्धार्थ महात्म्य २१६
 सिंहनाद करना १३६
 सिंहविष्टर १९३
 सिंहोदर ६, ११२, १३६
 सीता ७, ८, ९, १०, ११, २९०
 सीता रावण कथानकम् २८
 सेरतकाण्ड २९२
 सेरीराम २९२
 सेना २१२
 सेनामुख २१२
 सेनसंघ १
 सेवक ६७
 संहयान २१७
 सुकोशल ६
 सुखसेव्य (वन) २१८
 सुशीव ५, ९, १३१, १३४
 सुवर्मा १, २, २९९
 सुन्द २२७
 सुपाप ९९, १००

सुप्रजा २३०
 सुबाला १०
 सुमति ९९
 सुमहानगर ९९
 सुमाद्रिका ९९
 सुमित्रा ८
 सुमेरु १७३
 सुरकान्ता २७७
 सुरप्रभ ७, ११४
 सुरमय्यु १६१
 सुरसुन्दर १२६
 सुविधि १००
 सुवीथी ८६, १७६
 सुसीमा ९९
 सूत १४
 सूतिगृह १७८
 सूद ७०
 सुपकारी ७२
 सूर्य ५०
 सूर्यरज १०९
 सूर्यवंश २९६
 सूर्यहास खड्ग ७, २९१
 सूर्यावर्त २१६
 सूक्ष्मसाम्पराय २६२
 सोलह स्वप्न ३७, ५५
 सोमयज्ञ २८०
 सोमसेन २८
 सोमेश्वर १५७
 सोत्रामणि २७८
 सोदास २१९, २९६
 सोधसेन्द्र ९, १२९
 संगीत रत्नाकर १४८, १५५
 संभाजिता १४८

संयत ३४
संवाह २०६
सर्वसुन्दर १६१
स्यन्दन १६२
संक्रम (पुस्तकी) १३७
संख्या २६०
सङ्गीत १३९
संगीतज्ञ ८५
संघारा २४१
संवर्त २७२, २७९
संस्कार १९५
संस्कृत २८
संस्पृष्ट १९९
संवेजिनी १२३
संज्ञी २६०

[ष]

षट्शाल १७३

[झ]

शकट ८२
शक्रधनु २२४
शक्रप्रासाद १८३
शतद्वार ९८
शतपथ ब्राह्मण २८२
शनि ५०
शब्दकल्पद्रुम १६३, १६९
शब्दसर्वज्ञ २७३
शबर ७२, ८५
शम्भूक ७, २९१
श्याम की रामकीर्ति २९२
शय्योपचारिका १९८
शर्वरी (नदी) ९२
शरभ २३१
श्रमण ६७, २४७, २७७

श्रवणनक्षत्र ५०
श्रीचन्द्र २९
श्रीदामा ९
श्रीनिचय १६१
श्रीमन्यु १६१
श्रीहर्ष २१
श्रुत २६१
श्रुतकेवली २६
श्रुतभाग-भुनि १२७
श्रेणिक ५, १३, २९३
श्रेयांस ९९, १००, १०७
श्रेष्ठ ६९, ८५
शलकापुरुष ६
शबुध्न ८, ९, १०, २२९, २३०
शबुध्नय माहात्म्य २९
श्वेताम्बर परम्परा ४
शान्ति १००
शान्तिजिनालय ८, १८१, १८९
शान्तिनाथ ९९
शान्तिभवन १९०
शालभवन १७१
शालभञ्जिका १८१
शिखरी ९३
शिल्पकार १२३
शिखरत्न १८३
शिला २१५
शिलीमुख २१७
शिविका १६२, १९२
शिक्षाव्रत २३४
शीतल ९९
शीतलनाथ १००
शुक्र ५०, १६३, १६४
शुक्रनीति १३८

शुक्राचार्य १६५, २२२

शुक्लसूत्र १७२

शुष्क १९७

शुष्कचित्र १५७

शूद्र ६३, ६४, २१०

शास्त्र २२७

शुंगकाल १८७

[ह]

हृषिका २२७

हनुमान् ६, ७, ९, १०९ आदि

(डॉ०) हर्मन जैकोबी २

हर्षनरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन १८२

हरिभद्र २९

हरिवंश पुराण २९४, २९५

हरिषेण १०५

हरिषेणकृत कथाकोश २९

हलवाहक ८३

हस्त-ग्रहस्त ७

हस्तिनापुर १०७

हस्तिसेना २१२

हाब्स २०१

ह्वाट इज आर्ट १३८

हिमवान् ९३

हिरण्यकशिपु ३३

हिंसाध्यान २३७

हिंसायज्ञ ५

(डॉ०) हीरालाल ५, २८९

हुंकार २२७

हेतुक गुंजा २२७

हेमकूट १८८

हेमचन्द्र २८

हेमस्तम्भ १७४

हैका २२७

[क्ष]

अत्रिथ ६३

क्षय (पुस्तकम्) १३७

अत्रिथ ६४, ६७

क्षीण मोह २६२

क्षीरकदम्बक ४९, २२७, २९६

क्षुल्लक ५१, २९८

क्षेमा ९९

क्षेमाञ्जलि १८५

क्षेमाञ्जलिपुर १८३

क्षेमेन्द्र १३८

क्षेत्र २६०

[ञ]

त्रिकूटाचल ९२, ११८

त्रिपुर ३१, ९८

त्रिलोकमण्डन ८

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित २८

त्रैसठ शलाका पुरुष २८८

[ञ]

ज्ञानाग्नि ३३